गुप्त भारत की खोज

लेखक

डाक्टर पाल ब्रन्टन

अनुवादक—श्री वी० वेंकटेश्वर शर्मा, शास्त्री
(हिन्दी अध्यापक, आंध्र विश्वविद्यालय।)

कसमंडा

के

श्रीमान युवराज तथा श्रीमती युवराज्ञी

के कर-कमलों में—

अपनी पुस्तक का यह हिन्दी रूपान्तर

'गुप्त भारत की खोज'

सादर तथा सप्रेम समर्पित।

—डा० पाल ब्रन्टन

विषय सूची

चित्र सूची

डा० पाल ब्रन्टन (लेखक)

प्राक्कथन

लेखक—सर फ्रांसिस यंगहस्बैंड के० सी० आई० ई०, के० सी० एस० आई०, सी० आई० ई०

इस पुस्तक का नाम यदि 'पवित्र भारत' होता तो बहुत ही उचित होता, कारण कि यह वर्णन उस भारत की खोज का है जो पवित्र होने के कारण ही गुप्त है। जीवन की अति पवित्र बातें कभी साधारण जनता के सामने प्रदर्शित नहीं की जातीं। मनुष्य का सहज स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि वह ऐसी बातों को अपने ही अंतरतम तल के निगूढ़ कोषागार में ऐसी सावधानी के साथ छिपाये रखता है कि शायद ही किसी को उनका पता लग पाता हो। उनका पता लगा लेने वाले वे ही थोड़े से व्यक्ति होते हैं जिनको आध्यात्मिक विषयों की सच्ची लगन होती है।

व्यक्ति के समान ही किसी देश के विषय में भी यह कथन पूर्ण रूप से लागू होता है। कोई भी देश अपने पवित्रतम विषयों को गोपनीय रक्खेगा। किसी भी अजनबी के लिए यह पता लगा लेना सरल नहीं है कि इंगलैन्ड अपनी किन बातों को सब से अधिक पवित्र समझता है। यही बात भारत के सम्बन्ध में भी ठीक है। भारत का अत्यन्त पवित्र अंग वही है जो अत्यन्त गुप्त है।

गुप्त विषयों की खोज करना बड़े परिश्रम और लगन का कार्य है; फिर भी सच्ची खोज करने वाले को अन्त में उनका पता लग ही जायगा। जो पूर्ण मनोयोग और सच्चे संकल्प के साथ खोज के कार्य में लगते हैं वे अन्त में सफल ही होते हैं।

श्री ब्रन्टन की लगन इसी प्रकार की थी और वे अन्त में सफल ही हुए। उन्हे बड़ी कठिनाइयो का सामना करना पड़ा; क्योकि और देशो की भांति भारत मे भी आडम्बरपूर्ण आध्यात्मिकता का जाल फैला हुआ है और सत्य का पता लगाने के लिए इस झूठे जाल को काट कर आगे कदम रखना पड़ता है। सच्ची आध्यात्मिकता के जिज्ञासु को अगणित आध्यात्मिक ढोंगियो और नटो जैसी कलाबाज़ी करने वाले व्यक्तियो के झुंडो की उपेक्षा करते हुए आगे बढ़ना पड़ता है। इन लोगो मे बहुतेरे ऐसे भी होते हैं जिन्होने अपने मन और शरीर पर काफी अधिकार प्राप्त करके उन्हे पूर्ण रूप से नियंत्रित कर लिया है। वे अपने चित्त को एकाग्र करने मे चरम सीमा तक पहुँच गये है। इनमे से कितने ही इस प्रकार की साधनाओ द्वारा अज्ञात शक्तियां प्राप्त करने मे भी सफल हुए है।

इन सब मे भी अपने अपने ढंग की रोचकता होती है। मनोविज्ञान का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिको के अध्ययन तथा परिशीलन के लिए वे उचित सामग्री हो सकते हैं। पर वे सच्चे साधू अथवा योगी नहीं कहे जा सकते। वे ऐसे स्रोत नही है जिनसे आध्यात्मिकता की धारा बह निकले।

श्री ब्रन्टन जिस गुप्त और पवित्र भारत की खोज करने गये थे उसका इस कोटि के व्यक्तियो से कोई सम्बन्ध नहीं है। श्री ब्रन्टन ने उन्हे देखा, उन्हे परखा और उनका वर्णन भी किया। परन्तु उन्हे पीछे छोड़ते हुए वे अपने खोज कार्य में आगे बढ़े। वे आध्यात्मिक अनुभूति के शुद्धतम और अत्यन्त निर्मल रूप का दर्शन करना चाहते थे और अन्त मे उनकी साध पूरी भी हुई।

श्री ब्रन्टन ने नगरो से दूर निर्जन नीरव जंगलों मे, या हिमालय की तराइयो मे भारत की 'मूर्तिमान पवित्रता का दर्शन पाया

है, क्योंकि भारत के सच्चे साधु—महात्मा ऐसे ही स्थानों में जा कर निवास करते हैं। श्री ब्रन्टन सब से अधिक 'महर्षि' के साक्षात्कार से प्रभावित हुए। भारत भर में वे अपने ढंग के केवल अकेले नहीं हैं। भारत के कोने कोने की छान बीन करने पर इसी उच्च कोटि के व्यक्ति मिल सकते हैं, परन्तु उनकी संख्या अधिक नहीं किन्तु बहुत ही कम है। ये ही भारत की सच्ची प्रतिभा के परिचायक हैं और ऐसे ही सच्चे साधुओं में परम पिता परमेश्वर विभिन्न अंशों में अपने को व्यक्त करता है।

अतः ऐसे महात्मा ही इस जगत में जिज्ञासुओं की खोज के परम योग्य लक्ष्य हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ में इसी प्रकार की एक सफल खोज का परिणाम हमारे सामने उपस्थित किया गया है।

—फ्रांसिस यंगहस्बैंड

ज्योतिर्गिरि अरुणाचल पर अरुणाचलेश का मन्दिर

गुप्त भारत की खोज

१

पाठकों से निवेदन

भारतीय जीवन का एक पहलू अत्यन्त निगूढ़ और रहस्य-मय है जिसका अपने पश्चिमी भाइयों के लाभार्थ स्पष्टीकरण करने की मैंने चेष्टा की है। शुरू के यूरोपीय यात्री स्वदेश वापस आने पर हिन्दुस्तान के फकीरों के सम्बन्ध में अनेकानेक जादू-भरी कहानियां उपस्थित किया करते थे, और आजकल के यात्री भी कभी कभी कुछ ऐसी ही कथाएं सुनाया करते हैं।

भारतवर्ष में एक विशेष कोटि के रहस्यपूर्ण व्यक्ति होते हैं जिन्हें कोई तो फक़ीर कहते हैं और कोई योगी। उनके बारे में सदा अद्भुत वृत्तान्त सुने जाते हैं। पर क्या इन गाथाओं की तह में कोई सत्य भी है? बार बार यह बात दुहराई जाती है कि भारतवर्ष के प्राचीन विज्ञान का भांडार अत्यन्त रहस्यपूर्ण है और उसके अनुसार आचरण और अभ्यास करने से निश्चय ही मानसिक शक्तियों का असाधारण विकास हो जाता है। क्या ये कथन सत्य के आधार पर स्थित हैं? इस रहस्य का पता लगाने के लिए मैं एक लम्बे सफर पर चल पड़ा और यह कथा मेरी इसी खोज का एक संक्षिप्त ब्यौरा है।

इसे मै संक्षिप्त व्यौरा इसलिए कहता हूँ कि स्थल और समय के प्रतिवन्धो से मै लाचार हूँ। कहीं कहीं मैं केवल एक ही योगी का उल्लेख कर सका हूँ जब कि वास्तव मे मेरी भेट कई योगियो से हुई थी। जिनके व्यक्तित्व का मेरे मन पर गहरा असर पड़ा है उन्ही कुछ योगियो का वर्णन मैने इस पुस्तक मे किया है। इस चुनाव मे यह ध्यान भी रक्खा गया है कि पश्चिमी भाइयो के लिए किन योगियो की कथाए अधिक रोचक होगी। कितने ही साधुओं के वारे मे यह प्रसिद्धि सुनाई पड़ी कि उनका विज्ञान अगाध है और उन्होने असाधारण शक्तियां प्राप्त की है। इन कथनो से आकृष्ट हो कर कड़ाके की धूप और झुलसाने वाली लू सह कर तथा कितनी ही राते विना सोये हुए बिता कर इन साधुओ की खोज मे मै भटकता फिरा। पर अन्त मे अधिकांश धर्म-ग्रंथो के ग़ुलाम, आदरणीय मूढ़, धनलोलुप नट, बाजीगर अथवा हाथ की सफाई दिखाने वाले मदारी ही निकले। ऐसे व्यक्तियो के वर्णन से इस पुस्तक के पन्नो को काला करना न तो पाठको के लिए उपयोगी होगा और न यह कार्य मुझे ही रुचिकर है। अतः अपने समय की वरवादी की इस कहानी को इतने मे ही समाप्त करता हूँ।

मेरा यह विनम्र विश्वास है कि यह मेरा अहोभाग्य ही था कि भारतीय जीवन का एक ऐसा अप्रकट अंग भी मुझे देखने को मिला जो प्रायः साधारण पश्चिमी यात्रियो की दृष्टि अथवा उनकी वुद्धि के परे रहता है। इस विशाल भारत मे रहने वाले अंग्रेजो मे वहुत ही कम ऐसे होगे जिन्होने इस पहलू का अध्ययन करने का कष्ट उठाया हो। ऐसे जो होगे वे भी पक्षपात रहित तथा गम्भीर समीक्षा करने के योग्य नही कहे जा सकते ; क्योकि उनके लिए अपने सरकारी पद के गौरव की रक्षा करना परम आवश्यक है। जिन अंग्रेज़ लेखको ने इस विषय पर कलम

उठाई है वे एकदम वहमी और संशयात्मा बन बैठे हैं। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ है कि इस विषय का सच्चा और पूरा ज्ञान रखने वाले भारतीय ऐसे अंग्रेज़ लेखकों से इन विषयों की सच्ची चर्चा ही नहीं करना चाहते। अतः इस तत्व के पहचानने के कई साधन ऐसे लेखकों के लिए असाध्य ही रहे। यदि यूरोपीय लेखक योगियों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त भी कर पाये हैं तो वह पूर्ण नहीं हुई है; और सच्चे योगियों तक तो उनकी पहुँच निश्चय ही नहीं हुई है। योगियों को जन्म देने वाले देश भारतवर्ष में ही सच्चे योगी अब उँगलियों पर गिने जा सकते हैं। उनकी संख्या अब नहीं के बराबर ही समझनी चाहिये। वे अपनी सिद्धियों को जनसाधारण से गोपनीय रखना पसन्द करते हैं और जान-बूझ कर साधारण लोगों के सामने अपने को मूढ़ सिद्ध करना चाहते हैं। चीन, तिब्बत या भारत में यदि कभी कोई पश्चिमी यात्री की भूले-भटके इन योगियों तक पहुँच हो जाती है तो वे बड़ी खूबी से अपने को अनाड़ी के रूप में प्रकट करते हैं और उनकी असलियत की उन गोरे मुसाफिरों को टोह तक नहीं मिलती। पता नहीं उनके इस प्रकार के आचरण का कारण क्या है; शायद वे 'जानन्नपि हि मेधावी जड़वल्लोके आचरेत्' वाली सूक्ति को ठीक मानते हैं। वे तो दूरवर्ती निर्जन स्थानों में रहने वाले संसार से विरक्त जीव हैं। किसी भी नये और अपरिचित व्यक्ति से भेंट होने पर वे उसको अपनी वास्तविकता से परिचित नहीं होने देते। कम से कम आगन्तुक का गहरा परिचय न होने तक वे उससे खुल कर बातें नहीं करते। इन्हीं कारणों से पश्चिम के लोग योगियों के अनूठे जीवन के बारे में बहुत कम लिख पाये हैं, और जो कुछ अब तक लिखा मिलता भी है वह अस्पष्ट और अपूर्ण है। कई भारतीय लेखकों

ने इन योगियो के विषय मे बहुत कुछ लिखा है। परन्तु इन लेखकों के कथनो को बड़ी सावधानी से स्वीकार करना होगा। खेद है कि प्राच्य लेखक मीमांसात्मक-वृत्ति त्याग कर वास्तविक तथ्यो के साथ किवदन्तियो को भी मिला देते है। अत उनकी पुस्तको के उल्लेख पूर्ण रूप से प्रामाणिक नही माने जा सकते। जब मैने स्वयं इन ग्रन्थो के उल्लेखो को सत्यता परखी तो मुझे बड़ा कटु अनुभव हुआ और मैने भगवान को धन्यवाद दिया कि उसकी कृपा से मुझ मे पश्चिमी वैज्ञानिक मनोवृत्ति का विकास हुआ और पत्रकार के पेशे को अपनाने के कारण सहज विवेक तथा छानबीन करने की आदत पड़ी। प्राच्य लोगों के अंध-विश्वासो की तह में निश्चय ही कुछ न कुछ वास्तविक तथ्य होता है परन्तु, उसे खोज कर निकलाने के लिए अत्यन्त सतर्क रहना आवश्यक है। जहाँ कहीं भी मै गया मै सदैव अपनी आलोचनात्मक वृत्ति को सजग बनाये रहा, परन्तु साथ ही मैंने जानबूझ कर विरोधी रुख भी नही रक्खा। दार्शनिक जिज्ञासा के अतिरिक्त रहस्यमय तथा अनहोनी बातो से भी मेरी अभिरुचि है, यह जान कर कितने ही लोगो ने मुझे जो बाते बतलाईं उनमे वास्तविक सत्य तो बहुत कम था और कल्पना की मात्रा अत्यन्त अधिक। इस प्रकार के वर्णन सुनते समय कभी कभी मेरे अन्दर यह प्रेरणा उठा करती थी कि मै इन लोगो को साफ साफ समझा दूँ कि सत्य का पाया स्वयं ही बहुत मजबूत है और वह बिना किसी सहारे के ही दृढ़ता के साथ जमा रहेगा; लेकिन इस झगड़े मे पड़ने की मुझे फुर्सत ही न थी। तो भी खुशी की बात है कि जिस प्रकार मै महात्मा ईसा के भाष्यकारो की नासमझी की अपेक्षा उन्हीं के सत्य वचनो का अध्ययन करना अधिक उचित समझता हूँ उसी प्रकार प्राच्य संसार के रहस्यो तथा अद्भुत महिमाओं को भी

मैंने अपनी निजी विवेचनात्मक कसौटी पर कस कर परखना ही अधिक उचित समझा। कड़ी से कड़ी परीक्षा पर भी खरी उतरने वाली सत्य सूक्तियों की तलाश में मुझे उनके साथ मिश्रित घोर अंध-विश्वासों तथा परम्परागत चली आई हुई थोथी बातों को अलग हटा देना पड़ा। यह मेरे लिए आत्म-प्रशंसा की बात है कि यदि मेरे स्वभाव में वैज्ञानिकों जैसी प्रत्येक बात को संशय और सन्देह से देखने की सनक और साथ ही आध्यात्मिक जिज्ञासा की सच्ची लगन का अपूर्व मेल न होता तो मैं अपनी इस खोज के कार्य में कभी सफल न होता, क्योंकि साधारणतया ये दोनों प्रवृत्तियाँ निरन्तर विरोधी और संघर्षमय हैं।

इस पुस्तक का नाम मैंने 'गुप्त भारत' इस लिए रक्खा है कि यह उस भारत की कथा है जो हज़ारों वर्ष से परखने वालों की आँखों से ओझल रहा है, जो संसार से इतना अलग और एकान्त रहा है कि आज उसके बचे-खुचे चिन्ह ही रह गये हैं और जिनके शीघ्र ही मिट जाने की सम्भावना है। जनसत्तात्मकता के इस युग में हमें यह बात बिलकुल स्वार्थ भरी जँचेगी कि इन योगियों ने अपनी इस ज्ञान-राशि को गोपनीय रक्खा, परन्तु इसके लुप्त-प्राय होने का यही प्रधान कारण है।

इस समय भारत में अंग्रेज़ हज़ारों की तादाद में बसे हुए हैं और हर साल भ्रमण के लिए सैकड़ों इस देश की यात्रा करते हैं। लेकिन बहुत कम लोग यह जानते हैं कि भारत में एक ऐसी अमूल्य निधि भी है जो अन्त में संसार के सामने भारत के सोने, चाँदी और जवाहिरातों से भी अधिक क़ीमती ठहरेगी। किसी अँधेरी गुफा मे बैठे अर्धनग्न भारतीय साधु अथवा शिष्यों से घिरे हुए ज्ञानवार्ता को चलाने वाले महात्मा को साष्टांग दंडवत

करना शायद ही किसी अंग्रेज़ को पसन्द आवेगा। अतः इन अंग्रेज़ों से यह आशा करना ही व्यर्थ है कि वे अपना सारा काम-काज छोड़ कर इन योगियों का पता लगाने का कष्ट उठावेंगे। इस कोटि के लोगों ने अपने तथा बाहरी संसार के बीच ऐसा अनिवार्य पर्दा डाल लिया है कि यदि किसी उदार स्वभाव के विवेकी अंग्रेज़ को ब्रिटिश रहन-सहन छोड़ कर किसी योगी के संग ऐसी गुफा में रहना पड़े तो उसे न तो योगी के साथ रहना रुचिकर होगा और न वह योगी की विचारधारा को ही समझ सकेगा। फिर भी भारतीय अंग्रेज़, चाहे वे फौज के हो या मुल्की हाकिम, व्यापारी अथवा पर्यटक, योगियों के प्रति उदासीन होने के लिए दोषी नहीं ठहराये जा सकते, क्योंकि उनके लिए योगी के कुशासन पर बैठना ही अपने आत्मसम्मान को धक्का पहुँचाने की बात होती है। ब्रिटेन की मर्यादा निबाहने की टेक तो दूर रही, जिसको अक्षुण्ण बनाये रखना आवश्यक ही है, यथार्थ बात यह है कि ये अंग्रेज़ जिस कोटि के साधुओं के सम्पर्क में आते हैं वे अपनी ओर ...रों को आकर्षित करने के बदले अपने प्रति घृणा का भाव ही पैदा करते हैं। ऐसों से दूर रहने में कोई हानि भी नहीं होती। तिस पर भी यह बड़े खेद की बात है कि अंग्रेज़ लोग कितने ही साल तक भारत में रह कर भी बहुधा भारतीय योगियों के सच्चे गुणों को जाने बिना ही अपने घर लौट आते हैं।

त्रिचनापल्ली के पहाड़ी किले के निकट एक मूढ़ अंग्रेज़ से अपनी भेंट की बात मुझे अब तक अच्छी तरह से याद है। वह भारत के रेलवे विभाग में २० साल से कुछ अधिक समय तक एक ज़िम्मेदार पद पर काम कर चुका था। अतः उससे भारत के बारे में अनेक प्रश्न पूछना उचित ही था। आखिर

को सकुचाते हुए मैंने अपनी खोज की बात भी पूछ डाली—"क्या किसी योगी से आपकी भेंट तो नहीं हुई ?"

उसने मेरी ओर शून्य दृष्टि से ताका और कहा—"योगी से ! योगी कौन सी बला है ? क्या यह कोई जानवरों की किस्म का नाम है ?"

यदि इस फूहड़ आदमी का अनुभव केवल अपने ही देश में गिरजाघर की घंटियाँ सुनने तक ही सीमित होता तो उसका यह घोर अज्ञान क्षम्य रहता। किन्तु भारत में २५ वर्ष तक बसने के बाद, उसके मुँह से यह उत्तर पाना अज्ञता की पराकाष्ठा थी। मैं उसके प्रश्न के उत्तर में मौन ही रहा जिसमें उसकी मूढ़ता जनित शान्ति को धक्का न पहुँचे।

हिन्दुस्तान के विभिन्न प्रकार के लोगों से मिलते समय अपने जाति-गत गर्व को मैं पूर्ण रूप से भुलाये रहा। भारतीयों की बातें बड़ी हमदर्दी से मैंने सुनी, और समझने की कोशिश की। वर्ण की अपेक्षा न रख कर मैंने सत्य की उपासना की। गोरे काले के झूठे भेद को मैंने सदा दूर रक्खा। जहाँ शील था वही मेरे लिए उपासना के योग्य था। मेरा समस्त जीवन सत्य का अन्वेषण करने मे ही बीता है। अतः सत्य की खोज करने में मैं हर प्रकार की ऊँच-नीच बातें सहने को तैयार था। इन्हीं कारणों से आज अपनी अनुभूतियों का यह ब्यौरा मैं पाठकों के सामने उपस्थित करने में समर्थ हुआ हूँ। साधुओं के चरणों के निकट बैठ कर मैंने उनके भक्तों और चेलों के विभिन्न भाषाओं में कहे गये आख्यान सुने हैं। इन एकान्तवासी और साधारण जनता से बात न करने वाले साधुओ का मैंने पता लगाया और अत्यन्त विनम्र होकर उनके अधिकारपूर्ण उपदेशों को सुना। मैंने काशी के विद्वान ब्राह्मण पंडितों से घंटों बातचीत की और उनके साथ

उन दार्शनिक विषयो पर बहस की जो अनादि काल से मनुष्य के चिन्तन के विषय बने हुए है। कभी कभी विनोद अथवा दिल वलहाने के लिये मैने जादूगरो और करामात दिखाने वाले लोगो के तमाशे भी देखे जिनसे मुझे अनेक विचित्र अनुभव प्राप्त हुए।

मै स्वयं ही खोज और जॉच करके आजकल के योगियो के वारे मे सच्ची और सही घटनाओ का सग्रह करना चाहता था। मुझे गर्व है कि पत्रकार-कला का अनुभव होने के कारण असली वात को झट पहचान लेने की योग्यता मुझमे थी, और सम्पादकीय कलम चलाने की पटुता होने से झूठ और सच की परख करने मे मुझे कोई कठिनाई नही हुई। इस पेशे मे काम करने वाले को हर कोटि के व्यक्तियो के सम्पर्क मे आना पड़ता है, उनकी चिथड़े लपेटे हुए भिखमगो से लेकर आरामतलबी से रहने वाले लखपतियो तक पहुँच होती है। अतः इस अनुभव ने हिन्दुस्तान के विभिन्न कोटि के वासियो के बीच सच्चे योगियो की खोज कर लेने मे मेरी वड़ी मदद की।

साथ ही, मेरा आन्तरिक जीवन मेरी बाहरी बनावट से बिलकुल विपरीत है। मैने अपना फुरसत का समय रहस्यमय पुस्तको का अध्ययन करने अथवा अल्प-ज्ञात मनोवैज्ञानिक तथ्यो की खोज मे बिताया है। प्रच्छन्न रहस्यो का पता लगाना ही मेरा प्रिय विषय रहा है। इसके साथ ही वचपन से ही प्राच्य संसार सम्बन्धी बाते मुझे आकर्पित करती रही है। सर्व प्रथम वार भारत आने के पहले से ही प्राच्य विषयो की चर्चा सुन कर मेरा मन आनन्दविभोर हो जाता था। अन्त मे अपनी इस रुचि के कारण मै एशियाई देशो के पवित्र ग्रंथो, उनकी पांडित्यपूर्ण व्याख्याओ तथा प्राच्य सन्तो के उन्नत विचारो, जहाँ तक उनके अंगरेजी अनुवाद उपलब्ध हो सके, के अध्ययन की ओर प्रेरित हुआ।

यह द्वंद्वानुभूति बड़े काम की सिद्ध हुई। इससे मैंने यह सबक़ सीखा कि जीवन के रहस्यों की गुत्थियों को सुलझाने की प्राच्य पद्धतियों के प्रति सहानुभूति रहते हुए भी मुझे उनका अध्ययन करते समय विशुद्ध आलोचनात्मक तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण के महत्व को कदापि न भुलाना चाहिए। इस सहानुभूति के बिना मैं कदापि उन लोगों और उन जगहों का दर्शन नहीं कर सकता था, जिन्हें हिन्दुस्तान में रहने वाला साधारण अंग्रेज़ तुच्छ समझ कर देखने का कष्ट भी नहीं उठावेगा। दूसरी ओर कड़ी वैज्ञानिक दृष्टि के बिना, उस अंध-विश्वास के जाल में फँस जाने का डर था, जिसमें कितने ही हिन्दुस्तानी लेखक फँसे दिखाई देते हैं। इन दोनों परस्पर विरोधी गुणों का हर समय सामंजस्य बनाये रखना अत्यन्त कठिन है, फिर भी मैंने यथाशक्ति इन दोनों में से किसी को भी अनुचित रूप से प्रबल नहीं होने दिया।

इस कथन को मैं अस्वीकार नहीं करता कि पाश्चात्य संसार वर्तमान भारत से कोई नया सबक़ नहीं सीख सकता। परन्तु साथ ही मैं यह दावा भी करूँगा कि न केवल प्राचीन भारत के ऋषियों से ही वरन् इस ज़माने में भी जो थोड़े से सच्चे महात्मा बचे हैं उनसे भी हमें अनेकानेक बातें सीखनी हैं। बड़े-बड़े शहरों की सैर करके तथा ऐतिहासिक दृश्य देख कर घर लौटने वाले अंग्रेज़ों को यदि भारत की पिछड़ी हुई सभ्यता से अरुचि पैदा हो तो कोई आश्चर्य नहीं। किन्तु एक-आध ऐसे भी अंग्रेज़ यात्री हो सकते है जिन्हें भारत के ध्वस्त मन्दिरों, अथवा किसी ज़माने में मरे हुए बादशाहों के मक़बरों को देखने की इच्छा न होकर जीवित सन्तों से ज्ञान सीखना हो—वह ज्ञान जो हमें अपने विश्वविद्यालयों में कदापि प्राप्त नहीं हो सकता।

ये हिन्दुस्तानी बिलकुल आलसी ही तो नहीं हैं? झुलसाने

वाली धूप मे व्यर्थ ही पैर पसार कर लेटे तो नही रहते ? क्या इन्होंने कभी भी ऐसी कोई बात नही सोची अथवा की है जो समस्त संसार के लिए उपयोगी हो ? भारतीयो के सांसारिक पतन और उनकी मानसिक शिथिलता को ही देखने वाले ने उन्हे ठीक तरह से नही पहचाना है। मन से घृणा हटा कर, यदि सहानुभूति के साथ खोज की जाय तो खोज करने वाले को छिपी हुई ज्ञान-राशि प्राप्त होगी।

माना कि भारत सदियो से ग़फलत की नींद मे सो रहा है, माना कि आज भी वहां के करोड़ो किसान घोर अज्ञान-सागर में डूबे हुए है, माना कि उनका अंध-विश्वास और धार्मिक भोलापन तथा अज्ञता चौदहवी सदी के अंग्रेज़ किसानो जैसी ही है ; यह भी मान लेते है कि इस देश के ब्राह्मण पंडित आज भी मध्यकालीन यूरोपीय विद्वानो के समान ही बाल की खाल निकालने वाले तर्कों मे, तथा दार्शनिक विचारो की बारीकियो मे, अपनी सारी पंडिताई चौपट कर रहे है। फिर भी भारत की प्राचीन संस्कृति की अमूल्य निधि अभी पूर्ण रूप से नही मिट गई है और उसके बचे-खुचे अंश हमे आज भी उस वर्ग के व्यक्तियो मे प्राप्त हो सकते है जो योगी जैसे साधारण नाम से पुकारे जाते है। यह अवशेष संस्कृति अपने निजी ढङ्ग से समस्त मानव समाज के लिए लाभदायक और मूल्यवान है और इस दृष्टि से उसका महत्व पश्चिमीय विज्ञानो से किसी प्रकार भी कम नही है। योग की सहायता से हम अपने शारीरिक स्वास्थ्य को प्रकृति के अधिक से अधिक अनुरूप बना सकते है। इसके द्वारा आधुनिक सभ्यता की एक सबसे बड़ी आवश्यकता, अर्थात् निर्मल मनः-शांति और मनः-प्रसाद की प्राप्ति हो सकती है ; और जो लोग योग की साधना कर सके उन्हे निश्चय

ही आध्यात्मिक तल्लीनता की सिद्धि हो सकती है । पर यह बात मैं स्वीकार करता हूँ कि यह महान आर्ष-विज्ञान आधुनिक भारत में विरलों ही को सिद्ध है । यह अतीत भारत की अमूल्य सम्पत्ति है । आजकल योग साधना की परिपाटी अवनति पर है, जब कि किसी समय इसके सुयोग्य आचार्य और विनम्र शिष्य इस देश में हर जगह मौजूद थे । हो सकता है कि इस अमूल्य ज्ञान को गोपनीय रखने की व्यवस्था ही इस प्राचीन विज्ञान के लिए घातक सिद्ध हुई हो ।

अतः अपने पश्चिमी भाइयों से यह कहना ही अधिक उचित होगा कि इस देश से वे किसी नवीन धर्म व्यवस्था पाने की आशा न करें, बल्कि अपनी ज्ञान-राशि को बढ़ाने के लिए पूर्व की ओर ध्यान दें ।

बर्नाफ़, केलब्रूक, मैक्समूलर जैसे प्राच्य संस्कृति के ज्ञाताओं ने अपने परिश्रम से जब भारत की विज्ञान सम्पदा के अनूठे रत्नों का प्रदर्शन किया तब पश्चिम के विद्वानों की समझ मे आया कि हिन्दुस्तान के 'विधर्मी' वास्तव में मूर्ख न थे जैसा वे अपने अज्ञान के कारण उन्हें समझे हुए थे । जो एशिया के देशों के ज्ञान को पश्चिम के लिए थोथा सिद्ध करना चाहते हैं वे वास्तव में अपनी ही अज्ञता का प्रमाण उपस्थित करते हैं । जो व्यक्ति व्यावहारिकता के पंडित बन कर प्राच्य विषयों के अध्ययन करने वालों को मूर्ख कहते हैं वे स्वयं इसी सम्बोधन के पात्र हैं । यदि हम देश और काल को ही व्यक्तित्व के परखने को कसौटी मान लें और किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का मूल्य आँकने के समय यह सोचें कि वह बम्बई में पैदा हुआ था या ब्रिस्टल में, तो हम कदापि सभ्य कहलाने का दावा नहीं कर सकते । जो अपने को प्राच्य विचारों और विज्ञान से एकदम

दूर रखना चाहते हैं वे निश्चय ही उदार विचारो, गम्भीर सत्य और उचित मनोवैज्ञानिक मर्मों से अपने को सदैव वंचित रखते है। जो कोई भी प्राच्य के प्राचीन ज्ञान के अध्ययन का कष्ट उठावेगा उसे तथ्य रूपी कोई न कोई अमूल्य-मणि अवश्य हाथ लगेगी और उसकी खोज निष्फल नहीं होगी।

× × ×

योगियो और उनके आध्यात्मिक ज्ञान की खोज मे मैने पूर्व की यात्रा की। दिल के एक कोने मे किसी आध्यात्मिक गुरू के दैवी व्यक्तित्व के दर्शन की लालसा भी लगी हुई थी, पर यह मेरा प्रधान ध्येय नही था। हिन्दुस्तान की पवित्र नदी, मरकत सलिला गंगा, विशाल यमुना और रम्य गोदावरी के तटों पर इसी खोज मे मैने बहुत भ्रमण किया, देश के चारो ओर चक्कर लगाया, हिन्दुस्तान ने मुझे अपने अंतस्तल मे स्थान दिया और मुझ जैसे अपरिचित पाश्चात्य व्यक्ति को इस देश के लुप्त-प्राय महात्माओ मे से कितनों ने ही अपनी शरण दी।

अभी कुछ समय पूर्व ही मैं ऐसे देश में था जो ईश्वर को मानव कल्पना का विकार, आध्यात्मिक सत्य को बुद्धि का भ्रम और दैवी न्याय को आदर्शवादी शिशुओ का तर्क समझता है। मजहवी पागलपन के आवेश मे स्वर्ग की कल्पना करने वाले तथा अपने को ईश्वर के भेजे हुए मजहव के ठेकेदार बताने वाले व्यक्तिओ से तो मुझे भी कुछ चिढ़ थी, अविवेकी तार्किकों के व्यर्थ के वादो के प्रति मुझे घोर घृणा थी।

प्राच्य आध्यात्मिकता के सम्बन्ध मे मेरे विचार पाश्चात्य देस-वासियो मे प्रचलित साधारण विचारो से भिन्न होने से मुझे लाभ ही हुआ है। फिर भी मै प्राच्य धार्मिकता का ऐसा अंध-भक्त न था कि किसी सम्प्रदाय का अनुयायी हो जाता। सच तो यह

है कि जिन बातों से मैं वास्तव में प्रभावित हुआ हूँ उनका ज्ञान मैंने भारत आने से बहुत पहले ही पुस्तकों के अध्ययन द्वारा प्राप्त कर लिया था। तो भी इस नये अध्ययन के परिणाम-स्वरूप मैं दैवी ज्योति के एक बिलकुल नये ही रूप को पहचान सका हूँ। दूसरों को यह लाभ अत्यन्त निजी और तुच्छ भले ही जान पड़े परन्तु स्थूल, प्रत्यक्ष और जटिल तर्कों पर ही निर्भर रहने वाले तथा धार्मिक उत्साह से हीन इस युग की सन्तति होते हुए मेरे लिए यह अनुभूति बहुत बड़ी बात है। मुझ संशयात्मा को यह धार्मिक विश्वास प्राप्त होने का यही एकमात्र उपाय था—किसी प्रकार के तर्कों से समझ कर नहीं किन्तु अपनी बाढ़ में डुबा देने वाली अनुभूति के द्वारा।

मेरे मानसिक जगत की इस महान् क्रांति का कारण एक परम उदासी वनवासी था। उसने एक पहाड़ी गुफा में छः वर्ष बिताये थे। सम्भव है कि आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के दसवें दर्जे तक भी उसने न पढ़ा हो, किन्तु इस पुस्तक के अन्तिम परिच्छेदों में उनके प्रति अपने अगाध आभार को स्वीकार करने में मुझे तनिक भी संकोच नहीं हुआ है। भारत में अब भी ऐसे श्रेष्ठ ऋषि पैदा होते हैं, इसी एक बात के बल पर भारत पश्चिम के बुद्धिमानों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने का दम भर सकता है। गुप्त भारत का आध्यात्मिक जीवन देश के राजनीतिक आन्दोलन की तुलना में अवश्य ही अप्रकट और छिपा हुआ है, परन्तु उसका अस्तित्व कदापि नहीं मिटा है। मैंने इस पुस्तक मे इस देश के कुछ ऐसे महापुरुषों का प्रामाणिक वर्णन करने का प्रयत्न किया है जो दृढ़ता, गम्भीरता और प्रशांति की उस पराकाष्ठा को प्राप्त हुए हैं जिसकी हम संसारी जीव सदैव याचना करते रहते हैं।

इस पुस्तक मे मैंने और भी अनेक बातों का जिक्र किया है जो अनोखी और जादू भरी जान पड़ती है। इस समय जब कि मै इंगलैंड के देहाती जीवन से घिरा हुआ इस पुस्तक को लिख रहा हूँ, ये सब बातें मुझे अविश्वसनीय प्रकट हो रही हैं। पश्चिम की शक्की दुनिया के लिए इन बातों का वर्णन करने मे मुझे स्वयं ही अपने साहस पर आश्चर्य हो रहा है। किन्तु, मुझे इस बात पर दृढ़ विश्वास है कि वर्तमान विश्वव्यापी जड़-वादी अथवा अनात्मवादी विचार सदैव स्थायी न बने रहेगे। इस समय भी भावी बौद्धिक क्रांति के लक्षण झलकने लगे हैं। फिर भी मै यह बात साफ साफ प्रकट करना चाहता हूँ कि करामातो का मै बिलकुल क़ायल नहीं हूँ और न इस ज़माने के लोग ही उनमें विश्वास करेंगे। साथ ही मै यह भी मानता हूँ कि प्रकृति के सिद्धान्तो की हमारी जानकारी अभी अधूरी ही है। अज्ञात नियमो की खोज मे गवेषणापूर्वक अग्रसर वैज्ञानिक नेतागण कुछ अन्य नियमों तथा कुछ अन्य रहस्यो का जब उद्घाटन करेंगे तब हम जरूर ऐसे काम करके दिखा सकेंगे जो करामात न होते हुए भी करामात जैसे प्रकट होंगे।

२

पूर्वाभास

भूगोल के अध्यापक हाथ में लम्बा नुकीला सूचकदंड लेकर अध-ऊबे क्लास में एक बड़े नक्शे के पास खड़े हैं। वे विषुवत् रेखा की ओर बढ़ते हुए एक लाल त्रिभुजाकार भूमिखंड की ओर इशारा करते हुए मंदोत्साह शिष्यों की उत्सुकता को उत्तेजित करने का प्रयत्न करते हैं। धर्मोपदेश देने के समान धीरे धीरे गम्भीर स्वर से वे निम्न शब्दों को अपने मुख से निकालते हैं:—'हिन्दुस्तान ब्रिटिश राजमुकुट का सबसे अधिक दीप्तिमान रत्न कहा जाता है।' यह सुन कर ध्यान में अर्धनिमग्न एक उदास विद्यार्थी एकदम चौंक उठता है और अपनी बिखरी हुई विचार शृंखला को सम्हाल कर मदरसे की ईंट-चूने की इमारत में अपने अस्तित्व को पहचानता है। न जाने क्यों 'हि न्दु स्ता न' इस शब्द के कान में पड़ते ही, या किसी पुस्तक में उसके नक्शे को देखते ही उसके मन में एक अजीब रहस्यपूर्ण सनसनी पैदा होने लगती है। एक अज्ञात विचारधारा बार बार उसके चित्त को भारत की ओर खीच ले जाती है।

गणित के अध्यापक जब यह समझते हैं कि उनका यह शिष्य बड़ी धुन से बीजगणित का कोई प्रश्न हल कर रहा है, तो उन्हें इसका ध्यान ही नहीं आता कि यह नटखट लड़का अपनी मेज़ पर बड़ी होशियारी से सजी हुई किताबों के ढेर की ओट में बड़ी

शीघ्रता से पगड़ीधारी मनुष्यो और देशी नावो पर से बड़े जहाज़ों पर मसालो से भरे हुए बोरो के लादे जाने के चित्र खीच रहा है।

किशोरावस्था के ये दिन बीत जाते है ; किन्तु हिन्दुस्तान के प्रति उसका यह अनुराग घटने के बदले और अधिक बढ़ जाता है, यहाँ तक कि समस्त एशिया उस वृत्त के अन्तर्गत आ जाता है। सदैव वह हिन्दुस्तान जाने की बिना सिर-पैर की तदबीरे सोचता रहता है। वह जहाज़ी नौकरी कर लेगा, और तब तो थोड़ी सी कोशिश करने पर सचमुच ही उसको भारत की एक झाँकी देखने का अवसर मिलेगा। इन तदबीरो के कारगर न होने पर भी वह हार नही मानता और अपने साथियो से बड़े ओजपूर्ण ढंग से अपने हिन्दुस्तान जाने के इरादे को सुनाता है। अन्त मे एक सहपाठी भी इस कल्पनामय उत्साह का सहज ही मे शिकार हो जाता है।

अब तो ये दोनो सहपाठी एकान्त मे बैठ कर अपनी भारत यात्रा के सम्बन्ध मे तरह तरह के मंसूबे बाँधा करते है। वे यूरोप की पैदल यात्रा करके एशिया माइनर होते हुए अरब देश के अदन बन्दरगाह तक पहुँचने की बात सोचते है। हमारे पाठको को इस बालोचित साहस पर हँसी आये बिना न रहेगी। ये बालक समझते है कि अदन मे किसी जहाज़ के कप्तान से ये दोस्ती कर लेगे और उनके ध्येय के प्रति सहानुभूति और दया के भावो से प्रेरित होकर जहाज़ का कप्तान इन्हे अपने जहाज़ मे चढ़ा लेगा। इस प्रकार एक सप्ताह के अन्दर ही ये भारत मे पहुँच जावेगे और उस देश की खोज प्रारम्भ कर देगे।

इस लम्बे सफर की तैयारियाँ होने लगती हैं। बड़ी किफायत से पैसे जमा किये जाते है, और अन्त को वे अपनी बाल-बुद्धि के अनुसार यात्रा की समस्त आवश्यक सामग्री छिपे छिपे एकत्रित

करते हैं। नक्शों और पथ-सूचक किताबों का बड़े ध्यान से परिशीलन किया जाता है। उनके रंग-बिरंगे पन्ने और मन लुभाने वाले चित्र इन बालकों की भ्रमण करने की लालसा को पराकाष्ठा तक पहुँचा देते हैं। आखिर को नियति का परिहास करते हुए घर-बार छोड़ कर भागने का दिन भी निश्चित हो जाता है। किन्तु भवितव्यता कैसी है इसका उन्हें क्या पता था ?

अच्छा होता यदि ये बालक अपनी बचपन की उमंगों को कुछ छिपा कर रखते और अपनी प्रारम्भिक लालसाओं की लगाम कुछ थामे रहते। दुर्भाग्य से दूसरे साथी के गुरुजनों को इस यात्रा की बात मालूम हो जाती है। पूछने पर उनको सारी बातें सविस्तार बता देनी पड़ती है और वे कड़ाई से पेश आते है। उन बालकों पर उस समय क्या बीती यह वे ही जानते हैं। इतना ही कहना पर्याप्त है कि यात्रा के सभी इरादे छोड़ देने पड़े।

परन्तु जिस बालक के मन में हिन्दुस्तान को देखने की अभिलाषा सबसे पहले उठी थी वह उससे कभी भी दूर नहीं होती। इसके विपरीत इस इरादे की जड़ और भी मजबूत होती जाती है। पर वह करे क्या ? दूसरी ज़िम्मेदारियाँ भी उसके सिर पर आ पड़ती हैं और मजबूर होकर उसे अपनी इस चिर-अभिलाषा को रोक रखना पड़ता है।

समय का चक्र चलता जाता है और इसी प्रकार कितने ही वर्ष बीत जाते हैं। अचानक एक दिन एक अपरिचित व्यक्ति से भेंट होने पर बचपन की वही पुरानी लालसा एक क्षण के लिए ज़ोर से सजग हो जाती है। इस अपरिचित व्यक्ति का रंग गेहुँआ है। सिर पर साफ़ा बँधा है और वह उसी भारत देश का निवासी है जो सदैव सूर्य की सुनहली किरणों से दीप्तिमान रहता है।

× × ×

उन महाशय से अपनी भेट की घटना का इस समय मुझे पूरी तरह से स्मरण हो रहा है। शरद ऋतु समाप्त हो चली है। चारो ओर कुहरा छाया है। सर्दी मेरे कपड़ो को भेद कर शरीर को जकड़ रही है। ऐसा जान पड़ता है कि मेरे हृदय का स्पन्दन रुक रहा है और मै अपने ठिठुरे हुए हाथो से उसे थामे हूॅ।

घूमते-घामते एक कहवेखाने मे मै पहुॅच जाता हूॅ। वहाॅ की गरमी और मेज़बानो से कुछ सांत्वना होती है। चाय का एक प्याला पोने पर भी, जिससे साधारणतया शरीर मे स्फूर्ति आ जाती है, इस समय कोई लाभ नही होता। मेरी तबियत फिर भी उत्साहित नही होती। उदासो और उत्साहहीनता ने मुझे बुरी तरह से धर दबाया है। मेरे हृदय-द्वार पर काले परदे पड़े हुए है।

यह बेचैनी, यह व्याकुलता, मुझ से सही नही जाती। अन्त मे विवश हो कर कहवाखाना छोड़ कर मै गली मे चल देता हूॅ और निरुद्देश ही इधर उधर चिर-परिचित गलियो मे घूमने लगता हूॅ। अन्त को सामने एक परिचित पुस्तक-विक्रेता की दूकान दिखाई पड़ती है। वही मै ठहर जाता हूॅ। दूकान की इमारत पुरानी है और उसमे बिकने वाली किताबे भी पुराने विषयो के सम्बन्ध की है। पुस्तक-विक्रेता[1] विचित्र स्वभाव का व्यक्ति है। वह पुराने ज़माने के आदमियो का एक रहा-सहा नमूना है। धूम-धड़ाके का यह युग उसकी तनिक भी परवाह नही करता, और यह बूढा भी इस भड़कीले ज़माने की उतनी ही उपेक्षा करता है। वह केवल प्राचीन पुस्तको और ग्रंथो के अप्राप्य संस्करणों

---

१ खेद है कि यह बेचारा अब इस दुनिया मे नही है और उसकी दूकान भी उसके साथ ही लापता हो गई है।

को बेचा करता है। अद्भुत और गोप्य वस्तुओं को बेचना ही उसका प्रधान व्यपार है। उसने पोथियों के अध्ययन द्वारा गूढ़ और अनोखी बातों की असाधारण जानकारी प्राप्त की है। मैं अकसर इस पुरानी दूकान पर जाया करता हूँ और दूकानदार के प्रिय विषयों पर उससे बातें किया करता हूँ।

मैंने दूकान के भीतर जा कर दूकानदार का अभिवादन किया। थोड़ी देर तक पुरानी जिल्दों के धुँधले पृष्ठों को उलटता रहा। अन्त में एक प्राचीन पुस्तक पर मेरी नज़र पड़ी। उसे हाथ में लेकर मैं अधिक ध्यान पूर्वक देखने लगा। चश्माधारी बूढ़े दूकान-दार ने मेरी उत्सुकता को ताड़ लिया और अपनी आदत के अनु-सार किताब के विषय—आवागमन—पर अपने विचार प्रकट करने लगा।

बूढ़ा अपनी आदत के अनुसार विषय के पक्ष और विपक्ष के समस्त तर्क स्वयं ही विस्तार पूर्वक कहता जाता है मानों उसे उस विषय की जानकारी किताब के लेखक से भी अधिक हो, और इस विषय को प्रतिपादित करने वाले प्रधान आचार्यों के नाम उसे कंठस्थ हों। इस प्रकार मुझे कितनी ही अनूठी बातों की जानकारी प्राप्त होती है।

सहसा दूकान के एक कोने में किसी व्यक्ति के उपस्थित होने की आहट मिलती है। घूम कर देखने पर दूकान के भीतरी कमरे से, जहाँ पर अधिक मूल्यवान पुस्तकें रक्खी हुई हैं, एक लम्बे डीलडौल का व्यक्ति बाहर आता हुआ दिखाई देता है।

यह अपरिचित व्यक्ति भारतीय है। वह बड़े अमीरी ढंग से हम लोगों के पास आकर किताब बेचने वाले को सम्बोधित करके कहने लगा :

"मित्र, मेरी अनधिकार चेष्टा को क्षमा करना। आपकी बातों मे दखल दिये बिना मुझ से रहा नही गया, क्योंकि इस विषय से मुझे भी बड़ी दिलचस्पी है। आप उन बड़े बड़े लेखकों का नाम लेते है जिन्होने पहले पहल मनुष्य की आत्मा के अनवरत आवागमन का उल्लेख किया था। मै यह स्वीकार करता हूँ कि विज्ञ यूनानी दार्शनिक, बुद्धिमान अफ्रीकन तथा पूर्वकाल के ईसाई पादरी, सभी इस सिद्धान्त से भलीभांति परिचित थे। किन्तु आप इस सिद्धान्त का जन्मदाता किस देश को मानते हैं? एक क्षण के लिए रुक कर किसी को उत्तर देने का अवसर दिये बिना ही वे मुस्कराते हुए कहने लगे—"क्षमा कीजिए, मुझे भी इस बारे मे दो बातें कहनी है। पुराने ज़माने मे दुनिया के सब लोगो ने हिन्दुस्तान से ही आवागमन का सिद्धान्त ग्रहण किया था। तभी से मेरे देश के लोग इसे अपने धार्मिक विचारो का केन्द्र मानते आये है।"

उनकी मुखाकृति मुझे आकर्षित करने लगी। वह अपूर्व थी। सैकड़ो भारतीयो के बीच मे भी उसकी विलक्षणता साफ नज़र आ जाती। उनके चेहरे से ज्ञात हुआ कि वे पुंजीभूत शक्ति की मानो अनभिव्यक्त मूर्ति थे। मुझे वे ऐसे ही व्यक्ति जान पड़े। पैनी दृष्टि, मज़बूत जबड़े, उन्नत और विशाल ललाट, यही उनकी रूप-रेखा थी। साधारण हिन्दुओ की अपेक्षा वे कुछ अधिक श्याम-वर्ण थे। वे सुन्दर पगड़ी पहने हुए थे जिसके अग्र-भाग मे एक मंजु-मणि चमक रही थी। इसके अतिरिक्त उनकी बाकी पोशाक यूरोपियनो की सी थी।

उस अजनवी के उपदेश-युक्त वाक्यो का बूढ़े दूकानदार पर कुछ भी असर नही पड़ा। इसके विपरीत उससे भारतीय व्यक्ति के प्रति विरोध भाव प्रकट होता था। असहमत होते हुए

बूढ़े ने कहा—"यह हो कैसे सकता है जब कि ईसा से पूर्व के काल में भूमध्य समुद्र के पूर्व के शहर संस्कृति और सभ्यता के मुख्य केन्द्र थे। क्या प्राचीन काल के उत्तम से उत्तम पंडितों को एथेंस और अलेग्ज़ाँड्रिया के निकटवर्ती प्रदेश ने जन्म नहीं दिया था ? निश्चय ही आवागमन का सिद्धान्त भारत में पश्चिमी देशों से ही पहुँचा होगा।"

भारतीय व्यक्ति बड़ी सहनशीलता से मुस्करा कर बोला :

"कदापि नहीं। वास्तव मे बात उलटी ही है।"

पुस्तक-विक्रेता ने आश्चर्य चकित होकर कहा :

"क्या आप सच्चे दिल से कहते हैं कि उन्नतिशील पश्चिम के निवासी दार्शनिक विज्ञान के लिए पिछड़े हुए भारत के ऋणी हैं ? यह कदापि ठीक नहीं है।"

"क्यों नहीं ? महाशय, आप एक बार फिर अपूलियस के ग्रन्थों को पढ़िये और देखिये कि किस प्रकार पैथागोरस ने भारत जा कर वहाँ के ब्राह्मणों से शिक्षा पाई थी। सोचिये कि वे किस प्रकार यूरोप लौट कर आवागमन के सिद्धान्त का प्रचार करने लगे थे। यह तो अपने ढंग की केवल एक हो मिसाल है। और भी कितनो ही मिसालें दी जा सकती हैं। 'पिछड़ा हुआ भारत !' आपका यह सम्बोधन सुन कर मुझे हँसी आती है। जब आप के बुज़ुर्गों को यह भी नहीं मालूम था कि दार्शनिक विचार कहते किसे हैं, तब, आज से हज़ारों वर्ष पूर्व, हमारे ऋषि-महात्माओं ने दर्शन शास्त्र के गम्भीर सागर को मथ कर कितने ही विचार-रत्न निकाले थे।"

इस प्रकार कहते कहते यह अपरिचित व्यक्ति बीच ही में रुक गया। उसने बड़ी गम्भीरता के साथ हम लोगों की ओर ताका और

अपनी बातों का हमारे मन पर असर डालने के लिए कुछ देर तक ठहर गया। बूढ़ा किताब बेचने वाला दंग रह गया। दूसरे की बुद्धि के प्रभाव मे इस प्रकार आ जाते और इस ढंग से एकदम चुप हो जाते मैने उसे कभी नहीं देखा था।

मौन साध कर मै इस नये ग्राहक की बातें सुनता रहा, बीच में बोलने की कुछ भी कोशिश नही की। अब सभी चुप थे। यह खामोशी आदर-मिश्रित थी। कुछ देर बाद सहसा वह भारतीय पीछे घूम कर अन्दर के कमरे में गया और दो ही मिनट बाद एक मूल्यवान पुस्तक ले आया। उसका दाम चुका कर वह दूकान छोड़ने के लिए उद्यत हुआ। मैं दरवाज़े की ओर जाते हुए उस भव्य व्यक्ति को आश्चर्य-चकित होकर देखने लगा। इतने में वह पीछे घूम कर मेरे पास आया। उसने अपनी जेब में रक्खी एक छोटी थैली से अपना परिचय-पत्र बाहर निकाला। वह मुस्करा कर कहने लगा:

"क्या आप इस विषय पर मेरे साथ फिर कभी बातचीत करना चाहेंगे?" मैने कुछ सहमे हुए ढंग से उसकी बात मान ली। उसने मुझे अपना परिचय-पत्र देकर बड़ी इज़्ज़त के साथ मुझे अपने साथ भोजन करने का न्योता भी दिया।

× × ×

शाम को मै अपने अजनबी मित्र का पता लगाने बाहर निकला। यह काम सहल नही था क्योंकि चारों ओर कुहरा बुरी तरह से छाया था। गलियों में हाथ को हाथ नही सूझ रहा था। शहर पर छाये हुए इन कुहरे के बादलो में किसी चतुर चितेरे या कुशल कवि की रुचि भले ही हो पर मेरा मन इस भारतीय से भेंट करने के विचार मे इतना व्यग्र था कि प्रकृति के इस पट-परिवर्तन का मेरे ऊपर कुछ भी असर नही पड़ रहा था।

घूमते घामते मैं एक लम्बे ऊँचे मजबूत फाटक पर पहुँच गया। फाटक के दोनों बग़ल में दो बड़े लैम्प लोहे की दीवालगीरों में रक्खे हुए थे। फाटक से होकर, भीतर घुसते ही मेरे आनन्द और आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहा। मेरे मित्र ने वहाँ के साज-सामान का कोई आभास नहीं दिया था। हर जगह मुझे उनकी अभिरुचि, कलाप्रियता और ख़र्चीले स्वभाव का परिचय प्राप्त हो रहा था।

मैं एक आलीशान मकान के विशाल कक्ष में पहुँच गया। वह किसी पूर्वीय महल का अन्तःपुर जान पड़ता था। उसकी सजावट और सजधज में किसी भी प्रकार की कमी नहीं दिखाई देती थी। बाहरी दरवाज़ा मेरे पीछे बंद होने पर ऐसा जान पड़ा मानों मैं यूरोप के नीरस और बनावटी वातावरण से एकदम दूर हो गया हूँ। इस कमरे की सजावट में चीनी और हिन्दुस्तानी कलाओं का अपूर्व समावेश था। सभी सजावट काले, लाल, अथवा सुनहले रङ्ग में थी। दीवारों पर चौंधियाने वाली दीवालगीरें नज़र आती थीं। उन पर हाथ-पाँव पसारे हुए चीन के परदार अजगरों की तसवीरें अंकित थीं। सभी कोनों में, पत्थर पर खुदे हुए परदार अजगरों के हरे शिर बड़े भयानक लगते थे। उन पर दीवालगीरें लगाई गई थीं जिनमें कई क़िस्म के हाथ की कारीगरी के नमूने रक्खे गये थे। द्वार के दोनों बग़ल पीले रेशम के कोट लटकते हुए, वहाँ की शोभा बढ़ा रहे थे। कमरे के लकड़ी जड़े हुए फर्श पर हिन्दुस्तान के मूल्यवान बेलबूटेदार क़ालीन बिछे हुए थे जिनके गुलगुले बालों में पैर धँस जाते थे। अंगीठी के सामने एक लम्बा-चौड़ा बाघम्बर बिछा हुआ था।

मेरी नज़र कोने की सुनहले रंग की एक मेज़ पर पड़ी। उस पर काले आबनूस का एक छोटा मन्दिर रक्खा हुआ था। उस पर

सोने का वेलबूटे का काम किया हुआ था। उस मन्दिर के किवाड मुड़ जाने वाले थे। मन्दिर के अन्दर मुझे किसी भारतीय देवता की मूर्ति दिखलायी पड़ी। शायद वह बुद्धदेव की मूर्ति थी, क्योकि उसकी मुख-मुद्रा-इतनी प्रशांत और गम्भीर थी कि उसकी ओर ताका नही जा सकता था। मूर्ति की दृष्टि नासाग्र पर स्थिर थी।

वहाँ मेरी अच्छी मेहमानी हुई। मेरे मित्र भोजन के समय की पोशाक पहने हुए थे। मैने सोचा कि ऐसे व्यक्ति चाहे किसी भी समाज मे रहे, अवश्य आदरणीय होगे। थोड़ी देर बाद हम दोनो भोजन करने बैठे। तरह तरह के सुन्दर व्यंजन एक के बाद एक परोसे गये। यही मुझे पहले पहल हिन्दुस्तान की कढ़ी खाने का चस्का लगा जो सदैव के लिए मेरे भोजन की प्रिय वस्तु बन गई। भोजन परोसने वाला नौकर भी अजीब वेष मे था। वह एक सफेद कुर्ता, सफेद पायजामा, पीले रेशम का पटुका और सफेद साफा पहने था।

भोजन के समय कुछ देर तक इधर-उधर की बाते होती रही। मेरे मित्र जो कुछ, अथवा जिस विषय पर बात करते थे उससे ऐसा जान पड़ता था मानो वे उस विषय की अत्यन्त अधिकारपूर्ण और अकाट्य विवेचना कर रहे हो। उसमे तर्क की कोई गुजाइश नही रहती थी। मेरे मन पर उनके प्रशान्त स्वभाव और उनकी अधिकारपूर्ण बातो का गहरा प्रभाव पड़ा।

क़हवा पीते समय उन्होंने अपने बारे में भी कुछ बाते बतलाईं। मुझे ज्ञात हुआ कि वे काफी धनी है और संसार का बहुत भ्रमण कर चुके है। उन्होंने चीन की स्थिति का वर्णन किया जहाँ वे एक वर्ष तक रह चुके थे। जापान का भविष्य कैसा है, यह भी उन्होंने अत्यन्त आश्चर्यजनक जानकारी के साथ बतलाया। अमेरिका और यूरोप आदि के बारे मे भी वे बहुत कुछ जानते थे और

सब से आश्चर्य की बात यह थी कि उन्होंने सोरिया के एक ईसाई मठ की रहन सहन का वर्णन किया जहाँ वे कुछ समय तक शान्तिमय जीवन बिता चुके थे ।

भोजनोपरान्त धूम्रपान करते समय पुस्तक-विक्रेता के यहाँ उठाये गये विषय की चर्चा होने लगी । किन्तु मुझे स्पष्ट रूप से यह प्रकट हो रहा था कि वे अन्यान्य विषयों के बारे में भी कुछ कहना चाहते हैं क्योंकि वे शीघ्र ही अधिक गहन और जटिल विषयों की चर्चा करने लगे और अन्त को भारत के प्राचीन गौरव और विज्ञान की बात छेड़ दी ।

उन्होंने ज़ोर देकर कहा—"हमारे ऋषियों के कई सिद्धान्त अब पश्चिम वासियों को मालूम हो गये हैं किन्तु यह प्रायः देखा जाता है कि उन सिद्धान्तों का ठीक अर्थ नहीं समझा गया है । कहीं कहीं तो अर्थ का अनर्थ ही हो गया है । तो भी इसकी मुझे शिकायत नहीं है क्योंकि आज दिन भारत अपनी पुरानी उज्ज्वल संस्कृति का सच्चा प्रतिनिधि भी नहीं रह गया है । भारत का बड़प्पन खो गया है । यह बात बड़े अफसोस की है । साधारण भारतीय कुछ सिद्धान्तों का दृढ़ता के साथ अनुसरण कर रहे हैं, लेकिन साथ ही जिस धार्मिक आडम्बर और भ्रमपूर्ण परम्पराओं की बेड़ियों में वे जकड़े हुए हैं उनकी ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता ।"

मैंने पूछा—" इस पतन का कारण क्या हो सकता है ? "

वे कुछ देर तक चुप रहे । एक मिनट बीत गया । उनकी आँखें मुँदने लगीं यहाँ तक कि वे अधखुली रह गईं । तब वे धीरे धीरे बोलने लगे :

"अफ़सोस की बात है, दोस्त ! किसी समय भारत में बड़े बड़े

ऋषि मुनि रहते थे जिन्होंने जीवन के रहस्य का पता लगा लिया था। तब राजा और रंक सभी उनसे सदुपदेश पाने को उत्सुक रहते थे। उनके ज्ञान की छत्र-छाया से भारत की सभ्यता और संस्कृति पराकाष्ठा को पहुँच गई। लेकिन आज वे सब लुप्त हो गये है। समस्त देश मे ऐसे सच्चे महात्मा शायद दो या तीन भले ही बच रहे हो, और वे भी संसार से विरक्त और छिपे हुए कही दूर अज्ञात, निर्जन स्थानो में निवास करते होगे। जिस दिन ये ऋषि-महात्मा समाज को छोड़ कर एकान्त में बसने लग गये उसी दिन से हमारे पतन का प्रारम्भ हुआ।"

मेरे मित्र का सिर झुकने लगा, यहाँ तक कि उनकी ठुड्डी छाती से लग गयी। अन्तिम वाक्य के साथ उनकी आवाज़ में दुःख और खेद साफ झलकने लगा। थोड़ी देर तक ऐसा मालूम हुआ कि उन्हे वाह्य जगत का कुछ भी ज्ञान नहीं रहा है, उनकी आत्मा करुणापूर्ण चिन्तन मे लग गई है।

उनके व्यक्तित्व का मुझ पर गहरा असर पड़ा। वे मेरे मन को अपनी ओर बरवस खींच रहे थे। उनकी काली और चमकीली आँखें उनके मेधावी होने की परिचायक थीं। लोच और सहानुभूति भरी उनकी आवाज़ उनके दयार्द्र हृदय को व्यक्त कर रही थी। नये रूप से मैं उनके प्रति फिर से आकृष्ट होने लगा।

नौकर चुपचाप कमरे मे आया। उसने मेज़ के पास जाकर धूप बत्ती जलायी। नीला धुआँ ऊपर की ओर उड़ने लगा। एक अनूठी भारतीय सुगंधि चारो ओर फैल गयी जो मुझे सुखकर जान पड़ रही थी।

अचानक मेरे मित्र ने सिर उठा कर मेरी ओर देखा। बोले: "मैंने बताया है न, कि दो या तीन महात्मा अब भी रहते होगे। हाँ ऐसा ही कहा है। एक बार एक महान ऋषि से मिलने का

मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वह ऐसा अमूल्य संयोग था कि उसकी चर्चा मैं अब शायद ही कभी करता हूँ। वे मेरे पिता, ज्ञानदाता, गुरू और मित्र, सब कुछ थे। वे देवताओं के समान ज्ञानवान थे। मैं उन्हें पिता-तुल्य मानता था। जब कभी सौभाग्य से उनके साथ रहने का संयोग होता था तो जान पड़ता था कि मानव-जीवन वास्तव में तुच्छ वस्तु नहीं है। कला और सौन्दर्य को ही जीवन का ध्येय बना लेने वाले मुझ जैसे व्यक्ति को भी कोढ़ी, ग़रीब और दरिद्र व्यक्तियों में, जिनसे मैं कोसों दूर भागता था, दैवी सुन्दरता पहचानने की शक्ति और शिक्षा उन्होंने ही दी। वे शहरों से दूर एक जंगल में रहते थे। अकस्मात एक दिन मैं उनकी झोपड़ी पर पहुँच गया। तब से कई बार मैंने उनका दर्शन किया और जहाँ तक बन पड़ता था उनके साथ रहा करता था। उन्होंने मुझे अनेक बातें सिखायीं। ऐसे महात्मा किसी भी देश का मुख उज्ज्वल कर सकते हैं और उसके गौरव को बढ़ा सकते हैं।

निस्संकोच होकर मैंने उनसे पूछा—"तब उन्होंने एकान्तवास छोड़ कर भारतीय जनता की सेवा क्यों नहीं की?"

मेरे मित्र ने सिर हिला कर कहा—"भाई, ऐसे अलौकिक पुरुषों के उद्देश्य हम लोगों के लिए समझना कठिन है। पश्चिम के निवासियों के लिए तो यह बात और भी दुर्ज्ञेय है। सम्भव है कि यह प्रश्न उठाने पर वे यह उत्तर देते कि जनता की सेवा एकान्त में रह कर भी मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति द्वारा की जा सकती है। दूर बैठ कर ही अव्यक्त रूप से दूसरों का मन सफलता पूर्वक सुधारा जा सकता है। सम्भवतः वे यह भी कहते कि जब तक उद्धार की घड़ी नहीं आ पहुँचती तब तक पतित जाति को दुःख भोगना ही पड़ेगा।"

मैने साफ कह दिया कि उनके उत्तर ने मुझे और भी भ्रम मे डाल दिया है।

मेरे मित्र ने कहा—"आप ठीक कहते है, मै भी ऐसा ही अनुमान करता था।"

× × ×

उस भेंट का दिन मेरे लिये चिरस्मरणीय है। उसके बाद कई बार मै उस भारतीय के मकान पर गया। एक तो उनकी अपूर्व विद्वत्ता और दूसरे उनके परदेशी व्यक्तित्व का निरालापन, दोनो ही ने किसी अज्ञात रूप से मुझे अपने निकट खीच लिया। उनको देखते ही मेरा उत्साह अधिक उत्तेजित हो उठता था और जीवन के मर्म का रहस्य जानने की मेरी चिरसंचित अभिलाषा जाग पड़ती थी। उनका दर्शन मेरे मन को शान्त और सन्तुष्ट करने के बदले मुझे सच्चे शाश्वत आनन्द को प्राप्त करने के लिए उत्कंठित बना देता था।

एक दिन हमारी बातचीत ने नया रंग पकड़ा, जिसका मेरे जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ने को था। मेरे भारतीय मित्र बातचीत के सिलसिले मे कभी कभी अपने देश के विचित्र रस्म रिवाजो और विभिन्न परम्पराओ का वर्णन करने लगते थे और कभी अपने विशाल देश मे बसने वाली विभिन्न जाति के लोगो का परिचय देते थे। आज उन्होने योगियो का ज़िक्र किया। उस शब्द का ठीक ठीक क्या अर्थ है यह मै नही जानता था। अध्ययन करते समय कभी कभी मुझे इस शब्द का अर्थ जानने की आवश्यकता हुई थी, लेकिन हर बार इसके इतने भिन्न अर्थ प्रकट होते थे कि अन्त मे इस शब्द के ठीक तात्पर्य के बारे मे मै कोई ठीक राय क़ायम नही कर सका। अतः मेरे मित्र ने जब

योगी शब्द का उल्लेख किया तो मैंने उनकी बातों में बाधा देते हुए प्रार्थना की कि वे इस शब्द को मुझे अधिक अधिक विस्तार के साथ समझावें।

उन्होंने कहा—"मैं आप के अनुरोध को बड़ो प्रसन्नता से स्वीकार करता हूँ, किन्तु 'योगी' शब्द की कोई एकमात्र परिभाषा नहीं दो जा सकती। मेरे देश के भिन्न भिन्न व्यक्ति इस शब्द का भिन्न भिन्न अर्थ लगाते हैं। उदाहरणार्थ सड़कों पर घूमने वाले हज़ारों भिखमंगे साधारणतया योगी के नाम से पुकारे जाते है। वे झुंड के झुंड बना कर गाँवों में घूमते रहते है और बड़े बड़े मेलों में सम्मिलित होते हैं। इनमें कितने ही निरे आलसी आवारे होते हैं, और कितने ही छँटे हुए बदमाश। बहुत से अपढ़ और मूर्ख है। वे केवल नाम के लिए योगी बने फिरते है जब कि वे न तो योग शास्त्र के इतिहास का ही ज्ञान रखते हैं और न उसके सिद्धान्त ही जानते हैं।"

अपनी सिगरेट की राख झाड़ने के लिए कुछ देर रुक कर उन्होंने फिर कहा—"लेकिन हृषीकेश जैसे स्थानों का दर्शन कीजिये, पर्वतराज हिमालय जिसकी रक्षा मे अनवरत सतर्क रूप से खड़ा है। वहाँ न्यारे ही लोग नज़र आते हैं। वे साधारण कुटियों या गुफाओं में रहते हैं, स्वल्प भोजन करते हैं और सदा भगवान के भजन में मग्न रहते हैं। वे धर्मप्राण हैं, रात दिन उसी का उन्हे ध्यान लगा रहता है। वे बड़े ही सज्जन होते हैं। उनका समस्त समय या तो धर्म-ग्रंथों के अध्ययन में या भगवद्भजन में व्यतीत होता है। ये लोग भो योगो हो कहलाते है। लेकिन इनमें और अपढ़ गाँव-वालों का ख़ून चूसने वाले उन आवारे योगियो में क्या कोई समता हो सकती है? देखिए योगी शब्द कितना विशाल है। इन दोनों वर्गों के बीच में और कई प्रकार के व्यक्ति हैं जिनमें इन

दोनो कोटियो की कुछ विशेषताएं पाई जाती है और वे भी योगी कह कर पुकारे जाते है।"

मैने कहा—"लेकिन फिर भी इन योगियो की महिमा और रहस्यमय शक्ति की बड़ी प्रशंसा की जाती है।"

हँसते हुए मेरे मित्र बोल उठे—"हाँ भाई! अब योगी शब्द की एक और परिभाषा सुनिए। बड़े बड़े शहरो से दूर, निर्जन जंगलो के बीच, या पहाड़ी कन्दराओं मे, एकान्त मे रहने वाले भी कुछ लोग है। अलौकिक विभूतियाँ प्राप्त करने के लिए वे जीवन भर कुछ योग सम्बन्धी अभ्यास किया करते हैं। इनमे से किसी किसी के पास धर्म का नाम लेना भी गुनाह है, किन्तु कोई कोई तो बड़े धार्मिक होते हैं। लेकिन ये सभी योगाभ्यास के द्वारा प्रकृति की अज्ञेय तथा अदृश्य शक्तियो पर एकाधिपत्य प्राप्त करने की दृष्टि से एक ही कोटि के अन्तर्गत आते है। रहस्यवाद और अलौकिक शक्तियो की सत्ता सम्बन्धो परम्पराएं हमारे देश मे सभी काल मे मौजूद रही है। इन विषयो मे पारदर्शी विद्वानो की करामातो के सम्बन्ध मे कितने ही आख्यान सुनने को मिलते है। ऐसो को भी योगी ही कहते हैं।"

मैने सरल स्वभाव से पूछा—"क्या आपकी कभी ऐसी असाधारण शक्ति वाले किसी व्यक्ति से भेट हुई है? क्या इन बातो में आपको विश्वास है?"

मेरे मित्र कुछ देर तक चुपचाप रहे। जान पड़ा कि वे अपने उत्तर देने के ढग के सम्बन्ध मे सोच रहे है।

मेरी आँखे मेज पर रक्खी हुई मूर्ति की ओर फिरी। प्रतीत हुआ कि कमरे के मंद, मृदु आलोक मे बुद्धदेव उस चमकीली लकड़ी के पद्मासन पर बैठे बैठे बड़ी दया और अनुकम्पा के साथ

मेरी ओर देख कर मुस्करा रहे हैं। एक आध मिनट तक ऐसा जान पड़ा मानों मेरा दम घुट रहा हो। इतने में मेरे भारतीय मित्र की साफ और स्फुट आवाज़ ने मेरे बिखरे हुए विचारों को फिर से एकत्रित कर दिया। उन्होंने अपने कुर्ते के भीतर से कुछ चीज़ निकाली और उसे मुझे दिखाते हुए कहने लगे—"मैं जाति का ब्राह्मण हूँ। यह मेरा यज्ञोपवीत है। हज़ारो वर्ष के पृथक और विशुद्ध जीवन बिताने के कारण हमारी जाति के लोगों के रक्त में कुछ खास विशेषताएं, कुछ विशेष बातें, घुल-मिल गई हैं। पाश्चात्य शिक्षा और पाश्चात्य देशों का भ्रमण भी इन गुणों को कभी दूर नहीं कर सकता। जन्म से हो ब्राह्मण एक अलौकिक, अप्राकृत शक्ति की सत्ता में विश्वास करने लगता है। वह मानव योनि में भी आध्यात्मिक विकास की बात मानता है। चाहने पर भी हमारे ये विश्वास दूर नहीं होंगे। तर्क तथा विवेक की कसौटी पर ये विश्वास निश्चय ही ठीक नहीं उतरते, फिर भी ब्राह्मण कुल में जन्म लेने के नाते मैं उन्हें ठीक मानता ही हूँ। अतः यद्यपि आपके आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्तों से हमारी पूरी पूरी सहानुभूति है, फिर भी इस सम्बन्ध में मेरा एकमात्र उत्तर यही होगा कि—मेरा ऐसा विश्वास है।"

बड़े ध्यान से मेरी ओर ताकते हुए वे कहने लगे—"हाँ, सच्चे योगियों से मेरी भेंट अवश्य हुई है। एक दो बार नहीं, कई बार मेरा उनसे परिचय हुआ। वे विरले ही किसी के देखने में आते हैं। किसी ज़माने में उनसे मिलना आसान था। किन्तु आज वे लुप्तप्राय हो गये हैं।"

"लेकिन अब भी उनका अस्तित्व तो होगा ही ?"

"हाँ, मैं तो ऐसा विश्वास करता हूँ, किन्तु उनको खोज लेना बड़ा ही टेढ़ा काम है। उनको बड़ी धुन के साथ खोजना होगा।"

"आपके गुरू जी ! वे तो अवश्य ही सच्चे योगी रहे होगे ?"

"नही ! वे तो इससे भी उच्च कोटि के थे। मैने आपसे कहा था न कि वे ऋषि थे ?"

मैने अपने मित्र से ऋषि शब्द का अर्थ पूछा। वे बोले— "ऋषि योगियो से श्रेष्ठतर है। डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त को मानव चरित्र के क्षेत्र मे लागू करके देखिए। भौतिक जगत के समान, आध्यात्मिक जगत मे भी विकासवाद ठीक तौर पर लागू होता है। ब्राह्मण का भी यही कहना था। ऋषि वे है जो आध्यात्मिक विकास की चरम सीमा तक पहुँच गये है। इससे आप किसी हद तक उनके बड़प्पन का अनुमान कर सकते है।"

"क्या ऋषि लोग भी अद्भुत चमत्कार दिखा सकते है ?"

"दिखा क्यों नही सकते। किन्तु ऋषि लोग इन बातो को कुछ भी महत्व नही देते। अनेक योगी विभूतियों को बड़े महत्व की चीज़ मानते है लेकिन ऋषि उनको तुच्छ समझते है। इन विभूतियो को प्राप्त करने के लिए ऋषियों को कोई विशेष यत्न नही करना होता। इच्छा-शक्ति के विकास तथा पूर्णरूप से ध्यानावस्थित हो सकने के कारण सिद्धियाँ यों ही उनके हाथ लग जाती है। ऋषियों का सारा ध्यान अपने अन्तरंग के पुनरुज्जीवन की ओर लगा रहता है। बुद्धदेव और महात्मा ईसा के समान वे भी अपने अन्तरंग को दैवी ज्योति से आलोकित करने के यत्न मे लगे रहते है।"

"लेकिन ईसा ने करामाते दिखाई थी ?"

"जी हाँ, यह सत्य है। लेकिन क्या उन्होंने अपना गौरव बढाने के लिए ऐसा किया था ? कभी नही। उनके द्वारा जन-

साधारण को अपनी ओर खींच कर उनकी आत्माओं को पवित्र बनाने के उद्देश्य ही से उन्होंने ऐसा किया था।"

"यदि भारत में ऋषियों का अब भी अस्तित्व है तो लोगों के झुंड के झुंड उनके पास इकट्ठे होते होंगे ?"

"बेशक ! लेकिन ये ऋषि खुल कर अपने को सिद्ध पुरुष प्रकट करें तब न ? इस प्रकार विरला ही कोई ऋषि, किसी खास बात के लिए अपने को संसारी पुरुषों के सामने प्रकट करता है। प्रायः वे दुनिया से दूर, एकान्तवास में रहना अधिक पसन्द करते हैं। यदि लोकसंग्रह करना भी हो, तो वैसा करके वे फिर एकान्त का आश्रय लेते हैं।"

दृढ़ता के साथ मैंने अपने मन का यह भाव उन पर प्रकट कर दिया कि जो व्यक्ति अपने को दुर्गम स्थानों में छिपा कर रखते हैं समाज की उनसे किसी प्रकार की भलाई नहीं हो सकती।

मेरे मित्र मुस्कराते हुए बोले—"आपके इस कथन पर आपही के देश की एक-कहावत लागू होती है कि बाह्य रूप की उज्ज्वलता प्रायः धोखे की टट्टी है। इन लोगों के बारे में जब तक सच्चा और पूरा ज्ञान प्राप्त नहीं हो तब तक उनके बारे में दुनिया कोई निश्चित राय क़ायम नहीं कर सकेगी। मैंने बताया है कि कभी कभी ये ऋषि नगरों मे आ कर जन-साधारण से भी मिलते हैं। पुराने ज़माने में ऐसा अक्सर हुआ करता था। तब उन ऋषिवरों का ज्ञान, शक्ति और सिद्धियां लोगों पर प्रकट हुआ करती थीं। बड़े बड़े राजे महाराजे उनकी बड़े सम्मान से आवभगत करते थे और अपने जीवन की कितनी ही जटिलताएं उनकी सहायता से सुलझाया करते थे। किन्तु यह तो सभी जानते हैं कि अप्रत्यक्ष, अज्ञात तथा मूक भाव से उन लोगों की सहायता करना ऋषि-गण अधिक पसन्द करते थे।"

"अच्छा हो यदि किसी ऐसे ही महापुरुष से मेरी भी भेंट हो जाय। किसी सच्चे योगी से मिलने की मेरी बड़ी अभिलाषा है।"

मेरे मित्र ने मुझे दिलासा देते हुए कहा—"निस्सन्देह आपकी मनोकामना किसी दिन पूर्ण होगी।"

कुछ चकित होकर मैं बोल उठा—"आप ऐसा किस आधार पर कहते हैं?"

"जिस दिन आप से पहले पहल मेरी भेंट हुई थी उसी दिन मैंने यह समझ लिया था। किसी आन्तरिक प्रेरणा से मुझे ऐसा जान पड़ा। उस प्रेरणा की यथार्थता वाह्य सबूतों से समझाई नहीं जा सकती। वह एक अनुभव मात्र था। उसे आप चाहे जिन नाम से पुकारिए। किसी भीतरी आवेग ने सन्देश के रूप में मेरे मन पर यह अंकित कर दिया कि आप की अवश्य ही किसी सच्चे ऋषि से भेंट होगी। मेरे गुरुदेव ने मेरी इस आन्तरिक प्रेरणा को परिमार्जित और विकसित करने का मार्ग बता दिया था। अब विना सोचे विचारे मैं उसका भरोसा कर सकता हूँ।"

मैंने एक ढंग से उनकी हँसी उड़ाते हुए कहा—"जान पड़ता है कि आप के शरीर में सुकरात ने फिर से जन्म लिया है। किन्तु यह तो बताइए कि आपकी भविष्यवाणी कब पूर्ण होगी?"

"मैं भविष्य-वक्ता अथवा पैग़म्बर तो नहीं हूँ। अतः मैं आपके लिए कोई निश्चित तिथि निर्धारित नहीं कर सकता।"

मैंने इस पर कुछ भी बहस नहीं की। किन्तु मुझे यह सन्देह अवश्य बना रहा कि यदि मेरे मित्र चाहते तो इससे कुछ अधिक ही बता सकते थे।

इस पर कुछ सोचकर मैंने कहा—"आखिर आप किसी दिन अपने देश को अवश्य ही लौटेंगे। उस समय तक यदि मैं तैयार

हो जाऊँ तो दोनों एक ही साथ चल सकते हैं। योगियों का पता लगाने में आप मेरी अवश्य सहायता करेंगे।"

"नहीं दोस्त ! आप अकेले जाइए। अच्छा है अपनी खोज आप स्वयं ही करें।"

"एक अजनबी व्यक्ति के लिए यह बड़ा ही कठिन होगा।"

"हाँ ! कठिन अवश्य होगा, बहुत ही कठिन। तो भी अकेले ही जाइए। एक दिन आपको मेरे कथन की सत्यता प्रमाणित हो जायगी।"

× × ×

तब से मेरे मन पर यह बात अंकित सी हो गयी कि किसी दिन मुझे भारत-भ्रमण का सौभाग्य प्राप्त होगा। मैं सोचने लगा कि यदि मेरे मित्र के कथनानुसार सचमुच भारत ने प्राचीन काल में ऋषि-महात्माओं को जन्म दिया है तो अब भी उनमें से कोई न कोई अवश्य बचा ही होगा, क्योंकि किसी संप्रदाय का मूलोच्छेद होना असम्भव सी बात है। उन ऋषियों को ढूंढ़ निकालने में कठिनाइयों का सामना भले ही करना पड़े पर मेरा परिश्रम व्यर्थ न जायगा। सम्भव है कि इस खोज के परिणाम-स्वरूप मुझे वह आत्म-शान्ति और दैवी अनुभूति भी प्राप्त हो जाय जिसके लिए मैं अब तक भटकता रहा हूँ। दूसरी ओर इस खोज में यदि मैं असफल भी रहा तो कोई विशेष हानि न होगी, क्योंकि योगियों, उनके चमत्कारों, उनकी निराली रहन-सहन, चाल-चलन और रस्म-रिवाज देखने की मेरी लालसा तो पूर्ण ही हो जायगी। पत्रकार होने के कारण किसी भी अनूठी बात के प्रति मेरी उत्सुकता अपेक्षाकृत अधिक बढ़ी हुई थी। अल्पज्ञात विषयों की खोज कर उनका पता लगाने की बात सोचते ही मेरे मन में गुदगुदी पैदा

होने लगती थी। मैने निश्चय कर लिया कि मैं अपनी इस धुन का पूरी तरह से निर्वाह करूँगा और मौक़ा पाते ही सब से पहले जहाज से भारत के लिए रवाना हो जाऊँगा।

इस प्रकार पूर्व की यात्रा करने की मेरी अभिलाषा को मेरे भारतीय मित्र ने और भी उत्तेजित कर दिया जो अपने घर पर कई महीनो तक मेरी आवभगत करते रहे। भवसागर के विकट थपेड़ो मे जीवन-नैया को अच्छी तरह खेने का उपाय उन्होने मुझे अवश्य बतलाया किन्तु उन्होने मेरी जीवन-नौका का कर्णधार बनने से सदैव इनकार किया। फिर भी किसी नौजवान के लिए अपनी दशा का ठीक ठीक परिचय प्राप्त कर लेना, अपने अन्दर छिपी शक्तियो को पूरी तरह से पहचान लेना, अपने अस्फुट भावो को स्फुट रूप से देख लेना ही बहुत महत्व की बात है। अतः अपने सर्व प्रथम भारतीय मित्र के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना इस अवसर पर अनुचित न होगा। नियति का प्रबल चक्र फिर गया और हम दोनो बिछुड़ गए। कुछ साल हुए मुझे खबर मिली कि उनका स्वर्गवास हो गया। समय और परिस्थिति के फेर मे मै तत्काल ही भारत की यात्रा न कर सका। आकांक्षाएँ तथा सांसारिक झंझट मनुष्य को बरबस ऐसी ज़िम्मेदारी के कामो मे फँसा देती है जिनसे छुटकारा पाना सहज नही है। मैने चुप-चाप अपने जीवन प्रवाह को साधारण रूप से प्रवाहित होने दिया और हृदय की चिर-अभिलाषा की पूर्त्ति के शुभ दिन की प्रतीक्षा करता रहा।

उन भारतीय मित्र की भविष्य वाणी मे मेरा दृढ़ विश्वास था। एक दिन आकस्मिक रूप से उसकी और भी अधिक पुष्टि हुई। अपने पेशे सम्बन्धी काम से कई महीने तक एक सज्जन से मुझे मिलते रहना पड़ा। उन्हे मै अत्यन्त आदर

और सम्मान की दृष्टि से देखता था। वे बहुत चतुर और मानव स्वभाव के हर पहलू से भली प्रकार परिचित थे। कई वर्ष पहले वे एक ब्रिटिश विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान के प्रोफ़ेसर रहे थे। किन्तु अध्यापन का काम उन्हें पसन्द न आया। अतः उन्होंने उस पद से इस्तीफ़ा देकर खेती में अपने विशाल ज्ञान-भांडार को लगाने का निश्चय किया। कुछ समय तक व्यापार और वाणिज्य के प्रमुख व्यक्तियों के वे सलहकार रहे। कितनी ही बार उन्होंने सगर्व यह बतलाया कि बड़े बड़े व्यवसायियों ने अच्छी रकमें देकर उन्हें अपना सलहकार रक्खा। उनमें यह अनूठा गुण था कि वे दूसरे व्यक्तियों की छिपी शक्तियों को उकसा कर क्रियान्वित कर देते थे। उनसे मिलने वाला चाहे वह धनवान हो या धनहीन, उनसे व्यावहारिक सहायता पाता था और नवजीवन के उत्साह से भर जाता था। मैं सदा उनकी प्रत्येक सलाह नोट कर लेता था क्योंकि कारबार और खानगी बातों में भी उनका कहना और उनकी दिव्यदृष्टि प्रायः आश्चर्यजनक प्रकट होती थी। उनकी सोहबत मुझे बड़ी दिलचस्प लगती थी क्योंकि उनके स्वभाव में सूक्ष्म-दर्शन और वाह्य-ज्ञान का ऐसा सुन्दर समावेश हो गया था कि वे किसी भी क्षण दर्शन के गहन प्रश्नों पर और दूसरे ही क्षण वाणिज्य की किसी भी पेचीदा समस्या पर अधिकारपूर्ण ढंग से विचार कर सकते थे। उनके साथ बातचीत करने में कभी भी तबियत ऊबती न थी और वह सदैव ज्ञातव्य तथा मनोरंजक तथ्यों से पूर्ण रहती थी। वे मुझे अपना अन्तरंग और विश्वसनीय मित्र मानने लगे और काम-काज तथा आमोद-प्रमोद दोनों में ही हमारा घंटों साथ रहता था। उनकी बातें सुनने से मेरी तबियत कभी भी नहीं उकताई। उनका विशाल पांडित्य और बहु-विषयक ज्ञान मुझे प्रभावित करता था।

मैं चकित हो जाता था कि उनके इस छोटे से दिमाग में दुनिया भर की बाते क्यो कर समाई हुई हैं।

एक रात को हम दोनो एक छोटे से नियंत्रण-विहीन होटल मे भोजन करने गये। स्वादिष्ट भोजन और रंग बिरंगे प्रकाश का आनन्द उठाने के बाद सड़क पर आने पर आकाश मे चारों ओर धवल चाँदनी छिटकी दिखाई दी। हम दोनो ने चाँदनी का आनन्द उठाते हुए घर तक पैदल चलने का निश्चय किया।

अधिकांश समय तक अप्रधान और साधारण विषयो पर बातचीत होती रही, किन्तु शहर की सुनसान गलियो में प्रवेश करते करते हमारी बातचीत का विषय गम्भीर हो गया। अन्त में दर्शन का गहन विषय उपस्थित हुआ। बातचीत ऐसे गूढ़ विषयो पर होने लगी जिनका नाम सुन कर ही मेरे मित्र के अन्य परिचित व्यक्ति घबरा उठते। अपने घर के द्वार पर पहुँचते ही उन्होंने बिदा होने के लिये मेरी ओर हाथ बढ़ाया। मेरा हाथ अपने हाथ मे लेकर वे बड़े गम्भीर स्वर से धीरे धीरे कहने लगे :

"तुम्हे इस पेशे को कभी न अपनाना था। तुम सच्चे दार्शनिक हो। क्यों इस अखबारनवीसी के झमेले मे पड़े ? तुम्हे किसी विश्वविद्यालय का आचार्य होकर गवेषणा तथा अनुसन्धान कार्य मे जीवन बिताना चाहिए था। तुम विचार-वीथियों में भ्रमण करने वाली प्रवृत्ति के हो। मन की जड़ पहचानने की तुम्हे धुन लगी है। तुम निश्चय ही एक दिन भारत के योगियों, तिब्बत के लामाओ और जापान के 'जेन' भिक्षुओ से भेंट करोगे। तब तुम असाधारण ग्रंथ लिखोगे। अच्छा बिदा।"

"इन योगियों के बारे मे आपका क्या विचार है ?"

उन्होंने मेरे सर के पास अपना सर झुकाया और मेरे कान मे चुपके से कहा—"मेरे मित्र वे जानते है, उन्हे सब ज्ञात है !"

मैं बड़ा हैरान हुआ। विचारों में डूबा हुआ घर लौटा। निकट भविष्य में मेरी मनोकामना के पूर्ण होने की कोई सम्भावना न दिखाई देती थी। दिन प्रति दिन अन्य अन्य कामों में फँसा जा रहा था। उनसे छूट कर बाहर निकलना असम्भव सा प्रतीत होता था। कुछ समय तक निराशा ने मेरे हृदय पर अधिकार कर लिया। शायद मेरे भाग्य में यही बदा था कि इन व्यक्तिगत बन्धनों और लालसाओं के पाशों में सदैव फँसा रहूँ।

किन्तु अन्त को मेरी समस्त आशंकाएँ निराधार प्रमाणित हुईं। नियति अपना चक्र चलाती रही। यद्यपि उसके हुक्मनामों को पढ़ सकने की सामर्थ्य हम में नहीं है फिर भी अनजाने ही उसकी आज्ञाओं का पालन हमें करना ही होता है। एक वर्ष बीतने के पूर्व ही एक दिन मैंने अपने को बम्बई के अलेग्जेंड्रा बन्दरगाह में जहाज़ से उतरने और इस पूरबी शहर के बहुरँगे जीवन में मिल कर भारतीय भाषाओं के विचित्र कोलाहल में डूबा हुआ पाया।

———

३

मिस्र का जादूगर

यह एक अनोखी और शायद कुछ सार्थक सी बात है कि इस विचित्र अन्वेषण में अपना भाग्य परखने की मेरी कोशिश अभी शुरू भी नही हुई कि भाग्य स्वयं ही मुझे खोजते हुए आ गया। अभी तक बम्बई के दर्शनीय स्थानो को देख भी नही पाया हूँ। इस नगर के विषय मे मेरी अब तक की समस्त जानकारी एक पोस्ट कार्ड पर लिखी जा सकती है। मेरा समस्त असबाब, केवल एक सन्दूक को छोड़ कर, अभी तक जैसे का तैसा बन्द पड़ा है। जहाज़ के एक साथी ने मुझे मैजेस्टिक होटल का परिचय दे कर कहा कि यह बम्बई के ऊँचे दर्जे का निवास स्थान है। यहाँ जब से आया हूँ मेरी तमाम कोशिश यही रही है कि इस होटल के पास-पड़ोस वालो से अच्छी तरह परिचित हो जाऊँ। इसी यत्न मे मैंने एक अद्भुत खोज की है कि होटल के साथियो मे एक व्यक्ति ऐसा है जो जादूगर, असाधारण तांत्रिक अथवा अपूर्व मायावी है।

स्मरण रहे कि यह व्यक्ति उन ऐन्द्रजालिकों की कोटि का नही है जो भ्रमित दर्शको की आँखो मे धूल झोक कर, उन्हे चकमा दे कर अपना और अपने प्रदर्शन का प्रबन्ध करने वाले थियेटर के स्वामियो का उल्लू सीधा कर लेते है। वह कोई ऐसा चालबाज नही था जो बाज़ारो मे गुठली बो कर तुरन्त ही पेड़ का उगना और उसमे आम का फलना दिखाते फिरते है। नही,

वह तो मध्यकालीन तांत्रिकों की श्रेणी का था। वह नित्य ही उन मायावी जीवों से काम लेता रहता है जो साधारण मनुष्यों के लिए अदृश्य, पर उसकी नज़रों के सामने उसका हुक्म तामील करने के लिए दौड़ते रहते हैं। कम से कम लोगों में ऐसी ही प्रतीति उसने अपने विषय में पैदा कर रक्खी है। होटल के कर्मचारी सहमी हुई आँखों से उसकी ओर देखते और साँस रोक कर उसके विषय में चर्चा करते हैं। जब कभी वह पास से गुज़रता तो होटल के और मेहमान भी आप ही आप बातचीत का ताँता तोड़ कर घबराई हुई प्रश्न-सूचक दृष्टि से उसकी ओर ताका करते हैं। वह उनसे बात भी नहीं करता और प्रायः अकेले में ही भोजन करना पसन्द करता है।

जब हम देखते हैं कि पहिनाव से वह न तो यूरोपीय जान पड़ता है और न हिन्दुस्तानी, तब हमारा कुतूहल और आश्चर्य और भी बढ़ जाता है। वह नील नदी वाले मिस्र देश से आया हुआ एक यात्री है, जो वास्तव में जादूगर है।

महमूद बे की ग़ैबी ताक़तों की प्रशंसा मेरे सुनने में आयी, पर उसके रूप-रंग से तो मुझे उनका गुमान भी नहीं होता है। मैं समझता था कि उसका शरीर दुबला पतला और चेहरा गम्भीर होगा, पर मैंने देखा कि वह सौम्य, हँस-मुख और गठीले बदन का है। चाल उसकी कर्मशील व्यक्ति की तरह तेज़ है। सफेद और लंबे चोगे के बदले वह आधुनिक ढंग की चुस्त सुथरी पोशाक पहने, पेरिस के होटलों में शाम के समय घूमते हुए पाये जाने वाले किसी छैले-छबीले फरांसीसी युवक सा दिखाई पड़ता है।

इसी विषय का ध्यान करते करते सारा दिन कट गया। दूसरे दिन इस निश्चय के साथ उठा कि महमूद बे से फ़ौरन मुलाक़ात

करनी चाहिए। पत्रकारों की भाषा मे मेरा निश्चय इन शब्दो में प्रकट किया जायगा 'मै उसके रहस्य की गुत्थी सुलझाऊँगा।'

अपने परिचय-पत्र की पीठ पर मैने उससे भेंट करने के अपने ध्येय को लिखा और उसके दाहिने कोने मे छोटे छोटे अक्षरों में एक संकेत चिह्न लिख दिया जिससे वह समझ जाय कि मैं उसकी मायाविनी विद्या की परम्परा से एकदम अपरिचित नहीं हूँ। मुझे आशा थी कि भेट करने की अनुमति आसानी से मिल जायगी। मैने यह पत्र, एक रुपये के साथ, होटल क चतुर नौकर के हाथ मे रख दिया और उसे जादूगर के कमरे में भेज दिया।

पॉच मिनट के बाद उत्तर मिला कि महमूद बे मुझसे फौरन भेंट करेंगे, वह नाश्ता करने जा रहे है और उनका अनुरोध है कि मैं भी नाश्ते मे उनका साथ दूं।

इस प्रथम सफलता से मेरी हिम्मत बढ़ गई और मैं उस नौकर के बतलाए रास्ते पर सीढ़ियॉ चढ़ कर ऊपर पहुँचा। देखा कि महदूद बे अपने कमरे मे एक मेज के सामने बैठे हैं जिस पर चाय, रोटी व मुरब्बा रक्खा हुआ है। वह मिस्र-वासी मेरी आवभगत करने तो नही उठा, पर सामने की एक कुरसी दिखाते हुए उसने स्थिर, गूंजते स्वर में कहा :

"कृपया इस पर विराजिए; आर मुझे क्षमा करे, मै कभी किसी से हाथ नहीं मिलाता।"

जादूगर के बदन पर एक ढीला, खाकी रंग का चोगा और कंधो पर सिंह के केसर के समान भूरे केश लटक रहे थे। माथे पर एक घुँघराली लट झूल रही थी। मुस्कराहट के साथ, श्वेत-दन्त-पंक्ति दिखाते हुए उन्होंने पूछा :

"मेरे साथ नाश्ता करने की कृपा न करेंगे ?"

मैंने धन्यवाद दिया; फिर यह भी बतला दिया कि होटल भर में उनकी असाधारण ख्याति फैली हुई है, और उनसे मिलने का साहस करने के पहले मैंने इस विषय पर बड़े ध्यानपूर्वक विचार किया है। वह ठहाका मार कर हँस पड़ा। हाथ उठा कर उसने लाचारी का संकेत किया, पर मुँह से कुछ कहा नहीं।

थोड़ी देर चुप रह कर उन्होंने कहा :

"मैं समझता हूँ आप किसी अखबार के प्रतिनिधि होंगे ?"

"नहीं, वैसा तो नहीं; मैं अपने एक जाती मतलब से हिन्दुस्तान आया हूँ। कुछ असाधारण और अद्भुत विषयों का अध्ययन करके, हो सके तो, एक ग्रंथ रचना की सामग्री संग्रह करने का मेरा इरादा है।"

"तो आप हिन्दुस्तान में बहुत दिनों तक रहने जा रहे हैं ?"

"यह बात तो परिस्थित पर निर्भर होगी, इस समय तो मेरे सामने समय का कोई बन्धन नहीं है।" यह उत्तर मैंने बहुत सकुचाते हुए दिया; क्योंकि मामला उलटा हुआ जा रहा था। मैं गया था उनका भेद खोजने पर महमूद बे तो उलटे मुझ से ही प्रश्न करने लगे। किन्तु उनकी बाद की बातचीत से मुझे धैर्य हुआ।

"मैं भी यहाँ लम्बी यात्रा करने आया हूँ; शायद साल दो साल लगें; उसके बाद सुदूर प्राच्य देशों में जाऊँगा। अगर अल्लाह ताला ने चाहा तो सारी दुनियाँ की सैर करता हुआ अपने वतन, मिस्र देश को लौट जाना चाहता हूँ।"

हम लोगों के नाश्ता कर चुकने पर नौकर ने आ कर मेज़ साफ़ की। मेरे मन में आया, गहरे पानी में पैठने का यही ठीक मौक़ा है। अतः सीधी तौर पर सवाल किया :

"तो क्या, सचमुच आपको अदृश्य शक्तियो पर अधिकार है ?"

शान्ति और दृढ़ता से उन्होने उत्तर दिया—"जी हॉ, सर्वशक्तिमान ईश्वर ने मुझे ऐसी शक्तियॉ प्रदान की हैं।"

मुझे बड़ा सन्देह हुआ। उन्होने अपनी काली कजरारी ऑखें मुझ पर जमा दी और सहसा बोल उठे :

"मै समझता हूॅ आप उनका प्रत्यक्ष प्रदर्शन देखना चाहते होगे ?"

वे मेरा आशय ठीक ठीक ताड़ गये थे। मैने सिर हिलाकर अपनी सम्मति सूचित की।

"बहुत अच्छा, आपके पास पेन्सिल और थोड़ा कागज़ होगा न ?"

झट से मैने अपनी जेब टटोली, नोट-बुक से कागज़ फाड़ लिया और पेन्सिल भी हाथ मे ली।

"खूब ! आप उस पर कोई प्रश्न लिख दे।"

यह कहते हुए वे एक खिड़की के सामने छोटी सी मेज़ पर जा बैठे और मेरी ओर पीठ करके नीचे की सड़क को देखने लगे। हम दोनो के बीच मे कई फुट का अन्तर था।

मैने पूछा—"कैसा प्रश्न ?"

उन्होने झट कहा—"जो आप चाहे।"

मेरे मन मे सहसा कई विचार दौड़े, आखिर यह छोटा सा सवाल उस पर लिख दिया—'चार साल पहले मै कहॉ रहा था ?'

"अब उसे चौकोर मोड़ कर खूब छोटा कर दीजिये।"

मैंने उनके हुक्म की तामील की ; फिर वे मेरी मेज़ के पास कुरसी खींच कर बैठ गये और मेरी तरफ़ ध्यानपूर्वक ताकने लगे।

"कागज़ और पेन्सिल को अपने दाहिने हाथ की मुट्ठी में मज़बूती से पकड़े रहिए।"

मैंने पूरी ताक़त से वैसा ही किया। अब मिस्र-निवासी ने आँखें मूँद लीं। वे थोड़ी देर तक ध्यान-मग्न से दिखाई दिए, फिर पलकें खोल, मेरी ओर टकटकी बाँधे धीरे से बोले।

"आप का सवाल यही है न कि 'चार साल पहले मैं कहाँ रहा था' ?"

"आपने बिलकुल ठीक कहा" मैं अचम्भे में आ कर बोला। यह तो मनोगत भावों को जान लेने का अत्यन्त अद्भुत दृष्टान्त है।

वे फिर बोले—"अब हाथ का कागज़ खोल दीजिए।"

उस छोटे से परचे की तमाम तहें खोल कर मैंने उसे मेज़ पर रख दिया।

फिर हुक्म हुआ—"ग़ौर से देख लीजिए।"

उस पर नज़र दौड़ाते ही मैं दंग रह गया, क्योंकि किसी ग़ैबी हाथ ने पेन्सिल से उस पर उस शहर का नाम लिख दिया था जहाँ मैं चार साल पहले रहा था। यह उत्तर मेरे लिखे हुए प्रश्न के ठीक नीचे अंकित था।

महमूद बे ने विजय-गर्व से मुस्करा कर कहा—"जवाब भी उसी में पाइयेगा, मेरा ख़याल है कि वह सही है। क्यों ?"

मैंने विस्मित होकर कहा—"हाँ" ; पर उस पर विश्वास कर लेना कठिन मालूम होता था। परखने के विचार से मैंने इस प्रयोग को दुहरा देने की उनसे प्रार्थना की। वे तुरन्त सहमत

हो कर खिड़की की ओर खिसक गये। मैने कागज़ पर दूसरा सवाल लिखा। दूरी पर जा कर उन्होंने मेरा यह सन्देह भी दूर कर दिया कि पास रह कर वे मेरी लिखावट को पढ़ लेते है। इसके अतिरिक्त मै तो वड़ी सावधानी के साथ उनकी तरफ देखता रहा था और वे खिड़की से नीचे की तरफ झुक कर रास्ते पर का रम्य-दृश्य देखते रहे।

मै ने दूसरी बार कागज़ को खूब तह किया और उसे पेन्सिल के साथ दृढ़ता से मुट्ठी मे कस रक्खा। फिर वे मेज़ के पास लौट आये। आँखे वन्द कर उन्होने पुनः गहरा ध्यान लगाया। थोड़ी देर वाद वे यों बोले :

"आप का दूसरा सवाल यही है कि 'दो वर्ष पहले मै ने किस पत्र का सम्पादन किया' ?" उन्होने मेरा प्रश्न अक्षरशः दुहरा दिया था ; पर मेरा फिर से यही विचार हुआ कि यह तो केवल मनोगत भावो को पढ़ लेने की हिकमत है।

दाहिने हाथ का कागज़ खोलने की जब आज्ञा हुई तो मैंने उसे खोल कर मेज़ पर फैला दिया और मेरे उस सम्पादित पत्र का नाम उस पर भद्दे अक्षरो मे पेन्सिल ही से लिखा पाया। अब मुझे अपनी ही आँखो पर विश्वास जाता रहा।

यह वाजीगर का तमाशा तो नही है ?

नहीं, यह कैसे हो सकता है। कागज़ और पेन्सिल मेरे ही थे, सवाल भी ऐन वक्त पर सूझे हुए, और महमूद वे हर वार मुझसे कई फुट के अन्तर पर बैठे है; फिर भी तारीफ यह कि यह सारा व्यापार प्रातःकाल के उजाले मे किया गया है।

क्या जादूगर ने मेरी नज़र तो नही बाँध दी है। किन्तु ऐसा नहीं हो सकता। दृष्टि द्वारा प्रभाव डालने का थोड़ा बहुत ज्ञान

मुझे भी अवश्य है। अपने को प्रभावित करने का प्रयत्न मैं भली-भाँति जान सकता हूँ और उससे अपने को बचाने का उपाय भी मेरे लिए सुलभ है। अचरज तो इस बात का है कि उस ग़ैबी-हाथ की लिखावट आज तक[1] कागज़ पर जैसी की तैसी बनी हुई है। मेरे विस्मय का अन्त न रहा। मैंने उस मिस्रवासी से प्रार्थना की कि वह तीसरी बार भी अपना प्रयोग दिखाने का कष्ट उठावें। आखिरी जाँच पर वे राज़ी हुए। मगर इस बार भी वे पूरी तरह से विजयी हुए।

सत्य को कौन झूठ बता सकता है। मेरा विश्वास है कि वे मेरे मन में घुस कर भावों को जान गये, और किसी गुप्त-मन्त्र के बल से, किसी अदृश्य व्यक्ति के द्वारा, उन्होंने मेरे हाथ में बंधे हुए कागज़ पर ऐसे शब्द लिखवाये जिनसे मेरे प्रश्नों के उत्तर बन गये। यह कौन सा विचित्र उपाय है जिससे उन्होंने काम लिया है? इस पर ध्यान देने पर मुझे ऐसा अनुभव होने लगा कि संसार में कुछ गुप्त शक्तियाँ ज़रूर मौजूद हैं। साधारण बुद्धि के व्यक्तियों की समझ में यह बात नहीं आ सकती; क्योंकि स्वाभाविक मन-स्तल से यह भिन्न और परे जान पड़ती है। इस विचित्रता और विस्मय-जनक स्थिति का ध्यान करके मैं स्तम्भित हो गया, मेरे हृदय की गति रुक सी गई।

"आप के इंगलिस्तान में इस तरह कर दिखाने वाला कोई है?" उन्होंने आत्म-प्रशंसा के साथ कहा।

---

१ मैंने उस पुरज़े को कई महीनों तक अपने पास रक्खा और अन्त तक उसके अक्षर ज़रा भी नहीं मिटे। मैंने उसे दो-चार मित्रों से पढ़वाया और उस पर लिखे जवाबों को जँचवाया भी। इससे यह साबित है कि मेरा अनुभव भ्रान्ति-हीन था।

मुझे मजबूर होकर यह मानना पड़ा कि यद्यपि अनुकूल परिस्थिति मे अपनी अपनी निजी सामग्री के सहारे ऐसी करामाते दिखाने वाले बहुतेरे पेशेवर जादूगर हैं, तो भी ऐसा तो कोई दिखाई नही देता जो इस तरह की परीक्षा मे सफलतापूर्वक प्रयोग कर सकता हो।

"क्या आप अपने विधान को साफ साफ समझाने का कष्ट उठावेगे?" मैने डरते डरते उनसे प्रश्न किया, क्योकि मै जानता था कि उनसे उनके रहस्य को जान लेने की इच्छा करना आकाश-पुष्प को पाने के समान दुराशा मात्र है।

हाथो को झुलाते हुए लाचारी सूचित करते हुए उन्होंने कहा :

"हजारो रुपये देने का वादा करके कितने ही लोग यह कोशिश करते आये है कि मैं अपना रहस्य उन पर खोल दूं। लेकिन आज तक मै सहमत नही हो सका।"

मैने साहस करके कहा :

"आप तो यह समझते है कि मै इन ग़ैबी-ताकतो की बातो से एकदम अनजान नही हूँ।"

"जी हॉ, यह तो सच है। अगर मै कभी योरप आया, और उसकी बहुत सम्भावना है तो आप कई बातो मे मेरी मदद कर सकते है। मै वचन देता हूं कि उस वक्त मै आप को इस विद्या का इतना ज्ञान अवश्य करा दूँगा कि अगर आप चाहे तो खुद ही इस प्रकार के प्रदर्शन कर सके।"

"यह विद्या कितने दिन मे आ जायगी?"

"यह तो सब के लिए एक सा नही होगा। अगर आपने मेहनत के साथ अपना पूरा समय इस मे लगाया तो आप तीन

महीनों में मेरी पद्धति अच्छी तरह सीख सकेंगे। पर बाद में भी कई वर्ष तक अभ्यास जारी रखना होगा।"

मैंने सानुरोध कहा—"क्या आप अपने रहस्य के मूलमंत्र को गोप्य रखते हुए भी अपने करतबों के सम्बन्ध में कुछ साधारण सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण न करेंगे?"

महमूद बे मेरे प्रश्न पर थोड़ी देर विचार करते रहे; फिर धीरे से बोले :

"अवश्य, आपके लिए इतना करने को प्रस्तुत हूँ।"

मैंने अपनी जेब से शीघ्र-लेखन की नोट बुक और पेन्सिल निकाली और लिखने के लिए तैयार हुआ। पर उन्होंने मुस्कराते हुए उस पर आपत्ति की।

"जी, आज नहीं; माफ़ कीजिए, आज फुरसत नहीं। कल सुबह ११ बजे आ जाइए तो हम लोग अपनी बातचीत फिर प्रारम्भ करेंगे।"

नियत समय पर मैं पुनः महमूद बे के कमरे में जाकर बैठ गया। उन्होंने मिस्र की बनी एक सिगरेट का डब्बा मेज़ के ऊपर से मेरी तरफ़ बढ़ाया। मैंने उसमें से एक सिग़रेट निकाल ली। सलाई जला कर मेरी ओर बढ़ाते हुए उन्होंने कहा :

"ये सिगरेट मेरे देश में बनी हैं, बहुत अच्छी है।"

हम दोनों कुरसियों पर बैठ गये और बातचीत प्रारम्भ करने के पूर्व सिगरेट का आनन्द लेने लगे। धुआँ मीठा और सुगन्धित था। वास्तव में वे सिगरेटें उत्तम थीं। महमूद बे ने सरल स्वभाव से हँस कर कहा :

"अब तो मुझे अपने सिद्धान्तों का रहस्य प्रकट करना हो

होगा, क्यो न ? आप अंग्रेज़ लोग इन बातो को कोरा सिद्धान्त भले ही माने पर मेरे लिए तो यह प्रत्यक्ष सत्य है।"

फिर सिलसिला तोड़ कर वह बोलने लगे :

"शायद यह सुन कर आप को आश्चर्य होगा कि मै कृषि-विज्ञान का विशेषज्ञ हूॅ और इस विषय की बड़ी उपाधियाँ पा चुका हूॅ।"

मै जल्दी जल्दी इन बातो को लिखने लगा। वे फिर कहने लगे :

"हॉ, यह तो ठीक है; मै जानता हूॅ कि यह मेरा कृषि विषयक वैज्ञानिक अध्ययन मेरी इस मायाविनी विद्या की अभिरुचि से बिलकुल मेल नही खाता।"

मैने उनकी तरफ सिर उठाया तो देखा कि उनके ओठ मुस्करा रहे है। वह भी मेरी ओर ध्यानपूर्वक देखने लगे। मैने सोचा, इस व्यक्ति को कहानी बड़ी अच्छी मालूम होती है।

"आप तो पत्रकार है, मुमकिन है यही जानना चाहते होगे कि मै जादूगर कैसे बना ? क्यो न ?"

मैने उतावली के साथ कहा—"जी हॉ।"

"बहुत अच्छा। यद्यपि मेरा जन्म मिस्र के समुद्रतट से दूरवर्त्ती प्रदेश मे हुआ है परन्तु मेरा पालन पोषण कैरो नगर मे हुआ है। आप बस यही समझिए कि मै बिलकुल साधारण बालक था, वैसी ही अभिरुचियॉ रखता था जो स्कूल के लड़के रक्खा करते हैं। खेती-बारी का पेशा अपनाने की मेरी उत्कट अभिलाषा थी, इसीलिए सरकारी कृषि-विद्यालय मे मै भर्ती हुआ और मैने बडी मेहनत तथा उत्साह के साथ अपना अध्ययन जारी रक्खा।

"एक दिन मेरे निवासस्थान पर एक बूढ़ा आदमी आया और

उसने उसी मकान में एक कमरा किराये पर लिया। वह यहूदी था। उस की भौंहें बड़ी घनी, दाढ़ी भूरी और लम्बी थी; उसका चेहरा हमेशा तीव्र और गम्भीर रहा करता था। वह पुराने ढंग के कपड़े पहनता था और ऐसा जान पड़ता था मानों किसी पिछली शताब्दी का व्यक्ति हो। वह लोगों से इतना खिंचा हुआ रहता था कि मकान के दूसरे रहने वाले सभी उस से दूर रहा करते थे। ताज्जुब की बात तो यह है कि इस बूढ़े की अलग रहने की प्रवृत्ति ने मुझ पर विपरीत असर डाला; उसने मुझ में अपने प्रति उत्सुकता और दिलचस्पी बढ़ा दी। छोटा होने के कारण मुझ में नाममात्र को भी संकोच न था. आत्म-व्यंजकता काफ़ी मात्रा में थी, और बहुत आग्रह के साथ मैंने उस से जान-पहचान बढ़ाने की कोशिश की। पहले तो उसने झिड़कियाँ दे कर मेरे उत्साह पर पानी फेर दिया। पर इस ने तो मेरी उत्सुकता की आग में घी का काम किया। उसे बातचीत में लगाने के मेरे निरन्तर प्रयत्नों का फल यह हुआ कि उसका मन पिघल गया। उसने अपना दरवाज़ा खोल कर मुझे अन्दर आने दिया और अपने जीवन के रहस्य को समझने का अवसर दिया। इस प्रकार मैंने जाना कि वह अपना अधिकांश समय ग़ैबी-इल्म हासिल करने और ऐसे कृत्यों के साधन में व्यय कर रहा है जो साधारण मनुष्य की शक्ति के परे हैं। सारांश यह कि उस ने मुझ पर स्पष्ट रूप से यह प्रकट कर दिया कि वह इस ग़ैबी-इल्म की खोज का काम करता रहता है। ज़रा सोचिये, अब तक तो मेरा जीवन साधारण युवकों के समान विद्याध्ययन तथा खेल-कूद के सीधे मार्ग पर चल रहा था, किन्तु अब सर्वथा भिन्न परिस्थिति से मेरी मुठभेड़ हो गई। आश्चर्य की बात यह है कि यह नई परिस्थिति मुझे अत्यन्त रोचक जान पड़ी। खूब भा

गयी। गैबी बातो के विचार से मुझे तनिक भी भय नहीं हुआ, जैसा कि अन्य साधारण बालकों को निस्सन्देह होता। वास्तव मे इससे मै प्रफुल्लित हो गया क्योंकि मैने इस हुनर के द्वारा बडे बड़े साहसी कार्य कर दिखाने की सम्भावना देखी। इस विद्या का थोड़ा बहुत ज्ञान मुझे भी करा देने के लिए मैने उस वृद्ध यहूदी से मिन्नतें की और उसने मेरी प्रार्थना स्वीकार भी की। इस तरह मै नूतन अभिरुचि और मित्रो के घेरे में लाया गया। यह यहूदी मुझे अपने साथ कैरो की उस मंडली मे अकसर ले जाता था जहाँ जादू, प्रेत-विद्या, दिव्य-ज्ञान और गुप्त-शक्ति का क्रियात्मक अनुसन्धान होता रहता था। इस मंडली मे अकसर उस यहूदी के व्याख्यान होते थे। समाज के सम्मानित व्यक्ति, विद्वान, सरकारी अफसर और अन्य भद्र पुरुष इस मे शरीक होते थे।

"यद्यपि मै अभी युवावस्था को पहुँचा ही था, तो भी मंडली की हर एक बैठक में मुझे उस वृद्ध के साथ हाजिर रहने की अनुमति मिल गई। हर बार मै वड़ी ही उत्सुकता के साथ व्याख्यान सुनता; मेरे चारों ओर जो सम्भाषण होता उसका एक एक अक्षर मेरे कानो मे प्रवेश करता। बार बार होने वाले प्रयोगों को मेरी आँखे तीव्र उत्कंठा के साथ परखती रहती। इस से मेरे कृषि-शास्त्र के अध्ययन मे बाधा तो अवश्य पहुँची, पर यह अनिवार्य था। इस मायावी विद्या के प्रयोगो के लिए अधिक समय देना जरूरी था। परन्तु कृषि-शास्त्र मे मेरी स्वाभाविक प्रवीणता होने के कारण किसी तरह, बिना विशेष कष्ट उठाये, मैंने कृषि-विज्ञान की उपाधि की परीक्षा पास कर ली।

"मैने उस यहूदी की दी हुई समस्त प्राचीन पोथियाँ पढ़ डाली और जादू के उन सब साधनो व प्रक्रिया का अच्छा

अभ्यास कर लिया, जो उसने सिखाई थीं। इसमें मैंने शीघ्र ही ऐसी उन्नति की कि मैं ऐसी नई बातों की खोज भी करने लगा जिनको यहूदी स्वयं नहीं जानता था। होते होते मैं इस विद्या का विशेषज्ञ समझा जाने लगा। कैरो की सोसाइटी में मैंने इस विषय पर कई व्याख्यान दिए और प्रत्यक्ष प्रयोग भी कर दिखाए। इस का परिणाम यह हुआ कि उस सोसाइटी के सदस्यों ने मुझे अपना अध्यक्ष बना लिया। १२ वर्ष तक मैं उस सोसाइटी का अगुआ बना रहा। बाद को उससे इस्तीफा देकर मैं अलग हुआ, क्योंकि मिस्र देश के बाहर कुछ अन्य देशों की यात्रा करने की, और साथ ही धन कमाने की भी, मेरी इच्छा हुई।"

महमूद बे इतना कह कर रुक गये, और अपनी सावधानी से चित्रित उंगलियों से—जिन पर मेरा ध्यान गये बिना न रहा—उन्होंने सिगरेट की राख गिरा दी।

मैंने कहा—"धन कमाना तो टेढ़ी खीर है।"

उन्होंने हँसते हुए कहा :

"मेरे लिए तो आसान ही है। थोड़े से असाधारण धनवान व्यक्ति ही तो मुझे चाहिए जो मेरी ग़ैबी ताक़तों से फ़ायदा उठाना चाहते हों। इस समय भी दो-चार धनाढ्य पारसी और हिन्दू व्यक्तियों से मेरी जान पहचान हो गई है। अपने व्यापार के मामलों और दिक़्क़तों के सम्बन्ध में मेरी सलाह लेने वे यहाँ चले आते हैं। जो बात उन्हें धोखे में डाल दे उससे वे बचना चाहते, अथवा ऐसी बात का पता लगाना चाहते हैं जिसकी खोज इस रहस्यमय विद्या के ज्ञान के बिना पाना असम्भव है। मैं उन लोगों से सहज ही में काफ़ी ऊँची फीस लेता हूँ; १०० रु० से कम तो मैं लेता ही नहीं। स्पष्ट बात तो यह है कि मैं बहुत सा

धन संचित करना चाहता हूँ। बाद को इन सब बातों से अलग होकर अपने मिस्र देश के किसी अन्तर्भाग में जा बसूँगा। एक विशाल नारंगी का बाग़ खरीद कर फिर से खेती बारी को अपनाऊँगा।"

"आप सीधे मिस्र से यहाँ आये है ?"

"जी नही, कैरो छोड़ने पर मैने सीरिया और पैलेस्टाइन मे कुछ समय बिताया। सीरिया के पुलिस अफसरों ने जब मेरी ताक़तो की बात सुनी तो वे मुझ मे अकसर मदद माँगने के लिए आने लगे। जब कभी किसी जुर्म का पता लगाने मे वे हैरान होते और हार कर थक जाते तो अन्त में मेरी शरण लेते। प्राय' हर एक मामले मे मुझे अपराधी का राज़ बताने मे सफलता मिली।"

"यह आप से कैसे हो सका ?"

"मेरी वशवर्ती प्रेतात्माएं मेरी आँखो के सामने जुर्म का यथार्थ दृश्य खड़ा कर देती थी और मै उसका सच्चा रहस्य जान जाता था।"

महमूद वे एक क्षण तक अपनी स्मृति को बटोरते हुए सोचने लगे और मै शान्ति से उनकी आगे की बातो की प्रतीक्षा करने लगा। "हाँ, मै समझता हूँ आप मुझे एक प्रकार का जिन्नी अर्थात् प्रेत-विद्या विशारद कह सकते है क्योंकि मै सचमुच प्रेतो से काम लिया करता हूँ। लेकिन, मै वास्तविक अर्थ मे वह भी हूँ जिसे आप लोग जादूगर कहते है—इन्द्रजालिक नही—और दूसरो के गुप्त भावो को पढ़ने वाला भी हूँ। बस, इससे और ऊँचा होने का मै दावा नही करता।"

वह जो कुछ होने का दावा करते हैं वही मुझे आश्चर्य-चकित कर देने के लिए पर्याप्त है।

मैंने उनसे पूछा—"कृपा करके अपने उन गैबी-ताबेदारों की बाबत कुछ समझा दीजिए।"

"भूतों के बारे में? अच्छा, जितना अधिकार आज मैं उन पर कर रहा हूँ वह मुझे तीन वर्ष की कठोर साधना के बाद प्राप्त हो सका है। इस स्थूल संसार से परे जो दूसरी दुनिया है उसमें अच्छे तथा बुरे सभी प्रकार के भूत-प्रेत निवास करते हैं। मैं सदा अच्छे प्रेतों से ही काम लेने का यत्न करता हूँ। उनमें से कुछ वे हैं जो इस संसार से मर कर वहां पहुँचते हैं। परन्तु मेरे अधिकतर ताबेदार तो जिन्न हैं जो प्रेत लोक के आदि निवासी हैं और जिन्हें कभी मनुष्य का शरीर नहीं मिला है। उनमें से कुछ तो जानवरों के समान बुद्धिहीन हैं और कुछ मनुष्यों के समान बुद्धिमान। कुछ जिन्न दुष्ट स्वभाव के भी होते हैं—जिन्न शब्द मिस्र देश का है इसका अंग्रेजी भाषा का पर्यायवाची शब्द मुझे नहीं मालूम है। इन दुष्ट जिन्नों से निम्न कोटि के इन्द्र-जालिक, खास कर अफ्रीका के टोना करने वाले ओझा लोग, काम लिया करते है। मैं उन से भूल कर भी सरोकार नहीं रखता। वे बड़े खतरनाक सेवक हैं और कभी कभी अपने ही मालिक से दगा करके उसको जान ले लेते हैं।"

"वे मानवी-प्रेत कौन हैं जिनसे आप काम लेते हैं?"

"मैं आप से बता सकता हूँ; उनमें से एक मेरा ही भाई है। वह कुछ साल पहले 'मर' चुका है। मगर यह बात याद रखिए, मैं प्रेतों का माध्यम करने वाला नहीं हूँ। मेरे शरीर में न कोई भूत प्रवेश कर सकता है और न मैं उन्हें अपने ऊपर किसी

प्रकार का प्रभाव ही डालने देता हूँ। मेरा भाई मेरे मन पर अपनी इच्छा अंकित कर देता है अथवा मेरे मनोनेत्र के आगे अपने विचारो का चित्र सा खीच देता है, इस प्रकार वह मुझसे वार्तालाप कर सकता है। इसी रीति से कल मैंने आप के लिखे प्रश्नो को जान लिया था।"

"और आपके आज्ञाकारी जिन्न ?"

"उनमे से लगभग ३० मेरे वशवर्ती है। उन्हे काबू में लाने के बाद मुझे उनको आज्ञापालन का क्रम सिखाना पड़ा, ठीक उसी तरह जैसे बच्चों को नाचना सिखाया जाता है। उनमें से हर एक का नाम जान लेना मेरे लिए जरूरी है, नही तो न वे बुलाए जा सकते है और न उनसे कोई काम ही लिया जा सकता है। इनमे से कुछ के नाम तो मैंने उन पुरानी पोथियो से जान लिये जो उस यहूदी ने दी थीं।"

महमूद वे ने सिगरेट की डिबिया फिर से मेरी तरफ खिसका दी और फिर कहने लगे :

"मैंने प्रत्येक प्रेत को भिन्न भिन्न काम सौंपे है और उन्हे भिन्न भिन्न कार्य करने की शिक्षा दी है। कल आप के कागज़ पर जिस जिन्न ने पेन्सिल से जवाब लिख दिया था, उससे आप का सवाल जानने के काम मे मै कोई मदद नही पा सकता था।"

"आप इन भूतो के सम्पर्क मे कैसे आते है ?"

"एकाग्रचित्त होकर उनका ध्यान करने से मै उन्हे बहुत ही जल्द अपने पास बुला ले सकता हूँ। पर साधारणतः जिस जिन्न से मुझे काम लेना होता है उसका नाम अरबी मे लिख देता हूँ; उसी क्षण वह मेरे पास दौड़ा आवेगा।'

मिस्र निवासी ने अपनी घड़ी पर नज़र डाली, फिर उठ कर बोला :

"मेरे प्रिय मित्र, अफ़सोस है कि मैं अब अपने उपायों का इससे अधिक स्पष्टीकरण नहीं कर सकता। आप समझ ही गये होंगे कि मुझे इस विषय को क्यों गुप्त रखना चाहिए। अगर अल्लाह की मर्ज़ी हुई तो हम किसी दूसरे दिन मिलेंगे। आदाब अर्ज़।"

सिर झुकाते समय जब वह मुस्करा दिया उसके सफ़ेद दांत चमक उठे।

हमारी मुलाक़ात समाप्त हुई।

× × ×

बम्बई की रात का अनुभव। काफ़ी रात बीत जाने पर मैं बिस्तरे पर गया लेकिन किसी तरह नींद नहीं आई। उमस के के मारे दम घुटने लगा। हवा में कोई प्राणद शक्ति नज़र ही नहीं आती थी। गरमी असह्य हो गई थी। छत से लटकने वाला बिजली का पंखा ज़ोर से चल रहा था पर उससे मुझे काफ़ी आराम नहीं मिल रहा था, इतना आराम कि मेरी आँखें बन्द हो जायँ। मुझे इतनी गरमी का कभी अनुभव नहीं था। इस कारण मेरा दम घुटने लगा। साँस लेना भी मेरे लिए कठिन मालूम हो रहा था। मेरे अभागे बदन से पसीने की धार छूट रही थी। मेरा पायजामा उस पसीने के कारण तर हो गया। मेरा दिमाग़ बेचैन था। नींद न आने का भयानक रोग आज की रात मुझे अपना शिकार बनाने लगा और मेरे भाग्य में यही बदा था कि भारत के मेरे सफ़र के आखिरी दिन तक इससे मेरा पिंड न छूटे। अपने को इस देश की आबहवा के अनुकूल

वना लेने का सौदा मेरे लिए बहुत मँहगा पड़ा है। ऐसा होना भी अवश्यम्भावी था।

कफ़न के समान मेरे बिस्तर को एक सफ़ेद मसहरी घेरे हुए थी। बरामदे की ओर दीवार मे एक लम्बी खिड़की थी। उसके द्वारा चाँदनी का प्रवाह भीतर उमड़ा आ रहा था और उसकी उदास छाया भीतरी छत पर पड़ रही थी।

मै लेटे लेटे महमूद बे के साथ अपनी सुबह की बात-चीत और पिछले दिन के असाधारण प्रदर्शनो के बारे मे मनन करने लगा। उन्होने उन सारी बातों को एक ढंग से समझा दिया था पर उस बयान के अतिरिक्त उनके सम्बन्ध मे और कोई मर्म की बात मै जान नही सका। वे जिन ३०-३५ ग़ैबी खिदमत-गारो का जिक्र करते है यदि सच ही उनकी हस्ती हो, तो निश्चय ही हम आज दिन भी उस मध्यकालीन दुनियाँ मे रहनेवालो से भिन्न नही है जब कि यूरोप के हर शहर मे जादू-टोना करने वाले रहा करते थे।

इस समस्या को हल करने की मै जितनी कोशिश कर रहा था उतना ही चकित मुझे रह जाना पड़ता था।

पेंसिल और कागज़, दोनो को एक साथ ही हाथ में लेने के लिए महमूद बे ने मुझ से क्यो कहा था? उनके बताये जिन्न क्या पेंसिल के किसी अंश के द्वारा ग़ैबी ढंग से जवाब लिख देते थे?

मै इसी प्रकार की कुछ अन्य बातो के लिए अपनी स्मृति को टटोलने लगा। वेनिस निवासी प्रसिद्ध पर्यटक मार्को पोलो ने भी कुछ इसी प्रकार की बातो का अपने यात्रा वृतान्त मे उल्लेख किया है। उन्होने लिखा है कि चीन, तातार और तिब्बत मे उनकी कुछ जादूगरो से भेट हुई थी। वे भी पेंसिल छुए बिना

ही उससे कागज़ पर लिख कर दिखा सकते थे। इन अजीब जादूगरों ने उनको बताया था कि तंत्र-मंत्र और झाड़-फूंक की विद्या उन लोगों में कई सदियों से चली आ रही थी।

मुझे एक और व्यक्ति की भी याद आ रही है। रूस की विचित्र महिला हेलीना पेट्रोला ब्लावटस्की ने, जिन्होंने थियोसाफिकल सोसाइटी की नींव डाली, ५० वर्ष पूर्व कुछ इसी ढंग की करामातें दिखाई थीं। उनकी इच्छा-शक्ति द्वारा उनके कुछ खास चेलों को लम्बे चौड़े संदेश भी मिला करते थे। उन्होंने कुछ दार्शनिक प्रश्न पूछे और उन प्रश्नों का उत्तर ठीक उसी पत्र पर किसी ग़ैबी ढंग से लिखा मिलता था जिस पर वे प्रश्न लिखे होते थे। यह भी एक ध्यान देने योग्य बात है कि मार्को पोलो ने जिन प्रदेशा का इस सम्बन्ध में उल्लेख किया है उन्हीं तातार और तिब्बत के प्रान्तों से ब्लावटस्की ने भी अपना परिचय बतलाया है। परन्तु महमूद बे के समान किन्हीं ग़ैबी जिन्नों को अपने कब्जे में रखने का दावा उन्होंने पेश नहीं किया है। उनका कहना था कि लिखने का काम उनके तिब्बत के महात्मागण ही किया करते थे। ब्लावटस्की कहा करती थीं कि ये महात्मा इसी संसार में हाड़-मांस का शरीर धारण किये हुए हैं और अदृश्य रूप से उनके समाज के सदस्यों को प्रेरणा देते है। जो हो, ब्लावटस्को के महात्मागण महमूद वे के जिन्नों की अपेक्षा अधिक सिद्ध हस्त थे क्योंकि वे तिब्बत से ही सैकड़ों मील की दूरी पर भी इस अद्भुत करामात को कर सकते थे। जनसाधारण ने ब्लावटस्की के कथनों की सत्यता के सम्बन्ध में बड़ा सन्देह प्रकट किया था कि तिब्बत मे इस प्रकार के महात्मा वास्तव मे हैं या नहीं। किन्तु इन सब झमेलो से मुझे कोई मतलब नहीं है। उक्त महिला को स्वर्ग सिधारे कितने ही वर्ष बीत गये।

मै तो अपने अनुभव की बात जानता हूँ। अपनी आँखो देखी बात मुझे याद है। मै उसका मर्म भले ही न समझा सकूँ परन्तु महमूद बे की करामात धोखे की टट्टी नही है।

बेशक महमूद बे बीसवी सदी के एक अद्भुत जादूगर है। भारत की भूमि पर पैर रखते ही इस अजीब तांत्रिक से मेरी यह भेंट भविष्य मे मेरे सामने घटने वाली और भी अनेक अद्भुत बातो की मानो सूचना दे रही थी। इस प्रकार मैने अपने भारत भ्रमण सम्बन्धी अनुभवो का श्रीगणेश किया और मेरी डायरी के कोरे पन्ने मेरे इस नवीन अनुभव की गाथा से रंग गये।

नये मसीहा मेहरबाबा

पैग़म्बर से भेंट

"आपको देख कर मुझे बड़ी खुशी हुई", यों कह कर मेहर बाबा ने कुछ शिष्टाचार के ढंग से मेरी आवभगत की। मुझे क्या मालूम था कि वे कुछ समय तक किसी समय पश्चिमी संसार के आकाश में उल्का के समान चमक उठेंगे और यूरोप तथा अमेरिका के लाखों आदमियों की उत्सुकता को भड़का देंगे और फिर उसी तीव्र गति से अनादरित हो कर अदृश्य हो जायंगे। उनसे भेंट करने वालों में मैं सबसे पहला पश्चिमी पत्र-संवाद-दाता था, क्योंकि जब उनके निकटवर्तियों को छोड़ कर और कहीं भी उनका नाम प्रायः अज्ञात था तभी मैं उनका पता लगा कर उनके निवास स्थान ही पर उनसे मिला था।

मुझे उनके एक प्रधान शिष्य से परिचय प्राप्त हुआ था और कुछ लिखा-पढ़ी के बाद मुझे आश्चर्य होने लगा कि यह किस ढंग का विचित्र व्यक्ति है जो अपने आप को पैग़म्बरों की श्रेणी में समझने लगा है। मुझको अपने गुरु के पास ले चलने के लिए दो पारसी शिष्य बम्बई आये थे। शहर से रवाना होने से पहले ही उन्होंने मुझको बता दिया था कि उनके गुरुदेव की भेंट के लिए मुझे अवश्य ही कुछ चुने हुए उत्तम फूल और फल खरीदना होगा। इसलिए हम लोगों ने बाज़ार की राह ली; वहाँ मेरी ओर से उन्होंने एक बड़ी टोकरी भर भेंट का सामान ख़रीदा।

दूसरे दिन सुबह हमारी गाड़ी रात भर के सफर के बाद अहमदनगर स्टेशन पर पहुँची। मुझे स्मरण हुआ कि यहीं कठोर हृदय ओरंगजेब ने, जो गाज़ी और मुग़ल तख्त का एक जौहर समझा गया है, आखिरी बार अपनी लम्बी दाढ़ी सुहलायी थी, क्योकि यही यमदेव ने उनको उन्ही के खेमे मे धर पकड़ा था। स्टेशन पर महासमर के समय की एक पुरानी फोर्ड मोटर, जो मेहर बाबा के स्थान वालो की सवारी के काम में आती थी, हमारी प्रतीक्षा कर रही थी। हमे समतल भूमि को पार करते हुए कोई सात मील का रास्ता तय करना था। कुछ दूर तक सड़क के दोनो ओर नीम के पेड़ो की श्रेणी दिखाई पड़ी। बीच में एक छोटा गॉव नज़र आया जिसके मन्दिर को चोटी के अगल-बगल भूरे छप्परो का एक झुंड दिखाई पड़ता था। फिर एक छोटी नदी मिली। उसके दोनो किनारे गुलाबी और सुनहले रंग के फूलो से बहुत ही सुहावने मालूम होते थे। उस नदी के कीचड़ से भरे छिछले पानी मे भैसे मग्न हो कर आराम कर रही थी।

फिर हम मेहर बाबा की विचित्र बस्ती मे पहुँच गये। वहॉ का दृश्य कुछ अजीब था। कुछ मकान इधर उधर बिखरे हुए खड़े थे। एक खेत मे कुछ निराले ढंग के पत्थर के मकान दिखाई दिये। मुझे बतलाया गया कि ये किसी पुरानी छावनी के बचे-खुचे अंश है। उससे लगे हुए एक खेत के बीच मे तीन सादे काठ के बंगले खड़े थे। वहॉ से कोई दो फर्लांग की दूरी पर एक छोटा गॉव, आरंगॉव था। सारा दृश्य कुछ उजड़ा सा दिखाई पड़ता था। मेरे पारसी मित्र मुझे यह समझाने मे उलझे हुए दिखाई दिये कि यह स्थान मेहर बाबा का सदर मुकाम नही है वरन् उनके एकान्तवास का स्थान है। उन्होने

मुझको बताया कि उनका सदर मुकाम नासिक नगर के पास है जहाँ उनके कई खास चेले रहा करते है और वहीं साधारणतया अतिथियों का आदर किया जाता है।

हमारे आगे बढ़ने पर एक बंगले में से कुछ लोग बाहर आये। वे बरामदे में मुस्कराते हुए इधर उधर टहलने लगे। उनके चेहरों से यह साफ़ ज़ाहिर हो रहा था कि वे अपने बोच में मुझ अंग्रेज़ व्यक्ति को पा कर बड़े खुश हो रहे है। हम एक खेत को पार कर एक विचित्र घर के पास आ पहुँचे। वह एक कृत्रिम गुफा मात्र थी जो ईंटों की बनी थी। खुरदुरे पत्थरों से ज़मीन जड़ी हुई थी। उस गुफा की चौड़ाई कोई आठ फुट होगो। उसका मुँह दक्षिण की ओर था और उसके दरवाज़े में से सुबह की सूर्य-रश्मि अच्छी तरह भीतर प्रवेश कर पाती थीं। मैने चारों ओर अपनी निगाह दौड़ाई तो दूर तक आँख के सामने खेत बिछे हुए दिखाई दिये। सुदूर क्षितिज पर पूर्व की ओर पर्वतों की गोलाकार पंक्ति खड़ो थी। नीचे की ओर तराई में वृक्षों के एक झुरमुट के बीच एक देहातो बस्ती थी। सच ही यह पारसो पैग़म्बर प्राकृतिक छवि के उपासक हैं क्योंकि उन्होंने शहरों के कोलाहल से दूर इस एकान्त और प्रशांतिमय वायुमंडल के बीच अपना आवास चुना है। वास्तव में बम्बई के चकराने वाले कोलाहलपूर्ण जीवन के बाद, इस निराकुल प्रशान्त आवास को पा कर मैं बड़ा ही प्रसन्न हुआ।

गुफा के द्वार पर दो आदमी खड़े चौकसी कर रहे थे। हमारे पहुँचते ही उनमें से एक अपने मालिक से हमारे आगमन की बात कह कर अपना कर्तव्य जानने के लिए गया। मेरे साथ जो व्यक्ति आये थे, उनमें से एक ने मुझे सहेजा—"सिगरेट फेंक दीजिये, बाबा इन चीज़ों को पसन्द नहीं करते।" मैंने उस

आपत्तिजनक सिगरेट को फेक दिया । एक मिनट बाद हम इस नये पैग़म्बर कहलाने वाले महात्मा के सामने पहुँच गये ।

सारे फर्श पर एक बहुत सुन्दर ईरानी कालीन बिछा था। गुफा के भीतर एक ओर मेहर बाबा बैठे थे । मैने जो कल्पना की थी, उनका रूप उससे कुछ भिन्न ही था । उनकी दृष्टि मेरे भीतर पैठती न थी । उनके चेहरे पर दृढ़ता की झलक तक नही । यद्यपि उनके चारो ओर के वायुमंडल मे मुझे किसी प्रकार के अलौकिक और सौम्य भाव की प्रतीति होती थी, तो भी मुझे अचरज होने लगा कि मेरे भीतर उनके दर्शन के साथ ही बिजली क्यो नही दौड़ गई जैसा कि किसी सच्चे महात्मा, जिसको लाखो व्यक्ति पूजते हो, के सामने पहुँचने पर अवश्य ही होनी चाहिए ।

वे एक शुभ्र सफ़ेद लम्बा चोगा पहने हुए थे जो पुराने ढंग की रात से पहनने की अंगरेजी शर्ट के समान था। उनके चेहरे से सौजन्य और दया के भाव छलके पड़ते थे । उनके लालिमा-मिश्रित भूरे लम्बे बालो की लटे उनके गले तक लहरा रही थी । उनके रेशमी बालो की कोमलता और चिकनाई औरतो के बालो की सी थी । उनकी नाक कमान के समान कुछ ऊपर उभड़ कर फिर चील की चोच सी झुकी हुई थी । उनके काले नेत्र स्वच्छ थे जो न अधिक बड़े थे और न छोटे , पर वे तनिक भी प्रभाव डालने वाले नही जान पड़े । भूरे रंग की मोटी मूछे ओठो पर शोभित थी । उनके चमड़े के रंग से उनका ईरानीपन साफ झलक रहा था क्योंकि उनके पिता ईरान से आये थे । वे अभी युवा ही है, आयु ४० वर्ष से कुछ कम ही होगी । सबसे आखिरी बात जो मेरे स्मृति-पट पर अंकित हुई वह यह थी कि उनका ललाट कुछ धँसा हुआ था । मुझे उसको देख कर अचरज हुआ । क्या ललाट की गठन का भी किसी व्यक्ति की मेधा-शक्ति से कोई

तारतम्य नहीं है ? पर शायद पैग़म्बर इन नियमों के अपवाद होते हों !

उन्होंने मुझको देख कर कहा—"आपसे मिल कर मुझे खुशी हुई है।" लेकिन ये वाक्य उन्होंने औरों के समान अपनी वाणी द्वारा नहीं प्रकट किये। उनकी गोद मे एक तख्ती रक्खी है जिस पर अपना उत्तर लिख कर वे अपनी तर्जनी से बहुत ही जल्दी एक एक अक्षर को दिखाते जाते हैं। इस प्रकार बिना बोले केवल संकेतों के द्वारा मेहर बाबा अपने आशय प्रकट किया करते हैं। उनके मंत्री महोदय मेरे लिए वे वाक्य ज़ोर से पढ़ देते थे।

१० जुलाई सन् १९२५ से आज तक इन महात्मा के मुँह से एक भी शब्द नहीं निकला है। उनके छोटे भाई ने मुझको बताया कि जब वे अपना मुँह खोल कर बोलने लगेंगे तो उनका संदेश संसार को चकित कर देगा। तब तक वे मौन व्रत धारण किये रहेंगे।

अपनी दाढ़ी सुहलाते हुए मेहर बाबा ने मेरी रुचि तथा निजी सुविधाओं की बात बड़ी दया के साथ पूछी, मेरे जीवन के बारे में प्रश्न किये और भारतवर्ष के प्रति मेरा प्रेम देख कर अपना सन्तोष प्रकट किया। वे अंग्रेज़ी अच्छी तरह जानते हैं। अतः मेरी बातों के अनुवाद की कोई आवश्यकता नहीं हुई। मैंने उनसे अपने लिए कुछ समय माँगा तो उन्होंने शाम का समय नियत कर दिया। वे बोले—"आपको अभी भोजन और आराम की बड़ी आवश्यकता है।" वहाँ से उठ कर मैं एक कमरे में गया। उसके भीतर कुछ धुंधली रोशनी थी। एक कोने में एक पुरानी खाट पड़ी थी। उस पर कोई बिछौना नहीं था। एक ओर एक मेज़ और कुर्सी भी थीं जो शायद ग़दर के समय भी व्यवहार में लाई जाती होंगी। इसी कमरे मे मुझे एक हफ़्ते तक रहना था।

मैंने काँच-रहित खिडकी से झाँक कर देखा। सामने बीहड़ खेत इधर उधर बिखरे पडे थे और एक ओर कहीं कहीं नागफनी से भरी हुई छोटी झाड़ियाँ फैली हुई थीं।

चार घंटे बडी ही मुश्किल से किसी प्रकार कटे। फिर एक बार ईरानी कालीन पर मैंने मेहर बाबा के सामने अपने को बैठा पाया। इन्हीं मेहर बाबा के इस आश्चर्यपूर्ण दावे की मुझे जांच करनी थी कि वे ही सारी मानव जाति को आध्यात्मिक ज्योति प्रदान कर सही मार्ग पर ले चलने वाले है। अपनी तख्ती पर उन्होने सबसे पहले वही वाक्य लिखा जो अपने महत्व के सम्बन्ध मे वे सदैव कहा करते है—"मै दुनिया के इतिहास को ही पलट दूँगा।"

मै उनकी बातो को लिखने लगा जिससे उन्हे कुछ असुविधा हुई। उन्होने मुझ से पूछा—"क्या मुझसे भेट समाप्त करने के बाद आप अपना लेखन कार्य नहीं कर सकते ?"

मैंने मान लिया और उस क्षण से उनकी बातो को अपने स्मृति-पट पर अंकित करने लगा।

"जिस प्रकार जड़वादी भौतिक जगत को ही सब कुछ मानने वाली दुनिया को एक आध्यात्मिक संदेश सुनाने के लिए ईसा-मसीह संसार मे आये थे उसी भांति मै भी इस ज़माने के मानव समुदाय को आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख करने के लिए ही आया हूँ। इस प्रकार के दिव्य कार्य-कलाप का एक निश्चित समय हुआ करता है। जब समय आ पहुँचेगा मै सारे संसार के सामने अपना सच्चा स्वरूप प्रकट कर दूँगा। दुनियाँ के जो बड़े बड़े पैगम्बर, जैसे ईसामसीह, बुद्धदेव, मुहम्मद, जरतस्तू आदि हो गये है उनके मुख्य सिद्धान्तो मे कोई वास्तविक भेद नहीं है। ये सब पैगम्बर ईश्वर के भेजे हुए थे। उनके सारे उपदेशों मे एक ही

समान मूल-मंत्रों का समावेश है। इन दिव्य धर्म-प्रवर्तकों ने जनता के सामने अपने को उसी समय प्रकट किया जब कि उनकी सहायता की बड़ी भारी आवश्यकता थी, जब आध्यात्मिकता मृत्यु-शय्या पर पड़ी पड़ी कराहती थी और जड़ अनात्मवाद विजय-गर्व से माथा ऊँचा किये अपना रोब जमाये था। इस ज़माने में हम बहुत जल्द कुछ ऐसी ही परिस्थिति की ओर बड़ी तेज़ी के साथ बढ़े जा रहे हैं। अब सारा संसार विषय-वासनाओं, जातियों के स्वार्थों और धन-सम्पत्ति की उपासनाओं के चंगुल में फँसा हुआ है। ईश्वर का कोई नाम तक नहीं लेता। सच्चे धर्म को सर्वत्र निन्दा की जा रही है क्योंकि वह बहुत विकृत हो गया है; उपासक तो सच्चे और दिव्य जीवन के लिए लालायित हो रहे हैं पर पुजारी नीरस पत्थर उनके मत्थे मढ़ देने को तय्यार हैं। इन्हीं कारणों से, फिर से धर्म के अभ्युत्थान के लिए सत्य-धर्म की स्थापना के लिए, लोगों को भौतिक जीवन की अंधतम जड़ता से जगाने के लिए, ईश्वर को अवश्यमेव एक सच्चे धर्म-प्रवर्तक को दुनिया के बीच में भेजना पड़ेगा। मैं उन पुराने पैग़म्बरों के मार्ग पर ही चल रहा हूँ। यही मेरा संदेश है; ईश्वर ने मुझे यह काम करने का आदेश दिया है।"

उनके मंत्री महोदय इन आश्चर्यजनक ध्रुव वचनों को मुझे सुना रहे थे और मैं चुपचाप सुनता रहा। मैंने अपनी ओर से किसी प्रकार का मानसिक प्रतिरोध खड़ा नहीं किया। मेरा मन एकदम खुला हुआ था। इन कथनों की परोक्षा करने को अपनी लालसा को थोड़ी देर तक मैं रोके रहा। इसका मतलब यह कदापि नहीं था कि मैं उनकी बातों को सच मानने लगा था। बात सिर्फ इतनी ही थी कि प्राच्य वासियों की बातें सुन लेना एक कला है और मैं उससे अच्छी तरह परिचित था। नहीं तो किसी

भी पश्चिमी व्यक्ति को अपनी सारी मेहनत के बदले शायद कुछ भी हाथ नही लगेगा चाहे उन बातो मे सग्रहणीय सार भी हो। सत्य कड़ी जॉच की आँच खूब सह सकता है, पर पश्चिमी व्यक्ति को चाहिए कि वह अपनी पद्धतियो को प्राच्य मनोवृत्तियो के अनुकूल बदल ले। मेहर बाबा बड़ी हमदर्दी से साथ मेरी ओर ताक कर मुस्कराये और फिर बोलने लगे।

"अपने जीवन को सुधार कर ईश्वर के उन्मुख बनाने मे लोगों को मदद पहुँचाने के लिए पैग़म्बरगण कुछ नियमो तथा व्यवस्थाओ का प्रतिपादन किया करते है। धीरे धीरे ये ही नियम एक संगठित धर्म का रूप धारण कर लेते है और उस धर्म के प्रामाणिक सिद्धान्त बन जाते हैं। लेकिन उस धर्म के आदि प्रवर्तक के जीवन काल मे जो आदर्शात्मक वायुमण्डल छाया रहता है, जो जीती जागती प्राणद शक्ति जागरूक रहती है, वह उनके मरने के बाद क्रमशः धीरे धीरे लुप्त हो जाती है। यही कारण है कि कोई भी धर्म-प्रणाली किसी को सत्य के निकट नही पहुँचा सकती। यही वजह है कि सच्चा धर्म सदा ही व्यक्तिगत होता है। धार्मिक संप्रदाय उन पुरातत्व प्रेमी गवेषको की मंडलियो के समान है जो विगत जीवन तथा अतीत के मृतकाय मे फिर से जान फूकने की चेष्टा किया करती है। इसलिए मै कोई नवीन धर्म, संप्रदाय या संगठन की नीव डालने की चेष्टा कतई नही करूंगा। हॉ मै अवश्यमेव सभी जातियों के धार्मिक विचारो को पुनरुज्जीवित करूॅगा, जीवन के मर्मो का कुछ अधिक ज्ञान लोगो को समझा कर उन्हे प्रबोध दूंगा। धर्म-प्रवर्तको के निधन के कई सदियो बाद जो मत तथा सिद्धान्त नये रूप से ईजाद किये जाते हैं उनमे प्रायः आश्चर्यजनक पारस्परिक विरोध और मतभेद दिखाई देता है, पर सभी धर्मो के मूल सिद्धान्त

प्रायः मेल खाते हैं, क्योंकि उन सभी का एक ही स्थान—ईश्वर—से उद्भव है। इसी कारण जब मैं अपने को खुल कर पैगम्बर के रूप में प्रकट करूँगा तब किसी धर्म का खण्डन नहीं करूँगा। हाँ, किसी एक विशेष धर्म का समर्थन भी नहीं करूँगा। मैं लोगों की दृष्टि को साम्प्रदायिक मतभेदों से दूर हटा लेना चाहता हूँ ताकि वे मौलिक सत्य पर बिना दिक्कत के सहमत हो जायँ। आपको याद रखना होगा कि प्रत्येक धर्म-प्रवर्तक अपने को प्रकट करने से पहले देश काल और पात्र आदि का खूब ध्यान करता है। अतएव वह समय आदि परिस्थितियों को देख कर सब के अनुकूल और सब को जो सुलभ हों ऐसे ही सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है।"

इन उदात्त विचारों का मेरे दिमाग़ पर असर डालने के लिए मेहर बाबा ने कुछ देर तक बातचीत का तार तोड़ दिया। फिर उनकी बातें दूसरे ही ढर्रे में पड़ गयीं। बोले—"आप को मालूम नहीं है कि सभी राष्ट्र इस नये ज़माने में शीघ्र यातायात के साधनों से कैसे निकट हो गये हैं? देखते नहीं हैं कि रेल, जहाज़, टेलीफ़ोन, तार, बेतार के तार और अखबार आदि ने सारे संसार को कितने समीप, कितनी गहरी एकता में गूँथ दिया है? किसी देश में यदि कोई ख़ास घटना घटी तो सिर्फ एक रोज़ ही में ही दस हज़ार मील की दूरी पर रहने वाले को भी वह मालूम हो जाती है। अतएव यदि कोई किसी खास संदेश पहुँचाने का इच्छुक हो तो उसे श्रोताओं के रूप में करीब करीब सारी दुनिया तय्यार मिल जायेगी। इन सभी बातों का एक विशेष कारण अवश्य है। वह समय बहुत ही निकट है जब कि मानव जाति को एक सार्वभौम आध्यात्मिक संदेश पहुँचाने का, जिससे सभी जातियों और सभी राष्ट्रों को काफी मदद मिले, अवसर उपस्थित

होगा। गरज़ यह कि मेरे एक सार्वभौम विश्व-संदेश को सुनाने के उपयुक्त रास्ता तय्यार किया जा रहा है।"

इस स्तम्भित करने वाली घोषणा से मुझे अच्छी तरह मालूम हो गया कि मेहर बाबा को अपने भविष्य के बारे मे कितना भारी आत्म-विश्वास है। उनका रंग-रूप भी इस बात की गवाही दे रहा था। उनका अपना अनुमान यह है कि वे अपने भावी संदेश को जितना मूल्यवान समझते हैं उससे कहीं अधिक मूल्यवान वह अन्त मे प्रमाणित होगा।

"लेकिन आप संसार को अपना संदेश कब सुनाएंगे ?"

"मै अपना मौन त्याग कर अपना संदेश ले कर दुनिया के सामने उस समय आऊँगा जब दुनिया में चारो ओर घोर अशान्ति लहरें मारती होगी। क्योकि तभी संसार को मेरी सब से अधिक आवश्यकता होगी, जब दुनिया उपद्रवों के थपेड़ों से बेचैन होगी। जब चारो ओर भूकम्प, पानी की बाढ़ और ज्वालामुखी पर्वतों से अग्नि-वर्षा होगी, जब पूर्व और पश्चिम दोनो युद्धाग्नि से प्रज्वलित हो कर भभकते होंगे, तब मै अपने को प्रकट करूंगा। निस्सन्देह सारी दुनिया को यातनाएँ भुगतनी ही पड़ेगी क्योकि तभी उसका उद्धार सम्भव होगा।"

"आप यह तो जानते ही होंगे कि यह भावी महासमर कितने दिनो बाद होगा ?"

"क्यो नही ? वह निकट भविष्य मे होने वाला है। पर मै किसी को उसकी तिथि बतलाना नही चाहता।*"

मै बोल उठा—"यह बड़ी भयानक भविष्यद्वाणी है।"

मेहर बाबा अपनी कोमल उँगलियाँ फैलाते हुए बोले :

---

*देखिये अध्याय १४.

"हाँ! भयानक अवश्य है। भविष्य में होने वाला वह युद्ध बड़ा ही भयंकर होगा ; क्योंकि वैज्ञानिकों की प्रतिभा उसको बड़ा ही उग्र रूप, पिछले महासमर से भी कहीं भयंकर रूप, दे देगी। तो भी वह युद्ध बहुत थोड़े समय तक चलेगा—शायद कुछ महीनों तक ही—और जब वह अत्यन्त प्रचण्ड हो उठेगा मैं अपने पैग़म्बर रूप को प्रकट करूँगा और सारे संसार को अपना संदेश सुना दूँगा। अपनी आध्यात्मिक शक्ति तथा भौतिक प्रयत्नों से बहुत जल्द ही इस संघर्ष को मैं अचानक बन्द कर दूगा और सभी राष्ट्रों के बीच शान्ति की स्थापना करा दूँगा। पर साथ ही साथ भूमंडल के विभिन्न भागों में महान् प्राकृतिक परिवर्तन भी होंगे। जान और माल दोनों को ही बड़ी भारी जोखिमें उठानी पड़ेंगी। मैं भविष्य में पैग़म्बर बनने का दम इसीलिए भरता हूँ कि विश्व में घटनाओं का चक्र ही मुझे ऐसा करने के लिए बाध्य करता है। विश्वास रक्खो, मैं अपने आध्यात्मिक कार्य को अधूरा नहीं छोड़ जाऊँगा।"

मेहर बाबा के सेक्रेटरी महोदय जो मराठों सी की गोलाकार काली टोपी पहने हुए थे इन आखिरी शब्दों को कह कर मेरी ओर साभिप्राय ताकने लगे। उनके चेहरे से मानों यही भाव झलक रहा था, 'देखा आपने! आपको इन बातों ने कितना प्रभावित किया! देखते हो हम लोगों को यहाँ कैसी कैसी महत्त्व-पूर्ण बातें ज्ञात हैं!'

फिर उनके मालिक की उँगलियाँ तख़्ती पर फिरने लगीं और मंत्री महोदय झटपट उनका भाव मुझे बताने के लिए तत्पर होने लगे। बोले :

"युद्ध के बाद एक अनुपम शान्ति दीर्घ काल तक दुनिया में विराजेगी, सारे विश्व में शान्ति ही शान्ति का सुमधुर दृश्य देखने

को मिलेगा। तव निःशस्त्रीकरण की समस्या केवल ज़वानी जमा-खर्च न रहेगी, वह चरितार्थ हो कर एक स्थूल प्रत्यक्ष सत्य का रूप धारण करेगी। जातिगत और संप्रदायगत झगड़े नाममात्र को भी नहीं रहेंगे। मै सारी दुनिया की यात्रा करूँगा और समस्त राष्ट्र मुझे देखने के लिए उतावले होंगे। मेरा आध्यात्मिक संदेश हर एक देश मे, हर एक शहर मे और देहातो तक मे फैल जायगा। विश्व-बन्धुत्व, मानव समाज की शान्ति, पतित, असहाय लोगो के प्रति सहानुभूति, ईश्वर-भक्ति आदि को मै खूब ही उन्नति पर पहुँचाऊँगा।"

"अपनी मातृभूमि भारत के लिए आप क्या करेंगे ?"

"हिन्दुस्तान मे जव तक वर्ण-व्यवस्था की कुत्सित प्रथा का सत्यानाश न होगा तव तक मुझे शान्ति न मिलेगी। वर्ण-व्यवस्था के प्रचलन के साथ ही भारतवर्ष ससार की दृष्टि मे पतित हो गया। जव दलित और वहिष्कृत वर्गों का पूर्ण रूप से उद्धार हो जायगा भारत फिर से प्रगतिशील राष्ट्रो मे प्रमुख दिखाई पड़ेगा।"

"उसका भविष्य क्या होगा ?"

"कितने ही दोषो के होते हुए भी आज दुनिया भर मे भारत ही सव से अधिक आध्यात्मिक देश है। भविष्य उसको अन्य राष्ट्रो का नैतिक गुरू वनते देखेगा। सभी मुख्य धर्म-प्रवर्तक पूर्व मे ही पैदा हुए थे और अव भी आध्यात्मिक ज्योति के लिए सारी दुनिया को पूर्व की ही ओर फिर एक वार उन्मुख होना पड़ेगा।"

मैने मेहर वावा के वतलाये हुए उस भावी समय का एक दिमागी खाका खीचना चाहा जिसमे समस्त महान पश्चिम राष्ट्र छोटे, गेहुँआ रंग वाले भारतीयो की चरण सेवा कर

रहे हों पर इसमें मुझे सफलता नहीं मिली। शायद मेरे सामने जो मूर्ति शुभ्रवस्त्र पहने बैठी हुई थी, वह मेरी इस उलझन को समझ गई क्योंकि उसने फिर कहना प्रारम्भ किया—"भारत की जो गुलामी इस समय दिखाई दे रही है वह वास्तविक गुलामी नहीं है। वह तो केवल शारीरिक दासता है और इसीलिए वह क्षणिक है। देश की सूक्ष्म आत्मा अमर और महान् है। यद्यपि बाहरी दृष्टि से यह देश सब कुछ खो बैठा है तब भी वह अपने अन्तःसार से वंचित नहीं हुआ है।"

उनकी यह सूक्ष्म दलील मेरी समझ में ठीक ठीक नहीं आई और मैंने पुराने विषय को फिर से छेड़ दिया।

"आपके संदेश को कई मुख्य बातें तो हम पश्चिमियों ने अन्य अन्य प्रकार से भी समझ रक्खीं हैं। अतः बताने के लिए क्या आपके पास कोई नई बात नहीं है?"

"मेरी बातें पुराने आध्यात्मिक सत्यों को फिर से केवल प्रतिध्वनित ही कर सकती हैं। पर मेरी रहस्यपूर्ण शक्ति ही एक ऐसी नई बात है जो संसार के इतिहास में एक नई जान फूँक देगी।"

इस बात पर मैंने अधिक बहस नहीं करनी चाही। थोड़ी देर तक सन्नाटा छाया रहा। मैंने और कोई प्रश्न नहीं पूछे। मैं अपनी दृष्टि फेर कर उस गुफा के बाहर की ओर ताकने लगा। दूर सुनसान खेतों के उस पार पहाड़ों की एक रेखा सी उभड़ी हुई थी। आसमान में सूर्य अपना प्रचंड तेज फैला कर प्राणिमात्र को झुलसाए दे रहा था। कई मिनट बीतते चले जा रहे थे। इस एकान्त गुफा में, इस असीमित कड़ाके की धूप में, हर बात को ध्रुव सत्य के रूप में स्वीकार करने वाले चेलों से घिरे बैठ कर

संसार के सुधार की मनमानी तदवीरे और तजवीजें गढ़ लेना और अपने को महान धार्मिक आत्मा घोपित कर लेना बहुत ही आसान है। पर संसार के बीच, स्थूल प्रत्यक्ष घटनाओं के बीच, जड़वादी भौतिक सत्ताओ को ही मानने वाले रूखे शहरो के बीच क्या ये सब खयाली पुलाव, प्रभात सूर्य की भेदने वाली किरणो के सामने शीघ्र विनष्ट होने वाले कुहरे के समान विलीन न हो जायंगे ?

मै बोला—"यूरोप मे आज-कल लोग किसी बात की सत्यता पर सहज ही विश्वास नही कर बैठते। आप हमको इस बात का क्यो कर विश्वास दिला सकते है कि आपकी बातो के मूल में एक दैवी प्रेरणा, एक दिव्य शक्ति काम कर रही है ? हमे कैसे समझा सकते है कि आपकी वातों को मूल भित्ति ईश्वरीय आदेश है ? आप अजनबी लोगो के मन को अपने आध्यात्मिक विश्वास के ढॉचे मे कैसे ढाल सकेंगे ? साधारणतया कोई भी पश्चिमी व्यक्ति आपसे स्पष्ट रूप से कह देगा कि आपकी बातें असम्भव हैं। यही नही आपके लाख प्रयत्न करने पर भी आप उसको इन वातो की हँसी उड़ाने से रोक न सकेंगे।"

"क्या खूब ! आप समझते नही हैं कि तब तक समय कितना पलट जायगा ?"

मेहर बावा अपने कोमल पीले हाथो को मलने लगे। इसके बाद उन्होने अपने सम्बन्ध मे कुछ ऐसे चकित करने वाले दावे पेश किये जो पश्चिमियो को शेखचिल्ली की बाते ही मालूम पड़ेगी, परन्तु मेहर बावा उन वातो को यो ही कह रहे थे मानो वे उनको पूर्ण रूप से वास्तविक और स्वाभाविक मानते हो।

"एक बार अपने को पैग़म्बर घोषित कर देने के बाद दुनियां

में कोई भी ऐसी बात न रहेगी जो मेरी शक्ति के विरोध में टिक सके। मैं खुले तौर पर करामातें करके अपने संदेश को प्रामाणिक सिद्ध करूँगा। अंधों की आँखों को मैं ज्योति प्रदान करूंगा, बीमारियों को दूर करूंगा, लंगड़े और गूँगे व्यक्तियों को स्वस्थ बनाऊँगा—यहाँ तक कि मुर्दों को भी जिला दूँगा। ये सब बातें मेरे लिए बाएँ हाथ का खेल होंगी। मैं इन सब करामातों को इसीलिए करूँगा कि इनके ज़रिए हर कहीं लोग मेरी बातों पर विश्वास करने के लिए मजबूर हों। तब उनको मेरे सन्देश को स्वीकार करने में किसी प्रकार का आगा पीछा करना नहीं पड़ेगा। आलसियों की उत्सुकता और कौतूहल को तृप्त करने के लिए ये करामातें नहीं दिखाई जावेंगी, वरन् शक्तियों को भी अपने घेरे में ले आने के उद्देश्य से।"

मैं एकदम स्तब्ध रह गया। हमारी बातचीत अब तो मनुष्य की साधारण बुद्धि की सीमाएं पार कर रही थी। मेरा मन लड़खड़ाने लगा था। हम अब पूरब के ऊहातीत कल्पना के प्रपंच में प्रवेश कर रहे थे।

पारसी पैग़म्बर तब भी कहते ही गये—"तो भी भूल न करना! मैं अपने चेलों से हमेशा ही कहा करता हूँ कि ये सब करामातें मामूली जनता के लिए है न कि उनके लिए। मुझे एक भी करामात कर दिखाने की क्या पड़ी है। परन्तु मैं जानता हूँ कि ऐसा करने पर ही साधारण जनता मेरी बातों में विश्वास करने लगेगी। इन करामातों से मैं दुनिया को इसीलिए चकित करूंगा जिसमें लोग आध्यात्मिक जीवन बिताने के लिये उन्मुख हो जावें।"

मंत्री महोदय बीच ही में बोल उठे—"बाबा अब तक कई अद्‌भुत करामातें दिखा चुके है।"

मैं एक दम चौकन्ना हो गया।

तुरन्त पूछ बैठा—"जैसे—?"

मेहर वावा इस प्रकार मुस्कराने लगे मानों अपने बड़प्पन की उपेक्षा कर रहे हो और वोले ·

'विष्णु! फिर कभी बताना। ज़रूरत पड़ने पर मै कोई भी करामात कर सकता हूँ। जिस दिव्य अवस्था को मै पहुँच चुका हूँ उस दशा मे रहने पर ऐसी बातें बिलकुल आसान हो जाती है।"

मैने अपने मन मे पक्का निश्चय कर लिया कि दूसरे दिन सेक्रेटरी महोदय को जरूर धर पकडूँगा और उनसे इन विख्यात करामातो का अधिक ब्यौरा जान लूँगा। मेरी जाँच का वह अवश्य ही एक महत्त्वपूर्ण अंग होगा। मै तो एक सावधान जिज्ञासु की हैसियत से आया हूँ अतः हर एक बात मेरे लिए निश्चय ही लाभदायक सिद्ध होगी।

फिर थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। मैंने मेहर बाबा से प्रार्थना की कि वे अपने पिछले जीवन के विषय पर कुछ प्रकाश डाले।

उन्होने अपने सेक्रेटरी को मुझे दिखाते हुए कहा—"ऐ विष्णु इनको ये बाते भी बता देना। आपको हमारे चेलो से बातचीत करने का काफी अवकाश मिलेगा क्योकि आप कुछ दिन यही रहेगे। हमारे चेलो से आप मेरे पूर्व जीवन का वृत्तान्त जान सकते है।

फिर इधर उधर की बाते कुछ देर तक होती रही। अन्त में मेरी भेट समाप्त हुई और हम लोग वहाँ से चल दिए। अपने कमरे मे पहुँच कर सब से पहले मैने जो काम किया वह सिगरेट पीना था। पहले सिगरेट पीने की मुझे जो मनाही हुई थी उसका

अब मैंने बदला चुकाया और उस सिगरेट के ख़ुशबूदार धुंए को ऊपर की ओर उठते हुए देखने लगा।

× × ×

शाम को मैंने एक विचित्र दृश्य देखा। दिन एकदम अस्त नहीं हुआ था परन्तु तारागण कुछ कुछ झिलमिलाने लगे थे। इस अजीब धुँधलेपन में कुछ तेल के चिराग़ अपनी मंद ज्योति प्रसारित करने लगे। मेहर बाबा अपनी गुफा के भीतर आसीन थे और बाहर पास ही के आरंगाँव से आये हुए कुछ दर्शक और चेलों का एक मिश्रित झुंड गुफा के मुख-द्वार पर एक अर्ध-गोलाकार बनाए खड़ा हो गया।

जहाँ कहीं मेहर बाबा रहते हैं वहीं प्रति संध्या को एक धार्मिक विधान किया जाता है और उसी की तैयारी में यह मंडली एकत्रित हुई थी। एक शिष्य ने एक छिछले कटोरे में, जो दीपक का काम देता था, संदल की सुगंधि से युक्त तेल भर कर बत्ती जला दी। सात बार उसने उस प्रदीप से अपने मालिक की आरती उतारी। समुपस्थित सज्जनों ने बड़े उच्च स्वर में मंत्र और प्रार्थनाओं का ठाठ रचा। उन लोगों की मराठी भाषा की स्तुति में मेहर बाबा का नाम अनेक बार आया। यह स्पष्ट था कि वे मंत्र तथा स्तुति उनके मालिक की अत्युक्ति भरी प्रशंसा के सिवा और कुछ नहीं थे। हर एक मेहर बाबा की ओर पूज्य भाव से ताक रहा है। मेहर का छोटा भाई एक छोटे हारमोनियम के पास बैठ कर एक करुण राग बजा कर गायकों का साथ दे रहा है। इस संस्कार के समय हर एक भक्त गुफा के अन्दर बारी बारी से जाता है और मेहर के सामने साष्टांग दंडवत् करके उनके नंगे पैरों का चुम्बन करता है। कोई कोई तो भक्ति के उद्रेक में इतने बह जाते हैं कि पूरे मिनट भर तक अपने स्वामी का पैर चूमते ही

रहते है। मुझ को वतलाया गया कि आध्यात्मिक रूप से इस क्रिया का वड़ा भारी महत्त्व और उपयोगिता है, क्योंकि इससे भक्त को मेहर वावा का आशीर्वाद प्राप्त होता है जिससे भक्त के पापो का भार घट जाता है।

मै लौट कर अपने कमरे में आ गया और आश्चर्य करने लगा कि कल कौन सी नई वाते ज्ञात होंगी। दूर के खेतों और पहाड़ी झाड़ियो से सियारों की हुआ, हुआ की अवाज़ सुनाई पड़ती थी जो रात के सन्नाटे मे वाधा डाल रही थी।

दूसरे दिन मैने सेक्रेटरी महोदय तथा अंग्रेज़ी जानने वाले कुछ अन्य चेलो को इकट्ठा किया। हम एक अर्ध-गोलाकार रूप मे बैठ गये। जो अंग्रेज़ी नहीं समझते थे वे कुछ दूर पर खड़े खड़े वड़ी उत्सुकता से हमारी ओर ताक कर मुस्कराने लगे। इन सभी लोगो से मै उनके गुरुदेव के जीवन की उन घटनाओ को पूछने लगा जो अव तक मुझे अज्ञात थी।

पैग़म्वर का निजी नाम मेहर है, पर वे अपने को 'सद्गुरु मेहर वावा' कहते है। 'सद्गुरु' का अर्थ 'पूर्ण बोध पाया हुआ गुरु' है। 'वावा' प्रेम सूचक शव्द है और भारतीयो मे प्रायः इसका आदरार्थ प्रयोग होता है। उनके शिष्य प्रायः उन्हे 'वावा' कह कर पुकारते है।

मेहर वावा के पिता पारसी है। पारसी लोग जरतस्तू धर्म के अनुयाई है। मेहर वावा के पिता अपना देश ईरान छोड़ कर ग़रीवी की हालत मे भारत आये थे। मेहर उनके सवसे ज्येष्ठ पुत्र है। इनका जन्म सन् १८९४ मे पूना मे हुआ था। पाँच वर्ष की उम्र मे वालक मेहर पाठशाला मे पढ़ने भेजा गया। वे पढ़ने लिखने मे अच्छे थे। सत्रहवी साल मे मेट्रिक परीक्षा पास करके पूना के डेक्कन कालेज मे दो वर्ष तक उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की।
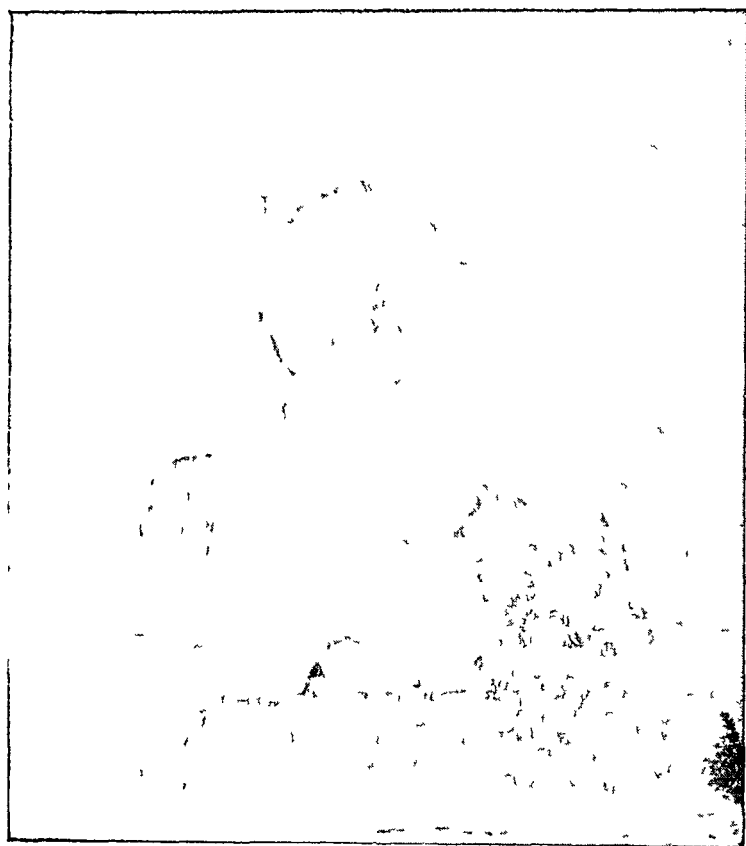
हजरत बाबाजान

हज़रत बाबाजान

२० वर्ष का युवा व्यक्ति यदि ऐसी अवस्था को प्राप्त हो जाय जिससे उसके माँ-बाप को उसकी ३ वर्ष के बालक की सी देख-रेख करनी पड़े तो इसे मानसिक ह्रास ही कहना होगा। उनके व्याकुल पिता ने समझा कि लड़के ने परीक्षा की तैयारी मे बेहद पढाई की है यहाँ तक कि उसकी मानसिक स्थिरता ही लुप्त हो गई है। तब उन्होने डाक्टरो को शरण ली। डाक्टरों ने मेहर की जाँच करके उनको मानसिक कमज़ोरी का शिकार बतलाया और इसी बीमारी को दूर करने के इंजेक्शन दिये। ९ महीने के उपचार के बाद मेहर की यह दयनीय दशा कुछ सुधरती दिखाई दी। अन्त मे उन्हे दुनियाँ का ठीक ठीक ज्ञान होने लगा और वे कुछ हद तक साधारण मनुष्यों के समान व्यवहार करने लगे।

उनके चंगे हो जाने पर यह देखा गया कि उनके चरित्र मे एक अजीब परिवर्तन हो गया है। पढाई मे अब उनका दिल नही लगता था। सांसारिक सफलता प्राप्त करने के प्रति वे विरक्त हो गये और खेल कूद मे जो उनका मन पहले लगता था अब बिलकुल जाता रहा था। इन सब के बदले उनके दिल मे धार्मिक जीवन की गहरी तृष्णा ने, अपने को आध्यात्म मार्ग का पथिक बना लेने की अनवरत तत्परता ने, घर कर लिया।

चूंकि मेहर का विश्वास था कि बाबाजान के चुम्बन ने ही उनमे ये सब परिवर्तन किये है वे उसी वृद्धा तपस्विनी के पास अपने भावी जीवन के बारे मे सलाह लेने गये। बाबाजान ने मेहर को किसी आध्यात्मिक गुरु की खोज करने की सलाह दी। मेहर ने जब पूछा कि गुरुदेव की कहाँ प्राप्ति होगी तो बाबाजान ने बडी अस्पष्टता के साथ शून्य मे हाथ फेर दिया। फिर कई स्थानीय महात्माओ के मेहर ने दर्शन किये। बाद को पूना के चारो ओर १०० मील के दायरे मे जितने गॉव थे सभी की उन्होने खोज की।
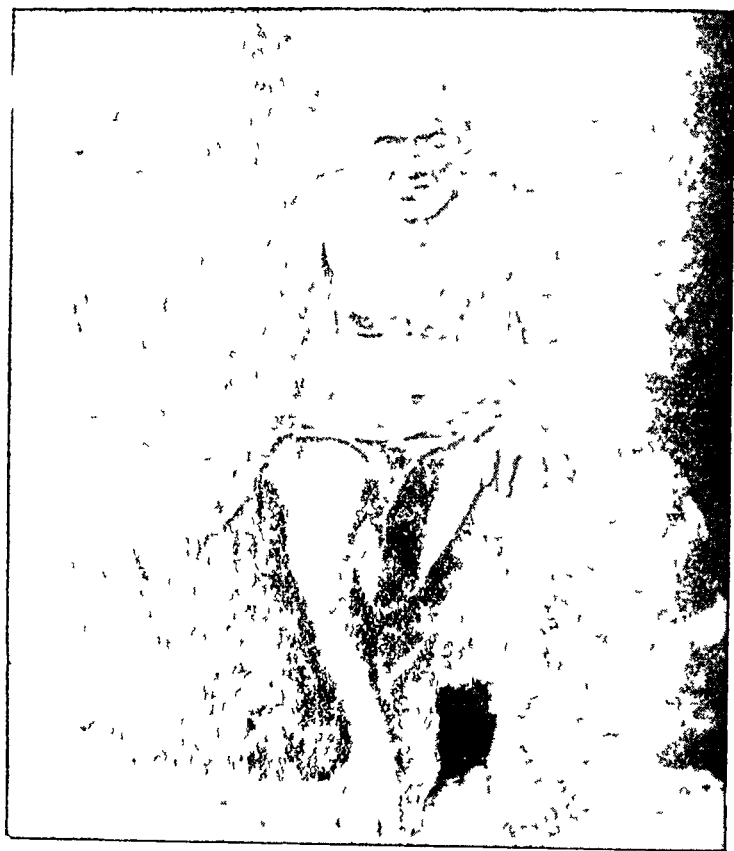
उपासनी महाराज

एक दिन वे चलते चलते साकोरी के पास एक मन्दिर पर पहुँचे। वह मन्दिर बहुत ही साधारण था लेकिन गाँव वालों ने कहा कि उसमें एक बड़े भारी महात्मा रहते हैं। इस प्रकार जब मेहर बाबा उपासनी महाराज के सम्मुख आये तो उन्होंने जाना कि इतन दिनों तक जिन गुरुदेव की खोज में वे भटकते रहे हैं वे आप ही हैं।

साधू बनने की अभिलाषा रख कर युवा मेहर समय समय पर साकोरी की यात्रा किया करते थे। जब वे साकोरी जाते अपने गुरू के साथ कुछ दिन तक अवश्य रहते। एक बार वे चार महीने तक वहीं उपासनो महाराज के साथ रहे। मेहर दृढ़ता के साथ कहते हैं कि इसी समय वे विश्व-संदेश देने के योग्य बनाये गये थे। एक दिन शाम को मेहर अपने कालेज के पुराने साथियों और हमजोली के अन्य मित्रों में से लगभग ३० को ले कर साकोरी गये। पहले ही से मेहर ने अपने साथियों से यह संकेत कर रक्खा था कि एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण भेंट होने वाली है। इस टोली के मन्दिर के अन्दर प्रवेश करने पर उसके दरवाज़े अन्दर से बन्द कर दिये गये। तब वहाँ रहने वाले गम्भीर मुद्रा वाले उपासनी महाराज उठ कर उन लोगों को उपदेश करने लगे। उन्होंने उनसे धर्म, नोति आदि के बारे में कुछ बातें कह कर अन्त को बतला दिया कि उन्होंने अपनी सारी आध्यात्मिक शक्तियाँ और ज्ञान तथा विभूतियाँ मेहर को प्रदान कर दी हैं। अन्त में उपासनी महाराज ने उन चकित श्रोताओं को यह कह कर और भी स्तब्ध कर दिया कि मेहर पूर्ण सिद्धि को प्राप्त हो चुके है और तत्परता के साथ यह सलाह भी दी कि वे अपने पारसी मित्र के अनुयायी बन जावें जिससे उन सब को दोनों लोकों में निस्संदेह आध्यात्मिक लाभ होगा।

श्रोताओ मे किसी किसी ने तो उनकी बातें मान लीं, परन्तु कुछ शका और सन्देह से पड़ गये। एक साल बाद, जब मेहर की आयु २७ वर्ष की हो गयी तो उन्होने अपने चेलो को उस छोटी मंडलो को बता दिया कि उन्हे संसार को एक दिव्य ईश्वरीय संदेश देने की प्रेरणा हुई है, ईश्वर ने मानव जाति को उबारने के लिए उन्हे अपना साधन चुन लिया है। उन्होने स्पष्ट रूप से उस ईश्वरीय संदेश का मर्म नही समझाया पर चन्द साल बाद उन्होने यह भी प्रकट किया वे ईश्वर के पैग़म्बर है।

सन् १९२४ मे पहली बार मेहर ने विदेशो की यात्रा की। लगभग ६ चेलों को साथ लेकर वे फारस के देश के लिए रवाना हुए और अपने चेलो से उन्होने कहा कि वे अपने पूर्वजो के देश का भ्रमण करेगे। जहाज जब बूशायर बंदरगाह पर पहुँचा उन्होने अचानक अपना निश्चय बदल दिया और तुरन्त दूसरे जहाज द्वारा स्वदेश के लिए प्रस्थान किया। तीन महीने बाद जब फारस देश मे ग़दर हुआ और बाग़ियो ने वहाँ की राजधानी को अपने कब्जे मे करके पुराने राजवंश को तख्त से उतारा और एक दूसरे ही शाह ने तख्त ले लिया, तो मेहर बाबा ने अपने चेलो से कहा—'देखा आप लोगो ने? मेरी फारस यात्रा के कारण ही, मेरी ग़ैबी शक्तियो का यह नतीजा हुआ! देखा!'

उनके चेलो ने मुझे बताया कि नये शाह की हुकूमत मे लोग पहले की अपेक्षा कही अधिक सुखी है। अब मुसलमान पारसी, यहूदी और ईसाई अधिक मिल-जुल कर बड़ी हमदर्दी के साथ जीवन बिता रहे है, पहले यह बात नही थी। उस वक्त हमेशा के झगड़े-फसाद के मारे सारा देश तबाह था।

इस विचित्र यात्रा के कुछ साल बाद मेहर बाबा ने एक

अनोखी शिक्षा-संस्था की स्थापना की। उनके कहने पर उनके एक चेले ने आरंगाँव के पास की सारी ज़मीन खरीद डाली। कुछ टूटे-फूटे बंगले खड़े किये गये। बीच बीच में पुआल के छप्परों से ढकी हुई झोपड़ियाँ भी थीं। एक निःशुल्क भोजनालय और एक पाठशाला खोल दी गई। उनके खास चेलों में से इने-गिने लोग अध्यापक बने। छात्रों में उनके भक्तों तथा मित्रों के लड़के थे। शिक्षण के लिए भी कोई शुल्क नहीं लिया जाता था। सांसारिक विषय तो पढ़ाए ही जाते थे, इसके अतिरिक्त स्वयं मेहर बाबा ने किसी ख़ास मज़हब से सम्बन्ध न रखने वाली धार्मिक शिक्षा देने का भार अपने ज़िम्मे लिया।

ऐसी मन को लुभानेवाली बातों से कोई १०० छात्रों को इकट्ठा करना कठिन नहीं कहा जा सकता। दूर के फ़ारस देश से भी एक दर्जन छात्र आ गये। उन छात्रों को जिस नीति-धर्म का उपदेश दिया जाता था वह सभी धर्मों के लिए समान था, और बड़े बड़े पैग़म्बरों की जीवनियों का मर्म भी उन बालकों को समझाया जाता था। शिक्षण के कार्यक्रम में क्रमशः धार्मिक शिक्षा वाला घंटा बहुत ही प्रधान हो गया और मेहर बाबा कुछ बड़े लड़कों को एक प्रकार के रहस्यपूर्ण भक्ति मार्ग का उपदेश देने लगे जिसका अन्त में कोई स्थाई प्रभाव नहीं पड़ा। उन लड़कों को बताया गया कि मेहर बाबा बड़े ही पूज्य व्यक्ति हैं और उनकी पूजा की जानी चाहिए। फल यह हुआ कि कुछ लड़के भक्ति-आवेश रूपी हिस्टीरिया (मूर्छा) के लक्षण प्रकट करने लगे। पाठशाला में विचित्र घटनाएँ जल्द जल्द होने लगीं।

इस असाधारण पाठशाला की एक ख़ास विशेषता यह थी कि वहाँ के छात्रों में सभी जातियों के—हिन्दू, मुसलमान, भारतीय ईसाई, पारसी आदि—सभी प्रकार के लोग थे। मेहर

बावा ने अपने एक अन्तरंग शिष्य को इंगलैन्ड भी इस आशय से भेजा कि वे वहाँ से कुछ अंगरेज़ छात्रो को ले आवे। लेकिन उस चेले को इंगलैड मे बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पडा, क्योकि कोई भी अपने बच्चो को दूर के एशिया महाद्वीप मे पढाई के वास्ते, और वह भी एक अजनबी को सौप कर, भेजने के लिए तय्यार न मिला। इसके अतिरिक्त एक ऐसी शाला का विचार ही उनकी समझ मे नही आया जिसमे सभी धर्मों का समावेश हो। यदि वे इस आशय को समझे भी तो उसका उनके लिए कोई खास महत्व नही था क्योकि ऐसे स्कूलो की इंगलैंग मे कोई कमी नही थी जहां सभी प्रकार के लोग जाति-पाँति के भेद को भूल कर एक साथ पढ़ते हों।

एक दिन भाग्यवश मेहर बावा के चेले की भेट एक ऐसे अंग्रेज से हुई जिसने बात की बात मे उनके धर्म के महत्व को स्वीकार करके अपने को मेहर बावा का शिष्य मान कर धन्य समझा। वह एक प्रकार का भावुक व्यक्ति था। लन्दन के सभी धर्म सम्प्रदायो पर बड़ी शीघ्रता से नजर डाल कर और अन्त मे मेहर बावा के धर्म को अधिक महत्वपूर्ण मान कर उसने उसे स्वीकार कर लिया। अतः उसने छात्रों की खोज मे मेहर बावा के शिष्य की बडी मदद की। अन्त को तीन बालक उन को मिल गये। उन बालको के माँ-बाप बड़े गरीब थे और उनका पालन पोषण उचित रीति से नही कर सकते थे। अतएव यह समझ कर कि बचो के आर्थिक भार से उन्हे मुक्ति मिलेगी वे बचों से बिछुड़ने के लिए राजी हो गये। जब यह बात भारत-मंत्री के दफ़र को ज्ञात हुई तो उसने इन बच्चो के भारत ले जाये जाने पर रोक लगा दी। इस कारण वे बच्चे भारत न आ सके। अन्त मे पारसी पैगम्बर के प्रतिनिधि भारत लौट

आये पर उनके साथ एक अंग्रेज़, उसकी स्त्री तथा साली भी थीं। इन लोगों के भारत आने के ५-६ महीने बाद मेहर बाबा ने उनको फिर इंगलैन्ड वापस भेज दिया और जहाज़ के किराये आदि का भार मेहर बाबा के प्रधान चेले पर पड़ा।

मेहर ने मुझे बतलाया कि इस पाठशाला के खोलने में उनके दो विशेष उद्देश्य थे। पहला, अपने चेलों के बीच में जो सांप्रदायिक और धार्मिक विचारों के भेद भाव थे उनका सर्वनाश करना और दूसरा, अपना आध्यात्मिक सन्देश संसार में फैलाने के लिए कुछ चुने हुए चेलों को तैयार करना। मेहर का विचार यह था कि जब पाठशाला में पढ़ने वाले लड़के जवान होकर कार्य क्षेत्र में उतरने के योग्य बन जायंगे, और साथ ही उनके विश्व-संदेश की घोषणा के अनुकूल समय भी आ जाय, तो इन शिक्षित चेलों को दुनियाँ के सभी कोनों में भेजकर उन्हे मानव जाति का कल्याण करने में लगा दें।

पाठशाला के अलावा एक और संस्था भी क़ायम हुई थी। एक पुराने ढंग का अस्पताल खोला गया और लूले-लंगड़े तथा अंधों को ले आने के लिए चेले पास के गाँवों में भज दिये गये। उन दीनों को मुफ़ ही दवा तथा अन्न-वस्त्र दिये जाते थे और साथ ही पैग़म्बर स्वयं उनको आध्यात्मिक सांत्वना देने लगे। मेहर बाबा के एक अनन्य भक्त ने मुझको बताया कि उनके छूने मात्र से ही ५ कोढ़ी एकदम चंगे हो गये। पर हाय! मैं तो शक्की ठहरा। उन कोढ़ियों का पता ठिकाना किसी को मालूम नहीं था; वे कौन थे, कहाँ रहते हैं कोई नहीं बता सका। मेरा अनुमान है कि यह प्राच्य वासियों की अतिशयोक्ति मनोवृत्ति का ही एक उदाहरण है। कम से कम क्या एक भी ऐसा कोढ़ी, सिर्फ एह-सानमन्दी के कारण ही सही, मेहर का अनुयायी बन कर उनके

साथ नही रहा होगा ? सचमुच यह बात यदि ठीक होती तो कोढ़ियो की बहुत बड़ी संख्या वाले भारत देश मे यह बात बिजली की तरह फैल जाती और लाखो पीड़ित लोग आरंगॉव के अस्पताल पर टूट पड़ते ?

धीरे धीरे इस स्थान पर पास के गॉवों के भक्तों, दर्शकों और जिज्ञासुओ आदि का जमघट हो गया। इस आश्रम की आबादी क्रमश. कई सौ की हो गई, चारो ओर एक धार्मिक आवेश फैल गया और इस समस्त विस्तार का केन्द्र मेहर बाबा ही थे।

यह आश्रम स्थापना के १८ महीने बाद, एकबारगी बन्द कर दिया गया और साथ ही उसकी सारी शाखाएं भी तोड़ दी गईं। लड़के अपने अपने मॉ-बाप के पास, और बीमार अपने घर वापस भेज दिये गए। ऐसा क्यो किया गया, इसका मेहर बाबा ने कोई ठीक कारण नहीं बताया। पीछे मुझको मालूम हुआ कि इसी प्रकार के आकस्मिक भावावेग, जिनका कोई भी कारण नहीं बताया जा सकता, उनके चरित्र की एक विशेषता है।

सन् १९२९ के वसन्त मे मेहर बाबा ने अपने सबसे पहले प्रचारक को देश मे भेजा। उनका नाम था साधु लैक। उनको आज्ञा दी गयी कि वे सारे भारत का भ्रमण करे। बिदा करते समय बाबा ने उन्हे यह आदेश दिया था :

'तुम्हारा सौभाग्य है कि तुमको एक पैगम्बर की सेवा का अवसर मिला है। तुम सदैव उदार रहो। किसी धर्म का तिरस्कार या निन्दा मत करना। विश्वास मानो, तुम्हारी हर बात को मै जानता रहूँगा। दूसरो की टीका टिप्पणी से निराश मत होना। कभी हिम्मत मत हारना। मै तुम्हारा पथ प्रदर्शक हूँ। मुझको छोड़ और किसी का अनुसरण न करो।'

जो कुछ जानकारी इस बेचारे के बारे मे मै प्राप्त कर सका

उससे मुझे साफ मालूम हुआ कि वह अपने कमजोर स्वास्थ्य के कारण वैसे घुमक्कड़ जीवन के योग्य नहीं था। मद्रास में कुछ भक्तों को अपनी ओर आकृष्ट करने में वह सफल हुआ; पर शीघ्र ही वह बीमार पड़ गया और मरने के लिए मेहर बाबा के यहाँ लौट आया।

पारसी पैग़म्बर के जीवन का यह एक शीघ्रतापूर्ण खींचा गया चित्र है।

× × ×

मेहर बाबा से मैंने कई बार बातचीत की। उनके विश्व-सन्देश के बारे में कुछ ठीक ठीक राय कायम करने के लिए उसके बारे में और कुछ जान लेने की मेरी बड़ी इच्छा थी। इस कारण आखिरी बार मैंने उनसे मुलाक़ात करने की अनुमति माँगी तो मुझे आज्ञा मिल गई।

आज वे एक मुलायम नीली पोशाक पहने हुए थे। लिखने की तख़्ती उनके घुटनों पर थी। जो चेले वहाँ पर मौजूद थे वे अपने गुरू की प्रशंसा में ख़ूब ही सिद्धहस्त थे। इस प्रकार अभिनय का सारा सामान—वक्ता, जिज्ञासु और श्रोता सभी जुट गये। सभी एक दूसरे को देख कर मुस्करा रहे थे। इसी बीच में मैंने अचानक एक प्रश्न पूछ कर उस सन्नाटे को एकदम भंग कर डाला।

"आप कैसे जानते हैं कि आप पैग़म्बर है?"

मेरे इस दुस्साहस से चकित हो कर उनके चेले मेरी ओर घूरने लगे। मेहर बाबा की भौंहे चढ़ गईं। तब भी वे कुछ भी विचलित न हुए। मुस्कराते हुए उन्होंने मुझ जिज्ञासु पश्चिमी व्यक्ति को यह जवाब दिया:

"मैं जानता हूँ ! खूब जानता हूँ। जिस प्रकार आप यह जानते है कि आप मनुष्य है वैसे ही मै भी जानता हूँ कि मैं पैगम्बर हूँ। मेरा सारा जीवन ही मुझे पैग़म्बर प्रकट कर रहा है। मेरे आनन्द मे कभी वाधा नही पड़ती। आप कभी भी अपने को कोई दूसरा व्यक्ति समझने की गलती नहीं कर सकते। इसी प्रकार मै भी अपनी असलियत पर सन्देह ही नही कर सकता। मै जानता हूँ कि मै वास्तव मे पैग़म्बर हूँ। मै ईश्वर का पैगाम लेकर आया हूँ और उसको सुनाए बिना मै हटूंगा नही।"

"जव मुसलमान फकीरिन ने आपका चुम्बन लिया था तब ठीक ठीक क्या हुआ था, कुछ याद है ?"

"हाँ! तव तक और युवको के समान मै भी दुनिया के माया-मोह मे फँसा हुआ था। उनके चुम्बन ने मेरा कायापलट ही कर दिया। मुझे भान होने लगा था कि समस्त विश्व कही शून्य मे विलीन हो रहा है और मै एकदम अकेला रह गया हूँ—हाँ! मै ईश्वर के साथ, उसके समक्ष अकेला हो तो था। महीनो भूख मुझे नही लगती थी, तो भी मै बिलकुल कमजोर नही हुआ; पहले जैसा ही वलवान वना रहा। मेरे पिताजी को मालूम नही हुआ कि वात क्या थी। उन्होने समझा कि मै पागल होता जा रहा हूँ। उन्होने पहले एक डाक्टर को दिखलाया और फिर किसी दूसरे को। हकीमो ने मुझे दवा दी। कई प्रकार की दवाओ के इंजेक्शन लगाए गए। लेकिन वे ग़लती पर थे क्योकि मै ईश्वर के साथ था और इलाज से दूर होने वाली मेरी वीमारी नही थी। वात यह थी कि अपने सासारिक अस्तित्व का मुझे ज्ञान न रहा था और उसकी पुनःप्राप्ति मे मुझे वहुत समय लगा। समझे ?"

"जी हाँ। चूँकि आप को अब संसार का फिर से ध्यान हुआ है, बताइये आप कब तक अपना सन्देश सुनावेंगे ?"

"निकट भविष्य में ही, यद्यपि मैं इसके लिए कोई निश्चित तिथि नहीं निर्धारित कर सकता।"

"फिर—?"

"इस संसार में मेरा कार्य-काल ३३ वर्ष तक रहेगा। तब मेरी विषाद भरी मौत होगी। मेरे इस क्रूर अन्त का ख़ास कारण मेरे ही पारसी लोग होगे ; पर मेरे काम को और लोग जारी रक्खेंगे।"

"आपके शिष्य न ?"

"हाँ मेरे चुने हुए १२ चेलों की मंडली। इनमें से एक निश्चित समय पर गुरू बनेगा। प्रायः जो मै व्रत रखता हूँ और मौन धारण किये हूँ वह अपने चेलो के दोषों तथा पापो को धो कर उनको आध्यात्मिक सम्पूर्णता के योग्य बनाने के लिए ही है। ये सब के सब पूर्व जन्मों में मेरे साथ थे ; अतः मेरा यह कर्तव्य है कि मैं उनकी मदद करूँ। चेलों की यह मंडली अन्तरंग मंडली है। इनके अलावा ४४ सदस्यों की एक वाह्य मंडली होगी। उसमें अपेक्षाकृत कुछ कम आध्यात्मिक विभूति वाले स्त्री-पुरुष सदस्य रहेंगे। उनका काम अन्तरंग मंडली की सहायता करना होगा।"

"और लोग भी तो पैग़म्बर होने का दावा करते हैं ?"

यह सुनकर मेहर बाबा इस प्रकार मुस्कराने लगे मानों अपने को पैग़म्बर कहने वाले अन्य लोगों की हंसी उड़ा रहे हों।

हाँ ! कृष्णमूर्ति—श्रीमती बेसेंट के पिट्ठू भी इसी कोटि में से एक हैं। थियासोफिस्ट लोग अपने को धोखा दे रहे हैं। वे यह मानते हैं कि उनके असली सूत्रधार कहीं तिब्बत मे हिमालय पर्वत पर रहते हैं। किन्तु यदि वे वहाँ जा कर देखें तो ख़ाक और

धूल के सिवा और क्या मिलेगा ? इसके अलावा यह कैसी हँसी की बात है कि कोई सच्चा आध्यात्मिक गुरू अपने धार्मिक सन्देश की सिद्धि के लिए किसी दूसरे मानव शरीर का सहारा ले।"

इस गुफ़्गू मे और भी कई गुल खिले। मेहर की कोमल उंगलियां जब तख्ती पर लिखने के लिए तेजी के साथ दौड़ने लगती थी तो कितने ही अनोखे और साहस पूर्ण कथन लिख जाते थे।

'अमेरिका का भविष्य बड़ा ही उज्जवल होगा। उसका रुख आध्यात्मिकता की ओर फिर जायेगा।.... मुझ पर ईमान लाने वाले हर एक व्यक्ति को मै जानता हूँ और उसकी सदा ही मदद की जाती है। मेरे कार्यों का अध्ययन करके मेरे सम्बन्ध मे कोई धारणा न बनाइए क्योकि उनकी गहराई का आप को पता ही नही चलेगा। यदि किसी स्थान पर मै एक बार भी, थोड़ी ही देर के लिए सही, हो आया हूँ तो निश्चय मानिए वहाँ की आबहवा ही बदल कर सुधर जायेगी। संसार को मेरी ओर से जो आध्यात्मिक प्रेरणा मिलेगी उसके वेग से कितनी ही समस्याएं—आर्थिक, राजनैतिक, स्त्री-पुरुष-विषयक, सामजिक—सभी की सभी सुधरेगी और हल हो जायेगी क्योकि स्वार्थ का नाश हो जायगा और उसके स्थान पर भाईचारे की भावना फैल जावेगी। छत्रपति शिवाजी जिन्होने १७ वी शताब्दी मे मरहठा राज्य की स्थापना की थी अब यही है (मेहर ने अपनी ओर संकेत किया, अर्थात् उनके विचार से वे स्वयं शिवाजी के अवतार थे।). कुछ ग्रहो पर प्राणियो का अस्तित्व है और वे संस्कृति मे तथा भौतिक उन्नति मे इस पृथ्वी पर रहने वालो का मुकाबला कर सकते है, पर आध्यात्म की दृष्टि से इस पृथ्वी की कोई भी ग्रह बराबरी नही कर सकता . आदि।'

किसी से भी यह बात छिप नही सकती कि अपने

बड़प्पन की डुग्गी पीटते समय मेहर बाबा को किसी प्रकार का संकोच नहीं होता। लेकिन बात-चीत के समाप्त होते होते उन्होंने मुझे एक आदेश दिया जिसे सुन कर मैं कुछ चकित सा हो गया। वे बोले :

"आप मेरे प्रतिनिधि होकर पश्चिम में जावें। चारों ओर घोषित कर देना कि मैं ही भावी पैग़म्बर हूँ। मेरे लिए आप काम करें और मेरे प्रभाव को फैलाने की चेष्टा करें, तभी तो आप मानव जाति के कल्याण के लिए जी-जान से चेष्टा करने वाले वीर सिपाही बनेंगे।"

ऐसे काम करने के विचार मात्र से ही मेरी बुद्धि चकराई जा रही थी। अतः कुछ बेचैन हो कर मैंने उत्तर दिया—"ऐसा करने पर मुझे शायद दुनिया पागल कह बैठेगी।"

मेहर ने मेरे कथन पर अपनी असहमति प्रकट की।

मैंने उनसे नम्रता के साथ कहा कि शक्की पश्चिमियों को किसी के पैग़म्बर होने की बात तो दूर रही उसके आध्यात्मिक बड़प्पन में भी तभी विश्वास पैदा हो सकता है जब वह लगातार ऐसी कितनी ही करामातें कर दिखावे जिनका करना मनुष्य के लिए असम्भव हो; और चूंकि मैं कोई करामात कर सकने की शक्ति नहीं रखता था अतः मैं इस आज्ञा के पालन के लिए तय्यार नहीं था।

मेहर बाबा ने मुझे दिलासा देते हुए कहा :

"तब तो आप करामातें अवश्य ही कर सकेंगे।"

मैं चुप रहा। मेहर ने मेरे मौन का कुछ दूसरा ही अर्थ समझ लिया। बोले :

"मेरे साथ रहिए। मैं आपको बड़ी विभूतियाँ प्रदान

करूँगा। आप का भाग्य जागा है। उच्च से उच्च शक्तियों की प्राप्ति मे मै आपकी मदद करूँगा ताकि आप पश्चिमी संसार मे मानव सेवा करने के योग्य बन जावें।"

× × ×

इस भेंट का मै जितना ही कम वर्णन करूँ उतना ही अच्छा होगा। दुनिया मे कुछ लोग पैदायशी वड़े होते है, कुछ अपने प्रयत्नों से वड़े बन जाते है और कुछ अखबारो के सम्वाद-दाताओ के भरोसे उनसे अपना निरन्तर विज्ञापन कराके वड़े बनते हैं। मुझे जान पड़ता है कि मेहर बाबा इस तीसरी कोटि के व्यक्ति है।

दूसरे दिन मै चलने की तैयारी करने लगा। अपना काम चलाने योग्य, दिव्य ज्ञान और भविष्यद्वाणियाँ काफी मात्रा मे मैने संग्रह कर ली थी। संसार मे दूर दूर तक मैने इस आकांक्षा से भ्रमण नही किया था कि कुछ धार्मिक विश्वासो तथा आडम्बरो से युक्त घोषणाओ को सुन पाऊँ। मै सच्ची और खरी घटनाओ को चाहता था। हाँ, यदि ये सच्ची घटनाएँ कुछ अलौकिक और निराली भी प्रकट हो तो कोई परवाह नही। इससे भी अधिक मेरी चाह यह थी कि मै ऐसे व्यक्तियो के मुंह से उनकी निजी अनुभूतियाँ सुन लूं जिनकी सचाई को मै स्वयं भी अपनी कसौटी पर कस कर संसार के सामने उनका समर्थन कर सकूँ।

मेरा बोरा-बँधना तैय्यार था और मै कूच करने ही वाला था। मैने मेहर के पास जा कर विनय पूर्वक विदा माँगी। उन्होने मुझसे कहा कि वे कुछ ही महीनो के बाद नासिक के निकट अपने सदर मुकाम पर पहुँच जायंगे। उन्होने मुझसे उस स्थान पर एक मास तक अपने साथ रहने का अनुरोध किया। वे बोले :

"मेरी बात सुनिए। जब आपको फुरसत हो, आ जायँ। मैं

आपको आश्चर्यजनक आध्यात्मिक अनुभूतियाँ प्रदान करूँगा और आप मेरे बारे में सच्ची बातें जान सकेंगे। मेरे अन्दर जो आध्यात्मिक शक्तियाँ मौजूद हैं, आपको देखने को मिलेंगी। उसके बाद आपके सारे संशय दूर होंगे। तब आप अपने ही अनुभव से मेरे दावे की सत्यता को प्रमाणित कर सकेंगे। फिर आप पश्चिम में जा कर मेरी ओर से प्रचार कर सकेंगे।"

मैंने अपनी फुरसत के समय कभी उनके यहाँ एक महीने तक ठहरने का निश्चय कर लिया। यद्यपि इस पारसी सत्पुरुष का चरित्र मुझे नाटकीय और प्रदर्शनपूर्ण जान पड़ा और उनके सन्देश की बात बहुत ही काल्पनिक मालूम हुई, तब भी खुले दिल से सारी बात की जाँच करने की मैंने ठान ली।

× × ×

बम्बई लौट कर कुछ दिन तक फिर से वहाँ की चहल पहल देखी और तब मैं पूना के लिए रवाना हुआ। इस प्राचीन भारत देश में मेरा भ्रमण अब शुरू हो रहा था।

सब से पहले मेरी दृष्टि उस बूढ़ी मुसलमान योगिन की ओर फिरी जिसके अकस्मात् सामने आने से मेहर बाबा का जीवन कुछ से कुछ हो गया था। मैंने सोचा एक बार उनका दर्शन करूँ तो कुछ अनुचित न होगा। बम्बई ही में मैंने इस योगिन के बारे में कुछ प्रारम्भिक जाँच शुरू कर दी थी। वहाँ भूतपूर्व जज खाँदलावाला ने उनके बारे में मुझे कुछ बातें बताई थीं। वे उस योगिन को ५० साल से कुछ अधिक काल से जानते थे। उनका कहना था कि योगिन की ठीक ठीक उम्र ९५ के लगभग होगी। मुझे याद आया कि मेहर के चेलों ने उनकी उम्र १३० वर्ष की बतायी थी। पर मैंने बड़ी उदारता के साथ उनकी इस अत्युक्ति का कारण उनके उत्साह की अधिकता ही मान लिया।

जज साहब ने संक्षेप मे योगिन की कहानी बताई थी। वे बलूचिस्तान की रहनेवाली है। छुटपन मे घर छोड़ कर भाग खड़ी हुई। बहुत समय तक बड़ी विकट परिस्थितियो मे पैदल ही दूर दूर तक सफर करते करते वे बीसवी सदी के प्रारम्भ मे पूना चली आईं और तब से और कही जाने का नाम नही लिया। शुरू मे वे एक नीम के तले रहने लगी और सभी मौसमों मे वहीं रहने की जिद पकड़ी। उनकी पवित्रता और अद्भुत शक्तियो की धूम अगल-बगल की मुसलमानी जनता मे यहाँ तक फैल गई कि अन्त को हिन्दू लोग भी उनको इज्जत की दृष्टि से देखने लगे। कुछ दिन बाद कुछ मुसलमानो ने मिल कर उनके लिए उसी पेड़ के नीचे एक काठ की झोपड़ी खड़ी कराई क्योंकि योगिन किसी अच्छे मकान में रहने के खिलाफ़ थी। इसी काठ के घेरे से घर का काम चल जाता था और वे इस प्रकार जाड़े-गरमी की प्रचंडता से एक हद तक बच जाती थी।

मैंने जज साहब से बाबाजान के सम्बन्ध मे जब उनकी निजी राय बता देने की प्रार्थना की तो उन्होने उत्तर दिया कि इसमे कोई शक नही कि हज़रत बाबाजान सच्ची फकीरिन है। जज साहब पारसी थे और मेहर बाबा को अच्छी तरह जानते थे। अतः उनसे मेहर बाबा के बारे मे बड़ी सावधानी के साथ मैंने कुछ प्रश्न किए। उन्होने जो कुछ मुझे बताने की कृपा की उससे पारसी पैगम्बर के बारे में जो मेरी राय बनी थी उसमें किसी प्रकार का अन्तर नही हुआ। अन्त को मैंने उनसे उपासनी महाराज के बारे मे पूछा, क्योंकि वे ही मेहर के नये प्रेरक और प्रोत्साहक थे। मेरा प्रश्न सुन कर, वृद्ध, विवेकी, और भला-बुरा समझने वाले अनुभवी जज साहब उपासनी महाराज के सम्बन्धी अपने कटु अनुभवो की एक लम्बी कहानी सुनाने लगे। मैं उदा-

हरण के लिए केवल दो ही घटनाओं का उल्लेख करूँगा। जज साहब बोले—"उपासनी ने बड़ी भयानक भूलें की हैं। एक समय जब वे बनारस में रहते थे उन्होंने मुझे प्रोत्साहन देकर वहाँ बुलवा लिया। कुछ दिन बीतने पर मुझे ऐसा भासित हुआ कि मेरे किसी निकट सम्बन्धी की मृत्यु हो गई है। उस समय मेरा कुटुम्ब पूना में था और मैं घर लौटने के लिए उत्सुक हुआ। उपासनी ने बारम्बार यह भविष्यवाणी करके मुझे वहीं रोक लिया कि सब कुछ अच्छा ही होगा। परन्तु, दो दिन बाद मुझे तार द्वारा खबर मिली कि मेरी पतोहू ने एक शिशु को जन्म दिया और वह शिशु कुछ ही मिनटों मे चल बसा। एक अन्य अवसर पर उपासनी ने मेरे दामाद के बारे में एक भविष्यवाणी की। मेरा दामाद बम्बई के स्टाक बाज़ार मे कारबार करने का विचार कर रहा था। उपासनी ने बताया कि उनको उसमें बहुत भारी लाभ पहुँचेगा। इस सलाह को ले कर मेरे दामाद ने विनिमय बाज़ार में पाँव रक्खा और वे करीब करीब बरबाद हो गया।"

जज साहब के विचार-स्वातंत्र्य का मेरे ऊपर बड़ा ही असर पड़ा। जिन उपासनी महाराज को मेहर ने इस ज़माने का एक अत्यन्त उच्च आध्यात्मिक महापुरुष बताया था उन्हीं को जज साहब इस हीन कोटि का बता रहे थे। तब भी मेहर को वे सचमुच ईमानदार मानते हैं और मेहर की संसिद्धि में भी उनका विश्वास है।

मैं पूना पहुँच गया। छावनी के एक होटल में एक कमरा लेकर सीधे हज़रत बाबाजान की खोज में निकला। मेरे साथ एक पथ-प्रदर्शक भी था जो स्वयं हज़रत बाबाजान से परिचित था। वह मेरी टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी समझ लेता था; अतः मैं उससे दुभाषिए का काम चला लेने की आशा करता था।

योगिन एक तंग गली मे रहती थीं। कही कही उस गली मे विजली के लैम्प लगे हुए थे, पर बीच बीच मे मिट्टी के तेल वाले म्युनिसिपल लैम्प भी नज़र आते थे। योगिन एक छोटे निचले सोफे पर लेटी हुई थी। सड़क पर चलने वाले उनको भली भांति देख सकते थे क्योकि लोगो की दृष्टि से उनको बचाने की कोई व्यवस्था नही थी। उस काठ के घर से लगा हुआ एक छोटा वरामदा था जिसके चारो ओर तारो से घिरा एक प्रकार का घेरा वना हुआ था। उस कुटिया के ऊपर एक विशाल नीम की साया थी जिसके सफेद फूलो से वायुमंडल कुछ कुछ सुरभित हो रहा था।

पथ-प्रदर्शक ने मुझे सहेज कर कहा—"आपको जूते निकालने होगे। घर मे प्रवेश करते समय जूता पहनना वेअदबी है।" मैंने उसकी वात मान ली और एक मिनट वाद हम हज़रत वावाजान के विस्तर के वग़ल मे खड़े हो गये।

वह वढ़ी चित लेटी हुई थी। उनके सिर के नीचे तकिये रक्खे थे। उनके रेशम जैसे वालो की सफेद चमक, उनके झुर्रीदार ललाट से विलकुल ही मेल नही खाती थी।

मैने अपनी नई सीखी टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी मे उस वृढ़ी योगिन को अपना परिचय दिया। उन्होने बुढ़ापे से झुका हुआ अपना सिर मेरी ओर फेरा और अपने दुवले हाथ को, जिसमे हड्डी और चमड़े के सिवा और कुछ भी बाकी नही रह गया था, वढ़ा कर मेरे हाथो को अपने हाथ मे ले लिया। वे मेरी ओर अपनी अलौकिक आँखो से स्थिरता के साथ ताकती रही और उन्होने मेरे हाथो को और मज़वूती के साथ पकड़ा।

उनकी वह दृष्टि मुझे चकित करने लगी। वह एकदम

शून्य और समझ के परे थी। इस प्रकार वे मेरे हाथों को तीन चार मिनट तक पकड़े रहीं और मेरी आँखों में सूनी दृष्टि से ताकती रहीं। मुझे प्रतीत होने लगा कि उनकी दृष्टि मेरे अन्दर पैठी जा रही है। वह एक अद्भुत अनुभूति थी। मैं विवश था कि क्या करूँ... ।

अन्त को उन्होंने अपना हाथ खींच लिया और कई बार माथा पोंछने लगीं। तब मेरे साथी की ओर घूम कर उससे कुछ कहा जिसका अर्थ मैं नहीं समझ सका।

मेरे पथ-प्रदर्शक ने उसका अनुवाद करके मुझ से कहा :

"यह व्यक्ति भारत में ईश्वरीय प्रेरणा से आया है और यह बात शीघ्र ही उसकी समझ में आ जायगी।"

कुछ देर तक रुक कर उन्होंने एक और वाक्य कहा लेकिन उस वाक्य को यहां लिखने की अपेक्षा स्मृति-मन्दिर में ही रखना बेहतर होगा।

उनकी आवाज़ बिलकुल धीमी थी। बड़ी मुश्किल से धीरे धीरे बोल पाती थीं। सम्भव है कि इस वृद्ध जीर्ण ढांचे में सच्चे फ़कीर की विभूतिमय आत्मा वास करती हो! कौन कह सकता है? सदा शरीर के ढांचे को देख कर आत्मा के पत्र नहीं पढ़े जा सकते।

लेकिन यह फकीरिन १०० वर्ष के निकट पहुँच रही हैं। मुझे पहले ही सहेज दिया गया था कि उनकी कमज़ोर हालत की वजह से मुझे उनसे देर तक बातचीत नहीं करनी चाहिए। मेरे मन पर एक बात का गहरा प्रभाव पड़ गया था, और मैं चुपचाप उठ कर चल देने को तय्यार हो गया। मुझे प्रतीत होता था कि उनकी शून्य दृष्टि उनकी निकट भविष्य मे होने वाली मृत्यु को

सूचना थी। प्राण-पखेरू उनके जीर्णकाय से उड़ा जा रहा था, पर बीच बीच मे इस संसार की आखिरी झाँकी लेने के लिए उनकी आँखे अजीव ढंग खुली हुई थी।*

होटल मे पहुँच कर मै अपने अनुभवो पर मनन करने लगा। मुझे इस बात मे जरा भी संदेह नही था कि उस योगिन की आत्मा के अंतरतम तल में ज़रूर ही कुछ गहन आध्यात्मिक अनुभूति थी। अपने आप मेरे दिल मे उनके प्रति असीम गौरव और आदर पैदा हो रहा था। मुझे जान पड़ा कि उनके छूने पर मेरी साधारण विचार-धाराओ का रुख एकदम बदल गया था और आधुनिक वैज्ञानिको के समस्त आविष्कारो तथा अनुमान-पूर्ण दावो के होते हुए भी सांसारिक जीवन सम्बन्धी एक रहस्य-पूर्ण अकथनीय और अवर्णनीय अनुभूति मेरे अंतस्तल मे प्रसारित होने लगी। मुझे अच्छी तरह से समझ पड़ा कि जो वैज्ञानिक महान् विश्व-समस्या के मूल रहस्यो के उन्मीलन करने का दम भरते है वे उस समस्या के ऊपरी रूप-रंग को ही उसका वास्तविक स्वरूप समझे हुए है, और उनको मूल तत्व का पता भी नही है। लेकिन यह बात मेरी समझ मे ही नही आती कि उस वृद्धा के क्षणिक स्पर्श के कारण ही बड़े प्रेम और विश्वास के साथ पले हुए मेरे निश्चयात्मक मानसिक विचारो की नीव क्यों कर इतने ज़ोर से हिल उठी!

उस योगिन ने मेरे सम्बन्ध मे जो संकेत रूप से भविष्यवाणी की थी वह आज भी मुझे स्मरण है परन्तु उसका अर्थ मेरी समझ मे बिलकुल नही आ रहा है। मै तो किसी के बुलाने पर भारत

* कुछ महीने बाद मैने फिर उनसे भेंट की। मेरा यह अनुमान कि वह मरणासन्न थी सच निकला। कुछ दिन बाद ही वह स्वर्ग सिधार गई।

भ्रमण के लिए नहीं आया हूँ। क्या अपनी स्वेच्छा से ही, अपने ही मानसिक हौसिले को पूरा करने के लिए मैं नहीं आया था ? ... केवल इस समय जब कि मैं इन पंक्तियों को लिख रहा हूँ, अर्थात् इस घटना के बहुत काफी समय बाद, धीरे धीरे मैं विश्वास करने लगा हूँ कि अस्पष्ट रूप में उन वाक्यों का मतलब मेरी समझ में आ रहा है। हे प्रभु ! संसार बड़ा ही विचित्र है।

५

योगी ब्रह्म

समय तेजी के साथ बीतता जा रहा है और मै दक्षिण भारत मे भ्रमण करता फिर रहा हूँ। मै अब तक कई प्रसिद्ध शहरो को देख चुका हूँ, पर अभी तक किसी असाधारण व्यक्ति से भेट होने का सौभाग्य नही हुआ है। कोई अनिवार्य प्रेरणा, जिसको मै समझ नही रहा था किन्तु फिर भी जिसका मै अंध-अनुकरण कर रहा था, तेज़ी के साथ मुझे आगे बढ़ाए लिए जा रही थी, यहाँ तक कि मै कभी कभी अपनी खोज के ध्येय को भूल कर केवल नगरों की शोभा और उल्लेखनीय स्थानो को ही देख कर अपना सफर जारी रखता था।

अन्त मे मैने मद्रास की गाड़ी पकड़ी। वहा कुछ दिन तक रहने का मेरा विचार था। रात का लम्बा सफ़र था। नींद कठिनाई से भी नही आ रही थी, अतः मै यह सिंहावलोकन करने लगा कि अब तक पश्चिम भारत मे मैने जो यात्रा की है उसमे मेरे हाथ क्या लगा है।

मुझ यह जान पड़ा कि अब तक तो मुझे किसी भी ऐसे योगी का पता नही लगा है जिनके दर्शन से मै अपने परिश्रम को सुफल समझूं, किसी ऋषि के दर्शन होने के सम्बन्ध से तो मै और भी अधिक हतोत्साह हो गया। दूसरी ओर मैने इस निद्रालु भारत की घोर अंध-विश्वास मे पगी हुई और जीवन

को घोटने वाली, मूर्ख प्रथाओं का इतना काफी परिचय पा लिया है कि मुझे जान पड़ा कि बम्बई में कुछ स्वल्प-परिचित व्यक्तियों ने मेरी यात्रा के उद्देश्य की पूर्ति के सम्बन्ध में जो शंकाएं प्रकट की थीं वे ठीक ही थीं। मुझे यह भी विश्वास होने लगा कि जिस काम का मैंने अपने आप बोड़ा उठाया है उसको पूरा करना बहुत ही कठिन है। हिन्दुस्तान में अपने को धार्मिक कहने वाले व्यक्ति तो ७५ किस्म के मिलते हैं, परन्तु वे मेरे दिल को अपनी ओर खींच सकने में असमर्थ हैं। कभी कभी मैंने मन्दिरों के चारों ओर चक्कर लगाया, क्योंकि उनके रहस्यपूर्ण अन्तरंग से वास्तविक रहस्य की प्राप्ति को आशा होती थी। मैंने मन्दिरों की परिधि को पार करके भीतर भी प्रवेश किया है और अन्दर की झाँकी देखी है। परन्तु वहाँ भी यही दिखाई दिया है कि पूजा के समय ध्यान अथवा स्तुति की अपेक्षा पुजारीगण घंटा बजाने में अधिक मन लगा रहे हैं जिसमें उनके इष्ट-देव का ध्यान उनकी ओर अवश्य ही आकृष्ट हो जाय।

मद्रास पहुँच कर मुझे बड़ी खुशी हुई। नगर का बिखरा हुआ और रंग-बिरंगा स्वरूप मेरे मन को भाया। शहर से दो मील के फ़ासले पर एक सुन्दर छोटी बस्ती में मैंने अपना डेरा जमाया जिसमें मैं यूरोपियनों की अपेक्षा हिन्दुस्तानियों के अधिक सम्पर्क में आ सकूँ। मेरा मकान ब्राह्मणों की बस्ती में था जहाँ सड़क कच्ची थी और उसकी धूल में मेरे जूते धँस जाते थे। सड़क के किनारों को भूमि पर धूल नहीं थीं। बीसवीं सदी की उन्नतिशील प्रगति की गंध वहाँ छू नहीं गई थी। मकान चूने से पुते हुए थे और उनके खुले बरामदे बड़े ही सुन्दर लगते थे। मेरे घर के भीतर खपरैल का एक दालान था और आँगन के चारों ओर एक छज्जा बना था। घर में एक

पुराना कुआं था जिसमें से डोल और रस्सी के सहारे पानी खींच कर निकाला जाता था।

इस छोटी बस्ती मे केवल दो तीन गलियाँ थी, जिनको पार करने पर दूर तक इस देश की प्रफुल्ल प्रकृति की उभड़ती हुई सारी शोभा आँखो को सदा ही शीतल कर देती थी। शीघ्र ही मुझे मालूम हो गया कि अडयार नदी बिलकुल ही नज़दीक है और उसके तट तक आध घंटे में पहुँचा जा सकता है। इसकी विपुल धारा के दोनो ओर ताड़ के वृक्षों के झुंड है जो देखने वाले के चित्त को मोह लेते हैं। मै अपनी फुरसत का सारा समय या तो उन वृक्षो की छाया मे घमते-घामते या नदी के किनारे कुछ दूर तक चलते हुए बिताता था।

अडयार नदी मद्रास नगर के निकट तक बह कर आती है और उसकी दक्षिणी सीमा बनती हुई पास के महासागर के कारोमंडल तट पर समुद्र मे मिलती है। एक दिन सबेरे इस सुन्दर नदी के किनारे मै धीरे धीरे टहल रहा था। मेरे साथ एक परिचित ब्राह्मण साथी भी था जिसे यह मालूम था कि मेरी यात्रा का ध्येय क्या है। अचानक उसने मेरी बाँह पकड़ी। वह बोला—"देखिए! हमारी ओर जो सज्जन आ रहे हैं उन्हे आपने देखा? लोग उन्हे योगी मानते है। आप उनसे अवश्य ही बात-चीत करना चाहेगे, किन्तु खेद है कि ये तो किसी से बोलते ही नही।"

"क्यो नहीं बोलते?"

"इनका निवासस्थान मै जानता हूँ, लेकिन इस जिले भर मे इनका सा गम्भीर और संकोची व्यक्ति दूसरा नही है। ये अपने को समाज से दूर, एकदम तनहा रखते है।"

अब यह अपरिचित व्यक्ति हमारे बिलकुल पास आ गया। इसका बदन गठा हुआ था। मेरे अनुमान में इसकी आयु ३५ वर्ष के लगभग होगी। क़द मँझोला था, न अधिक लम्बा और न अधिक छोटा। सब से अधिक उल्लेखनीय बात मुझे यह जान पड़ी कि इसकी आकृति हवशियों से मिलती हुई थी। चमड़े का रंग बिलकुल ही काला था। नाक चपटी, ओंठ मोटे, बदन खूब ही तगड़ा और मोटा। ये सभी साफ़ प्रकट कर रहे थे कि यह आर्य नहीं है। शिर पर कंघी किए हुए बालों की शिखा बँधी थी। एक अजीब प्रकार की बड़ी बालियाँ इसके कानों में सोह रही थीं। यह अपने शरीर पर एक सफ़ेद दुशाला ओढ़े था जिसका एक आँचल बाएँ कँधे पर से पीछे लटक रहा था। इसके पाँव नंगे थे और पैरों पर कोई भी वस्त्र न था।

इस व्यक्ति ने हमारी उपस्थिति की ओर ध्यान तक न दिया और धीरे धीरे हमारे सामने से चले गया। इनकी दृष्टि ज़मीन पर लगी हुई थी मानो ज़मीन पर किसी वस्तु को खोज रहा हो। मुझे प्रतीत हुआ कि वह किसी ध्यान में मग्न है। यह चल-मूर्ति किस विषय पर इतनी तन्मयता से विचार कर रही है। इसने मेरी उत्सुकता को और भी भड़का दिया। मेरे हृदय में अचानक यह उत्कट इच्छा पैदा हो गई कि शिष्टाचार की सभी बाधाएँ तोड़ कर इस व्यक्ति से बातें करूँ। मैंने अपने साथी से कहा—"मै इनसे बातचीत करना चाहता हूँ। चलो हम लोग इनके पीछे चलें।" मेरे ब्राह्मण साथी ने दृढ़ता के साथ इसका विरोध किया। कहा—"व्यर्थ है।"

मैंने उत्तर दिया—"कोशिश करके देखने में क्या हर्ज है?" ब्राह्मण ने मुझे निरुत्साहित करने की चेष्टा की—"वे इतने गंम्भीर हैं कि यहाँ कोई भी अब तक इनके बारे में कुछ भी नहीं जान

पाया है। ये पास-पड़ोस के लोगो से अपने को बिलकुल ही तनहा रखते है। इनके ध्यान मे हमे दखल नही देना चाहिए।"

लेकिन मै तो इसी बीच मे इस प्रसिद्ध योगी की ओर चलने लगा था, अत. झख मार कर मेरे साथी को भी मेरे साथ हो लेना पड़ा।

शीघ्र ही हम योगी के पीछे पहुँच गये; पर उनकी किसी भी बात से यह प्रकट नही हुआ कि उन्हे हमारी उपस्थिति का कोई भी आभास मिला हो। वे उसी प्रशान्त ढंग से आगे बढ़े जा रहे थे। हम भी उनके साथ कुछ दूर तक बराबर चलते रहे।

मैने अपने साथी से कहा—"कृपया इनसे पूछिए कि क्या मैं इनसे बात कर सकता हूँ।" मेरे साथी ने संकोच मे पड़ कर सिर हिलाया। बोला—"नही, मेरी तो हिम्मत नही पड़ती"

इस अमूल्य अवसर को हाथ से खो बैठने की दुःखद संभावना ने मेरे प्रयत्न को और भी दृढ़ किया। कोई दूसरा चारा नही था। सीधे योगी से मुझ को ही बोलना था। शिष्टाचार को मैने तिलांजलि दे दी; योगी के रास्ते को रोक कर खड़ा हो गया। अपनी टूटी फूटी हिन्दुस्तानी के सहारे मैने एक छोटा वाक्य कहा। उन्होने सिर उठा कर मेरी ओर ताका। उनके ओठो पर मंद मुसकान की अर्ध-प्रस्फुटित रेखा फैल गई। लेकिन अपनी अनिच्छा को प्रकट करते हुए उन्होने सिर हिला दिया।

उन दिनो मद्रास की प्रान्तीय बोली तामिल का एक ही शब्द मुझे मालूम था और यह भी निश्चय था कि योगी उससे भी कम मात्रा मे अंग्रेजी जानते थे। दक्षिण भारत के बहुत ही थोड़े लोग हिन्दुस्तानी जानते है, लेकिन उस समय इस बात का मुझे पता ही न था। मेरा सौभाग्य था कि मेरे साथी ब्राह्मण का दिल मेरी

लाचारी पर पिघल उठा, अतः मेरी रक्षा और सहायता के लिए वे आगे बढ़े।

क्षमा-प्रार्थना-मिश्रित संकोचपूर्ण स्वर में उन्होंने तामिल में कुछ कहा।

योगी ने जवाब नहीं दिया। उनका चेहरा और भी गम्भीर हो गया। आँखों मे दया का भाव लुप्त हो गया। उनमें स्नेह की झलक तक न थी। मेरा ब्राह्मण साथी लाचारी से मेरी ओर देखने लगा। फिर बड़ी देर तक सन्नाटा रहा। क्या करना था यह हम में से किसी को भी नहीं सूझा। मुझे प्रथम बार यह खेदपूर्ण अनुभव हुआ कि योगियों को अपने साथ बातचीत करने के लिए राजी करना कैसा कठिन काम है। वे किसी से भी मिलना नापसन्द करते हैं और अपनी निजी अनुभूतियो के बारे में अपरिचितों से बात करने से अलग रहना चाहते हैं, खास कर किसी गोरे व्यक्ति के वास्ते, जिनके विषय में यह साधारण धारणा ही है कि उनका योग के प्रति न कोई सहानुभूति है और न उसकी बारीकियों को समझने की बुद्धि-कुशलता ही। अपनी चिर-सहचरी मौन दीक्षा को त्याग देना पूर्व के योगियो को बिलकुल ही नापसन्द है।

मेरी इस भावना में शीघ्र ही कुछ परिवर्तन हुआ। मुझे प्रतीत हुआ कि योगी बड़ा तेज़ निगाह से मेरी तह लेने की चेष्टा कर रहे हैं। किसी प्रकार से मै ताड़ गया कि योगी मेरे अंतरतम तल के विचारों को जानने की मानसिक चेष्टा कर रहे हैं। लेकिन बाहर से वे वैसे ही गम्भीर बन रहे। तो क्या मैंने कोई समझ की भूल की थी? मै अपनी इस विचित्र भावना को छोड़ नहीं सका कि योगी अपनी दृष्टि से अनुवीक्षण यंत्र के समान मेरी परीक्षा कर रहे हैं।

मेरे साथी ब्राह्मण की घबराहट अब तक और भी बढ़ गई थी। उन्होंने मुझे इशारा करके बताया कि वहाँ से चल देने में ही खैरियत थी। यदि यही अवस्था एक मिनट तक और बनी रहती तो मैं अपने साथी का आदेश मान लेता और हार मान कर चल देता।

पर होनहार कुछ और ही थी। अचानक योगी ने हाथ उठा कर इशारा किया और हमें पास के एक उन्नत ताड़ के वृक्ष के पास ले गये; बैठ जाने की मूक आज्ञा दी और खुद भी बैठ गये।

उन्होंने ब्राह्मण साथी से तामिल में कुछ कहा। उनके गले में लोच थी और माधुर्य था।

मेरे साथी ने अनुवाद करके बताया—"योगी कहते हैं कि वे आप से बातचीत करने को राजी है।" फिर मेरे साथी ने अपनी ओर से कहा कि योगी ने अडयार नदी तटवर्ती ऐसे प्रदेशों में कई वर्ष तक भ्रमण किया है जहाँ कोई भी नही जाता।

सब से पहले मैंने योगी का नाम पूछा। मुझको इतना लम्बा नाम सुनाई पड़ा कि मैंने उनका अलग ही एक नाम रखने का निश्चय कर डाला। कहा गया था कि उनका पहला नाम 'ब्रह्म सुखानन्द' था। उनके चार अन्य ऐसे ही लम्बे नाम थे। अतः मुझे तो उनको 'ब्रह्म' कह कर पुकारने में अधिक सुविधा मालूम हुई। मैं उनके और नामों का उल्लेख न करूँगा क्योंकि यदि उनकी सम्पूर्ण नामावली लिखी जाय तो एक पूरा पन्ना भी काफी न होगा। अतः मैं उनको 'ब्रह्म' का संक्षेप नाम दे कर पुकारूंगा ताकि पाठकों को सुविधा हो।

"मुझे योग में अधिक दिलचस्पी है और उसके बारे में कुछ जानने का अभिलाषी हूँ।"

योगी ब्रह्म

मुस्कराते हुए ब्रह्म बोले—"दिखाई तो दे रहा है। अच्छा, अपने प्रश्न कीजिये।"

"आप किस योग का अनुसरण करते हैं?"

"हठ योग का। सभी योगों में यह कठिनतम है। इस योग में शरीर और श्वास जैसे अड़ियल घोड़ों को बड़ी कठिनाई से क़ाबू में लाना होता है। इसके बाद स्नायु और मन पर सहज ही अधिकार हो जाता है।"

"ऐसा करने से क्या हाथ लगता है?"

ब्रह्म ने नदी के उस पार शून्य की ओर ताका और कहा—"शारीरिक स्वास्थ्य, मनोबल और दीर्घायु—ये हठयोग से होने वाले लाभों में से कुछ हैं। मै जिस प्रकार के योग की शिक्षा प्राप्त कर रहा हूँ उसमें पहुँचा हुआ व्यक्ति अपनी मांस-पेशियों को लोहे के समान कठोर बना सकता है और उनकी सहन शक्ति अनुपम होगी। दुःख, यंत्रणा आदि उसका बाल भी बाँका नहीं कर सकते। ऐसे ही एक योगी को एक बार नश्तर लगाने के समय कोई भी दवा बेहोश न कर सकी, किन्तु उन्होंने बेहोश हुए बिना ही नश्तर लगवा लिया और उसे तनिक भी कष्ट का अनुभव नहीं हुआ। ऐसे व्यक्ति बिना किसी प्रकार के संरक्षण के ही शीत और उष्णता की घोर तीव्रता सहन कर सकते हैं और ऐसा करने में उनको किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचती।"

हमारी बातचीत अधिक रोचक होती जा रही थी। अतः कुछ नोट करने के लिए मैंने अपनी नोट बुक निकाली। ब्रह्म इसको देख कर मुस्करा उठे, पर किसी प्रकार की आपत्ति नहीं उठाई। मैंने उनसे प्रार्थना की कि वे अपने योग के बारे में अधिक प्रकाश डालें।

"मेरे गुरुदेव हिमाकीर्ण हिमालय की चोटियो पर अपने गेरुए वस्त्र को छोड़ और किसी कपड़े के विना ही रहते है, जहाँ पानी वरफ वन जाता है। ऐसी सर्द जगह पर भी मेरे गुरूजी एक साथ घंटो तक वैठ सकते है। तव भी उनको किसी प्रकार की कठिनाई नही मालूम होती। हमारे योग की कुछ ऐसी ही महिमा है।"

"तो आप किसी के चेले है ?"

"हाँ। अव भी मुझे कई पहाड़ लांघना है। मैने लगातार १२ वर्ष तक प्रति दिन योग के अभ्यास सीखने मे विताये है।"

"तो आप को कुछ असाधारण सिद्धियाँ प्राप्त हुई ?"

ब्रह्म ने सिर हिलाया, पर एकदम चुप रहे। इस विचित्र युवक की ओर मेरा चित्त अधिकाधिक आकृष्ट होने लगा।

"क्या मै पूछ सकता हूँ कि आप योगी कैसे वने ?"

पहले तो कोई उत्तर नही मिला। हम तीनो उसी ताड़ के वृक्ष के नीचे वैठे रहे। नदी के उस पार, नारियल के पेड़ो पर वैठे कौए काँ काँ कर रहे थे। इस आवाज़ की तुमुलता को और भी वढ़ाते हुए वदरो की चीं चीं को आवाज सुनाई देने लगी। नदी तट पर लहरो की थपकियाँ देने की स्नेहमय तान कानो को प्यारी लगती थी।

अचानक ब्रह्म वोल उठे—"वड़ी खुशी के साथ।" मुझे जान पड़ा कि वे यह समझ गये है कि मेरे प्रश्न पूछने का कारण केवल उत्सुकता अथवा कौतूहल मात्र न था। वे समझ गये कि मै किसी गहरी प्रेरणा के कारण ही उनसे प्रश्न कर रहा था। उन्होने अपने हाथ दुशाले की तहो मे छिपा लिये, नदी के उस पार किसी चीज पर अपनी दृष्टि जमाई और वोलने लगे :

"मै अपने माँ-वाप का एकलौता वेटा हूँ। जन्म से ही मेरी

प्रकृति कुछ शान्त थी । मैं किसी खेल-कूद में भाग न लेता था। अकेले बाग-बगीचों, या खेतों की सैर में मेरा दिल खूब लगता था। मननशील बालक को बहुत कम लोग समझ पाते हैं। मैं यह नहीं कह सकता कि मेरा जीवन सुखमय था। जब मैं १२ वर्ष का हुआ अचानक एक दिन कुछ प्रौढ़ व्यक्तियों की बातचीत मेरे कानों में पड़ी। उन्हीं की बातों से योग का नाम मुझे पहले पहल मालूम हुआ। इस घटना से योग के विषय में और अधिक जान लेने की उत्कट इच्छा पैदा हुई। मैं लोगों से पूछ-ताँछ करने लगा। इस भाँति तामिल भाषा की योग सम्बन्धी कुछ किताबें मेरे हाथ लगीं। उनके पाठ से योगियों के बारे में कई दिलचस्प बातें मेरे जानने में आईं। रेगिस्तान में दौड़ने वाला जैसे पानी के लिए तड़पने लगता है उसी भाँति मेरा मन भी योग सम्बन्धी ज्ञानोदक पान करने के लिए तड़पने लगा। लेकिन मैं इस ज्ञान-प्राप्ति के मार्ग में ऐसी जगह पहुँच गया था जहाँ और अधिक आगे बढ़ने की कोई सूरत ही नहीं दिखाई दी। एक दिन मैंने अपने सौभाग्य से एक किताब को दुबारा पढ़ा। उसके एक वाक्य ने मेरे मन पर ख़ूब ही असर डाला। इस किताब में लिखा था—'योग मार्ग पर सफलता के साथ आरूढ़ होने के लिए गुरू की परम आवश्यकता है।' इसका गहरा असर हुआ। मुझे विश्वास हो गया कि घर-बार छोड़ कर घूमने पर ही सच्चे गुरू से भेंट होगी। इसके लिए मेरे माँ बाप राजी नहीं थे। ऐसी अवस्था में अपना कर्त्तव्य निश्चित करने में असमर्थ हो कर मैं छिप कर प्राणायाम का अभ्यास करने लगा। उसके बारे में किताबों की सहायता से मुझे कुछ बिखरा हुआ ज्ञान मिला। इन अभ्यासों से लाभ प्राप्त होने की बात तो दूर रही उलटे मुझे बड़ी हानि पहुँची।

मुझे उस समय मालूम नही था कि सिद्ध गुरू की मदद के बिना उन अभ्यासो का नाम तक नही लेना चाहिए। मेरा हौसला ऐसा था कि मै गुरू के मिलने तक इन्तजार नही कर सकता था। कुछ वर्षों के अन्दर ही इन प्रणायाम के अभ्यासो का बुरा नतीजा देखने मे आया। मेरे सिर के मध्य भाग मे कुछ चोट सी मालूम होने लगी। जान पड़ता था मेरा कपाल सब से कोमल स्थान पर फट गया है। घाव से रक्त वह निकला और मेरा शरीर ठडा और सुन्न हो गया। मैने सोचा कि मै मरने वाला हूँ। दो घंटे वाद मुझे एक अजीब स्वप्न देख पड़ा। किसी पूजनीय साधु ने स्वप्न मे दर्शन दिये और यह कहते प्रतीत हुए—'इन निषिद्ध अभ्यासो मे हाथ डाल कर, देखो! तुमने अपनी कैसी हालत वना ली है। यह तुम्हारे लिए कड़ी चेतावनी है।' यह क्षणिक दृश्य ग़ायब हो गया और आश्चर्य की बात यह है कि उसी क्षण से मेरी तबियत सुधरती गई और अन्त को ख़ूब ही चंगा हो गया। लेकिन उस घाव का निशान अब भी है।"

यो कहते हुए ब्रह्म ने सिर झुका कर वह निशान हमे दिखा दिया। सिर पर साफ ही एक छोटा सा गोलाकार घाव का निशान नज़र आया।

"इस दुःखद अनुभव के वाद मैने प्राणायाम का अभ्यास छोड़ दिया और घर के बन्धनो के छूटने की प्रतीक्षा की। जब मै उनसे मुक्त हुआ, घर छोड़ कर गुरू की खोज मे निकल पड़ा। मुझे मालूम था कि सच्चे गुरू को परखने की उत्तम पद्धति उनके साथ कुछ महीनो तक रहना ही है। मैने कई गुरुजनो से भेट की और कुछ दिन उनके साथ रहते और अन्त मे निराश हो कर घर लौटते अपना समय काटा। कोई तो मठाधिपति थे और कोई आध्यात्मिक आश्रमो के अथवा दार्शनिक विद्यापीठो के आचार्य,

लेकिन किसी से मुझे सन्तोष नहीं मिला। उन्होंने मुझे काफी दर्शन ज्ञान सिखाया, पर किसी में भी अपने अनुभव की कोई बात नहीं थी। उनमें कई तो पुस्तकों की बातें ही दोहरा कर सुनाते थे। वास्तविक मार्ग की कोई भी सूचना तक नहीं दे सके। मैं किताबी बातों के लिए उतना उतावला नहीं था जितना योग के प्रत्यक्ष अनुभव के लिए। इस प्रकार मैंने लगभग १० गुरुओं से भेंट की, पर वे योग के सच्चे आचार्य मालूम नहीं हुए। तब भी मैं निराश नहीं हुआ था। मेरे यौवन की सारी उत्सुकता खूब प्रज्वलित हो चुकी थी। अतः रुकावटों पर विजय पाने का मेरा दृढ़ संकल्प और भी पक्का होता गया।

मैं तब तक किशोरावस्था को पार कर यौवन के द्वार पर पहुँच गया था। मैंने अपने बुजुर्गों के घर-द्वार को हमेशा के लिए छोड़ देने का संकल्प कर लिया। संन्यास ले कर मरते दम तक सच्चे गुरू को खोज लेने का मेरा पक्का इरादा हो गया। मैं अपना घर छोड़ कर अपनी ग्यारहवीं यात्रा पर निकला। घूमते-घामते तंजौर ज़िले के एक बड़े गाँव में पहुँचा। प्रातः स्नान के लिए नदी के तीर जा कर स्नानादि समाप्त करके नदी के किनारे चलने लगा। शीघ्र ही लाल पत्थर का बना हुआ एक छोटा मन्दिर मिला। उत्सुकता के कारण झाँक कर मन्दिर के भीतर देखा तो वहाँ कई सज्जनों को केवल एक लंगोटी-धारी साधु के चारों ओर बैठे देख कर आश्चर्य-चकित हो गया। लोग उनकी ओर बड़े आदर की दृष्टि से ताक रहे थे। उन महात्मा के चेहरे पर कुछ अकथनीय गौरव, गम्भीरता और कुछ रहस्यपूर्ण तेज छाया हुआ था। मैं चकित भाव से द्वार पर ही खड़ा रहा। शीघ्र ही मुझको मालूम हो गया कि उपस्थित सज्जन कुछ उपदेश सुन रहे हैं। धीरे धीरे मेरे अन्दर

यह विचार दृढ़ हो उठा कि ये साधु सच्चे योगी हैं। अन्य लोगों के समान किताबी ज्ञान के व्यक्ति नही हैं। मेरे मन मे ऐसी धारणा क्यो बैठ गई, मै स्वयं नही जान सका।

"अचानक महात्मा ने द्वार की ओर नजर दौड़ायी। हम दोनों की चार आँखे हुईं। तब एक भीतरी प्रेरणा के वेग मे आ कर मैंने मन्दिर में प्रवेश किया। महात्मा ने मेरी बड़े प्रेम से आवभगत की, बैठने को कहा और बोले—'छः महीने हुए मुझे तुम्हे शिष्य के रूप मे ले लेने का आदेश मिला था। अन्त मे तुम आ ही गये।' यह सुन कर मुझे संभ्रम और आनन्द दोनो ने एक साथ घेर लिया। मुझे याद आ गयी कि ठीक छः महीने पूर्व ही मैंने अपनी ग्यारहवी यात्रा शुरू की थी। खैर! यो मुझे मेरे गुरू मिल गये। इसके बाद वे जहाँ जहाँ जाते थे मै उनके पीछे ही लगा रहता था। वे कभी शहरो मे जाते, कभी घने जंगलो के निर्जन प्रदेश मे। उनकी कृपा और मदद से मै योग मार्ग पर उन्नति करने लगा और इतने वर्ष बाद मुझे चैन मिला। मेरे गुरू ने अनुभव करके योग की अच्छी सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। यद्यपि मेरे गुरुदेव केवल हठ योग का अनुसरण करने वाले थे, तो भी अनुभव मे वे किसी सिद्ध योगी से कुछ कम न थे। योग मार्ग के कई प्रभेद है। अभ्यासों और अपनी पद्धतियों में वे बहुत भिन्न है। जिस मार्ग की मुझे दीक्षा मिली, वही अकेला ऐसा मार्ग है जिसमें मन के बदले शरीर से ही साधना शुरू होती है। मुझे प्राणायाम का तरीका सिखाया गया। एक बार योग की एक क्रिया की सिद्धि मे मुझे ४० दिन तक उपवास भी करना पड़ा था।

"तुम सोच सकते हो कि मुझे किस प्रकार का आश्चर्य हुआ होगा जब कि एक दिन मेरे गुरू ने मुझे बुला भेजा और

कहा—'अभी तुम्हारे पूर्ण सन्यास लेने का समय नहीं आया है। अपने घर वालों के पास लौट जाओ, और साधारण जीवन बिताओ। तुम विवाह कर लोगे और तुम्हारे एक लड़का भी होगा। तुम्हें अपने ३९ वें साल में कुछ संकेत मिलेंगे। उसके बाद तुम संसारी जीवन के परित्याग के योग्य हो जाओगे। तब तुम फिर जंगलों में चले जाओगे और एकान्त मनन में तब तक डूबे रहोगे जब तक कि तुम्हें वह परम पुरुषार्थ न मिले जिसकी सभी योगी खोज करते हैं। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करता रहूँगा। तुम मेरे पास आ सकते हो।'

मैंने उनकी आज्ञाओं का पालन किया। घर लौट कर एक साध्वी से अपना विवाह कर लिया। उससे एक लड़का हुआ। लेकिन इसके कुछ दिन बाद ही मेरी स्त्री की मृत्यु हो गई। मेरे माँ-बाप तब तक स्वर्ग सिधार चुके थे। अतः मैं अपना गाँव छोड़ कर यहाँ पर चला आया। यहाँ एक बुढ़िया के मकान पर रहता हूँ जो मेरे गाँव की ही है और मुझको बचपन से जानती है। वह मेरे घर-बार का काम देखती है, और चूंकि जीवन के अनुभव ने उसे विवेकी बना दिया है वह मुझे मेरा विरक्त जीवन, जो कि हमारे सम्प्रदाय का एक प्रधान विहित नियम है, बिताने देती है।"

ब्रह्म की आत्म-कथा पूरी हुई। उससे मैं इतना प्रभावित हो गया कि मेरी प्रश्न पूछने की इच्छा ही शान्त हो गई। दो तीन मिनट तक एकदम सन्नाटा छाया रहा। फिर ब्रह्म उठे और अपने घर की ओर धीरे धीरे चलने लगे। हम दोनों भी उनके पीछे हो लिये।

रास्ता ताड़ के वृक्षों के सुन्दर झुरमुटों से होकर जाता था। सूर्य के स्वच्छ आलोक में नदी का जल जगमगा रहा था।

उसी के किनारे चलते चलते लगभग एक घंटा बीत गया. तब कहीं हम मनुष्यों के बीच मे आए। मछुए जाल लेकर कमर तक गहरे पानी मे खड़े हो कर पुराने ढंग से मछली पकड़ रहे थे। रंग-बिरंगी चिड़ियाँ नदी के जल पर उड़ती हुई दृश्य की सुन्दरता की मनोज्ञता को और भी बढ़ा रही थी। समुद्र की ओर से आनेवाली सुगन्धपूर्ण हवा धीरे से हमारे बगल मे से झूम कर बह उठी। हम कुछ खेद के साथ नदी को पीछे छोड़ एक सड़क पर चलने लगे। सुअरो का एक झुंड गुरगुराता हुआ हमारे बाजू से गुजरा। एक पासी औरत हाथ मे डंडा लिए उस झुंड को चलाती थी, और इधर उधर बहक कर भागने वाले बेचारे सुअरो को बाँसो की चोट भी खानी पड़ती थी।

ब्रह्म ने घूम कर हमसे बिदा लेनी चाही। मैंने यह आशा प्रकट की कि वे फिर से मिलने की अनुमति दे। उन्होने हमारी प्रार्थना मंजूर कर ली। तब मैंने साहस करके पूछा कि क्या वे अपने शुभागमन से मेरी गरीब कुटी को पावन करने की कृपा न करेगे। मेरे ब्राह्मण साथी को आश्चर्य सागर मे डुबाते हुए ब्रह्म बोल उठे :

"क्यो नहीं ? आज शाम को तुम्हारे यहाँ आवेगे।

× × × ×

गोधूलि के समय मै ब्रह्म सुखानन्द की बड़ी उत्कंठा से प्रतीक्षा करने लगा। मन में कई प्रश्नो के उठते और गिरते रहने से एक बेचैनी फैल गई थी। उनकी संक्षिप्त जीवनी ने मुझको मोहित कर लिया था, और उनके विचित्र चरित्र और बर्ताव को देख कर मै चकित हो गया था।

नौकर ने उनके आगमन की सूचना दी। मैं हाथ जोड़े उनकी आवभगत करने के लिए सीढ़ियाँ पार कर बरामदे से नीचे उतरा। हाथ जोड़ कर प्रणाम करना हिन्दुओं का साधारण अभ्यर्थना का तरीका है। इसका गुप्त अर्थ बाद में मुझे मालूम हुआ, पर वह यूरोपीय लोगों को अवश्य ही विचित्र मालूम होगा। इस प्रणाम से यह अर्थ सूचित होता है कि 'हम दोनों की आत्माएं अभिन्न हैं।' किसी यूरोपियन के इस तरीके से नमस्कार करने से हिन्दू लोग बड़े प्रसन्न होते हैं, क्योंकि ऐसा बिरले ही हुआ करता है। यूरोपियनों के यहाँ हाथ मिलाने का जो अर्थ है वही तात्पर्य हिन्दुओं के यहाँ नमस्कार करने का है। मैं हिन्दुओं से उनका आत्मीय बन कर मिलना चाहता था। अतः जहाँ तक मुझे मालूम था मैं हिन्दुओं के आचार और रस्म-रिवाज के अनुकूल चलने की चेष्टा करता था। इसका तात्पर्य यह कभी नहीं था कि मैं भी हिन्दुस्तानी बन जाना चाहता था। मेरा यही मतलब था कि मैं उनसे ठीक वैसा ही सलूक करूँ जैसा कि उनसे मैं स्वयम् चाहता था।

ब्रह्म ने मेरे साथ बड़े कमरे में प्रवेश किया और वे पालथी मार कर ज़मीन पर बैठ गये। मैंने उनसे पूछा—"आप सोफ़े पर क्यों नहीं बैठते ? उस पर तो बड़ा आराम रहेगा।" किन्तु उन्हों ने पक्के फ़र्श को ही पसन्द किया।

मैंने उनकी कृपा के लिए धन्यवाद दिया और कुछ नाश्ता करने की प्रार्थना की। उन्होंने मेरा दिया हुआ भोजन ग्रहण किया और भोजन करते समय बराबर मौन बने रहे।

भोजन के बाद मेरी इच्छा हुई कि अपनी राम कहानी उन्हें सुना कर कह दूँ कि मैंने उनके शान्त जीवन में अचानक क्यों दख़ल दिया है। ऐसा कहना मेरे लिए उचित ही था। अतः संक्षेप

मे मैंने उनसे उन प्रेरक शक्तियो का जिक्र किया जिनके कारण मुझे भारत-दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके बाद ब्रह्म ने मुझ से कुछ खिचे से रहने के अपने ढंग को छोड़ दिया और वे दोस्ताने तौर पर मेरे कन्धे पर अपना हाथ रख कर कहने लगे— "मुझे यह सुन कर बड़ी प्रसन्नता हुई है कि पश्चिम मे भी तुम्हारे जैसे आदमी रहते है। तुम्हारी यात्रा व्यर्थ नही होगी क्योंकि तुम बहुत कुछ सीख लोगे। मेरे लिए यह आनन्द का दिन है कि हम दोनो को भाग्य ने मिला दिया। भाई! जो कुछ तुम जानना चाहते हो पूछो। अपनी प्रतिज्ञाओ का उल्लंघन किये बिना जो कुछ बता सकूँगा उतना अवश्य ही बता दूँगा।"

इन शब्दो को सुन कर मेरे जी मे जी आ गया। प्रतीत हो रहा था कि मेरे भाग्य जाग रहे है। मैने ब्रह्म से उनके योग मार्ग का स्वरूप, उसका उद्देश्य और इतिहास आदि बताने की प्रार्थना की।

"कौन कह सकता है कि हठयोग, जिसका कि मैंने अध्ययन किया है, कितना प्राचीन है। हमारे गोप्य ग्रन्थो मे लिखा हुआ है कि भगवान शिव ने घेरण्ड महर्षि के लिए इस योग को प्रकट किया था। उन ऋषिवर ने अनुग्रह करके इसे मात्स्येन्द्र जी को सिखाया। इस प्रकार हजारो वर्षों की गुरु-शिष्य परम्परा से योग विद्या का क्रम जारी रहा है। लेकिन कितने हजार वर्ष पूर्व इसकी उत्पत्ति हुई, यह न तो हम जानते है और न जानने की परवाह ही करते है। हमे इतना अवश्य मालूम है कि योग-विद्या सभी अन्य शास्त्रों से प्राचीन है। उस पुराने जमाने मे भी मनुष्य इतना गिरा हुआ था कि देवताओ को उसकी मुक्ति का मार्ग शारीरिक क्रियाओ की साधना के द्वारा बताना पड़ा। सिद्धहस्त योगियो को छोड़ कर हठयोग को विरले ही कोई आदमी जानता है। और जो

जानता है उसको भी इस विद्या का सच्चा स्वरूप बहुत ही कम समझ में आया होगा। आम लोगों में हठयोग के बारे में बहुत ग़लत-फ़हमियाँ फैली हैं और उसके विषय में कुछ अजीब धारणा बन गई है। चूँकि इसके तत्व के जानने वाले बहुत ही विरले पाये जाते हैं, सबसे तुच्छ और भ्रान्त सिद्धान्त और रद्दी अभ्यास खुले तौर पर आम लोगों में बिना रोक-टोक हठयोग के नाम से चल पड़े हैं। बनारस जाकर देखो, वहाँ एक आदमी रात-दिन नुकीली कीलों के तख़्तों पर लेटा दिखाई देगा। दूसरी जगह एक ऐसा व्यक्ति मिलेगा जो एक हाथ को हमेशा ही ऊपर उठाये रहता है; यहाँ तक कि उसकी मांस-पेशियाँ सूख गई हों और उसके नख बहुत ही लम्बे हो गये हों। तुमको लोग बतायेंगे कि ये सभी हठ-योगी हैं। लेकिन यह बात झूठ है। ऐसे लोगों के कारण हठयोग की उत्तमता पर धब्बा आ गया है। इनके लिए हमें शरमिन्दा होना पड़ता है। आम लोगों को भुलावा देने के लिए इस प्रकार शरीर को यंत्रणा देना हठयोग का उद्देश्य ही नहीं है। ये मूर्ख जो अपने शरीर को दुःख देते हैं भ्रम में पड़े हुए हैं। ऐसे लोग किसी मित्र से या जनश्रुति से थोड़े बहुत हठयोग के अभ्यास सीख जाते हैं और शरीर को ख़ूब ही यंत्रणा देने में बाज़ी मार लेते हैं। बस, इतने से ही वे तृप्त हो जाते हैं। चूंकि उनको हठ-योग के सच्चे उद्देश्य और सिद्धान्तों का परिचय नहीं है वे इन अभ्यासों को बहुत ही विरूप बना देते हैं और अनुचित रूप से दीर्घ काल तक इन्हीं में रत रहते हैं। तब भी साधारण जनता ऐसे मूर्खों की बड़ी इज़्ज़त करती है और उन पर ख़ूब ही पैसे लुटाती है।"

मैंने बात काटते हुए कहा—"तो इसमें उनका दोष ही क्या है? सच्चे योगी तो अपने को प्रकट नहीं करते और अपने

अमूल्य विज्ञान को छिपाए रखते हैं। ऐसी सूरत में ग़लतफहमियाँ अवश्य ही फैलेंगी।"

ब्रह्म ने अपने कंधे ऊँचे किये। उनके मुँह पर घृणा की एक झलक प्रकट हुई। वे बोले :

"क्या राजा-रईस अपने ज़ेवर सभी के देखने के लिए खुली सड़क पर छोड़ जाते है ? क्या वे अपने अमूल्य रत्नों को महलो के तहखानों मे बड़ी हिफ़ाजत से छिपाते नही है ? हमारा योग विज्ञान एक दुर्लभ रत्न है। उसके समान कोई प्राप्य रत्न मनुष्य के लिए नहीं है। क्या ऐसे जौहर को किसी ऐरे-गैर के वास्ते आम सड़क पर फेंक दें ? जिसको यह अमूल्य धन पाने की लालसा हो, वह उसके लिए प्राणपण से खोज करे ; यही योग के समझने का एकमात्र और सही मार्ग है। बार बार हमारे ग्रंथ इस अमूल्य धन को गुप्त रखने की ताकीद करते है। हमारे आचार्य लोग ऐसे लोगो को, जो वर्षों तक परीक्षा किये जाने पर खरे निकले, इस मार्ग के सच्चे मर्म को वता देते है। हमारा योग अन्य सभी योग पद्धतियो से अधिक रहस्यपूर्ण है। इसके मार्ग मे खतरनाक जोखिमे हैं और वे जोखिमे केवल साधको के लिए ही नही अन्य लोगो के लिए भी खतरनाक है। क्या तुम यह समझते हो कि उसके गूढ़ रहस्य मै तुमको ही बता सकता हूँ ? नही। मै उसकी प्रारम्भिक और स्थूल बाते ही तुम्हे बता सकता हूँ और वह भी बहुत ही सावधानी के साथ।"

"अच्छा। समझा।"

"लेकिन हमारे इस विज्ञान का एक पहलू है जिसके बारे मे मै तुम से साफ साफ बात कर सकता हूँ। यह वह विभाग है जिससे साधना प्रारम्भ करने वाले अपने विभिन्न अवयवो को

मजबूत करते हैं और जिससे उनकी संकल्प शक्ति पक्की बनती है। इसके बाद ही वे सच्चे योग के कठिन अभ्यासों का प्रयोग करने योग्य हो सकेंगे।"

"यह तो यूरोपियनों के लिए बड़ा ही रोचक विषय होगा।"

"शरीर के भिन्न भिन्न अवयवों को दृढ़ बनाने के लिए हमारे यहाँ २० से कुछ अधिक अभ्यास हैं। उनसे कुछ बीमारियाँ रोकी और दूर भी की जा सकती है। इनमें कुछ मुद्राएं हैं जिनसे मुख्य नाड़ी-चक्रों पर अधिक दबाव पड़ता है। फलतः ऐसे कुछ अवयव जो अपना काम ठीक ठीक न कर रहे हों मदद पा कर ठीक और चंगे हो जायँगे।"

"आप औषधि इस्तेमाल करते हैं?"

"हाँ, यदि उनकी आवश्यकता हो। ऐसी औषधियाँ शुक्ल पक्ष में उखाड़ी जाती हैं। शरीर को स्वस्थ रखना पहला कर्तव्य है। इसके वास्ते चार ख़ास तरीके के अभ्यास सिखाये जाते हैं। सबसे पहले नाड़ियों को शान्त करने के लिए शरीर को आराम देना पड़ता है। आराम देने की एक ख़ास कला है। इसके लिए चार अनुकूल और उपयोगी अभ्यास हैं। स्वस्थ जानवरों के शरीर को ढीला करने के ढंग को गौर से देखने पर, चार अभ्यासों का आविष्कार किया गया था। उनसे हर एक अवयव को आराम पहुँचा सकते हैं। फिर हम अपने शरीर को भीतर से साफ करते हैं। इसके लिए भी कुछ विशेष उपाय हैं जो तुम्हें विचित्र मालूम होंगे, लेकिन उनका बड़ा ही अच्छा परिणाम होता है। सबसे अन्त में प्राणायाम साधना सिखाया जाता है।"

मैंने कुछ अभ्यास देखने की इच्छा प्रकट की।

वह मुस्करा पड़े। बोले:

"अभी मैं जो तुमको दिखाने जा रहा हूँ उसमे कोई गोपनीय बात नहीं है। सबसे पहले आराम पहुँचाने की कला को ही लीजिए। इसके बारे मे बिल्ली को देख कर हम कुछ सीख सकते हैं। मेरे गुरुदेव एक बिल्ली को चेलो के बीच मे छोड़ा करते थे और हम लोगो से कह देते थे कि दोपहर को धूप लगने पर बिल्ली जब सोने लगे तो उसकी चेष्टाओ को गौर से देखो। वे कहते थे कि चूहो के बिल के सामने बिल्ली किस प्रकार अपने को सिकोड़ लेती है इसे ध्यानपूर्वक देखो। उनका कहना था कि आराम करने का उत्तम ढंग बिल्ली से बढ़ कर दूसरा कोई नही सिखा सकता। बिल्ली जानती है कि अपनी शक्ति को पूर्णरूप से संचित रखना चाहिए। तुम लोग सोचते हो कि तुम आराम करना खूब जानते हो, लेकिन असलियत मे यह बात ठीक नहीं है। तुम लोग थोड़ी देर तक कुर्सी पर बैठते हो, फिर उसी कुर्सी मे हिलने डुलने लगते हो ; कभी किसी पैर को सिकोड़ लिया कभी किसी को, अब एक हाथ फैला दिया, फिर थोड़ो ही देर मे उसे दूसरे ढंग से रख लिया। संक्षेप में बात यह है कि किसी भी तरीके से एक-आध घंटे तक हिले डुले बिना तुम लोग रह नहीं सकते। हाँ, यह सच है तुम कुर्सी से उठते नही हो और बाहर से देखने पर मालूम होगा कि तुम आराम कर रहे हो। लेकिन जानते हो तुम्हारे मन मे एक के बाद एक करके विचारो की धारा बहती रहती है। इसी को तुम लोग आराम करना कहते हो ? क्या यह सचल रहने का एक दूसरा ढंग ही नही है ?"

"यह मुझे कभी नहीं सूझा। यह मेरे लिए बिलकुल नई बात है।"

"जानवरो को आराम करने का तरीका भली प्रकार मालूम है। लेकिन बहुत ही थोड़े मनुष्यो को इसका ज्ञान है। इसका

कारण यह है कि जानवर प्राकृतिक प्रेरणा के अनुकूल चलते हैं और मनुष्य अपनी बुद्धि तथा विचारों के अनुकूल। चूँकि प्रायः मनुष्यों का अपने ही विचारों पर अधिकार नहीं रहता, उन विचारों के बुरे परिणाम उनके शरीर और नाड़ियों में प्रकट होने लगते हैं। अतः सच्चा आराम किस चिड़िया का नाम है वे शायद ही जानते हैं।

"तब हमें आराम करने का कौन सा ढंग अपनाना चाहिए?"

"सब से पहले तुम्हें भारतीयो के बैठने का तरीका अख़्तियार करना होगा। तुम्हारे ठंडे देशों में कुर्सियों का भले ही उपयोग हो तो हो, पर योगाभ्यास करने की योग्यता कमाने की यदि तुम्हारी इच्छा हो तो अभ्यास के समय कुर्सियों को दूर रखने की तुम्हें चेष्टा करनी होगी। बैठने के हमारे तरीके में सचमुच बड़ा सुख होता है। जब हम काम-काज से या चल-फिर कर थक जाते हैं, कुछ देर तक आसन मार कर बैठने पर सारे शरीर को सुख मिल जाता है। उसे सीखने की सबसे सुलभ पद्धति यह है कि अपने कमरे की दीवार के पास एक आसन बिछा लो। इस पर जैसे तुम्हें अधिक से अधिक आराम मिले बैठ जाओ और दीवार से पीठ लगाओ। फिर अपने पैरों को भीतर की ओर घुटनों के पास मोड़ लो ताकि एक पैर दूसरे पर आ जाय। ख्याल रहे कि ऐसा करने में माँस-पेशियों पर किसी प्रकार का अनुचित दबाव न पड़े। अतः पहला अभ्यास यही है कि इस प्रकार बैठ कर अपने शरीर को अचल रक्खो। हाँ धीरे धीरे साँस लेने की चेष्टा तो जारी ही रहेगी। इस आसन से बैठने पर तुम्हें यह प्रतिज्ञा करनी होगी कि अपने सारे विचारों

को लौकिक बातो से फेर लो। बेहतर है कि किसी सुन्दर वस्तु, तसवीर या फूल का ध्यान करो।"

मैंने आराम कुर्सी छोड़ दी और ज़मीन पर बैठ कर ब्रह्म के कहे हुए आसन के अभ्यास मे लग गया। यह आसन उसी ढंग का है जैसे कि पुराने ज़माने मे दर्ज़ी लोग अपना काम करते समय बैठते थे।

ब्रह्म ने कहा—"तुम तो इसे बहुत ही सहज मे कर लेते हो। औरो को बड़ी दिक्कत होगी। और यूरोपियनो को ऐसे बैठने का अभ्यास ही कहाँ है . तुमसे एक ग़लती अवश्य हुई है। देखो, अपनी रीढ़ को सीधा रक्खो। अब दूसरा आसन दिखाऊँ ?"

ब्रह्म अपने पाँवो को एक के ऊपर एक पहले जैसे रख कर धीरे धीरे घुटनो को ठुड्डी की ओर उठाने लगे। इससे उनके पैर कमर से कुछ ऊपर उठ गये। इसके बाद उन्होने अपने हाथो से अपने घुटनो को लपेट लिया।

वे फिर बोले:

"देर तक खड़े रहने के बाद यह आसन करने से अधिक सुख मिलेगा। ध्यान रहे, शरीर का अधिक भार आसन पर ही डाला जाय। जब कभी तुम्हे थकावट हो इस आसन का कुछ मिनट तक अभ्यास कर सकते हो। इस आसन से कुछ ख़ास नाड़ी चक्रो को काफी शान्ति मिलेगी।"

"यह तो बहुत सरल है।"

"आराम करने की विद्या सीखने से किसी जटिल बात की कोई आवश्यकता नही है। सच है, जो अभ्यास सब से अधिक सरल हो उसीसे सबसे अधिक लाभ होगा। अपनी पीठ के बल, चित् लेट जाओ, पाँव पास पास पसार दो और अंगूठो को बाहर

की ओर फेर लो, अपने हाथों को फैला कर बदन के बगल में लगा लो, हर एक माँस-पेशी को, रग-रग को ढीला कर लो, आँखें बन्द कर लेना और शरीर का सारा भार पृथ्वी पर डालना। यह अभ्यास चारपाई पर लेट कर नहीं किया जा सकता क्योंकि खास कर रीढ़ को समान रूप से सीधा रखना पड़ता है। ज़मीन पर एक कम्बल बिछा कर यह आसन करना ठीक होगा। इस आसन में प्रकृति की शान्तिदायिनी शक्तियाँ खिल उठेंगी और शान्ति पहुँचावेंगी। इसको शव आसन कहते हैं। अभ्यास करने पर इनमे से किसी भी आसन को एक घंटे तक यदि चाहो तो साध सकते हो। इनसे रगों और स्नायुओं का तनाव दूर हो जायगा और शरीर में प्रसन्नता विराजेगी, मन को शान्त करने से पहल शरीर की मांस-पेशियों को शान्त और प्रसन्न करने की बड़ी ज़रूरत है।"

"आपके ये अभ्यास किसी न किसी प्रकार शान्त हो कर बैठना मात्र ही तो हैं?"

"इसका क्या कम मूल्य है? तुम पश्चिमी लोग सदैव सक्रिय रहने पर बहुत ज़ोर देते हो। पर क्या आराम तिरस्कार करने के याग्य वस्तु है? शान्त और प्रसन्न नाड़ियों का कोई महत्त्व ही नहीं है? शान्ति और आराम योगाभ्यास के श्रीगणेश हैं। लेकिन यह केवल हमारे लिए ही आवश्यक हों सो बात नहीं, सारी दुनिया को इसी की आवश्यकता है।"

ब्रह्म के ये वाक्य अर्थ रहित नहीं थे। वे बोले—"आज के लिए इतना पर्याप्त है। मुझे अब जाना है।"

मैंने उनको बहुत धन्यवाद दिये और प्रार्थना की कि वे मेरे ऊपर और अनुग्रह करें।

उन्होंने जवाब दिया—"कल सुबह तुम मुझ से नदी के किनारे मिल सकते हो।"

अपना सफेद दुशाला कंधों पर डाल कर उन्होंने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और चले गये।

उनके साथ अपनी दिलचस्प गुफ़्तगू, जिसे उन्होंने इतनी जल्दी खतम कर डाला था, पर मनन करने के लिए मैं अकेला ही रह गया।

× × ×

मैंने ब्रह्म सुखानन्द जी से कई बार भेंट की। उनके आदेशानुसार मैं सुबह टहलने के समय उनके साथ हो लेता। जब मैं उनको फॉंस लेता था तो वे शाम के वक्त मेरे यहाँ आ जाते। शाम की ये बैठकें मेरे लिए और मेरी खोज के लिए अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुईं क्योंकि उस समय जब कि चंद्रमा की चाँदनी चारों ओर छिटक जाती थी, दिन की धूप के समय की अपेक्षा अधिक तत्परता के साथ वे अपने रहस्य-ज्ञान का खजाना लुटाते थे।

ज़रा सी पूछ-ताँछ करने पर मेरे मन की एक समस्या हल हो गई जो मुझे चिन्तित किए हुए थी। मेरी यह हमेशा की धारणा थी कि हिन्दू लोग गेहुँआँ रंग के होते हैं। लेकिन ब्रह्म का शरीर क्यों हबशियों जैसे काले रंग का है?

इसका यही कारण है कि ब्रह्म हिन्दुस्तान के आदिम निवासियों की सन्तान है। हजारों वर्ष पूर्व भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर प्रान्तों में से हो कर आर्यों के, जिन्होंने कि भारत पर सब से पहले आक्रमण किया था, झुंड देश पर टूट पड़े। वहाँ देशीय द्रविड़ लोगों से उनको टक्कर लेनी पड़ी। अन्त में आर्यों ने द्रविड़ो

को हरा कर भगा दिया। द्रविड़ लोगों ने पराजित हो कर दक्षिण की राह ली। आज भी उन लोगों की एक अलग ही जाति है। तिस पर भी उन्होंने आर्यों के धर्म को अपना लिया है। इस देश की झुलसाने वाली गरम धूप के कारण उनके शरीर का रंग एकदम काला पड़ गया। इसके अलावा अस्थियों की परीक्षा के आधार पर वैज्ञानिक अनुमान करते हैं कि द्रविड़ लोगों की उत्पत्ति अफ्रीका की किसी जाति से हुई थी। अपनी उसी पुरानी रस्म के अनुसार द्रविड़ लोग अब भी लम्बी शिखा रखते हैं और अपनी पुरानी अस्पष्ट उच्चारण वाली भाषाएं, जिनमें तामिल सब से प्रधान है, बोलते हैं।

ब्रह्म ने दावे के साथ कहा कि आर्यों ने द्रविड़ों से ही और कई चीज़ों की भाँति योग-विज्ञान भी सीखा था। लेकिन जब मैंने कुछ विद्वानों से इस बात का उल्लेख किया तो उन्होंने इस राय को एकदम भ्रान्त कहा। अतः योग-विज्ञान की उत्पत्ति के बारे में मैं और अधिक न लिख कर इसे यहीं छोड़ देना उचित समझता हूँ।

मैं योग और शारीरिक व्यायाम के विषय पर कोई ग्रंथ लिखने नहीं बैठा हूँ। अतः मै कुछ अभ्यासों का ही ज़िक्र करूँगा जो हठयोग में बहुत मुख्य हैं। ब्रह्म ने जो बीसों आसन मुझे दिखाये थे वे बहुत ही विचित्र और यूरोपियनों की दृष्टि में या तो परिहासपूर्ण या एकदम असम्भव या दोनों प्रकार के जँचेंगे। इनमें शरीर के अवयवों को बहुत ही टेढ़ा-मेढ़ा करना पड़ता है। ब्रह्म को इन अभ्यासों का प्रदर्शन करते हुए जब मैंने देखा तो मुझे साफ़ साफ़ प्रकट हुआ कि हठयोग बड़ा ही कठिन है। मैंने ब्रह्म से प्रश्न किया :

"आपके हठयोग में ऐसे कितने अभ्यास हैं ?"

"हठयोग मे ८४ आसन है। लेकिन मुझे तो अभी ६४ ही आसन मालूम है।" बोलते बोलते उन्होने एक नवीन आसन, जो उन ६४ मे से एक था, धारण किया और उसमे उन्हे उतना ही आराम था जितना कि मुझे अपनी आराम-कुर्सी मे। उन्होने मुझसे कहा कि यह आसन उनको सबसे अधिक प्रिय है। यह उतना कठिन न था और कष्टप्रद तो नही मालूम होता था। उनका बायॉ पॉव जंघा से लगा था और दाहिना पॉव मुड़कर नीचे रक्खा था जिसपर उनके शरीर का समस्त भार सधा था।

मैने पूछा—"इस आसन का क्या प्रयोजन है?"

"इस आसन मे बना रह कर यदि योगी एक विशेप प्रकार का प्राणायाम करे तो उसको चिर-यौवन प्राप्त होगा।"

"वह प्राणायाम किस प्रकार का है?"

"मुझे यह बतलाने की अनुमति नही है।"

"इन समस्त आसनो के कौन से प्रयोजन है?"

"कुछ नियत समय तक एक ही आसन मे बैठे या खड़े रहना, केवल इतना ही तुम्हारी नजर मे क्या कुछ भी महत्त्व नही रखता? यदि तुम्हे सफलता पानी है तो इन आसनो को साधे हुए तुम्हे अपने ध्यान को एकाग्र करना होगा ताकि तुम्हारे भीतर जो प्रसुप्त शक्तियॉ है वे जाग जावे। इन शक्तियो का सम्बन्ध प्रकृति की गुप्त महिमाओ से है। अतएव जब तक प्राणायाम के अभ्यासो का उपदेश प्राप्त न हो तब तक उन शक्तियो का पूरा उद्बोध नही किया जाता क्योकि प्राण की भी बड़ी गम्भीर महिमा है। यद्यपि ऐसी शक्तियो को जगाना ही हमारे योग का प्रधान उद्देश्य है तो भी तुम्हे इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि लगभग २० ऐसे भी अभ्यास है जो शरीर की बीमारियो को दूर

करने और स्वास्थ्य की रक्षा करने में बड़ी मदद पहुँचाते हैं। कुछ ऐसे भी अभ्यास हैं जिनसे शरीर के कई प्रकार के मल और अशुद्धियाँ दूर हो जाती हैं। क्या ये कम प्रयोजन हैं? अन्य अभ्यासों की सहायता से हम अपने मन और आत्मा को वश में कर लेते हैं क्योंकि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जैसे मन और विचार का शरीर पर प्रभाव पड़ता है उसी भाँति से शरीर का भी मन और विचार पर प्रभाव पड़ता ही है। योग के उच्च कोटि के अभ्यास करते समय, जब कि घंटों तक योगी ध्यान में डूबा रहता है, उचित आसनों से शरीर स्थिर रहकर मन को विक्षिप्त होने से केवल बचाता ही नहीं है बल्कि मन को उसके यत्नों में मदद भी पहुँचाता है। इन सबके अतिरिक्त अनवरत जो इन आसनों का अभ्यास करता रहता है उसकी संकल्प शक्ति बेहद बढ़ जाती है। ये सभी बातें हमारे योग मार्ग में कैसा महत्त्व रखती हैं यह तुम सहज ही समझ गये होगे।"

"तब भी पैरों तथा शरीर के अन्य अवयवों को इतना टेढ़ा-मेढ़ा करने की कौन सी ज़रूरत है?"

"सारे बदन में कई नाड़ी-चक्र बिखरे पड़े हैं। हर एक आसन का एक न एक नाड़ी-चक्र पर प्रभाव पड़ता है। नाड़ियों के ज़रिये हम अपने शरीर के अन्य अवयवो और मानसिक विचारों पर अधिकार पा सकते हैं। जिन नाड़ी-चक्रों पर हम और किसी प्रकार से दबाव नहीं डाल सकते, उनपर अवयवों के टेढ़े-मेड़े करने से ज़ोर पड़ जाता है।"

"अब समझा।"

इस योग-व्यायाम का मूल अर्थ अब मेरे मन पर साफ़ साफ़ अंकित होने लगा। यूरोपीय और अमरीकन व्यायाम पद्धतियों

के मूल सिद्धान्तो के साथ इसकी तुलना बड़ी दिलचस्प मालूम पड़ने लगी। मैंने ब्रह्म से इन पाश्चात्य व्यायाम पद्धतियो का उल्लेख किया।

"मै इन बातो को नही जानता। किन्तु मैंने गोरे सिपाहियो को मद्रास के पास कसरत करते देखा है। उनको गौर से देखने पर शिक्षको का आशय मुझ पर प्रकट हो गया। उनका प्रधान उद्देश्य मॉस-पेशियों को दृढ़ बनाना मालूम हुआ, क्योंकि पाश्चात्य लोगों के अच्छे से अच्छे गुणो का प्रधान महत्त्व शारीरिक स्फूर्ति और सक्रियता ही है। यही वजह है कि तुम लोग बड़े वेग के साथ अपने अवयवो से बार बार व्यायाम कराते हो। तुम अपनी शक्ति का बड़े ज़ोर के साथ व्यय करते हो ताकि उसके बदले मे तुम्हारी मॉस-पेशियाँ दृढ़ हो जायं और तुम्हारा बल और अधिक बढ़े। बेशक ठंडे देशो के लिए इस प्रकार का व्यायाम उत्तम है।"

"आपकी समझ से दोनो मार्गों मे क्या प्रधान अन्तर है?"

"हमारे योगाभ्यास मे आसन मुद्राएँ ही प्रधान है। एक बार आसन ग्रहण करने पर फिर हिलने तक की आवश्यकता नही होती। गति-प्रधान और सचल रहने के लिए और अधिक शक्ति चाहने के बदले हम अपनी सहन शक्ति को बढ़ाना चाहते है। यद्यपि स्नायुओ को और मज़बूत करने से अवश्य ही लाभ होता है तब भी हमारे विचार से उनके पीछे जो संचित शक्ति होती है उसी का अधिक महत्त्व है। उदाहरण के लिए यदि तुम से यह कहा जाय कि एक विशेष प्रकार से सर के बल खड़े होने से सारा मस्तिष्क रक्त से धुल जायगा और नाड़ियाँ शान्त होगी और कुछ कमज़ोरियाँ भी दूर होगी तो तुम पश्चिमी लोग एक क्षण मे उसको कर डालोगे और बार बार बड़े वेग के साथ उसी को

दुहराओगे। इस ढङ्ग से जिन मांस-पेशियों से काम लेना पड़ता है वे तो ज़रूर ही बलिष्ठ हो जायँगी लेकिन अपने ही ढंग से इसी अभ्यास को करने वाले योगी को जो लाभ प्राप्त होता है वह तुम को शायद ही नसीब होगा।"

"वह लाभ कौन सा है ?"

"योगी उसी अभ्यास को बड़ी शान्ति के साथ, दृढ़ संकल्प से करेगा और उससे जहाँ तक बन पड़ेगा कुछ मिनटों तक आसन स्थिर रखने की चेष्टा करेगा। अच्छा, मैं तुमको सर्वाङ्ग आसन तो दिखा दूँ।"

यह कह कर ब्रह्म ने सर्वाङ्ग आसन का तरीका दिखा दिया। पाँच मिनट तक इसी आसन में रह कर फिर ब्रह्म ने उस आसन से होने वाले लाभ बताये। बोले:

"इस आसन से रक्त अपने ही दबाव के कारण कुछ ही मिनटों के अन्दर मस्तिष्क में आजायेगा। साधारणतया दिल के धड़कने से, उसकी गति के दबाव से रक्त ऊपर की ओर जाता है। इन दोनों मार्गों मे अन्तर यही है कि यह आसन करने पर मस्तिष्क और नाड़ियाँ प्रसन्न और शान्त होंगी। दिमागी काम करने वाले विद्यार्थियों को दिमाग के थकने पर, चन्द मिनट तक यह आसन करने से बड़ी ही शान्ति और आराम मिलता है। किन्तु केवल यही उसका एकमात्र गुण नहीं है। जननेन्द्रियों को भी यह आसन दृढ़ बना देता है। लेकिन ये सभी लाभ तभी मिलेंगे जब सर्वाङ्ग आसन हमारे निर्धारित ढङ्ग से किया जाय न कि फुर्ती से जिसे पाश्चात्य लोगों में बहुत महत्व दिया जाता है।"

"यदि मैंने समझने में भूल नहीं की है तो आप का यही कहना है कि पूर्वीय पद्धति में शरीर सम और अचल रहता है

जब कि पश्चिमीय तरीको से शरीर में भारी उथल-पुथल हो जाती है।"

"हॉ, यही मेरा आशय है।"

ब्रह्म ने जो विभिन्न आसन दिखलाए उनमे से एक और अभ्यास को मैने पसन्द किया क्योकि यूरोपियनो के लिए कुछ शान्ति और तत्परता से काम लेने पर, वह बहुत आसान ठहरेगा और जल्द ही सिद्ध हो जायगा।

ब्रह्म ने मुझे सचेत करते हुए कहा—"एकबारगी इस आसन को जमा लेने को कोशिश मत करना। धीरे धीरे अपने घुटनो को माथे से लगाने का अभ्यास करना चाहिए। इस आसन के अभ्यास मे सफलता प्राप्त होने मे यदि कुछ हफ्ते भी लग जायं तो कोई हर्ज नहीं है। एक बार तुमने इस आसन को सिद्ध कर लिया तो फिर समझ लेना कि बरसो तक वह सिद्ध बना रहेगा।"

मुझको बतलाया गया कि इस आसन के अभ्यास से रीढ़ सीधी हो जायगी और उसकी कमजोरी के कारण होने वाली बीमारियॉ दूर हो जायॅगी और शरीर मे रक्त के बहाव मे कई अद्‌भुत परिवर्तन दिखाई देगे।

ब्रह्म ने फिर एक अन्य आसन का प्रदर्शन किया। घुटनों के पास अपने पैरो को घुमा कर उन्हे पीछे की ओर कर लिया जिससे दोनो एड़ियॉ नितम्ब मे लग गईं। फिर वे अपने बदन को पीछे की ओर झुकाते झुकाते जमीन पर लेट गये जिससे उनके कधे जमीन पर लग गये। अपने हाथो को फिर अपने सिर के तले एक के ऊपर दूसरा कर दिया और उन पर अपना सिर रख लिया। इस सुन्दर आसन पर वे चन्द मिनट तक रहे। फिर

उठ कर उन्होंने मुझको बताया कि इस अभ्यास से कंठ और कंधों तथा पाँवों की नाड़ियों को बहुत ही लाभ पहुँचता है।

साधारणतया अंग्रेजों को प्रायः यह धारणा होती है कि औसत भारतीय झुलसाने वाली धूप और पौष्टिक भोजन के अभाव के कारण बहुत ही कमज़ोर रहता है। अतः यह जान कर अंगरेजों को बेहद अचरज होगा कि बहुत ही प्राचीन काल से भारत में इतनी अच्छी तरह सोची हुई देशी व्यायाम की यह पद्धति प्रचलित रही है। यद्यपि आज पश्चिम की व्यायाम-पद्धतियों में इतनी तरक्की हो गई है कि कोई भी उनकी उपयोगिता के बारे मे सपने में भी शङ्का नहीं कर सकता तो भी इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि शारीरिक उन्नति, स्वास्थ्य रक्षा और रोग निवारण के बारे में उनका ज्ञान चरम सीमा पर पहुंचा हुआ है। यदि पश्चिम अपनी वैज्ञानिक गवेषणा के ढंग से भारतीय योग-विज्ञान के अस्पष्ट अभ्यासों को किसी हद तक ग्रहण कर ले तो निश्चय ही हमें अपने शरीर-विज्ञान की अधिक पूर्ण जानकारी प्राप्त हो सकती है और हम शायद स्वस्थ जीवन की सीमा को और भी बढ़ा सकेंगे।

फिर भी मुझे यही प्रतीत हुआ कि श्रम और समय की उपयोगिता की दृष्टि से हमें लगभग एक दर्जन आसनों से अधिक की आवश्यकता नहीं है। बाकी जो ७० आसन हैं वे अधिक उत्साही साधकों से ही शायद पूर्णतया सिद्ध हो सकेंगे और वह भी तब जब कि वे इन अभ्यासो को अपनी कुमार अवस्था से ही जब कि अवयव अधिक कड़े नहीं रहते, शुरू कर दें।

ब्रह्म ने स्वयं भी यह बात निम्न शब्दों में स्वीकार की :

"हर दिन बड़ी तत्परता के साथ मैंने इन अभ्यासों को लगातार १२ वर्षों तक साधा है। तब भी मैंने कोई ६४ आसनों

को ही सीख पाया है। यह भी ख्याल करने की बात है कि मैंने बचपन से ही इनका अभ्यास शुरू कर दिया था क्योंकि उम्र बढ़ने पर इन अभ्यासों को शुरू करने से अङ्गों में बड़ी पीड़ा होती है। वयस्क हो जाने पर हड्डियाँ, मॉस-पेशियाँ, आदि कठोर बन जाती हैं और बड़ी कठिनाई और पीड़ा से ही वे फिर काबू में लाई जा सकती हैं। किन्तु इस उम्र मे भी निरन्तर अभ्यास से आसन लाभ कितनी सफलता के साथ प्राप्त हो जाता है यह देखकर आश्चर्य होगा।"

मुझे ब्रह्म की बातो मे रत्ती भर भी शंका नहीं हुई कि निरन्तर अभ्यास से कई वर्ष मे हरएक अवयव काबू मे लाया जा सकता है। उन्होने अपने बचपन मे ही योगाभ्यास शुरू कर दिया था और यह बात कुछ कम महत्त्व की नही है। जैसे बचपन से अपना इल्म सीखने वाले ही प्रायः हाथ की सफाई दिखाने वाले सफल नट-बाजीगर बनते है ठीक उसी तरह हठयोग मे सिद्धि लाभ के लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि चढ़ती जवानी में ही, अर्थात् करीब २५ वर्ष की अवस्था से पूर्व, योगाभ्यास की शिक्षा प्रारम्भ की जाय। यह बात मेरी समझ मे कदापि नही आती कि कोई प्रौढ यूरोपियन एक दो हड्डी तोड़े बिना इन अभ्यासों का प्रारम्भ ही कैसे कर सकेगा। जब इस बारे मे मैंने ब्रह्म से बहस की तो उन्होंने एक अंश मे मेरी बात मान ली पर वे ज़िद के साथ अपनी ही बात पर अड़े रहे कि यद्यपि हर एक को नही तो कम से कम बहुतो को निरन्तर अभ्यास से सफलता अवश्य प्राप्त होगी। लेकिन वे यह बात जरूर मानते हैं कि इस कार्य में यूरोपियनो को अपेक्षाकृत कुछ अधिक कठिनाई होगी।

"हम भारतीय बचपन से ही पालथी मार कर बैठा करते हैं। क्या कोई भी यूरोपियन किसी प्रकार के कष्ट के बिना एक साथ

दो घंटे तक इस प्रकार बैठ सकता है ? और तब भी ध्यान देने की बात है कि पालथी मार कर बैठना (पद्मासन) ही अन्य आसनों की प्रारम्भिक क्रिया है। हमारे विचार से पद्मासन सबसे उत्तम है। क्या तुमको वह दिखा दूँ ?"

फिर ब्रह्म ने मुझको वह आसन दिखा दिया जो बुद्धदेव के असंख्य चित्र और मूर्तियों के ज़रिये यूरोपियनों को विदित हो गया है। अपने बदन को एकदम सीधा रखकर वे बैठ गये और फिर अपने दाहिने पैर को मोड़ कर बाँईं जंघा से लगा लिया। इसी प्रकार बाँएं पैर को भी मोड़ कर दाहिने पैर के ऊपर से दाहिनी जँघा से लगा दिया। उनकी एड़ी पेट के निचले भाग में लगी हुई थी और पाँवों के तलवे ऊपर की ओर थे। यह आसन बहुत ही मनोज्ञ था। इसमें शरीर बहुत ही समतुलित था। मुझे जान पड़ा कि ऐसे सुन्दर आसन को ज़रूर सीखना चाहिए।

मैंने ब्रह्म का अनुकरण करने की चेष्टा की। मुझे अपने प्रयत्नों के पुरस्कार में केवल पिंडलियों में सख्त दर्द ही प्राप्त हुआ। मैंने ब्रह्म से शिकायत की कि एक मिनट के लिए भी मुझसे यह आसन नहीं साधा जाता। जब एक अजायबघर में बुद्धदेव की एक पीतल की मूर्ति मैंने देखी थी तब इस पद्मासन में वे कितने सुन्दर और मनोज्ञ मालूम हुए थे ! लेकिन अब यहाँ हिन्दुस्तान में उसी आसन का अनुकरण करने पर पैरों को इस प्रकार मोड़ना कितना अस्वाभाविक और दर्दनाक मालूम होने लगा। ब्रह्म मुस्कराते हुए मुझे उत्साह देने लगे पर उससे कुछ भी लाभ नहीं हुआ। मैंने उनसे कहा कि फिर कभी इसका अभ्यास करूँगा।

ब्रह्म ने कहा—"तुम्हारी सन्धियाँ, तुम्हारे अंगों के जोड़ बहुत ही कड़े हैं। भविष्य में अभ्यास करने के पहले, घुटनों और

गट्ठो मे थोड़ा तेल मल लेना। तुम लोग कुर्सियो पर बैठने के ऐसे आदी हो गये हो, कि इन आसनो मे तुम्हारे अंगो पर कुछ जोर अवश्य पड़ेगा। लेकिन हर रोज़ कुछ न कुछ अभ्यास करते रहोगे तो सारी कठिनाई दूर होगी।"

"मुझे इसमे सन्देह है कि मुझसे कभी भी यह आसन साधा जा सकेगा या नहीं।"

"असम्भव शब्द को भूल जाओ। तुम्हे इसमे कुछ अधिक समय अवश्य लगेगा, पर सफलता ज़रूर मिलेगी। अचानक एक दिन तुम अपने को इसमे सफल पाओगे; एकदम अचानक ही।"

"इस समय तो यह एक यंत्रणा सा जान पड़ता है।"†

"पीड़ा धीरे धीरे कम हो जायगी। यद्यपि पूर्ण सफलता हाथ लगने मे बड़ी देरी लगेगी तो भी थोड़े ही समय मे ऐसी स्थिति आ जायगी कि तब आसन लगाने मे किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होगी।"

"लेकिन क्या यह आसन इतनी मेहनत उठाने योग्य है भी?"

"बेशक! पद्मासन की इतनी महत्ता है कि इसको सीखे

---

* मुझे कहना ही पडता है कि बुद्ध की मुद्रा की नकल करने के लालच मे मैने बडी कठिनता के साथ, असह्य वेदना को सहते हुए आठ महीनो तक इस आसन का अभ्यास किया और आखिर को मुझे सफलता हाथ लगी। फिर तो मुझे किसी प्रकार की दिक्कत उठानी नही पडी।

† योग के आसनो के अभ्यास करने वालो को बडा ही सतर्क रहना चाहिए क्योकि इस अभ्यास मे कई जोखिमे उठानी पडती है। मैने एक सज्जन से इसके बारे मे बाते की तो उन्होने कहा कि प्राय इनसे कई स्नायु या तो टूट जाते हैं या गट्ठे मे ही कोई ऐंठन पड जाती है।

बिना और आसन सीखने की अनुमति ही नहीं मिलती। चाहे कोई और आसन भले ही न सीखे किन्तु योग को प्रारम्भ करने वाले हर एक साधक को पद्मासन सीखना ही पड़ता है। पहुँचे हुए योगी इसी आसन में रह कर ध्यान किया करते हैं क्योंकि कभी साधक के अनजान में ही, गम्भीर समाधि की नौबत आ जाती है और तब इस आसन में रहने से योगी गिरने से बच जायेगा। हाँ, पहुँचे हुए लोग अपनी इच्छा से समाधि में लीन हो सकते हैं। देखते नहीं हो कि पद्मासन में दोनों पाँव एक दूसरे में बंध से जाते हैं और तब शरीर निश्चल और स्थिर बन जाता है। चंचल और उद्वेग सहित शरीर से मन विक्षिप्त होता है। पर पद्मासन में शरीर काबू में आ जाता है और वह समतुलित हो जाता है। इस आसन में रहने से ध्यान और धारणा अत्यन्त सरल हो जाती हैं। यह भी एक ध्यान देने की बात है कि प्रायः इसी आसन में रह कर हम लोग प्राणायाम किया करते हैं क्योंकि इस आसन और प्राणायाम के मेल से शरीर में प्रसुप्त रहने वाली आध्यात्मिक शक्ति जागृत हो जाती है। जब इस अदृश्य शक्ति की ज्वाला प्रज्वलित हो उठती है सारे शरीर का रक्त पुनः प्रसारित होने लगता है और शरीर के मुख्य केन्द्रों को बड़ी तेजी के साथ शक्ति प्राप्त होने लगती है।"

इस कथन से मुझे तृप्त होना पड़ा और आसनों के बारे में हमारी बातचीत समाप्त हुई। इस बीच में ब्रह्म ने शरीर पर अपनी विजय को दरसाने और मुझे प्रोत्साहित करने के लिए तरह तरह के आसन दिखाए थे। इन सब जटिल अभ्यासों को वश में लाने का सब्र ही यूरोपियनों कब को होगा और यूरोपियनों के पास इन सब आसनों की साधना के लिए समय ही कहां है ?

६

मृत्युंजय योग

ब्रह्म ने यह इच्छा प्रकट की कि मैं उनके यहाँ एक बार जाऊँ। उन्होने मुझसे कहा कि वे अपने घर के प्रधान भाग में नहीं रहते वल्कि मकान के पिछवाड़े के बगीचे में। वहां उन्होने अपने लिए एक विशाल कमरे के समान झोपड़ी बनवा ली थी ताकि उनकी स्वतंत्रता मे किसी प्रकार की वाधा न पहुँचे।

अतः कुछ उत्कंठा के साथ एक दिन शाम के वक्त मै उनके घर पर पहुँचा। उनका मकान एक कच्ची गली में था और कुछ सुनसान तथा उदासीन सा जान पड़ा। इस पुराने, चूने से पुते मकान के बाहर एक क्षण भर खड़े होकर मैंने ताका। उसकी उभड़ी हुई खिड़कियो को देख कर मध्यकालीन यूरोप के मकानो की याद आती थी। मकान के भारी और पुराने किवाड़ो को जब मैंने पीछे ढकेला तो एक प्रकार की खड़खड़ाहट की गूँज सारे मकान मे फैल गई।

उसके साथ ही एक बूढी, जिसके चेहरे पर माता की स्नेह-मयी वात्सल्य हँसी सोह रही थी, दरवाजे पर आई और मुझ को देख कर बारबार प्रणाम करने लगी। वह बूढ़ी मुझ को राह दिखाती हुई एक अँधेरे मार्ग से ले चली। अन्त मे एक रसोई घर को पार करके हम पिछवाड़े के वाग मे पहुँच गये।

सब से पहले मेरी नजर एक विराट पीपल के पेड़ पर पडी जिसकी लम्बी शाखाओ की शीतल छाया मे एक पुराना कुआँ

था। बूढ़ी मुझे कुएँके दूसरी ओर एक कुटी के पास जहाँ वृक्ष की छाया का कुछ आनन्द मैं ले सकता था, ले चली। बाँस के खम्भों के सहारे वह कुटी खड़ी थी। उसके शहतीर लकड़ी के पतले लट्ठों के थे। ऊपर पुआल का छप्पर पड़ा था।

वह बूढ़ी, जिसका चेहरा ब्रह्म के चेहरे के समान ही काला था, गद्गद स्वर से कुछ तामिल वाक्य बोल उठी। मालूम होता था कि वह कुटी में रहने वाले किसी व्यक्ति को सम्बोधन करके बोल रही है। किसी की सुरीली आवाज़ ने भीतर से जवाब दिया। दरवाजा धीरे से खुला और ब्रह्म की मूर्ति बाहर आती हुई दिखाई दी। वे बड़े प्रेम के साथ मुझे अपनी साधारण कुटी में ले चले। वे दरवाज़ा बन्द करना भूल गये। बूढ़ी कुछ देर तक मेरी ओर ताकती हुई फाटक पर ही खड़ी रही। उसके चेहरे से अकथनीय आनन्द टपका पड़ता था।

मैंने अपने को एक सादे कमरे में पाया। सामने एक नीचा सोफा दीवार से लगा हुआ था। एक कोने में लकड़ी की एक बेंच पड़ी हुई थी। उस पर कई कागज बड़े अव्यवस्थित रूप से बिखरे पड़े थे। सुन्दर नकाशीदार पीतल का एक जल-कलश एक डोरी के सहारे शहतीर से लटक रहा था। फर्श पर एक बड़ी चटाई बिछी थी।

ब्रह्म ने ज़मीन की ओर इशारा करते हुए मुझसे कहा—"बैठ जाओ, अफसोस है हमारे यहाँ तुम्हारे लिए कोई कुर्सी नहीं है।"

चटाई पर हम बैठ गए; ब्रह्म, मैं और एक नौजवान विद्यार्थी जो अध्यापन का काम भी करता था। यह नौजवान मेरे लिए दुभाषिए का काम करता था। कुछ देर बाद बूढ़ी चली गई और फिर चाय का बरतन लेकर लौट आई। चटाई ही चाय पीने की

मेज़ का काम दे रही थी। उसी पर पीतल की रकाबियो मे बिस्कुट, नारंगी और केले रक्खे गये।

यह सुरुचिपूर्ण जलपान करने के पहले ब्रह्म मेरे गले मे एक पीले गेंदे की माला पहनाने लगे। मैने चकित होकर इसका विरोध किया। मुझे अच्छी तरह मालूम था कि हिन्दू लोग बड़े पूज्य व्यक्तियो को ही ऐसी मालाएं पहना कर आदर करते हैं और मैने कभी भी अपने को उन बड़ो मे नही गिना था।

मुस्कराते हुए ब्रह्म बोले—"लेकिन भाई! मेरी बात सुनो, तुम पहले ही यूरोपियन व्यक्ति हो जिसने मेरे यहाँ पधार कर मुझसे मित्रता की है। मुझे अवश्य ही अपना और इस बूढ़ी महिला का आनन्द इस ढंग से तुम्हारा आदर करके प्रकट करना चाहिए।"

तब भी मैने आपत्ति की, पर उसका कुछ भी असर नहीं हुआ। मुझे विवश ही वहाँ चटाई पर अपने गले मे आदर सूचक गेंदे की माला पहने बैठना पड़ा। मुझे इस बात का ख्याल करके खुशी हुई कि इस अजीब तमाशे को देखकर मेरी हँसी उड़ाने के लिए मेरा कोई यूरोपियन मित्र मेरे निकट नही था।

हम लोग थोड़ी देर तक चाय पीकर प्रसन्नता पूर्वक इधर उधर की बाते करते रहे। ब्रह्म ने मुझको बताया कि उन्होंने अपने हाथो से वह कुटी और सारा सामान बनाया था। कोने की बेंच पर जो कागज़ पड़े हुए थे उनको देखकर मेरे हौसिले बढ़े और मैने उनसे प्रार्थना की कि वे उन चीज़ो के वहाँ रहने का कारण कृपा करके बतावे। मुझे दिखाई पड़ा कि वे सारे कागज गुलाबी रंग के थे और सबके सब हरी स्याही से लिखे गये थे। ब्रह्म ने कुछ कागज उठाये। उन पर अजीब प्रकार के अक्षर लिखे

हुए थे। सहज ही में जाना जा सकता था कि वे अक्षर तामिल भाषा के थे। मेरे साथ जो नौजवान था, उसने इन कागज़ों को उठा कर देखा। वह बड़ी मुश्किल से उस लिपि को पढ़ पाता था। अब रही उसको समझने की बात; वह तो पढ़ने से भी अधिक कठिन थी। मेरे साथी युवक ने मुझको बताया कि वे कागज़ उच्चकोटि की अप्रचलित तामिल भाषा में लिखे हुए हैं। उसका कहना था कि वह भाषा आजकल की बोलचाल की भाषा नहीं थी। ग्रंथों में भी उसका अब प्रयोग प्रायः नहीं होता। वह प्राचीन तामिल साहित्य की भाषा थी। उसको अब बहुत कम लोग समझ पाते हैं। उसने बताया कि यह बद-किस्मती की बात है कि तामिल दर्शन और उत्तम साहित्य का रत्न-भांडार इसी प्राचीन तामिल में छिपा हुआ है और उसको समझने में आज की जीवित तामिल भाषा के जानने वालों को उससे भी अधिक कठिनाई होती है जो आजकल के साधारण अंग्रेज़ी पढ़े व्यक्ति को मध्यकालीन अंग्रेज़ी साहित्य के समझने में होती है।

ब्रह्म ने कहा—"मैंने इनमें से अधिकांश पत्रों को रात में लिखा है। कुछ मेरे योग की अनुभूतियों की पद्यात्मक रचनाएँ हैं और कुछ लम्बी कविताओं में मेरे मन ने अपने धर्म का स्रोत खोल दिया है। मेरी इन रचनाओं को ज़ोर से पढ़ने का आनन्द उठाने के लिए कुछ युवक यहाँ प्रायः आया करते हैं और वे अपने को मेरा चेला कहते हैं।"

ब्रह्म ने कागज़ों का एक बंडल उठाया जो बहुत ही सुन्दर और सुघड़ मालूम होता था। उसमें गुलाबी रंग के कुछ कागज़ थे। उन पर लाल और हरी स्याहियों से कुछ लिखा हुआ था। वे सब एक हरे फ़ीते से बँधे थे। मुस्कराते हुए ब्रह्म ने वह बंडल

उसकी इस पार्थिव संसार मे एक स्थूल अभिव्यक्ति ही प्राण या साँसे है। यह शक्ति अदृश्य है। वह शरीर के मुख्य अवयवो मे छिपी हुई है। जब यह शक्ति चली जाती है, साँसे रुक जाती हैं और फलतः मृत्यु हो जाती है। लेकिन प्राणायाम के द्वारा इस अदृश्य शक्ति-लहरी पर कुछ कब्ज़ा कर लेना असम्भव नही है। यद्यपि हम लोग अपने शरीर पर पूरा पूरा कब्ज़ा पा लेते है—यहाँ तक कि हम अपने हृदय के स्पन्दनो पर भी संयम रखते है—परन्तु क्या आप समझते है कि हमारे उन बुजुर्गों का ध्यान, जिन्होने इस योग मार्ग का सर्वप्रथम प्रतिपादन किया था, केवल शरीर और उसकी शक्तियो तक ही सीमित था ?"

प्राचीन योगियो और उनके विचारो तथा उद्देश्यो के बारे में मेरी जो कुछ भी धारणा रही हो वह तात्कालिक आश्चर्यपूर्ण जिज्ञासा की लहर से दब गई थी।

चकित होकर मै पूछ बैठा—"क्या आप अपने दिल की धड़कन बन्द कर सकते है ?"

बिना किसी प्रकार के घमंड का परिचय दिए उन्होने बड़ी शान्ति से कहा—"मेरे स्वतंत्र अवयव, दिल, पेट, जिगर और गुर्दे आदि, एक प्रकार से मेरे आज्ञाकारी हो गये हैं।"

"आप उनको अपने आधीन कैसे कर लेते है ?"

"कुछ आसन, प्राणायाम और धारणा आदि के एक विशेष तारतम्यपूर्ण अभ्यास से यह सम्भव हो जाता है। किन्तु यह शक्ति तो उच्च कोटि के कुछ योगियो मे ही होती है। वे अभ्यास इतने कठिन है कि बहुत कम लोग उन्हे सफलता के साथ कर पाते हैं। इन अभ्यासो के द्वारा दिल की मांस-पेशियो पर मैंने किसी हद तक अधिकार पाया है। और इन मांस-पेशियों के

द्वारा मैंने अपने शरीर के अन्य अवयवों पर भी कब्ज़ा पाने की चेष्टा सफलता के साथ की है।"

"यह तो एक अलौकिक बात मालूम होती है!"

"क्या आप का ऐसा ही विचार है? आप अपना हाथ मेरे दिल पर रखिए।"

यों कहते हुए ब्रह्म ने एक विचित्र आसन साधा और अपनी आँखें बन्द कर लीं।

मैंने उनकी आज्ञा का पालन किया और यह देखने की प्रतीक्षा करने लगा कि क्या होगा। कुछ मिनट तक ब्रह्म पर्वत के समान अचल थे। फिर उनके दिल की धड़कन धीरे धीरे घटने लगी। मैं चकित था कि वह और भी धीमा होती आती थी। मेरी नसों में एक प्रकार की सनसनी फैल गई। इतने में उनके दिल की धड़कन बिलकुल ही रुक गई। सात सेकेंड तक मैं बड़ी उत्कंठा के साथ दिल की धड़कन को सुनने की प्रतीक्षा करता रहा।

मैंने अपने मन को यह समझाने की चेष्टा की कि मुझे कुछ भ्रम हो गया है पर मेरी नसों की कुछ ऐसी हालत हो गई कि मेरा यह प्रयत्न व्यर्थ हुआ। इस मृतप्राय दशा से लौट कर जैसे जैसे ब्रह्म का हृदय पार्थिव जीव जगत की दशा पर पहुँचने लगा मेरा क्षोभ कुछ कम हुआ और दिल कुछ शान्त हो गया। हृदय स्पंदनों की संख्या क्रमशः बढ़ी और थोड़ी देर में उनका हृदय अपनी पहली हालत को पहुँच गया।

कुछ मिनट और बीतने पर योगी अपनी आत्म-लीनता की अचल दशा से जागे। धीरे धीरे उन्होंने अपनी आँखें खोलीं और पूछा :

"क्या तुमको दिल के स्पंदन के रुकने का पता चला ?"

"जी हाँ, एकदम साफ साफ प्रकट हुआ।" मुझे निश्चय हो गया था कि मैंने कोई स्वप्न नही देखा था और न मै किसी कल्पित भ्रान्ति का ही शिकार हुआ था। मुझे आश्चर्य होने लगा कि ब्रह्म और कौन कौन सी निराली योग की करामातों को दिखा सकते है।

मेरे इस मूक विचार के उत्तर के रूप मे ब्रह्म ने कहा :

"मेरे गुरुदेव जो करके दिखा सकते है उसके सामने यह यह एकदम तुच्छ है। उनकी किसी धमनी को—किसी नस को—काट डालिए तो भी वे अपने रक्त को बहने से रोक सकते है। रक्त के प्रसरण पर उनका कुछ ऐसा ही अधिकार है। मै भी अपने रक्त को कुछ कुछ अपने अधिकार मे ले आया हूँ पर वैसा तो मुझसे नहीं होता।"

"क्या आप यह अद्भुत बात मुझको दिखा सकते हैं ?"

उन्होंने मुझको उनकी कलाई पकड़ा कर नब्ज़ पर हाथ रखने के लिए कहा जिसमे रक्त के प्रसार का अच्छी तरह पता चलता रहे। मैंने ऐसा ही किया।

दो तीन मिनट के भीतर ही मुझे मालूम हो गया कि धीरे धीरे नाड़ी की गति धीमी पड़ने लगी। जल्द ही वह पूरे तौर से रुक गई। ब्रह्म ने अपनी नाडी की गति रोक ली।

मैंने बड़ी व्यग्रता के साथ नाड़ी के फिर से चलने की इन्तजारी की। एक मिनट बीत गया पर कोई नई बात नही हुई। और एक मिनट मैंने बड़ी व्यग्रता के साथ बिताया। तीसरा मिनट भी यो ही चला। चौथे मिनट मे आधा समय बीतने पर नाड़ी की गति

कुछ कुछ लौटती सी भासने लगी। कुछ देर बाद नाड़ी की पहले की सी गति हो गई।

मैं यों ही बोल उठा—" कैसे अचरज की बात है !"

ब्रह्म ने नम्रता पूर्वक कहा—" कुछ भी तो नहीं।"

मैंने कहा—" आज का दिन अद्भुत मालूम होता है। आप और कुछ करामातें दिखा दीजियेगा ? "

ब्रह्म कुछ आगा-पीछा करने लगे।

थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा—" अच्छा एक और; फिर आपको सन्तुष्ट हो जाना चाहिए।"

उन्होंने सोच विचार के साथ फर्श की ओर ताका और कहा—" मैं सांस को रोक दूंगा।"

मैं सन्न हो गया। कातरता के साथ पुकार उठा—"तब तो आप मर ही जायँगे।" वे मुस्कराए पर मेरी बात की उन्होंने कुछ भी परवाह न की।

"अच्छा, मेरे नथुनों पर अपनी हथेली धरो तो।"

मैंने कुछ संकोच के साथ उनकी आज्ञा का पालन किया। मेरे हाथ को बार बार उसांस की गरम हवा चूमने लगी। ब्रह्म ने अपनी आँखें मूँद लीं। उनका वदन मूर्तिवत् अचल हो गया जान पड़ा कि वे एक प्रकार की समाधि में लीन हो गए हैं। मैं अपनी हथेली को उनकी नाक के ऐन नीचे लगा कर इन्तजार करने लगा। वे ऐसे स्थिर और अचल बन गये मानों कोई गढ़ी हुई मूर्त्ति रक्खी हो। बहुत ही धीरे धीरे और बड़ी ही समता के साथ उनकी साँसों की गति मंद होने लगी। अन्त में एकदम रुक गई।

मैने उनके नथुनो और ओठो की ओर ताका, उनके कंधे और छाती को परख कर देखा, लेकिन एक भी ऐसी बात कही भी दिखाई नही दी जिससे श्वास-प्रश्वास की गति का पता चल जाय। मुझे मालूम था कि मेरी यह परख पूरी और पर्याप्त न थी। अतः मैने और भी अच्छी तरह जॉच करके देखना चाहा। लेकिन करूँ क्या ? मुझे एक उपाय सूझ गया।

कमरे मे कोई आईना तो था नही किन्तु उसके बदले एक अच्छी चमकीली पीतल की छोटी रकाबी मिली। उस रकाबी को मैने उनके नथुनो के पास रखा लेकिन उसकी चमकीली सतह पर आर्द्रता या नमी का कोई भी निशान नही पड़ा।

मेरे लिए यह विश्वास करना असम्भव सा मालूम होता था कि इस सभ्य शहर के एक प्रशान्त सभ्य भवन की एक शान्त कुटी मे मुझे एक ऐसी महिमामय बात का पता लग गया है जिसे पाश्चात्य विज्ञान को किसी न किसी दिन, अपनी इच्छा के विरुद्ध ही सही, लाचार हो कर स्वीकार करना पड़ेगा। लेकिन क्या करूँ। ऑखो के सामने इस बात का दृढ़ और अभ्रान्त प्रमाण उपस्थित था। योग केवल अनुपयोगी और मूल्य रहित कल्पित गाथा ही नही है, वह कुछ मानी रखता है।

जब कुछ देर बाद ब्रह्म योग मुद्रा से जागे तो कुछ थके हुए मालूम पड़े।

कुछ श्रमित हँसी के साथ वे बोले—"तुम्हे संतोष हुआ ?"

"जी हॉ, जरूरत से ज्यादा। लेकिन आप यह सब करते किस प्रकार है इसका कुछ भी पता नही लगता।"

"यह बात न बतलाने के लिए मै प्रतिज्ञाबद्ध हूँ। प्राण-रोध उच्च कोटि के योग के कष्ट-साध्य अभ्यासो मे से एक है उसका

साधन शायद यूरोपियनों के लिए भले ही निरर्थक हो, उन्हें वह चाहे मूर्खता ही जान पड़े किन्तु हमारे लिए वह बहुत बड़ा महत्त्व रखता है।

"लेकिन हम को तो सदैव यही सिखलाया गया है कि प्राण-रोध होने पर मनुष्य जिन्दा नहीं रह सकता। सचमुच यह कथन मूर्खतापूर्ण तो नहीं है ?"

"नहीं, आपकी बात मूर्खतापूर्ण कदापि नहीं है, किन्तु साथ ही यह नितान्त सत्य नहीं है। यदि मैं चाहूँ तो पूरे दो घंटे तक अपने प्राणों का निरोध कर सकता हूँ। मैंने कई बार ऐसा किया भी है। पर तुम देखते हो कि मैं मरा नहीं हूँ।" यह कह कर ब्रह्म मुस्करा उठे

"यदि आप प्रतिज्ञाबद्ध हैं तो उस रहस्य को प्रकट न करें। लेकिन आपके अभ्यासों के जो मूल सिद्धान्त हैं उनका तो कुछ स्पष्टीकरण आप अवश्य कीजिये।"

"बहुत अच्छा; कुछ जानवरों को गौर से देखने पर हमें कुछ बातों का पता चलेगा। इस प्रकार से प्रत्यक्ष उदाहरण दे कर किसी बात का प्रतिपादन करना मेरे गुरुदेव बहुत ही पसन्द करते हैं। बन्दर ही अपेक्षा हाथी अधिक मंद गति से साँस लेता है; और वह बन्दर से अधिक काल तक जीवित भी रहता है। कुछ दीर्घकाय साँप कुत्तों की अपेक्षा अधिक धीरे धीरे साँस लेते हैं पर उनकी बड़ी लम्बी आयु होती है। अतः संसार में ऐसे कुछ प्राणी हैं जिनको देखने से यह प्रमाणित होता है कि धीरे धीरे साँस लेने से आयु लम्बी हो सकती है। यदि आपने मेरी बात को यहाँ तक समझा है तो आगे को बात सहज ही समझ में आवेगी। हिमालय में कुछ ऐसे चमगादड़ हैं जो जाड़े के मौसिम भर

सोते रहते है। पहाड़ी गुफाओं मे वे हफ्तों तक सोते हुए लटके रहते है और इस बीच मे एक भी बार साँस नही लेते। कभी कभी हिमालय के रीछ भी जाड़े के मौसिम भर गहरी नीद मे पड़े रहते है। उनके शरीर लाशो के समान हो जाते है। जाड़े मे जब कि खाने को कुछ नही मिलता, हिमालय की गहरी गुफाओ मे वे महीनो तक सोते रहते है। यह नीद ऐसी होती है कि उसमे एक बार भी साँस नही लेनी पड़ती। यदि ये सब प्राणी साँस लिए बिना जीवित रह सकते है तो आदमी भी उसी प्रकार से क्यो नही जीवित रह सकता ?"

ब्रह्म की बतायी हुई सच्ची बातो का वर्णन बड़ा ही रोचक था परन्तु उनको सुन कर योग साधन के महत्त्व के प्रति उतना विश्वास नहीं जमा था जितना कि उनके आसनो तथा सांस रोकने आदि के प्रदर्शन से। परम्परागत तथा सर्वसाधारण मे प्रचलित यह विश्वास कि मनुष्य को जीवित रहने के लिए सांस लेना परम अवश्यक है इस प्रकार के थोड़े समय के प्रदर्शन के आधार पर गलत नही कहा जा सकता।

"साँस लेना बन्द करने पर भी जीवन बना रह सकता है इस बात को स्वीकार करना हम यूरोपियनो के लिए अत्यन्त कठिन है।"

ब्रह्म ने सूत्र रूप से इसके उत्तर मे कहा—"जीवन हमेशा ही बना रहता है। मरण केवल शरीर का एक धर्म है।"

अविश्वास के साथ मैने प्रश्न किया—"क्या आपका आशय यह तो नही है कि मृत्यु को जीतना भी मनुष्य के लिए सम्भव है।"

ब्रह्म ने मेरी ओर अनोखे ढंग से देखा और बोले—"सम्भव क्यो नही है।"

फिर कुछ देर तक सन्नाटा रहा। तब मेरी ओर तीक्ष्ण परन्तु सौम्य दृष्टि दौड़ाते हुए ब्रह्म ने कहा—"चूँकि तुममें योग साधनों को सिद्ध कर सकने की सम्भावनाएं दिखाई देती हैं मैं तुमको अपना एक प्राचीन रहस्य बताये देता हूँ। लेकिन इसको बतलाने के पहले तुम्हें प्रतिज्ञा करनी होगी।"

"वह है क्या ?"

"यह कि मैं जिन अभ्यासों को तुम्हें सिखाऊंगा उनको छोड़ कर और किसी प्रकार के प्राणायाम प्रयोगों को सिद्ध करने का प्रयत्न न करोगे।"

"इस शर्त को मैं मानता हूँ।"

"अपनी इस प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहना। अच्छा, तुम्हारा अब तक यही विश्वास रहा है कि साँस रोकने से मृत्यु हो जाती है।"

"जी हाँ।"

"तो फिर तुम यह भी स्वीकार करोगे कि एक बार जो हवा साँस के रूप में शरीर के भीतर ली गई हो वह जब तक शरीर में सुरक्षित रहे तब तक तो जीवन बना ही रहेगा ?"

"ख़ैर—?"

"हमारा दावा इससे बढ़कर और कुछ नहीं है। हमारा यही कहना है कि प्राणायाम में जो सिद्धहस्त हैं, जो अपनी इच्छा के अनुसार प्राण-रोध कर सकते है, वे अपनी जीवन शक्ति के प्रवाह की रक्षा कर लेते हैं। समझे ?"

"बात तो ठीक जान पड़ती है।"

"अब किसी ऐसे व्यक्ति का अनुमान करो जो योग में सिद्ध-हस्त हो, जो अपने प्राणों को भीतर ही भीतर निरोध करके रख

सकता हो और वह भी चन्द मिनट के लिए नही बल्कि हफ्तो, महीनो और वर्षों तक। अतः जब आप यह मानते है कि जहाँ साँस की हवा है वहाँ प्राण जरूर रहता है, तो क्या इससे यह सिद्ध नही होता कि मनुष्य के लिए दीर्घ जीवन अत्यन्त सम्भव है।"

मैने इस तर्क को मौन रहकर स्वीकार किया। इस कथन को असंगत कहकर मै कैसे टाल सकता था। और यह भी कैसे सम्भव है कि मै उनकी बातो पर पूर्ण विश्वास कर लेता। इस कथन के सुनने पर मुझे मध्यकालीन यूरोप के कीमियागोरो के थोथे स्वप्नो का स्मरण हो आया जो जीवन को अमर करने के लिए किसी संजीविनी बूटी की खोज मे ही एक एक करके मृत्यु के मुँह का कौर बन गए। यदि ब्रह्म स्वयं भ्रम मे नही फँसे है तो हमे धोखा देने मे उनका क्या प्रयोजन हो सकता है? न तो उन्होने अपनी ओर से मेरा पल्ला पकड़ने का प्रयत्न किया है और न उन्हे अपने चेले बनाने की ही कोई लालसा है।

मुझे एक विचित्र शका पैदा हुई। क्या ब्रह्म पागल तो नही है? किन्तु नही; प्रायः सभी अन्य बातो मे वे अत्यन्त युक्ति-संगत और बुद्धिमान मालूम होते है। बेहतर होगा कि उनको भ्रान्त ही समझा जाय। लेकिन मेरी अन्तरात्मा को यह बात भी स्वीकृत नही हो रही थी। मै चकित था।

वे फिर बोले—"क्या मै आपको विश्वास नही दिला सका? क्या आपने उस योगी के विषय मे नही सुना है जिसको महाराज रणजीत सिह ने लाहौर मे एक तहखाने मे बन्द कर दिया था। यह सारी घटना अंग्रेजी फौज के अफसरो की उपस्थिति मे हुई थी और सिक्खो के आखिरी बादशाह स्वयं भी उसे देख रहे थे। इस जीवित समाधि को छः हफ्तो तक सिपाहियो ने रखवाली

की थी पर आखिर को योगी चंगे और स्वस्थ रूप में अपनी कब्र से निकले थे। चाहें तो इस की सचाई की आप जांच कर सकते हैं। सुना है कि आपके सरकारी कागजातों में भी इसका उल्लेख है। उस फकीर ने अपने प्राणों पर गज़ब का कब्ज़ा जमा लिया था और वह मनमाने तौर पर मृत्यु से डरे बिना प्राणों का निरोध कर सकता था। साथ ही यह भी याद रखिये कि वह फ़कीर योग मार्ग में पहुँचा हुआ सिद्ध न था क्योंकि उससे परिचित एक बूढ़े आदमी से मुझे पता चला था कि उस फ़कीर का चरित्र अच्छा नहीं था। उस फकीर का नाम हरिदास था और वह उत्तर भारत का निवासी था। यदि उस फ़कीर को ऐसी शक्ति प्राप्त हो गई थी कि वह हवा से एकदम खाली जगह में उतने दिन जीवित रहकर, साँस लिये बिना गड़ा रह सका तब योग मार्ग में पहुँचे हुए सच्चे महात्माओं के लिए, जो छिपकर अभ्यास करते हैं और धन का लोभ जिनके दिल को छू नहीं गया है, इससे भी कहीं अधिक साधना प्राप्त होने में आश्चर्य ही क्या है?"

इस बातचीत के बाद सारगर्भित सन्नाटा छा गया।

वे फिर बोले—"हम योग मार्ग से और भी कई अद्भुत शक्तियों

---

* इस बात की मैने जाच की है। यह घटना लाहौर में सन् १९३८ में हुई थी। फकीर को कब्र में बन्द करते समय सिक्खों के बादशाह रणजीत सिंह, सर क्लाड वेज, डाक्टर हानिगबरगर और अन्य कई सज्जन मौजूद थे। रात दिन समाधि पर सिक्ख सिपाहियों का पहरा बना रहता था ताकि कोई धोखा न हो सके। ४० दिन के बाद कब्र खोदी गई थी। कहने की ज़रूरत नहीं है कि फ़कीर जीवित था। इसका विशेष विवरण कलकत्ते में सुरक्षित सरकारी कागजातों में मिलेगा।

पर कब्ज़ा पा सकते है। लेकिन इस गये गुजरे ज़माने मे ऐसी सिद्धियो का मूल्य चुकाने के लिये कौन तय्यार होगा ?"

फिर वातचीत का तार टूटा। मैने अपने इस नये युग के समर्थन मे वोलने की हिम्मत की—"दैनिक जीवन की उन्नति साधना मे तत्पर रहने वाले हम संसारी व्यक्तियो को इन विभूतियों की खोज के अतिरिक्त काफी काम करने है।"

"हॉ, मै मानता हूॅ। यह हठयोग का मार्ग इनेगिने लोगों के लिए ही है। यही कारण है कि इस विज्ञान के आचार्यो ने इसको इतनी सदियो से गोप्य रक्खा है। आचार्यगण स्वयं शिष्यो की खोज नही करते फिरते किन्तु शिष्यो को ही उन्हे ढूॅढ निकालना पड़ता है।"

× × ×

हमारी दूसरी भेट के समय ब्रह्म ने स्वयं मेरे घर पधारने की कृपा की। शाम का वक्त था। हम लोग शीघ्र ही भोजन करने वैठ गये। भोजन के बाद थोड़ी देर तक हमने आराम किया। फिर वरामदे मे, जहॉ चॉदनी छिटकी हुई थी, जाकर मै एक आराम कुर्सी पर लेट गया और ब्रह्म को फर्श पर बिछी हुई चटाई अधिक सुखद जान पड़ी।

कई मिनट तक हम दोनो चुपचाप पूर्ण चंद्र की विमल चॉदनी का आनन्द लूटते रहे।

पिछली भेट के समय जो अजीव घटनाएं मेरे देखने मे आई थीं वे मुझे भूली नही थीं। अतः थोडी ही देर वाद मैने फिर उन योगियों की चर्चा उठाई जो मृत्यु को धता वताने का अविश्वसनीय दावा उपस्थित करते है।

अपने सहज स्वभाव से ब्रह्म ने कहा—"क्यो नही। हठयोग

में पहुँचे हुए एक योगी दक्षिण भारत के नीलगिरि पहाड़ में छिपे रहते हैं। वे अपने निवासस्थान को छोड़ कर कभी बाहर नहीं जाते। उत्तर में हिमालय पर्वत में एक अन्य श्रेष्ठ योगी का निवास है। इन लोगों से तुम्हारी भेंट होना असम्भव है क्योंकि ये लोग जन-संगति से दूर रहते हैं। फिर भी इन योगियों के अस्तित्व की बात हम लोग परम्परा से सुनते चले आए हैं। कहते हैं कि इनकी उम्र कई सौ वर्ष की होगी।"

मैंने बड़े आदर के साथ अपनी शंका प्रकट करते हुए पूछा—"आप सचमुच ही इन बातों पर विश्वास करते हैं?"

"बेशक! मेरे सामने मेरे ही गुरू की जीती जागती मिसाल है।"

कई दिनों से मेरे मन में जो प्रश्न उठता रहा है वह इस समय फिर बल पकड़ने लगा। इतने दिनों से मैंने उसको प्रकट नहीं किया था। लेकिन अब चूँकि ब्रह्म के साथ हमारी दोस्ती गहरी हो गई थी मैंने प्रश्न पूछने की हिम्मत की। मैंने बड़ी उत्सुकता के साथ उनकी ओर ताका और पूछा:

"ब्रह्म, आपके गुरू कौन है?"

वे थोड़ी देर तक मेरी ओर वैसे ही ताकते रहे, पर उन्होंने कोई उत्तर देने की चेष्टा नहीं की। वे कुछ संकोच के साथ मेरी ओर देखने लगे।

अन्त में जब वे बोले तो उनकी आवाज़ बड़ी गम्भीर किन्तु धीमी थी:

"दक्षिण भारत में उनके चेले उन्हें येरुम्बु स्वामी के नाम से पुकारते हैं। इस नाम का अर्थ है 'चीटियों वाला स्वामी'।"

मैं बोल उठा—"कैसा अजीब नाम है!"

"मेरे गुरुदेव हमेशा चावल का आटा अपने साथ रखते है। वे कही भी रहे चींटियों को आटा खिलाते रहते है। लेकिन उत्तर में, और हिमालय की तराइयों के देहातों मे उनका दूसरा ही नाम प्रचलित है।"

"तब बताइये क्या वे हठयोग मे पूरे सिद्ध हो गये है ?"

"जी हाँ।"

"और आप यकीन करते हैं कि वे—?"

"कि उनकी आयु ४०० वर्ष से कुछ अधिक ही है।" यह कहते समय ब्रह्म बड़े ही प्रशान्त थे।

फिर सन्नाटा रहा।

चकित होकर मै उनकी ओर घूर कर देखने लगा।

ब्रह्म अपनी बात का तार पकड़ते हुए बोले—"उन्होंने मुझको कई बार बताया है कि मुगल राज्य मे क्या क्या हुआ था। उन्होने मुझे उन दिनो की भी बात बताई है जब आपकी ईस्ट इण्डिया कम्पनी पहले पहल मदरास मे स्थापित हुई थी।"

शक्की यूरोपियनो को भला इन बातो पर यकीन कैसे हो सकता है। अतः मैने कहा :

"यह भी कोई प्रमाण है ? इतिहास पढ़नेवाला बच्चा बच्चा इन बातो से अच्छी तरह परिचित है।"

ब्रह्म ने मेरी बातो की कुछ भी परवाह नही की। वे बोलते गये :

"मेरे गुरुदेव को पानीपत का पहला युद्ध[1] अच्छी तरह याद है। पलासी का युद्ध[2] भी उनको भूला नही है। मुझे याद है

---

१ यह युद्ध सन १५२६ मे हुआ था।

२ इस युद्ध की तिथि सन् १७५७ है।

कि एक बार उन्होंने अपने एक अन्य चेले को ८० वर्ष का बच्चा कहकर पुकारा था !"

उस रात को निर्मल चाँदनी में मुझे साफ़ साफ़ दिखाई पड़ा कि इन अजीब बातों का बयान करते समय ब्रह्म का काला और चपटी नाक वाला चेहरा कितना प्रशान्त और गम्भीर था। इस ज़माने की वैज्ञानिक मनोवृत्ति में पला हुआ मेरा दिमाग खरी कसौटी पर कसे बिना ऐसी बातों पर कैसे विश्वास कर सकता था ? आखिर को ब्रह्म भी तो हिन्दू होने के नाते, उन लोगों की जनश्रुति और ऐतिहासिक कपोल-कल्पना को सच मानने की आदत से एकदम मुक्त नहीं होंगे। उनसे बहस करना व्यर्थ था। अतः मैंने इरादा कर लिया कि चुप रहूँ।

योगी कहने लगे :

"ग्यारह वर्ष से कुछ अधिक काल के लिए मेरे गुरू नेपाल के पुराने महाराजाओं के आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक रह चुके हैं। वहाँ, हिमालय की तराइयों में रहने वाले देहाती लोग उनको खूब जानते हैं और उनपर उन लोगों का बड़ा हार्दिक प्रेम है। जब मेरे गुरुदेव उन देहातों में पधारते थे उनका देवतुल्य सत्कार किया जाता था। तो भी मेरे गुरुदेव उनसे ऐसे प्रेम और वात्सल्य के साथ बात किया करते थे कि मानों कोई पिता अपने बच्चों से बोल रहा हो। वे जाति-पाँति के भेदों की कुछ भी परवाह नहीं करते हैं और मत्स्य-माँस को छूते तक नहीं।"

अकस्मात् मेरे विचार मुँह से निकल पड़े—"इतने वर्ष तक जीवित रहना कैसे सम्भव हो सकता है ?"

ब्रह्म अपनी दृष्टि दूर गड़ाए हुए थे। शायद मेरी उपस्थिति का उनको ख्याल तक न था।

वे बोले—"यह तीन प्रकार से हो सकता है। पहला उपाय यह है कि हठयोग के बताए हुए समस्त आसन, प्राणायाम के भेद और सभी रहस्यपूर्ण अभ्यासो का पालन किया जाय। यह अभ्यास तब तक जारी रक्खा जाय जब तक कि पूरी सिद्धि प्राप्त न हो। यह तभी हो सकता है जब साधक को कोई ऐसा गुरू मिले जो स्वयं ही अपने उपदेशो का सच्चा और जीवित उदाहरण हो। दूसरा उपाय यह है कि योग शास्त्र का गहरा अध्ययन करने वाले व्यक्तियो द्वारा बताई हुई कुछ जड़ी-बूटियो का नियम पूर्वक सेवन किया जाय। सिद्धहस्त योगी इन बूटियो को सफर करते समय अपने कपड़ो मे छिपाकर या और किसी गुप्त प्रकार से साथ लिए रहते है। जब ऐसे योगियो के निधन का समय निकट आ पहुँचता है तो वे किसी योग्य शिष्य को बुलाकर उसे अपने मूल रहस्य को बता देते है और अपनी जड़ी-बूटी उसे सौप देते है। ये बूटियाँ और किसी को नही दी जाती। तीसरा उपाय सहज मे समझाया नही जा सकता।" यह कहकर ब्रह्म ने एक-बारगी बोलना बन्द कर दिया।

मैने जोर देकर कहा—"क्या उसे समझाने का प्रयत्न भी न कीजियेगा ?"

"मुमकिन है कि आप मेरी बातो पर हँसे।"

मैने उनको यकीन दिलाया कि ऐसा कभी नही करूँगा और उनके बयान को बड़े आदर से सुन लूँगा।

"अच्छा समझाता हूँ। मनुष्य के मस्तिष्क के अन्दर एक सूक्ष्म रंध्र है। इसी ब्रह्मरंध्र के अन्दर जीवात्मा का निवास है। इस ब्रह्मरंध्र को सुरक्षित रखने वाली एक प्रकार की ढकनी भी मौजूद है। रीढ़ के निचले सिरे से एक अदृश्य जीवन-स्रोत बहता है। इसके बारे मे मैंने तुमसे कई बार जिक्र भी किया है।

मुझे यही शिक्षा दी गई है। ऐसे योगी के मरने पर कीड़े-मकोड़े उसके शव पर आक्रमण नही करेगे। १०० वर्ष बीत जाने पर भी ऐसे योगी की मॉस-पेशियो मे नश्वरता के कोई भी चिह्न नजर नही आयेगे।"

मैने इस वर्णन के लिए ब्रह्म को बहुत धन्यवाद दिया, लेकिन मै आश्चर्य मे डूब गया था। मुझे इन बातो मे बहुत ही अधिक दिलचस्पी थी लेकिन मेरे दिल को विश्वास नही होता था। शरीर-विज्ञान मे इस प्रकार के किसी भी जीवन-स्रोत का कोई उल्लेख नही है। शरीर-विज्ञान को उस अमृतसिंधु का निश्चय ही पता नही है। शरीर सम्बन्धी ये अलौकिक कहानियाँ क्या कुछ अंधविश्वासियो की कल्पित गलतफहमियाँ तो नही है? ये लोग कल्पित कहानियो के उस युग के जीव जान पड़ते है जब दीर्घ-जीवी जादूगर आबे हयात या जीवन-सुधा को अपने कब्जे मे समझ बैठे थे। तिस पर भी ब्रह्म ने जिन योग के अभ्यासो का प्रदर्शन मुझको दिखाया था, उन प्राण और रक्त-प्रसार के निरोध आदि से मुझे कम से कम इतना विश्वास पैदा हो गया कि योग की विभूतियाँ सिर्फ झूठमूठ की गपोड़बाजियाँ और टोने-टटके नही है। इसके विपरीत मुझे जान पड़ा कि योग के मर्म से अनभिज्ञ लोगो को योग के आसन तथा क्रियाएं निश्चय ही आश्चर्य मे डालने वाली तथा अविश्वसनीय जान पड़ेगी। ब्रह्म की बातो का इससे अधिक विश्वास और समर्थन करना मेरे लिए असम्भव है।*

---

* ब्रह्म की समस्त आश्चर्यपूर्ण कथन और आत्म-विश्वास से भरी हुई योग सम्बन्धी उक्तिया इस समय मुझे एक विचित्र स्वप्न के समान जान पड़ती है। उनको लिपिबद्ध करते समय कई बार मेरे मन मे यह विचार प्रबल रूप से उठा है कि मै उन्हे अपनी पुस्तक मे स्थान न दू, यहाँ तक

मैंने अदब के साथ मौन धारण किया और सावधानी से अपने दिमाग में उठनेवाली शंकाओ की झलक तक चेहरे पर प्रकट नहीं होने दी।

ब्रह्म ने फिर कहा—"जो लोग मौत के घाट के निकट पहुँचने वाले है वे ऐसी शक्तियों को हासिल करने के लिए वहुत उत्सुक होगे लेकिन यह बात कभी भी भुलानी न चाहिए कि इस मार्ग मे तीखे कॉटे है। इन अभ्यासो के बारे मे हमारे आचार्यों के इस कथन पर कि 'इनको ऐसी सावधानी के साथ छिपाये रखना चाहिए मानो ये हीरो की पेटी हों' लोगो को तनिक भी आश्चर्य न करना चाहिए।"

"तब आप कदाचित् इन रहस्यो को मुझे न बतलाना चाहेगे?"

एक मन्द मुस्कराहट उनके ओठों पर खिल उठी। बोलेः

"जो सिद्ध होना चाहते हैं उनको तो चाहिए कि वे दौड़ने से पहले चलना सीखें।"

"ब्रह्म, अब मैं अपना अन्तिम प्रश्न पूछना चाहता हूँ।"

ब्रह्म ने हामी भर ली।

"क्या आपके गुरू अब भी जीवित हैं?"

"नेपाल की तराई के जंगल के उस पार पहाड़ों में एक मन्दिर है। उसी में वे निवास करते हैं।"

कि उसके कितने ही अंश अन्त मे मैंने पुस्तक मे नहीं दिये हैं। मैं यह समझता हूँ कि विज्ञ अंग्रेज पुस्तक के इस भाग को पढ़ कर उन्हें भ्रमपूर्ण अन्धविश्वास मात्र ही मानेंगे और उनको उपेक्षा की दृष्टि से देखेंगे। अपने स्वतंत्र निर्णय से नहीं किन्तु दूसरे मित्रों के कहने पर मैंने अन्त मे इस प्रसंग को अपनी पुस्तक मे स्थान दिया है।

"उनके इस देश मे फिर लौटने की कोई सम्भावना नही है ?"

"उनके गमनागमन के बारे मे कोई भी नही कह सकता। हो सकता है कि वे नेपाल मे कई वर्ष तक रह जायं, हो सकता है कि वे फिर सफर पर चल दे। वे नेपाल को बहुत ही पसन्द करते है क्योकि वहाँ भारत की अपेक्षा हठयोग पद्धति अधिक फूलती-फलती है। आपको जानना चाहिए कि हठयोग के भी आचार्यो और सम्प्रदायो के भेद से कई भेद हो गये है। हमारा मार्ग तंत्र मार्ग है। हिन्दुओ की अपेक्षा नेपाली लोग उसको अधिक अच्छी तरह समझ पाते है।

ब्रह्म चुप हो गये। मैने ताड़ लिया कि वे अपने गुरुदेव की रहस्यमय मूर्ति के ध्यान मे लीन हो गये है। भला! आज की रात मे जो बाते मेरे सुनने मे आई है वे यदि कल्पित कहानियाँ न होकर वास्तविक तथ्य हो तो अज्ञान की यवनिका के के पीछे जो कुछ हो उसकी—मनुष्य के अमर जीवन के मर्म की—एक झलक हम जरूर ही पा सकते है।

× × ×

यदि मै अपनी कलम तेजी के साथ न चलाऊं तो यह परिच्छेद कभी समाप्त नही होगा। अत अब मै पॉच नाम वाले इस योगी के साथ अपनी सबसे अन्तिम भेट के संस्मरण लिखूंगा।

हिन्दुस्तान मे शाम के बाद रात बहुत ही जल्दी आ जाती है, यूरोप के समान संध्या बहुत देर तक फैली नही रहती। शीघ्र ही गोधूलि का धुँधलापन ब्रह्म की कुटिया पर फैलने लगा। ब्रह्म ने एक छोटा दिया जला दिया और एक डोरी के सहारे उसको छप्पर से लटका दिया। हम दोनो बैठ गये। बूढ़ी बड़ी बुद्धिमानी के साथ चली गयी और हम तीन—मै,

ब्रह्म और मेरा दुभाषिया—अकेले रह गये। धूप की सुगन्धि चारों ओर फैल गयी और उसने कमरे के रहस्यपूर्ण वातावरण को और भी बढ़ा दिया।

आज के दिन मेरे मन पर वियोग के विषाद की छाया पड़ी थी। मैंने उसको हटाने की चेष्टा व्यर्थ ही की। दुभाषिए के द्वारा ब्रह्म को मैं साफ साफ अपने दिल की बात नहीं बता सका। उनके प्रतिपादित विचित्र सिद्धान्त और अनोखी बातें कहाँ तक ठीक हैं, यह मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता, पर उन्होंने जो मुझे अपनी तनहाई में दखल देने दिया था उनकी इस तत्परता की तारीफ़ किये बिना मुझ से रहा नहीं जाता। कभी कभी मुझे अनुभव होने लगता था कि सहानुभूति के कारण हम दोनों के हृदय एक दूसरे के बहुत समीप आ गये हैं। अब मुझे अच्छी तरह मालूम हो गया कि मुझे अपने अन्तरंग तक पहुँचने देने मे ब्रह्म ने मेरे साथ कितनी बड़ी रिआयत की है और मुझे कितना आदर प्रदान किया है।

भावी वियोग की छाया के तले, उनको अपने गहरे मर्मों के निगूढ़ रहस्यों का प्रतिपादन करने के लिए प्रेरित करने की मैंने आज अन्तिम चेष्टा की।

उन्होंने मानों मेरी तह लेते हुए पूछा :

"क्या शहरों के जीवन को तिलांजलि देकर कुछ वर्ष तक पहाड़ों या जंगलो के किसी निर्जन स्थान मे रहने के लिए तय्यार हो ?"

"इसका उत्तर मै खूब सोच-विचार करने के बाद ही दे सकता हूँ।"

"अपने अन्य सारे काम-काज को, अपने सारे भोग-भाग्य

को, अपनी सारी फुरसत को हमारे योग मार्ग के अभ्यासो पर चन्द महीनो के लिए नही, कुछ वर्ष तक निछावर करने को तय्यार हो ?"

"मै समझता हूँ नही—न, मै तय्यार नही हूँ। शायद एक दिन—"

तो फिर मैं आपको इससे अधिक कुछ भी नही बता सकता। हठयोग का मार्ग अपनी फुरसत के समय दिल बहलाने का खेल नही है। यह तो बड़ी ही टेढ़ी खीर है—बड़ा ही खतरनाक मार्ग है।"

मैने देखा कि मेरी योगी बनने की सारी सुविधाएं शीघ्र ही शून्य मे विलीन हो रही है। खेद के साथ मुझे मानना पड़ा कि सम्पूर्ण योग मार्ग कई वर्षो तक की कड़ी शिक्षा, उसके कठोर और संयत यम-नियम मेरे लिए नही है। लेकिन शरीर पर विजय पाने से भी परे एक और बात मेरे मन मे जमी हुई थी। मैने ब्रह्म पर अपने मन की बात प्रकट कर दी।

"ब्रह्म, ये विभूतियाँ सच हो अद्भुत और मन को खींच लेने वाली है। एक दिन सचमुच आपकी इस परिपाटी मे अपने आप को शिक्षित करने का मेरा विचार है। तब भी उनसे चिर आनन्द कहाँ तक मिल सकता है ? इससे भी सूक्ष्मतर कोई दूसरा योग मार्ग नही है ? शायद मेरी बाते स्पष्ट नही है ? क्यो ?"

ब्रह्म ने सर हिलाते हुए कहा :

"हाँ समझा।"

हम दोनो मुस्कराये।

धीरे धीरे ब्रह्म बोले :

"हमारे ग्रंथों में कहा गया है कि विद्वान योगी हठ योग के बाद मनोयोग या राजयोग का भी अभ्यास अवश्य करेगा। लेकिन यह कहा जा सकता है कि हठयोग कर लेने के बाद राज-योग का मार्ग साफ हो जाता है। जब हमारे प्राचीन ऋषियों को महायोगी भगवान महादेव ने हठयोग के सिद्धान्त प्रदान किये थे तो यह बता दिया था कि जड़ शरीर पर विजय पाकर ही संतोष न करना चाहिए। हमारे ऋषि जानते थे कि हठयोग की सिद्धि मनोविजय का एक सोपन मात्र है और राजयोग भी आध्यात्मिक सम्पूर्णता के मार्ग में एक और सीढ़ी ही है। अतः आपको ज्ञात हुआ होगा कि हमारी प्रणाली पहले अत्यन्त स्थूल और निकटवर्ती वस्तु, अर्थात शरीर से ही शुरू होती है और वह भी आत्मा की गहराई का पता लगाने में एक उत्तम साधन की हैसियत से ही। इसी कारण मेरे गुरुदेव ने मुझे आदेश दिया था: 'पहले हठयोग की सिद्धि कर लो तब राजयोग का अव-लम्बन कर सकते हो।' याद रखना, जिसका शरीर क़ाबू में आ गया है उसका मन चंचल या विक्षिप्त हो ही नहीं सकता। बहुत कम लोग ऐसे होंगे जो सीधे चित्त-वृत्ति-निरोध के मार्ग पर आरूढ़ हो सकेंगे। इस पर भी राजयोग की ओर अपने को जो ज़ोर के साथ आकृष्ट पावे उसको तो हम उस मार्ग से निवृत्त करने की चेष्टा ही नहीं करते। उसके लिए वही मार्ग अनुकूल होगा।"

"तो वह केवल मानसिक योग है?"

"ऐसा ही है। उसमे चित्त को एक अचल स्थिर ज्योति बनाने की चेष्टा की जाती है। फिर उस ज्योति को उलट कर उसके केंद्र पर, उसकी उत्पत्ति के स्थान पर, आत्मा को लगाने की चेष्टा की जाती है।"

"उसके शिक्षण का प्रारम्भ किस प्रकार किया जा सकता है ?"

"उसके लिए भी गुरू की आवश्यकता है "

"गुरू कहाँ मिले ?"

ब्रह्म ने अपने कन्धे उछालते हुए कहा—"भाई, जो सचमुच भूखे हो वे बड़ी व्यग्रता के साथ भोजन को खोजेगे। जो भोजन न मिलने के कारण उपवास करते हो वे पागलो के समान भोजन की तलाश करेगे। भूखा, फाका करने वाला जैसे खाने के लिए बावला होता है उसी प्रकार तुम भी गुरू के वास्ते यदि बावले हो उठोगे तो गुरू सचमुच तुम्हे मिल जायंगे। हार्दिक इच्छा के साथ जो गुरू को खोजेगे उनको निस्सन्देह निश्चित समय पर, गुरू प्राप्त हो ही जायगे।"

"तो आपका विचार यह है कि इसमे भी विधि का बदा हुआ निश्चित समय है।"

"आपका कहना ठीक है।"

"मैने कुछ किताबो मे पढा है कि—"

"गुरू बिना उन किताबो का कोई मूल्य नही। गुरू के न रहने पर वे किताबे रद्दी कागजो के समान है। हम जो 'गुरू' शब्द कहते है, उसका एक विशेष अर्थ है। वह है 'अन्धकार (अज्ञान) को दूर करने वाला'। जो पर्याप्त प्रयत्न करे और साथ ही जिसके भाग्य मे सच्चा गुरू पाना बदा हो, वह शीघ्र ही ज्योति-लाभ कर लेगा, क्योकि सच्चे गुरू अपने शिष्य को अपनी उत्तम सिद्धियो से मदद पहुँचाये बिना नही रहते।'

ब्रह्म अपनी बेंच के पास गये जहाँ कागजो का ढेर लगा था और एक बडी पोथी ले आये। उन्होने उसको मेरे हाथो में

रक्खा। उस पर एक क्रम से कुछ रहस्यपूर्ण संकेत और अजीब प्रतीको के चित्र खीचे गये थे। कहीं कहीं लाल, हरी और काली स्याही से तामिल भाषा में कुछ अक्षर लिखे हुए थे। मुख-पृष्ठ पर एक बड़ा रहस्यमय प्रतीक अंकित था। उसमे मुझे सूर्य, चन्द्र और मनुष्य की आंखों की रेखाएं दिखाई दी। चित्र के बीच में कुछ जगह खाली रक्खी गई थी जिसके चारों ओर तरह तरह के कई खाके बने हुए थे।

ब्रह्म ने कहा—"कल रात को इसके तय्यार करने में मुझे कई घन्टे लगे। जब तुम घर लौट जाना तब मेरा एक फोटो बीच के रिक्त स्थान पर चिपका देना।"

ब्रह्म ने मुझ से कहा कि यदि मैं उस विचित्र पत्र पर रात को सोने से पहले पाँच मिनट तक ध्यान जमाऊँगा तो उनके बारे मे अथवा उन्हीं का साफ़ और स्पष्ट सपना देखूँगा।

"हम दोनो के बीच में चाहे हज़ारों मील का फ़ासला हो तो भी यदि आप इस पत्र पर ध्यान जमायेंगे तो रात के वक्त हम दोनो की आत्माएँ मिल जावेंगी।" उन्होंने यह भी विश्वास दिलाया कि स्वप्न की यह भेंट उतनी ही सच्ची होगी जितना कि हम दोनो का उस समय सामने बैठ कर बातचीत करना।

इसको सुन कर मैंने उनसे कहा कि मेरा सब सामान बँध गया है और मै जल्द ही उनसे विदा लेने वाला हूँ। साथ ही मै निश्चित रूप से यह नहीं कह सकता था कि फिर से मैं उनका कब और कहाँ दर्शन कर सकूँगा।

उन्होंने उत्तर देते हुए कहा कि जो हो विधि का बदा ज़रूर हो कर रहेगा। फिर मुझ पर विश्वास दिखाते हुए बोले :

"मैं इस वसन्त ऋतु में यहाँ से रवाना होने वाला हूँ। तब मैं

तंजौर जाऊँगा क्योकि वहाँ दो शिष्य मेरी इन्तजारी मे है। वाद को क्या होगा कौन कह सकता है। तो भी आप जानते हैं कि मेरा दृढ विश्वास है कि एक दिन मेरे गुरू मुझे अवश्य बुला भेजेगे ."

फिर वड़ी देर तक खामोशी छाई रही। तब बड़े आहिस्ते, अत्यन्त धीमी आवाज मे, ब्रह्म बोलने लगे और मै भी कुछ नवीन उपदेश सुनने की उत्कंठा के साथ दुभापिए की ओर फिरा।

"कल रात को मेरे गुरुदेव ने मुझे दर्शन दिये। उन्होने तुम्हारे बारे मे ही कहा था : 'तुम्हारा मित्र, ज्ञान पाने के लिए लालायित है। अपने पिछले जन्म से वह हमारे बीच मे था। उसने योग का अभ्यास किया, लेकिन हमारे योग की पद्धति के अनुसार नही। आज वह फिर भारत मे आया है, लेकिन गोरे चमड़े मे। पिछले जन्म मे वह जो जानता था अब भूल गया है। लेकिन यह विस्मृति वहुत दिन तक नही बनी रहेगी। जब तक गुरू की उस पर कृपा नही होगी तव तक वह उस पुराने ज्ञान को याद नही कर सकेगा। गुरू की कृपा होते ही इसी शरीर मे उसे अपने पूर्व ज्ञान की स्मृति हो जायगी। अपने दोस्त से कह दो कि उसे गुरू जल्द ही मिलेगे। फिर तो उसको अपने आप ही ज्ञान' प्राप्त हो जायगा। इस मे किसी प्रकार का सन्देह नही है। उससे कह दो कि वह वेचैन न हो। जब तक मेरी वात चरितार्थ न हो तब तक वह इस भूमि को छोड़ कर न जाय। विधि ने ही लिख डाला है कि वह खाली हाथ से भारतवर्ष नही जायगा।"

मैं हैरान था।

दीपक की मन्द किरणे हम लोगो पर पड़ रही थी। उसके पीले आलोक मे दिखाई पड़ा कि मेरे दुभापिए का चेहरा संभ्रम और आश्चर्य के कारण पीला पड़ गया है।

मैंने सन्देह प्रकट करते हुए प्रश्न किया—"आप ने तो मुझ को बताया था कि आपके गुरू सुदूर नेपाल में हैं।"

"हाँ, बेशक! वे अब भी वहीं हैं।"

"तो यह कैसे हो सकता है कि एक ही रात में वे १२०० मील का फ़ासला तय कर बैठें।"

ब्रह्म गूढ़ आशय के साथ मुस्करा पड़े और बोले :

"हिन्दुस्तान के एक छोर से दूसरे छोर तक का सारा फासला भले ही हमारे बीच में हो, तब भी वे हमेशा मेरे लिए उपस्थित रहते हैं। बिना किसी प्रकार के डाकिये या चिट्ठी-पत्री के ही मुझे उनका संदेश मिल जाता है। हवा में से उनके विचार मेरे पास पहुँच जाते हैं। वह जब मेरे निकट आ जाते हैं, मैं समझ जाता हूँ।

"क्या यह कोई मानसिक बे-तार के तार की व्यवस्था है?"

"यदि आप चाहें तो ऐसा ही समझ लें।"

जाने का वक्त निकट था। मैं उठ खड़ा हुआ। आखिरी बार चाँदनी में एक साथ घूमने के लिए हम बाहर निकले। ब्रह्म के घर के पास जो मन्दिर था उसकी पुरानी दीवारों को हम पार कर गये। चाँद वृक्षों की विरल शाखाओं से आँखमिचौनी खेल रहा था। अन्त में हम ताड़ों के एक सुन्दर झुरमुट के नीचे सड़क से हट कर खड़े हो गये। मुझसे बिदा होते हुए ब्रह्म गुनगुनाए :

"तुम जानते हो कि मेरी बहुत थोडी सांसारिक सम्पत्ति है। देखो, इस अंगूठी को मैं बहुत प्यार करता हूँ। तुम इसे ले लो।

उन्होंने अंगूठी अपनी उँगली से निकाली और अपनी दाहिनी हथेली पर रख कर मेरी ओर हाथ बढ़ाया। चाँद की

किरणो मे उनकी हथेली के बीच सोने की अंगूठी चमक रही थी। अंगूठी के बीच मे एक हरा रत्न जगमगा रहा था। उस रत्न पर लालिमा मिश्रित भूरे रग की महीन रेखाएँ दीख पड़ती थी। जब हम उनसे गले मिले तो ब्रह्मा ने अंगूठी मेरे हाथ मे रख दी। मैने उसको लौटाने की चेष्टा की पर उन्होने और भी जोर दिया और मुझे उसे ले लेना पड़ा।

वे बोले '

"योग मे पहुँचे हुए एक महात्मा ने मुझे यह अंगूठी दी थी। उन दिनो ज्ञान-संग्रह के लिए मै बहुत घूमा करता था। अब आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप यह अंगूठी पहन ले।

मैने उनको धन्यवाद दिया और कुछ परिहास के ढंग मे कहा :

"क्या इससे मेरा भाग्य जागेगा ?"

"नही। यह अंगूठी ऐसा तो नही कर सकती, किन्तु इस रत्न मे एक शक्तिशाली जादू है। इसकी मदद से तुम बड़े बड़े महात्माओ से और छिपे हुए योगिराजो से भेंट कर सकोगे। इसकी मदद से तुम अपनी आध्यात्मिक शक्तियो से भी परिचित हो जाओगे। इसकी सचाई तुम्हे अनुभव से ही मालूम होगी। जब तुम्हे इन चीजों की जरूरत हो तुम इसको पहन लेना।"

फिर बड़े प्रेम के साथ हम बिछुड़े और अपनी अपनी राह पकड़ कर चल दिये।

मै धीरे धीरे चलने लगा। मेरे दिमाग़ मे अजीब प्रकार के विचारो का संघर्ष मचा हुआ था। ब्रह्म के दूरवर्ती गुरुदेव के संदेश पर मै मनन करने लगा। वह इतना अलौकिक था कि मै उसका विरोध भी नही कर सका। उस सदेश के सामने मैने हार

मान कर चुप्पी साध ली, पर मेरे दिल के भीतर विश्वास और शंका का तुमुल युद्ध चल रहा था।

मैंने उस अंगूठी की ओर देख कर अपने से पूछा—इन मामलों में अंगूठी की क्या महत्ता हो सकती है? वह किस प्रकार से अपना प्रभाव दिखा सकती थी यह बात मेरी समझ के बाहर थी।

यह विश्वास करना कि वह मानसिक या आध्यात्मिक, किसी भी रूप से, मेरे या दूसरों के ऊपर प्रभाव डाल सकती है, घोर अंध-विश्वास ही प्रतीत होने लगा। लेकिन उसकी महिमा के बारे मे ब्रह्म को कैसा अटल विश्वास था! क्या वैसा होना सम्भव है? प्रेरणावश मुझे कहना ही पड़ा—हाँ ऐसा ही मालूम पड़ता था—कि इस अजीब देश में कोई भी बात भला असम्भव है? लेकिन विवेक ने मेरे मन को प्रश्नार्थक चिह्नों से भर दिया।

मै सोचते सोचते, ध्यान और मनन में लीन होकर अपने को ही भूला जा रहा था। अतः मैं वहाँ से आगे चलने लगा कि अचानक किसी चीज़ से अपना माथा टकरा जाने से मै चौंक पड़ा। सामने ताड़ का एक विराट वृक्ष अपने उन्नत मस्तक को अनन्त आकाश की ओर उठाये हुए मानों उन्नत जीवन की अमर गाथा सुना रहा था। उसके विरल पत्तों के बीच में अगणित जुगनू चमक चमक कर आशामय ज्योतियो के साथ नाच रहे थे।

रात का विमल गगन अथाह नीलिमा में मग्न था। शुभ्र ज्योति वाला शुक्रतारा हमारे इस भूमंडल के बहुत ही निकट मालूम पड़ रहा था। मैं चलने लगा तो सारा मार्ग अनन्त शान्ति

से आवृत प्रतीत होने लगा। एक अद्भुत शान्ति मेरे भीतर फैल गयी थी और मै एकदम आनन्द की उद्वेग रहित प्रशान्ति मे लीन हो गया। वे चमगादड़ भी जो बीच बीच मे मेरे ऊपर से उड़ते हुए निकल जाते थे अपने पंखो को धीरे-धीरे डुलाते हुए प्रतीत होने लगे। सारा दृश्य मन को मोहित कर रहा था। मै एक क्षण भर खड़ा हो गया। चन्द्रमा की चॉदनी ऐसी छिटकती थी कि उसने मेरे निकट पहुॅचने वाले एक व्यक्ति को मेरी दृष्टि से एक सफेद उड़ता हुआ भूत सा बना दिया।

मै घर पहुॅचा। बहुत रात बीतने पर भी मुझे नीद नही आई। सबेरा होने से कुछ ही पहले मुझे गहरी नीद ने धर दबाया और मेरे मानसिक संघर्ष को सुखद विस्मृति के तहखाने मे बन्द कर दिया।

७

मौनीबाबा

अपनी राम कहानी के सिलसिले को कुछ देर के लिए मुझे तोड़ना पड़ रहा है क्योकि एक दिलचस्प बात का जिक्र करने के लिए मुझे एक दो हफ्ते पहले की बातें बतानी है।

मद्रास शहर के निकट मै जब रहता था तब शहर में रहने वाले भारतीयों से ऐसे व्यक्तियों के सम्बन्ध में पूछ-ताँछ बराबर करता रहता था जिनकी खोज करने के लिए मैं निकला था। मैंने जजों, वकीलो, अध्यापको, सेठ-साहूकारो और एक-दो मशहूर धार्मिक व्यक्तियों से भी इस बारे में बातचीत की। मैंने अपने हमपेशे के व्यक्तियों, अर्थात् सम्वाददाताओं और अखबारनवीसों, से मिलने में भी कुछ समय बिताया। इनमें से मुझे एक सहायक सम्पादक का परिचय प्राप्त करने का अवसर मिला जिन्होंने मुझे बताया कि युवावस्था में उन्होंने योग का रुचि पूर्वक अध्ययन किया था। उन्होंने उस समय एक ऐसे गुरू की चरण सेवा की थी जो उनकी समझ में राजयोग में पूर्ण सिद्ध थे; परन्तु उनके वे गुरु लगभग १० वर्ष पूर्व स्वर्ग सिधार चुके थे।

यह महाशय, जो किसी समय योग के विद्यार्थी रहे थे, बड़े बुद्धिमान और रसिक व्यक्ति थे। वे जाति के हिन्दू थे। बेचारे इस समय यह बतलाने में असमर्थ थे कि उत्तम श्रेणी के योगी मुझे कहां मिल सकते हैं।

इन के अतिरिक्त अन्य लोगो ने योग के विषय मे मुझे जो वतलाया वह अस्पष्ट गाथाओ, मूर्खता मे पगी हुई दन्तकथाओ और कही कही निठुर झिड़कियो के सिवा और कुछ भी नही था। हॉ एक ऐसा व्यक्ति मुझे अवश्य मिला जिसका ईसा मसीह से मिलता हुआ चेहरा और वेश-भूषा लन्दन के पिकैडिली जैसे कामकाजी मोहल्ले मे भी सनसनी पैदा कर देता। पर ये सज्जन स्वयं भी उत्तम जीवन की खोज मे देश भर मे भटकते फिर रहे थे। भिक्षा पर निर्भर रहने वाले सन्यासी जीवन के लिए लालायित हो कर उन्होने अपनी कई एकड़ उपजाऊ भूमि का त्याग कर दिया था। वे अपनी सारी जायदाद मुझे दे देने के लिए राज़ी थे किन्तु इस शर्त पर कि मै वही बस कर अन्धविश्वासी, अपढ़, दीन-दरिद्र भारतीयो को सेवा करूँ। लेकिन मै भी तो एक अज्ञानी दीन-दरिद्र, और सताया हुआ व्यक्ति था। अतः धन्यवाद पूर्वक उनका प्रस्ताव मुझे अस्वीकृत करना पड़ा।

एक दिन मुझे एक सिद्ध योगी की खबर मिली जिनकी बड़ी ख्याति सुन पड़ी। वे मद्रास शहर से वाहर आध मील की दूरी पर रहते थे परन्तु स्वभाव से एकान्तप्रिय होने के कारण बहुत कम लोगो को उनका पता था। उनसे मिलने की मेरी इच्छा प्रबल हो उठी और मैने उनसे भेट करने का पक्का इरादा कर लिया।

इन महात्मा का निवासस्थान चारो ओर से लम्बे लम्बे वॉसो से घिरे हुए एक अहाते के अन्दर एक एकान्त खेत के बीच मे था।

मेरे साथी ने अहाते की ओर इशारा किया और कहा:

"मैने सुना है कि दिन मे अधिकतर ये महात्मा समाधि मे

लीन रहते हैं। दरवाज़े पर हम भले ही खटखटाएं, उनका नाम लेकर कितने भी ज़ोर से पुकारें पर वे शायद ही सुन पायेंगे। साथ ही ऐसा करना बड़ी अशिष्टता की बात होगी।"

अहाते में प्रवेश करने के लिए एक अनगढ़े फाटक से हो कर जाना था; लेकिन फाटक का दरवाजा ताले से बहुत ही मज़बूती से बन्द था और हमारी समझ में न आया कि क्यों कर भीतर प्रवेश करें। सारी जगह घोर सन्नाटा छाया हुआ था। खेत के चारों ओर हम चक्कर लगाने लगे। हमें एक लड़का मिला जो योगी के परिचारक का ठिकाना जानता था। एक घुमावदार रास्ते से हो कर हम किसी प्रकार उस व्यक्ति के पास पहुँचे। पता चला कि यह व्यक्ति साधु की सेवा करने के लिए नौकर रक्खा गया है। उसकी बीबी और बाल-बच्चे हमें देखने के लिए कुटिया से बाहर आये और उसके पीछे पीछे चलने लगे। हमने अपनी इच्छा उस पर प्रकट की पर उसने हमारी एक न मानी। उसने दृढ़ता पूर्वक कहा कि कोई भी अजनबी मौनीबाबा से भेंट नहीं कर सकता क्योंकि वे बिलकुल ही एकान्त में रहते हैं। योगी अधिकांश समय गहरी समाधि में लीन रहते हैं और यदि कोई अपरिचित व्यक्ति उनकी शान्ति मे बाधा पहुँचावेगा तो वे ज़रूर ही बुरा मानेगे।

मैंने उस नौकर से प्रार्थना की कि वह मेरे साथ कुछ रिआयत करे पर वह टस से मस न हुआ। मेरे मित्र ने उसको धमकी दी कि यदि वह हमें भीतर न जाने देगा तो उसे पुलिस के हवाले कर देंगे। ऐसा कहने का वास्तव में हमें कोई अधिकार तो था नहीं, किन्तु क्या करें हम लाचार थे। अतः धमकी देते हुए हम आपस में आँख से इशारा करने लगे। फल यह हुआ कि नौकर कुछ बहस करने लगा। धमकी के साथ ही पर्याप्त इनाम

का लालच भी हमने उसे दिखाया। अन्त को नौकर ने हमारी बात बडी ही अनिच्छा के साथ मान ली और ताले की कुंजी ले आया। मेरे साथी ने कहा कि वह आदमी निश्चय ही मौनीबाबा का नौकर मात्र है क्योकि यदि वह उनका चेला होता तो हजार धमकियाँ और कितना भी लालच देना कारगर न होता।

हम फिर उस फाटक के दरवाजे पर पहुँचे। लोहे का एक बड़ा ताला उसमे पड़ा था। उसे खोल कर नौकर ने हम से कहा कि योगी का माल-असबाब इतना थोड़ा है कि उसके लिए ताला-कुंजी रखना अनावश्यक है। योगी को भीतर छोड़ कर बाहर से ताला बन्द किया जाता है और वे तब तक बाहर नही आ सकते जब तक कि ताला बाहर से न खोला जाय। नौकर दिन मे दो बार दरवाजा खोला करता था। हमसे यह भी बतलाया गया कि दिन भर योगी समाधि मे लीन रहते है पर शाम को कुछ मेवा, मिठाई और एक प्याला दूध पीते है। लेकिन कितनी ही बार शाम को भी यह देखा गया है कि भोजन ज्यो का त्यो रक्खा हुआ है। अँधेरा हो जाने पर कभी कभी मौनीबाबा कुटिया के बाहर आते है और तब खेतो मे घूमने के सिवा और किसी प्रकार की कसरत वे नही करते। अहाते को पार कर हम आधुनिक ढंग की बनी हुई एक कुटिया पर पहुँचे। वह मजबूत पत्थर को पटियो की बनी थी और उसके लकड़ी के खम्भे सुन्दर ढंग से रंगे हुए थे। नौकर ने और एक कुंजी निकाली और एक भारी दरवाजा खोल दिया। यह सब इन्तजाम देख कर मैने आश्चर्य प्रकट किया क्योकि उस आदमी ने मुझ से कहा था कि योगी के पास कोई खास निजी सम्पत्ति नही है। तब उस आदमी ने यह रहस्य समझाने के लिए एक छोटी कहानी सुनाई।

कुछ वर्ष पूर्व योगी एक अन्य कुटिया में रहते थे। उस समय

दरवाज़ों में ताला नहीं लगाया जाता था। बदकिस्मती से एक दिन कोई व्यक्ति ताड़ी के नशे में चूर भीतर घुस पड़ा और योगी की असहाय स्थिति को देख कर उन पर आक्रमण कर बैठा। उन्हें मनमानी गालियां दीं, उनकी दाढ़ी नोच ली और उनके ऊपर लाठी तान दी।

इत्तिफाक की बात थी कि कुछ लड़के गेंद खेलते हुए उसी खेत पर आ गये। आक्रमण की आवाज़ पा कर सब के सब दौड़ पड़े और मौनीबाबा को उस मतवाले के हाथों से बचा लिया। उनमें से एक ने बाहर दौड़ कर लोगों को यह ख़बर दी। फिर क्या था। कई उत्तेजित व्यक्तियों का एक ख़ासा जमघट हो गया। वे उस मतवाले को पकड़ कर उसके दुस्साहस के लिए ख़ूब पीटने लगे। सम्भव था कि वह बेचारा जान से ही मारा जाता।

अब तक योगी पूर्ण रूप से शान्त बने रहे और उन्होंने उस जन समुदाय के बीच आकर नीचे का वाक्य लिख दिया: 'यदि तुम लोग इस आदमी को मारते हो तो समझो कि मुझको ही मार रहे हो। मैंने उसे क्षमा कर दिया है। उसको जाने दो।'

योगी की बातें अलिखित क़ानून हैं। अतः उनकी आज्ञा का सहर्ष पालन किया गया और अपराधी छोड़ दिया गया।

× × × ×

टहलुए ने अन्दर झांक कर देखा और हमें सचेत कर दिया कि हम बिलकुल ही चुपचाप रहे। योगी समाधि मे लीन थे। मैंने हिन्दुओं के निश्चित सिद्धान्त के अनुसार जूते खोल कर बरामदे में छोड़ दिये। झुकते समय मेरी आँख एक दीवार के पत्थर पर पड़ी। उस पर बड़े बड़े तामिल अक्षरों में कुछ लिखा हुआ था जिसा अनुवाद करके मेरे साथी ने मुझे बतलाया 'मौनी बाबा का निवास स्थान।'

हमने उस एक कमरे वाली कुटी मे प्रवेश किया। वह कमरा बड़ा स्वच्छ था। उसकी छत खूब ऊँची थी और वहां की सफाई देखने योग्य थी। फर्श के बीच मे एक फुट ऊँचा एक संगमरमर का चबूतरा था। उस पर बेशकीमती, बेल-बूटेदार, फारस का एक कम्बल बिछा हुआ था। इसी कम्बल पर समाधि लीन मौनीबाबा जी की दिव्य मूर्ति सोह रही थी।

एक गेहुँआ रंग के सुडौल शरीर को आसन जमाए हुए कल्पना कीजिये। उनका वह विचित्र आसन मेरे लिए नया न था क्योंकि ब्रह्म वह आसन मुझे दिखा चुके थे। उनका बायाँ पाँव मुड़ा था और उसी पर उनके शरीर का सारा बोझ पड़ रहा था। दायाँ पाँव बाई जाँघ पर रक्खा था। योगी की पीठ, कंठ और शिर सभी सतर थे। उनके काले लम्बे बालो की लटे भुजाओ तक फैली हुई थी। एक काली लम्बी दाढ़ी भी लटक रही थी और हाथ घुटनो पर रक्खे हुए थे। उनका शरीर खूब ही हृष्ट-पुष्ट था। उनकी पेशियाँ खूब गठी हुई थी और वे बड़े ही स्वस्थ मालूम होते थे। वे सिर्फ एक लंगोटी ही पहने थे।

उनकी मुख-मुद्रा मानो जीवन पर विजय पाकर मुस्करा रही थी। हम दुर्बल मानव इच्छा या अनिच्छा से जिन कमजोरियो को प्रतिदिन सहते रहते है उन पर उन्होने सचमुच ही विजय प्राप्त कर ली थी। उनकी वह मूर्ति मेरे मन पर उसी ढंग से अब भी अंकित है। उनका मुँह जरा सा खुला हुआ था मानो एक मंद मुसकान उनके ओठो पर थिरकने ही वाली हो। उनकी नाक सीधी और छोटी थी। आँखे एकदम खुली हुई थी और सामने की ओर उनकी निर्निमेष दृष्टि लगी हुई प्रतीत होती थी। वे ऐसे अचल भाव से बैठे हुए थे मानो कोई गढ़ी हुई प्रतिमा हो।

मेरे साथी ने मुझको पहले ही बता दिया था कि मौनीबाबा

एक ऐसी समाधि की स्थिति पर पहुँच गये हैं जहाँ उनकी मानव प्रकृति थोड़ी देर तक प्रसुप्त हो जाती है और उन्हें अपने इर्द-गिर्द के प्राकृतिक अथवा भौतिक वायुमंडल का कोई पता ही नहीं रहता। मैंने योगी की ओर बड़े ध्यान से देखा पर मुझको एक भी ऐसी बात नजर नहीं आई जिससे उनकी उस वाह्य-ज्ञान-शून्य गहरी समाधि में किसी प्रकार का संदेह हो। मिनट बीतते बीतते कई घंटे टल गये पर उनकी वह अचल मूर्ति हिली तक नहीं। सब से अधिक आश्चर्य मुझे उनकी वह निर्निमेष दृष्टि देख कर हुआ। मैंने अब तक किसी भी ऐसे शरीरधारी से भेंट नहीं की थी जो लगातार दो घंटे तक बिना पलक मारे ताक सके। क्रमशः मुझे मानना ही पड़ा कि यदि योगी की आँखें इतनी देर तक खुली बनी रही है तो वे सचमुच ही कुछ भी देखती नहीं हैं। उनका मन यदि काम कर भी रहा हो तो उसको इस पार्थिक जगत का भान न होगा। ज्ञान होता था कि उनकी शारीरिक शक्तियां पूर्ण रूप से सुप्त हैं। बीच बीच में मोती जैसे एक दो आंसू उनकी आँखों से ढरकते थे। पलकों की गति हीनता के कारण उनके आँसू भी स्वाभाविक रूप से आँखों से बाहर नहीं आते थे।

एक छिपकली धीरे धीरे उनके निकट आई और कम्बल पर से हो कर फिर योगी के एक पांव पर से रेंगती हुई पीछे की ओर चली गई। यदि वह किसी पथरीली दीवार पर चलती तो भी योगी के शरीर की अपेक्षा अधिक निश्चल भित्ति उसको न मिलती। बीच बीच मे मक्खियाँ उनके चेहरे पर बैठ जाती थीं किन्तु उनके शरीर मे उसकी कोई भी प्रतिक्रिया नहीं दिखाई देती थी। यदि वे किसी लोहे की मूर्ति पर बैठ जाती तो भी यही नतीजा देखने मे आता।

मै उनकी साँसो की गति देखने लगा। वह बिलकुल ही मन्द थी। इतनी मन्द कि वह मुश्किल से जानी जा सकती थी। साँसो की ध्वनि सुनाई तो नही पड़ती थी पर वह एकदम क्रमबद्ध थी। यही एक बात ऐसी थी जिससे उनके जीवित होने का प्रमाण मिलता था।

इस इन्तजारी के बीच ही मे उस प्रभावशाली मूर्ति के एक-दो फोटो उतार लेने का मैने निश्चय किया। मैने अपना जेबी केमरा निकाला और अपनी जगह से उनके चेहरे पर केमरे के लेन्स को केंद्रीभूत करना चाहा। कमरे मे रोशनी अनुकूल नही थी अतः मैने एक-दो फोटो खीचे।

मैने घड़ी की ओर ताका तो पूरे दो घंटे बीत चुके थे और अब भी योगी की समाधि के टूटने की कोई सूरत नज़र नही आती थी। उनकी वह अचलता आश्चर्यजनक थी।

इस विचित्र योगी से भेट करने के लिए मै दिन भर प्रतीक्षा करने को तय्यार था। पर योगी के सेवक ने पास आकर हमारे कान मे कहा कि अब प्रतीक्षा करना व्यर्थ है। एक-दो दिन बाद फिर आने पर शायद भेट हो सके। परन्तु उस बार भी भेट हो ही जायगी यह बात निश्चित रूप से वह नही बतला सका।

अपने उद्देश्य मे असफल होकर हमने आश्रम छोड़ा और शहर की ओर कदम बढ़ाया। मेरी उत्सुकता किसी प्रकार कम नहीं हुई, उलटे वह और तेज़ हो गई।

दो दिन तक मै मौनीबाबा के सम्बन्ध मे विशेष जानकारी प्राप्त करने मे लगा रहा। मेरी जाँच का सिलसिला बड़ा ही अस्तव्यस्त रहा। कुछ बिखरी हुई बाते ही मालूम हो सकी। हमारा यह प्रयत्न योगी के सेवक से लम्बी जिरह करने से शुरू

हो कर एक पुलिस के दरोगा से चन्द मिनट की मुलाकात करने तक समाप्त हुआ। इस तरीके से मौनीबाबा की संक्षिप्त जीवनी का मुझे पता लग गया।

मौनीबावा लगभग ८ वर्ष पूर्व मद्रास में पधारे थे। कोई जानता न था कि वे कौन हैं और कहाँ से आये हैं। इस समय उनकी कुटिया के पास जो खेत है उसी से सटी हुई एक बंजर भूमि थी। वहीं उन्होंने अपना डेरा जमाया। उनका पता आदि जानने की उत्सुकता को शान्त करने के लिए कुछ लोगों ने विफल प्रयत्न भी किये। वे किसी से बोलते न थे, न किसी की परवाह करते थे और भूल कर भी किसी साधारण बातचीत में भी भाग न लेते थे। कभी कभी कमंडल उठा कर भिक्षा मांग लाते।

इस नीरस परिस्थिति में उसी बंजर भूमि पर वे नियमित रूप से रहने लगे। गर्मी की कड़ाकेदार धूप और धूल, बरसात की मूसलाधार वृष्टि, जाड़े की सर्दी तथा कीड़े-मकोड़े आदि की उन्होंने कुछ भी परवाह नहीं की। कभी उन्होंने किसी प्रकार के आश्रय की चाह नही की और हमेशा मौसमी परिवर्तनों और वाह्य परिस्थितियों की ओर ध्यान नहीं दिया। उनके सिर पर किसी भी प्रकार की छांह न थी और न बदन पर कोई कपड़ा था। उनकी सारी संपत्ति एक छोटी लंगोटी मात्र थी। वे सदा एक ही आसन पर बैठते थे। ऐसे योगी के लिए जो खुले स्थान में बैठ कर बड़ी देर तक निर्विकल्प समाधि में लीन होना चाहे मद्रास नगर के निकट का कोई स्थान कितना प्रतिकूल होगा यह कहने की आवश्यकता नहीं है। पुराने ज़माने में भारतवर्ष में ऐसे योगियों की बड़ी ही खातिरदारी होती थी, पर इस ज़माने में ऐसे किसी व्यक्ति के लिए जंगल, पहाड़ी

गुफाएँ या एकान्त कुटी आदि को छोड़ उपयुक्त स्थान और कहाँ प्राप्त हो सकता है ?

अतः इस अजीव योगी ने ऐसी प्रतिकूल जगह क्यो पसन्द की ? एक घृणित घटना से इस आचरण का मर्म लोगों पर प्रकट हुआ था ।

एक दिन कुछ नौजवान गुंडो ने इस योगी को देख पाया और वे उन्हे बहुत ही दिक करने लगे । निन्दनीय मुस्तैदी के साथ वे हर दिन शहर से चलते और बेचारे मौनीबाबा पर पत्थर, कूड़ा-करकट आदि की बौछार करते और बेहूदी गाली-गलौज का तो कोई ठिकाना ही न रहता । यद्यपि योगी उन सबकी खूब ही खबर लेने की ताकत रखते थे, वे टस से मस न होते और सारी यातनाएँ बड़ी शान्ति से सहन किया करते थे । चूंकि उन्होने मौन दीक्षा ली थी गुंडो को फटकार सुनाने के लिए भी मुँह नही खोलते थे ।

उन ऊधमी पाजियो की शैतानी का तब अन्त हुआ जब एक दिन एक भलेमानस ने उनको इस करतूत मे लगे हुए देखा । साधु की यह दुर्गति उनसे देखी नही गई । तुरन्त मद्रास लौट कर उन्होने पुलिस को खबर दी और उस मौन असहाय योगी की रक्षा की याचना की । पुलिस से मदद मिली और वे घृणित बदमाश उस दिन से लापता हो गये ।

इसके बाद पुलिस के एक अफसर ने योगी के बारे मे कुछ पूछ-तांछ करने की ठानी । लेकिन उसे एक भी ऐसा आदमी नहीं मिला जो योगी को जानता हो । लाचार होकर उसे योगी से ही प्रश्न करने पड़े और इसमे अपनी अफसरी के सारे अधिकार से उसने प्रश्नो का जवाब तलब किया । बहुत देर तक योगी संकोच मे पड़े रहे । फिर एक तख्ते पर अपना निम्न संक्षिप्त परिचय

लिख दिया—'मैं मरकयार का चेला हूँ। मेरे गुरू ने मुझे मैदानों को पार कर दक्षिण की ओर मद्रास जाने का आदेश दिया था। उन्होंने इस जगह का पूरा वर्णन किया था और बताया भी था कि मुझे यह जगह कैसे मालूम हो सकेगी। उन्होंने मुझे आदेश दिया था कि मैं यहीं पर रह कर अपना योगाभ्यास तब तक जारी रक्खूं जब तक कि मुझे पूरी सिद्धि प्राप्त न हो जाय। मैंने सांसारिक जीवन को तिलांजलि दे डाली है और मेरी यही प्रार्थना है कि आप लोग मुझे अपने भाग्य पर छोड़ दें। मद्रास की बातों में मुझे कोई दिलचस्पी नहीं है और अपने आध्यात्मिक मार्ग पर आरूढ़ होने के सिवा मेरी कोई और चाह नहीं है।'

पुलिस अफसर को यह जान कर बड़ी ही खुशी हुई कि योगी उच्च कोटि के फकीर हैं। उन्होंने योगी की चौकसी करने का भार अपने ऊपर ले लिया। उनको पता चला कि मरकयार एक सिद्ध फक़ीर थे जिनकी मृत्यु कुछ ही दिन पहले हो गई थी।

एक पुरानी अंग्रेजी कहावत है कि 'बुराई में भी अच्छाई होती है'। इस घृणित घटना का सुपरिणाम यह हुआ कि मद्रास के एक धनी और भक्त नागरिक को मौनीबाबा का पता लगा। उन्होंने मौनीबाबा से विनती की कि उनके रहने के लिए एक सुन्दर मकान का प्रबन्ध कर दिया जाय, पर योगी इस प्रस्ताव को भला कब मानने वाले थे? अन्त में इस नये भक्त ने योगी के लिए उसी खेत में आजकल जो कुटी है उसे बनवाया था। उसका बहुत अच्छा छप्पर छवाया गया जिससे मौसमी परिवर्तनों की क्रूरता से उनकी अच्छी तरह रक्षा हुई।

नये भक्त ने अपने गुरू की टहल आदि के लिए एक नौकर भी तैनात कर दिया। अतः अब योगी को भीख माँगने की कोई

जरूरत नही पड़ती थी। सारी भोजन सामग्री का वह नौकर ही प्रवन्ध कर देता था। कोई भी नही कह सकता कि योगी के गुरू सरकयार को पहले से ही मालूम था या नही कि उनके शिष्य को एक तुच्छ घटना के परिणामस्वरूप इतना सुभीता मिलेगा लेकिन यह वात तो तय है कि शिष्य की मौजूदा हालत पहली स्थिति से कही सुखद सिद्ध हुई।

मुझे मालूम हुआ कि मौनीबाबा का कोई भी चेला नही है और वे किसी को भी अपना चेला नही बनाना चाहते है। वे साधना द्वारा मुक्ति प्राप्त करने वाले एकान्तवासी विरक्त योगियो की कोटि के है। इस 'स्वीय-मुक्ति' से यदि कोई लाभ भी हो, तो भी हम 'पश्चिमी व्यक्तियो की नजर मे यह निरा स्वार्थ जँचेगा। तव भी जब उस मतवाले व्यक्ति के साथ मौनीबाबा के दयापूर्ण बर्ताव का ध्यान आता है, जव गुंडो से बदला लेने से उनकी विमुखता की याद आती है तो चकित हो जाना पड़ता है कि ऐसे योगिवर को स्वार्थी कैसे कहे।

× × ×

अन्य दो आदमियो को साथ लेकर मौनीबाबा से भेट करने की मैने दुबारा चेष्टा की। मेरे साथियो से एक तो मेरा दुभाषिया था और दूसरे मेरे स्नेही योगी ब्रह्म थे। ब्रह्म ने मुझे वहुत कुछ सिखा दिया था। वे कभी भी शहर मे प्रवेश करने के इच्छुक नही है ; लेकिन जब मैने अपनी चाह उन पर प्रकट की और अपने साथ चलने की प्रार्थना की तो बिना किसी प्रकार की आपत्ति उठाये वे राजी हो गये।

अहाते से हमे एक और आगन्तुक मिले। वे अपनी वड़ी मोटर सड़क पर छोड़ कर खेतो को पार करते हुए उस कुटी पर उसी उद्देश्य से आये थे जिससे मै वहाँ पहुँचा था। उनकी भी

मौनीबाबा से भेंट करने की बड़ी लालसा थी। उनसे मेरी थोड़ी बातचीत हुई। उन्होंने मुझको बताया कि वे हैदराबाद निज़ाम के मातहत गदवाल नामक एक छोटी रियासत की रानी के भाई हैं। वे भी योगी के अभिभावकों में से एक थे। योगी के आश्रम के खर्च के लिए एक नियत रकम वे हर साल भेजा करते थे। वे कुछ दिन के लिए मद्रास आये हुए थे और योगी के दर्शन करके उनसे आशीर्वाद पाये बिना वे घर लौटना नहीं चाहते थे। योगी के आशीर्वाद की महिमा के बारे में उस आगन्तुक ने मुझे एक घटना बताई।

गदवाल दरबार की किसी भद्र महिला के एक लड़का था। उस बच्चे को एक खतरनाक बीमारी हो गई। खुशकिस्मती से मौनीबाबा की महिमा उन्हें मालूम हुई। उस माता की ऐसी उत्कंठा हुई कि वह मद्रास के सफर पर चल पड़ी और योगी का दर्शन किया। उनसे माता ने प्रार्थना की कि वे अपने अनुग्रह से बच्चे को बचावें। योगी ने आशीर्वाद दिया। उसी दिन से अपूर्व रूप से बच्चे की हालत सुधरने लगी और जल्द ही लड़का चंगा हो गया। रानी ने यह खबर सुनी तो उन्होंने स्वयं भी योगी का दर्शन किया। उन्होंने मौनीबाबा को ६०० रु० की थैली भेंट करनी चाही पर योगी ने उसे लेने से साफ इनकार कर दिया। रानी के ज़ोर देने पर योगी ने लिख कर बता दिया कि वह रकम उनकी कुटी को सुधारने में लगाई जाय और कुटी के चारों ओर एक घेरा बनवाया जाय ताकि उनके एकान्त में किसी प्रकार की विघ्न-बाधा न पहुँचे। रानी ने इसका इन्तज़ाम करा दिया और फलतः आज बाँसों का एक घेरा खड़ा है।

टहलुए ने फिर हमें भीतर जाने दिया। अब भी मौनीबाबा उसी प्रकार की समाधि में लीन दिखाई पड़े।

हम फर्श पर चुपचाप बैठ गये और संगमरमर की वेदी पर आसीन उस दिव्य मूर्ति के सामने बड़ी शान्ति के साथ प्रतीक्षा करने लगे। एक घंटा बीत गया और दूसरा घंटा भी आधे से कुछ अधिक ही बीता होगा कि योगी के शरीर मे चेतना का बोध होने लगा। उनकी साँसे अधिक गहरी होती गई और उसके चलने की ध्वनि भी सुनाई देने लगी। पलके हिलने लगीं, पुतलियाँ भयानक रूप से फिरने लगी और उनकी सफेदी चमकने लगी। फिर आँखें अपनी साधारण स्थिति को पहुँच गई। उनके बदन के कुछ कुछ हिलने का भी पता चला।

पाँच मिनट और बीते। उनकी आँखो मे वह नूर आ गया जिससे हमे अनुमान हुआ कि उनको चारो ओर का कुछ भान हो रहा है।

उन्होने बड़े गौर से दुभाषिए की ओर देखा, अचानक सिर घुमाकर ब्रह्म को ओर ताका, फिर उस नये आगन्तुक को और अन्त,मे मुझे ताका।

मैने उससे लाभ उठा कर एक पेंसिल और कागज़ उनके चरणो के पास रक्खा। उन्होने कुछ संकोच से आकर फिर बड़े बड़े तामिल अक्षरो मे लिख दिया—'कुछ दिन पहले किसने आकर फोटो उतारने की चेष्टा की थी ?'

मुझे लाचार होकर अपना अपराध स्वीकार करना पड़ा। हकीकत मे मेरी वह कोशिश सफल नही हुई थी क्योंकि तसवीर ठीक नही उतरी थी। मौनीबाबा ने फिर लिखा :

'गहरी समाधि मे रहने वाले योगियो के पास फिर कभी जाने पर भूल कर भी ऐसी बातो से उन्हे बाधा न पहुँचाना। मेरी बात छोड़ दीजिये, लेकिन दूसरे योगियो से मिलने जाने के

हम फर्श पर चुपचाप बैठ गये और संगमरमर की वेदी पर आसीन उस दिव्य मूर्ति के सामने बड़ी शान्ति के साथ प्रतीक्षा करने लगे। एक घंटा बीत गया और दूसरा घंटा भी आधे से कुछ अधिक ही बीता होगा कि योगी के शरीर में चेतना का बोध होने लगा। उनकी साँसें अधिक गहरी होती गईं और उसके चलने की ध्वनि भी सुनाई देने लगी। पलकें हिलने लगीं, पुतलियाँ भयानक रूप से फिरने लगी और उनकी सफेदी चमकने लगी। फिर आँखें अपनी साधारण स्थिति को पहुँच गईं। उनके वदन के कुछ कुछ हिलने का भी पता चला।

पाँच मिनट और बीते। उनकी आँखों में वह नूर आ गया जिससे हमें अनुमान हुआ कि उनको चारो ओर का कुछ भान हो रहा है।

उन्होने बड़े ग़ौर से दुभाषिए की ओर देखा, अचानक सिर घुमाकर ब्रह्म को ओर ताका, फिर उस नये आगन्तुक को और अन्त,मे मुझे ताका।

मैंने उससे लाभ उठा कर एक पेंसिल और कागज़ उनके चरणो के पास रक्खा। उन्होंने कुछ संकोच में आकर फिर बड़े बड़े तामिल अक्षरो मे लिख दिया—'कुछ दिन पहले किसने आकर फोटो उतारने की चेष्टा की थी ?'

मुझे लाचार होकर अपना अपराध स्वीकार करना पड़ा। हक़ीक़त मे मेरी वह कोशिश सफल नही हुई थी क्योंकि तसवीर ठीक नही उतरी थी। मौनीबाबा ने फिर लिखा :

'गहरी समाधि मे रहने वाले योगियो के पास फिर कभी जाने पर भूल कर भी ऐसी बातो से उन्हें बाधा न पहुँचाना। मेरी बात छोड़ दीजिये, लेकिन दूसरे योगियो से मिलने जाने के

खेद से आकर मै बोल उठा—"दुनियाँ मे न जाने कितनी समस्याएं सुलझाने के लिये है।"

योगी के ओठो पर एक मंद मुसकान थिरकती हुई दिखाई दी। उन्होने पूछा:

"जब तुम अपने आप को ही नही जानते हो तो दुनियाँ को समझने की झूठी आशा बाँधे क्यो घूमते हो?"

वे सीधे मेरी आँखो की ओर ताक कर देखने लगे। मुझे भान हुआ कि उनकी उस स्थिर दृष्टि के पीछे कोई छिपा हुआ ज्ञान का खज़ाना है, ऐसे मर्मों का कोई भांडार है जिसकी वे बड़ी सावधानी के साथ रखवाली कर रहे हो। इस अजीब विचार का मै कोई कारण तो नही बता सकता।

मै साहस करके यही कह सका—"फिर भी मै बड़ा ही हैरान हो गया हूँ।"

"जब निर्मल मधु की अमन्द धारा ही तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है तुम ज्ञान-मकरंद के बिन्दुओ को चूसने वाली मधुमक्खी के समान यत्र-तत्र क्यो भटकते हो?"

उनके इस जवाब को सुन कर मेरा जी ललचा गया। यह जवाव किसी प्राच्य संतान के लिए एकान्ततया पर्याप्त होता। लेकिन यद्यपि उसकी मार्मिक अस्पष्टता मुझे एक सुमधुर कविता के समान मुग्ध कर रही थी तिस पर भी जब जीवन की समस्याओ का उपयोगी समाधान उसमे ढूंढ़ने लगा तो अस्पष्टता के धुँधलेपन के सिवा कुछ भी हाथ नही लगा।

"लेकिन उस मधु-स्रोत की प्राप्ति के लिए कहाँ खोज करूँ?"

"अपनी ही आत्मा मे खोज कर देखो। तुम्हारे अंतरतम तल मे ही वह सद्-वस्तु तुम्हे भासित होगी।"

"मुझे तो अविद्या का अंधकार ही नज़र आता है।"

"अविद्या तुम्हारे विचारों को ही आवृत कर रही है।"

"स्वामी जी, माफ़ कीजियेगा। आप के जवाब से मैं और भी अंधेरे में गिरा जा रहा हूँ।"

मेरे इस दुस्साहस को देख कर मौनीबाबा मुस्करा उठे। थोड़ी देर तक किसी संकोच में पड़े रहे। फिर भौंहें चढ़ा कर लिख डाला :

"तुमने ही अपने को इस अविद्या में फँसा हुआ समझ लिया है। फिर अपने को ज्ञान प्राप्ति की ओर अग्रसर करते रहने से एक दिन ज्ञान का उदय अवश्य होगा। इसी का नाम स्वरूपानु-संधान या आत्म-बोध है। विचारधारा उस बैलगाड़ी के समान है जो आदमी को पहाड़ी गुफा के अंधेरे में ले जाती है। उसे पीछे की ओर घुमा लो तो फिर गाड़ी के दिन के प्रकाश में पहुँचने में क्या देरी लगेगी?"

मैंने उनकी बातों पर मनन किया। वे अब भी मुझे कुछ कुछ चकित कर रही थीं। यह देख कर मुनि ने फिर काग़ज़ों के तख़्ते के लिए इशारा किया और कुछ देर पेंसिल को यों ही पकड़े रहे। तब लिख दिया :

"यह प्रत्याहार—यह प्रत्यागमन—योग की उत्तमोत्तम प्रक्रिया है। समझे?"

मुझ पर किसी प्रकाश की आभा फैलने लगी। मुझे भान हुआ कि इन बातों के मनन के लिए यदि मुझे पर्याप्त समय मिला तो हम एक दूसरे को अच्छी तरह समझ लेंगे। अतः इस बात पर और अधिक ज़ोर देने का विचार मैंने त्याग दिया। मैं उनकी ओर इतने ध्यान पूर्वक देख रहा था कि एक नये

आगन्तुक का, जिन्होने खुले हुए दरवाजे से लाभ उठा कर भीतर प्रवेश किया था, मुझे पता ही नही चला। उनकी उपस्थिति का ज्ञान मुझे तभी हुआ जब उन्होने मेरे कान मे एक अजीब बात कह डाली। वे मेरी बगल मे ही बैठे थे। मौनीबाबा के एक उत्तर पर मनन करने मे मै व्यग्र था, उनके संक्षिप्त अर्थगर्भित वचनो के कारण कुछ कुछ निराश सा हो रहा था। इतने ही मे किसी की कुछ विचित्र मार्मिक बाते मेरे कानो मे पड़ी—"मेरे गुरुदेव तुम्हे वह उत्तर दे सकते है जिसकी प्रतीक्षा मे तुम बैठे हो।"

मैने घूम कर उस आगन्तुक की ओर देखा। उनकी उम्र करीब ४० वर्ष के लगभग होगी। विचरने वाले योगियो के से गेरुआ वस्त्र वे पहने हुए थे। उनका चेहरा मॅजी हुई पीतल के समान चमक रहा था। वे खूब हट्टे-कट्टे थे। भुजाएं उनकी लम्बी और कॅधे विशाल थे। उनके रूप-रंग से रौब टपका पड़ता था। उनकी पतली और सुडौल नाक तोते की चोच सी थी। उनकी ऑखे छोटी और अनवरत हॅसी के कारण कुछ मुंदी हुई सी थी। वे आराम से बैठ गये और ऑखे मिलते ही मेरी ओर देख कर शिष्टता के साथ हॅसने लगे।

लेकिन मै किसी ऐरे-गैरे से कोई बेतुकी बातचीत शुरू करके अपनी धृष्टता और अशिष्टता का परिचय देने की हिम्मत नही कर सकता था। अतः मैने उन की ओर पीठ फेर कर मौनी बाबा पर ही अपना सारा ध्यान जमा दिया।

मेरे दिमाग़ मे और एक प्रश्न उठा। शायद वह बिलकुल ही असम्बद्ध था या मेरे दुस्साहस का परिचायक मात्र था। बोला:

"स्वामी जी, दुनियॉ मदद चाहती है। आप जैसे महानुभावो

को इस प्रकार के एकान्तवास में लीन हो कर दूर रहना क्या सोहता है ?"

उनके प्रशान्त मुखमंडल पर परिहास की एक छाया झलक गई। बोले :

"बेटा, जब तुम अपने आपको ही समझ नहीं सकते फिर मेरे व्यवहार का अर्थ स्वप्न में भी क्या समझ सकोगे ? आत्मा की बातें करने से कुछ भी लाभ हाथ नहीं लगता। योगाभ्यास से अपने ही अन्दर गोता लगाने को चेष्टा करो। इस मार्ग पर आरूढ़ हो कर तुम्हें बड़ी दिलेरी के साथ आगे बढ़ना होगा। तब कहीं तुम्हारी सारी शंकाएं अपने आप छिन्न-भिन्न होंगी।"

फिर भी आखिरी बार उन्हे आकृष्ट करने की मैंने चेष्टा की। बोला :

"दुनियाँ इस समय की अपेक्षा और अधिक गहरी ज्योति के लिए लालायित है। मैं उसको पा कर औरों के साथ बाँट लेना चाहता हूँ। मैं क्या करूँ ?"

"जब तुम पर सत्य की शुभ्र ज्योत्स्ना खिल उठेगी तुम्हे ठीक ठीक पता चलेगा कि संसार को सेवा के लिए तुम्हे क्या करना होगा ? उस समय ऐसी सेवा करने की ताकत की कोई कमी भी नहीं रहेगी। जब फूल मे शहद है, तो मक्खी को स्वयं ही पता चल जायगा। यदि कोई मानव आत्म-विज्ञान और आत्म-बल का स्वामी हो जाय तो फिर उसको लोगो की खोज में नहीं निकलना पड़ेगा। बिना माँगे ही सरस भौंरे उसके चारो ओर मधु की आशा लगाये मंडराने लग जायँगे। अपनी आत्मा की साधना तब तक करते रहो जब तक उसका पूरा पूरा रहस्य तुम पर खुल न जाय। और किसी दूसरी शिक्षा की कोई आवश्यकता नहीं है। यही एक बात करनी है।"

इसके वाद उन्होने मुझे जता दिया कि अब उनके ध्यान मे लीन होने का समय आ गया है। मैने आखिरी संदेश की याचना की।

मौनीवावा ने मेरे सिर के ऊपर से शून्य आकाश की ओर ताका। एक मिनट बीतने पर कागज़ पर उत्तर लिख कर मेरे पास फेक दिया। हमने पढा तो देखा कि उस पर लिखा हुआ था: "तुम्हारे यहां आने से मै वहुत प्रसन्न हुआ हूँ। इसी को मेरी दी हुई दीक्षा समझो।"

मैने इस उत्तर का पूरा पूरा अर्थ समझ भी न पाया था कि इतने से कोई अजीब शक्ति मुझ मे अचानक पैठती हुई प्रतीत हुई। वह शक्ति मेरे मेरुदण्ड मे से होकर वहने लगी। मेरा गला कुछ कड़ा हो गया और सिर कुछ ऊपर उठा। मालूम पड़ा कि मेरी संकल्प शक्ति चरम सीमा को पहुँच गई। मुझे अपने ही भीतर आत्म-विजय के लिए और इस शरीर को परम पुरुषार्थ साधने के अपने शुभ संकल्प के अनुकूल वनाने के लिए उद्बोध करने वाली एक प्रवल प्रेरणा का वोध हुआ।

अपने ही आप मुझे भान होने लगा था कि यह पुरुषार्थ और ये आदर्श मेरी ही स्वच्छ अन्तरात्मा से प्रस्फुटित है और वही शाश्वत आनन्द प्रदान कर सकती है।

मुझे एक अजीव अनुभूति होने लगी कि हो न हो किसी अज्ञात और अदृश्य ढंग से मौनीवावा के शरीर से मुझ मे कोई शक्ति प्रवेश करके प्रसारित हो रही है। क्या इसका यह अर्थ हो सकता है कि मौनीवावा अपनी ही संसिद्धि का एक अंश कृपा-पूर्वक मुझे प्रदान कर रहे थे?

योगी की ऑखे फिर स्थिर हो गईं और वे एकदम शून्य

सी प्रकट होने लगीं। अपने स्वाभाविक आसन पर स्थिरता के साथ आरूढ़ होते ही उनका शरीर फिर से तन गया। मुझे साफ ही दिखाई देने लगा कि वे अपने ध्यान को आत्मा के अंतरतम तल पर पहुँचा रहे थे, जो कदाचित विचार से भी परे है; वे अपनी चेतना को आत्मा की उस गम्भीरता में निमग्न कर रहे हैं जो दुनिया से भी बढ़ कर उनको सुखद और प्रिय मालूम होती थी। तब क्या ये सच्चे योगी है ? कदाचित् दुनिया के लिए कुछ मानी रखने वाली—हाँ मुझे कुछ कुछ ऐसा ही अनुमान होने लग गया—किसी रहस्य भरी आत्म-गवेषणा में वे लीन तो नहीं हो गये है ? कौन कह सकता है कि बात क्या थी ?

जब हम अहाते से बाहर हुए तो योगी ब्रह्म मेरी ओर घूम कर प्रशान्त स्वर में कहने लगे—"यह योगिवर यद्यपि परा सिद्धि को अभी प्राप्त नहीं हुए है तो भी बहुत ही पहुँचे हुए है। उन्हे विभूतियाँ प्राप्त हो गईं है पर वे अपने आत्म-साधन मे ही अधिक व्यस्त है। उनका सुन्दर शरीर इस बात का अचूक गवाह है कि उन्होंने बहुत काल तक हठयोग की साधना की हे। लेकिन अब तो यह भी स्पष्ट भासने लगा है कि राज योग में भी इन्होने काफी उन्नति की है। मैं इनको पहले से ही जानता हूँ।"

"कब से ?"

"जब यहाँ कुटिया नहीं बनी थी और ये खुले मैदान में रहते थे तब कुछ वर्ष पूर्व मैंने इन्हें पहचाना था। मैंने जान लिया था कि वे योग मार्ग का अनुसरण करने वाले, अभ्यास दशा के योगी है। इन्होंने मुझे यह भी लिख कर बता दिया था कि वे फौज में एक सिपाही थे। जब इनकी नौकरी की अवधि पूरी हुई तो संसार से विरक्त हो गये और एकान्त सेवन करने लगे।

इसी अवस्था मे इनकी भेट प्रसिद्ध फकीर मरकयार से हुई थी और ये मरकयार के चेले बन गये।"

हम चुपचाप अपने ही विचारो मे डूबे हुए खेत को पार कर धूल भरी सड़क पर पहुँच गये। कुटी मे मुझको जो विचित्र अनुभव हुआ था उसका मैने किसी से जिक्र भी नही किया। जब तक कि वह मेरे दिल मे तरोताजा रहे, उसकी गूँज सुनाई दे तभी मै उस पर ध्यान पूर्वक मनन करना चाहता था।

मैने मौनीबाबा को फिर कभी नही देखा। उनकी प्रशान्ति मे बाधा पड़ना उन्हे पसन्द नहीं था और मेरा कर्त्तव्य था कि मै उनकी इस इच्छा का आदर करूँ। अगम्य और दुरूह आत्म चिन्ता मे लीन उस योगिवर से मुझे अलग होना ही पड़ा। वे कोई संप्रदाय या संस्था स्थापित नही करना चाहते थे, न चेलो को अपने पास इकट्ठा करना ही उनको पसन्द था। उनकी परम अभिलाषा यही प्रतीत होती थी कि वे चुपचाप बिना किसी के ध्यान को आकृष्ट किये इस दुनिया से कूच कर जावे। मुझसे उन्हे और कोई बात कहनी न थी। वे हम पश्चिमी व्यक्तियो के समान न थे जो बहुधा अपनी वाक्पटुता के प्रदर्शन के लिए ही बातचीत करने को एक महत्वपूर्ण विषय समझते है।

८

जगद्गुरु श्री शंकराचार्य

मद्रास जाने वाली सड़क पर पहुँचने से पूर्व कोई मेरे निकट आकर खड़ा हो गया। मैंने घूम कर देखा। वे ही गेरुआवस्त्र-धारी योगी जिनसे अभी अभी मौनीबाबा की कुटी में भेंट हुई थी, मुस्कराते हुए मुझे कृतार्थ कर रहे थे। उनका मुख कानों तक विकट हँसी में फैल गया था। आँखें उनकी सिकुड़ कर बन्द सी हो गईं थीं।

मैंने पूछा—"क्या मुझसे कुछ कहना है ?"

विशुद्ध अंग्रेजी में बोलते हुए उन्होंने उत्तर दिया :

"जी हाँ। क्या मैं आपसे पूछ सकता हूँ कि हमारे देश में आप किस उद्देश्य से घूम रहे हैं ?"

इस अनुचित हस्तक्षेप से कुछ देर तक मैं संकोच में पड़ गया। इच्छा हुई कि कुछ अंटसंट बक डालूँ।

"कुछ नहीं ; यों ही भटक रहा हूँ।"

"नहीं, मुझे तो मालूम होता है कि आपको हमारे महात्माओं की सोहबत पसन्द आती है।"

"हाँ, एक हद तक।"

"जी, मै भी एक योगी हूँ।"

उनके जैसे हट्टे कट्टे आदमी मैंने बहुत कम देखे हैं। पूछा :

"कब से आप योगी हुए हैं ?"

"तीन साल हुए।"

"क्षमा कीजियेगा, आपको शायद इस मार्ग मे शारीरिक कठिनाइयाँ झेलनी नही पड़ी।"

वे गर्व के साथ तनकर सतर्क रूप से खड़े हो गये। वे नंगे पैर थे, अतः तनकर खड़े होने पर उनकी एड़ियो के मिलने की आहट सुनाई पड़ी।

"सात साल तक मै फौज मे सिपाही रह चुका हूँ।"

"सच!"

"जी हाँ। मेसोपोटामिया के धावे मे हिन्दुस्तानी पलटनो के साथ मैने भी युद्ध मे भाग लिया था। युद्ध के बाद पढ़ा-लिखा देख कर और मेरी योग्यता पर रीझ कर अफसरो ने मुझे 'मिलिटरी एकाउन्ट' विभाग मे नियुक्त कर दिया।"

उनकी इस अकारण आत्म-प्रशंसा को सुनकर मै अपनी हँसी रोक नही सका। योगी बोलते गये—"पारिवारिक असुविधाओ के कारण मुझे नौकरी छोड़नी पड़ी। बाद को कई मुसीबतो का सामना करना पड़ा। इनके मारे मै बहुत तंग आ गया। मेरा मन बदल गया। मै आत्मोन्मुख बनकर योगी हो गया।"

अपना परिचय-पत्र देते हुए मै उनसे बोला—"हम एक दूसरे का परिचय तो प्राप्त कर ले।"

तुरन्त योगी ने कहा—"मुझे सुब्रह्मण्य अय्यर कहते है।'

"अच्छा सुब्रह्मण्य जी, आपने मौनीबाबा के यहाँ मेरे कान से जो कहा था उसका कुछ खुलासा मै जान सकता हूँ?"

"इसी के लिए तो मै आपको इतनी देर से ढूंढ़ रहा हूँ। आप अपने सारे प्रश्न हमारे गुरुदेव जी से पूछ ले। सारे हिन्दुस्तान मे उनका सा बुद्धिमान और विवेकी दूसरा नही है। वे योगियो से भी बढ़े हुए हैं।"

"ऐसी वात है ! क्या आपने सारे भारत का भ्रमण किया है ? सभी वड़े वड़े योगियों से आपकी भेंट हुई है कि आप एकदम ऐसी वात कह रहे हैं ?"

"क्यों नहीं । कितने ही योगियों से मेरी भेंट हुई है । कुमारी अंतरीप से लेकर हिमालय तक सारा देश मेरे पैरों से रौंदा पड़ा है ।"

"अच्छा !"

"मेरी वात मानिये । उनका सा दूसरा योगी मुझे अभी तक नहीं मिला । वे महार्पि हैं । मेरी हार्दिक इच्छा है कि आप उनका दर्शन अवश्य करें ।"

"किस वास्ते ?"

"क्योंकि उन्होने ही आपसे मेरी भेंट कराई है । आप उन्हीं की प्रेरणा के कारण सुदूर पश्चिम से इस देश तक खिंच आये है ।"

योगी की ये लम्बी-चौड़ी वातें मुझे अत्युक्तिपूर्ण भासने लगीं । लेकिन इस आदमी की वातों मे कुछ ऐसी जान थी कि वे मुझे एक प्रकार मे खींचती हुई मालूम हुई । भावुक व्यक्तियो की अलंकारिक भाषा से, अत्युक्तियों से, मेरा जी ववड़ा उठता है । यह स्पष्ट था कि ये गेरुआवस्त्रधारी योगी वहुत भावुक हैं । उनका स्वर, उनकी चेष्टा, उनकी सूरत, सभी इस वात की गवाही दे रही थी ।

मैंने कुछ रूखेपन के साथ कहा—"आप कह क्या रहे हैं, कुछ समझ मे आवे तव न ?"

वे मेरे कथन की उपेक्षा करते हुए कहते गये :

"आठ महीने हुए उनसे मेरी भेंट हुई थी । पाँच महीने तक मै उन्ही के यहाँ ठहरा । फिर मुझे भ्रमण करने का आदेश दिया

गया। मेरा विश्वास है कि आपको उनके बराबर कोई दूसरा नहीं मिलेगा। उनकी आध्यात्मिक विभूति इस कोटि की है कि वे आपके मूक विचारों का भी उत्तर दे सकते है। यदि आप थोड़ी देर तक भी उनके निकट रहे तो उनकी सिद्धि का पता चलते क्या देर लगेगी ?"

"आप सचमुच समझते है कि वे प्रसन्नता के साथ मुझे अपनायेगे ?"

"जी हाँ, अवश्य। उनकी प्रेरणा ने हो मुझे आपके पास यहाँ भेजा है।"

"वे रहते कहाँ है ?"

"अरुणाचल पर।"

"अरुणाचल कहाँ है ?"

"एकदम और दक्षिण की ओर, आर्कट जिले के उत्तरी भाग मे। मै आपका पथ-प्रदर्शक बनूँगा। आप मुझे अनुमति दे दे कि मै आपको वहाँ पहुँचाऊँ। मेरे गुरुदेव आपकी सारी शंकाओं को दूर कर देंगे। आपकी सारी समस्याओ को सुलझा देंगे, क्योंकि उन्हे सच्चा ज्ञान प्राप्त है।"

लापरवाही के साथ मैने स्वीकार कर लिया—"हाँ भाई, यह तो वड़ी दिलचस्प वात है। लेकिन खेद की वात यह है कि इस समय मै वहाँ नही जा सकूँगा। बोरा-बँधना ठीकठाक करके सफर के लिए तैयार बैठा हूँ। शीघ्र ही मुझे उत्तर-पूर्व की ओर रवाना होना है। वहाँ मुझे अपने दो वादे पूरे करने है।'

"लेकिन, यह काम सवसे अधिक महत्त्व का है।"

"खेद है, अव मेरा कुछ वश नही है। सब इन्तजाम हो गया है और अव सहज मे कुछ भी परिवर्तन नही हो सकता। संभव

है कि बाद को मैं दक्षिण की भी यात्रा कर लूं। लेकिन इस वक्त वह यात्रा स्थगित रखनी पड़ेगी।"

स्पष्ट ही योगी के चेहरे पर निराशा छा गयी।

"देखिये, आप अच्छे मौके को हाथ से खो रहे हैं।"

मैंने ताड़ लिया कि व्यर्थ वाद-विवाद के सिवा और कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। अतः उनकी बात काटकर मैं बोल उठा :

"माफ़ कीजिये। मेरा बहुत सा काम यों ही पड़ा हुआ है। धन्यवाद है आपको।"

उन्होंने ज़िद के साथ कहा—"आपकी इस अस्वीकृति को मानने के लिए मैं तैयार नहीं हूँ। कल शाम को फिर आपके दर्शन के लिए आऊँगा। उम्मीद है कि तब तक आपका मन बदलने का शुभ संवाद सुनूँ।"

हमारी बातचीत बीच ही में रुक गई। मैंने गेरुआवस्त्रधारी उस साधू के हृष्ट-पुष्ट शरीर को सड़क पर गायब होते देखा।

जब मैं घर पहुँचा मुझे संदेह होने लगा कि शायद मुझ से भूल हुई है। यदि गुरुदेव की महत्ता चेले के दावे से आधी भी हुई तो दक्षिणी प्रदेश को खाक छानना फिजूल नहीं कहा जा सकता। किन्तु जोशीले चेलों की बातों से मेरा दिल उचट गया था। वे अपने गुरुओं के विजय गीत गाते हैं, उनकी प्रशंसा के पुल बाँधते हैं, पर वे गुरु अन्त में जाँच की कसौटी पर बहुत ही कोरे उतरते हैं। एक बात यह भी थी कि बेचैनी से लगातार कई रातों तक जागने के कारण मेरी नसें ढीली हो गई थीं। मेरी गम्भीरता और मानसिक समता का कुछ लोप सा हो गया था। इसलिए यह विचार अनावश्यक रूप से महत्वपूर्ण मालूम होने लगा कि यह नया सफर केवल एक हवाई किला ही सिद्ध न हो।

तिस पर भी दलीलो से मन का विश्वास और भावना का आवेग कभी नही मिटता। मेरे दिल मे एक विचित्र गुदगुदी पैदा होने लगी। उसकी प्रेरणा मे मुझे अनुभव होने लगा कि इस योगी के जिद्दी अनुरोध मे, अपने गुरू की विलक्षण विभूतियो के आग्रह के साथ बयान करने मे, शायद कुछ सचाई हो। मुझे वारम्वार भासने लगा कि मैने अपने आपको धोखे मे डाल दिया।

× × ×

नाश्ते का समय था। नौकर ने किसी आगन्तुक की सूचना दी। ये प्रसिद्ध लेखक श्री वेकटरमणि थे जो कलम की कमाई से रोजी चलाने वाले मेरे ही पेशे के एक स्वनामधन्य सज्जन है।

मेरे पास कई सिफारिशी पत्र बिखरे पड़े थे। उनको काम मे लाने की मेरी तनिक भी इच्छा नही थी। तो भी अपने भारत-भ्रमण के प्रारम्भ मे वम्बई मे उनमे से एक से मैने काम लिया था। दूसरे का मैने मद्रास मे उपयोग किया क्योकि उसके साथ कुछ खानगी संदेश सुनाने का भार भी मुझे सौपा गया था। इस दूसरे पत्र के कारण वेकटरमणि जी मेरे गरीबखाने के अतिथि हुए।

वेकटरमणि जी मद्रास विश्वविद्यालय की सेनेट के सदस्य है, पर वे देहाती जीवन के उच्च कोटि के उपन्यास और लेखो के लेखक की हैसियत से अधिक विख्यात है। मद्रास प्रान्त के लेखको मे अंग्रेजी भाषा के द्वारा उच्चकोटि की साहित्य सेवा करने के परिणामस्वरूप जनता ने इन्ही को सब से पहले हाथी दांत का एक स्मृति चिन्ह भेट कर के इनका आदर किया है।

इनकी रचना-शैली इतनी ललित होती है कि कवीन्द्र रवीन्द्र और इंगलैड के स्वर्गीय लार्ड हालडेन जैसे महानुभावो ने इनकी

बड़ी तारीफ़ की है। इनकी गद्य रचना अति सुन्दर उपमाओं की श्रृंखला सी जान पड़ती है। इनकी कहानियों में गरीब देहातियों के कारुणिक जीवन की गूँज सुनाई देती है।

जब वे मेरे कमरे में आये तो उनका लम्बा छरहरा शरीर, गोष्पाद जैसी मोटी शिखा, छोटा सा शिर, छोटी ठुड्डी, चश्मेवाली आँखें, सभी ने मेरी दृष्टि को बरबस खींच लिया। उनकी आँखों मे उनके कवि, विचारक और आदर्शवादी व्यक्ति होने की झलक एक साथ प्रकट हुई। साथ ही पीड़ित किसानों की करुणामय दुःख-यंत्रणा उनकी आँखों की पुतलियों से क्या ही अच्छी तरह झलक रही थी!

थोड़े ही समय में मुझे मालूम हो गया कि कितने ही विषयों पर हम दोनो के विचार मेल खाते है। कई विषयों पर आपस मे विचार-विनिमय तथा मत परिवर्तन होने, राजनीतिक विषयों की उपेक्षापूर्ण चर्चा करने और अपनी अपनी रुचि के लेखको की भरपूर प्रशंसा कर चुकने के पश्चात् मेरे दिल में एकबारगी यह प्रेरणा उठी कि मैं अपनी इस भारत यात्रा का सच्चा उद्देश स्पष्ट रूप से उन पर प्रकट कर दूँ। मैने अपना उद्देश उनके सामने खोल कर रख दिया और उनसे पूछा कि क्या उनको किसी सच्चे योगी का पता है जो वास्तव मे सिद्ध हो। साथ ही मैने उन्हे यह चेतावनी भी दे दी कि कोरी भभूत रमाने वाले तथा कुछ हाथ की सफ़ाई दिखाने वाले फकीरो आदि से भेट करने की मेरी विशेष अभिरुचि नहीं है।

वे इनकारी के रूप में अपना सिर हिलाते हुए कहने लगे:

"अब यह देश ऐसे सच्चे योगियो की मातृभूमि नहीं रह गया है। निरन्तर रूप से बढ़ने वाले जड़ अनात्मवाद तथा सर्वतोमुख अवनति और आध्यात्मिकता की धुँधली ज्योति से भी वंचित

पश्चिमी सभ्यता के पंजे मे फंसने से हमारे देश मे ऐसे महात्माओ का सर्वथा लोप हो गया है। तो भी मेरा पक्का निश्चय है, मेरा दृढ विश्वास है कि कुछ सच्चे योगी तो जरूर ही विजन जंगलो मे रहते होगे। लेकिन सारा जीवन उन्ही की खोज मे लगा देने की लगन न होने पर उनका पता लगना अत्यन्त कठिन है। आज कल हम भारतीयो को ही ऐसी खोज मे वहुत दिन दूर दूर तक घूमना पड़ता है। ऐसी हालत मे आप जैसे विदेशी के लिए यह कितना कठिन होगा इसका आप सहज ही अनुमान कर सकते है।"

मैने पूछा—"तो फिर क्या कोई आशा नही है ?"

"कुछ कहा नहीं जा सकता। कौन जाने, शायद आप का भाग्य प्रवल हो।"

किसी भावना से प्रेरित हो कर मै अचानक पूछ उठा :

"उत्तर आर्काट के पहाड़ो पर रहने वाले एक महात्मा को आप जानते है।"

उन्होने अपनी अनभिज्ञता प्रकट की।

फिर हम साहित्यिक विपयो की चर्चा मे मग्न हो गये।

मै उन्हे एक सिगरेट देने लगा तो उन्होने शिष्टता के साथ इनकार किया। मैने एक सिगरेट सुलगाई और धूम्रपान का आनन्द उठाने लगा।

वेंकटरमणि जी वड़े आवेग के साथ शीघ्रता से लुप्त होने वाली प्राचीन हिन्दू संस्कृति के आदर्शों की प्रशंसा के पुल बाँधते गये। उन्होने खास कर हिन्दुओ के जीवन की सादगी, समाज सेवा की तत्परता, उनकी जटिलतारहित रहन-सहन तथा

आध्यात्मिक ध्येय आदि का जिक्र किया। उनकी हार्दिक इच्छा है कि हिन्दू समाज का जीवन-रक्त चूसने वाले अन्ध विश्वासों रूपी घुन नष्ट कर डाले जायं। उनका सबसे बड़ा स्वप्न यह है कि हिन्दुस्तान के देहातों में रहने वाले लाखों लोगों को व्यावसायिक शहरों को मैली गलियों में आकर बसने और वहाँ की गर्द फाँकने से बचाया जाय। हालांकि हिन्दुस्तान में अभी यह मर्ज़ पूरी तरह से नहीं फैला है तो भी अग्रसोची होने और पाश्चात्य देशों के व्यावसायिक इतिहास का अध्ययन करने के परिणाम स्वरूप वे आज कल की प्रवृत्तियों के अवश्यम्भावी फलों से अच्छी तरह परिचित थे। वेंकटरमणि जी ने मुझ से बताया कि उनका जन्म दक्षिण भारत के एक अत्यन्त प्राचीन ग्राम के एक सम्पन्न कुटुम्ब में हुआ था और उन्हे देहाती जीवन की सांस्कृतिक अवनति और आर्थिक ह्रास को देख कर बड़ा ही दुःख होता है।

वेंकटरमणि जी भोले भाले देहातियों के जीवन को उज्ज्वल करने की कई तदबीरें बड़े प्रेम से सोचते है और जब तक उन ग़रीब किसानों को सुख नसीब नहीं होता, वे स्वयं सुखी नहीं हो सकते।

उनके दृष्टिकोण को समझने के लिए, मैंने कान लगा कर बड़ी शान्ति से उनको बातें सुनो। अन्त में वे चलने के लिए उठे और उनकी लम्बी मूर्ति सड़क पर जाती हुई आँखों से ओझल हो गई।

दूसरे दिन तड़के ही वे अचानक मेरे यहाँ उपस्थित हुए। मैं चकित हुआ। उनकी गाड़ी बड़ी जल्दी फाटक पर आ पहुँची, क्योंकि उन्हें सन्देह था कि मै कहीं घूमने न चला जाऊँ। मुझे देखते ही वे बोल उठे :

"कल रात को मुझे खबर मिली कि मेरे सब से बड़े अभिभावक चेंगलपट मे एक दिन तक ठहरेंगे।"

कुछ शान्त होकर के फिर कहने लगे :

"श्री जगद्गुरु, कुम्भकोणम के शंकराचार्य जी, दक्षिण भारत के धार्मिक गुरु है। लाखो आदमी उनका बडे आदर से सत्कार करते है और उन्हे ईश्वर का भेजा हुआ आचार्य मानते है। मुझ पर उनकी बड़ी कृपा है। उन्होने मेरे साहित्य प्रेम को काफी प्रोत्साहन दिया है। जब कभी मुझे आध्यात्मिक शान्ति की आवश्यकता होती है मै उन्ही की सेवा मे उपस्थित होता हूँ। कल मैने आप से एक बात छिपाई थी। उसे अब बताये देता हूँ। हम श्री स्वामी जी को अत्यन्त पहुँचा हुआ सिद्ध मानते है। पर वे योगी नही है। वे दक्षिण भारत के हिन्दू संसार के प्रधान आचार्य है, सच्चे साधु और बड़े भारी धार्मिक दार्शनिक है। इस ज़माने की अनेक अध्यात्मिक विचार-धाराओ से वे भली प्रकार परिचित है। स्वयं भी उन्होने काफी सिद्धि प्राप्त कर ली है। अत. वे सच्चे योगियों को जरूर जानते होगे। वे एक गाँव से दूसरे गाँव, एक शहर से दूसरे शहर, घूमते हुए बहुत लम्बे सफर किया करते है। अतः ऐसी बातो का उन्हे विशेष ज्ञान होगा ही। जहाँ कहीं वे जाते है, महात्मा, साधु-सज्जन आदि उनका आदर सत्कार करके अपने को धन्य मानते है। शायद आपको उनसे कोई मतलब की बात मालूम हो जाय। आप उनका दर्शन अवश्य करे।"

"धन्यवाद, आप की यह बड़ी कृपा है। चेंगलपट यहाँ से कितनी दूर होगा ?"

"केवल ३५ मील का रास्ता है। लेकिन—?"

'हाँ, लेकिन—?"

जगद्गुरु श्री शंकराचार्य जी (कुंभकोणम)

"इस वात का सन्देह है कि वे आप से मिलेंगे या नहीं। मैं अपनी शक्ति भर कोशिश करके देखूँगा। पर यदि—।"

"हाँ, समझ गया। मैं यूरोप का निवासी म्लेच्छ हूँ न ?"

"यदि वे इनकार कर वैठें तो आप वुरा तो न मानेंगे ?"

"जी नहीं, चलिए।"

हलका भोजन करके हम चेंगलपट के लिए रवाना हो गये। जिनसे भेंट करने के लिए मैं जा रहा था उनके वारे में प्रश्न पूछ कर अपने मित्र को मैं तंग करने लगा। मुझे मालूम हुआ कि श्री शंकराचार्य जी ओढ़ने-पहनने और खाने-पीने के मामलों में एकदम योगियों के ही समान सादगी से रहते हैं। लेकिन अपनी ऊँची पदवी के कारण, सफर करते समय उनको राजाओं का सा ठाट रखना पड़ता है। जहाँ कहीं वे जाते हैं, उनके पीछे पीछे हाथी, ऊँट आदि का एक खासा दल भी चलता है। पंडित, विद्यार्थी, दूत और नौकर आदि के जत्थे उनके साथ लगे फिरते हैं। हर कहीं, पास-पड़ोस के गाँवों के लोग झुंड के झुंड उनके दर्शन के लिए इकट्ठे होते हैं। कोई आध्यात्मिक, कोई मानसिक, कोई शारीरिक, कोई आर्थिक सहायता के लिए उनसे प्रार्थना करता है। हर दिन धनी लोग हजारों रुपयों की उनको भेंट चढ़ाते हैं। लेकिन उन्होंने अपरिग्रह और अस्तेय की दीक्षा ली है। अतः यह सारा धन उचित दान और धर्म में व्यय होता है। गरीवों की हाय हाय को दूर करने, विद्यालयों को प्रोत्साहन देने, जीर्णमंदिरों का पुनरुद्धार करने और ताल-तलैयों की मरम्मत करा कर दक्षिण भारत के नदी-रहित भूमिभागों की पानी की तंगी को दूर करने, आदि सत्कार्यों में वे धन लुटा देते है। किन्तु उनका मुख्य कार्य आध्यात्मिक उपदेशक का है। हर एक मंजिल पर वे लोगों को उनके पूर्वजों के वड़प्पन तथा पवित्र हिन्दू धर्म

के निगूढ़ तत्वो को सोचने समझने और अपने जीवन को उदात्त वनाने की ओर प्रवृत्त करते है। स्थानोय मंदिर मे उनका प्राय' कोई न कोई प्रवचन होता है और उनके पास शंका समाधान करने के लिए जो झुंड इकट्ठा होता है उसको अलग अलग उत्तर दे कर वे संतुष्ट करते है।

मुझे विदित हुआ कि आदि शंकर की गद्दी पर आरूढ़ आचार्यों मे ये साठवे है। इनकी पदवी, प्रभाव तथा महिमा की ठीक ठीक तसवीर खीचने के लिए आदि शंकर के वारे मे भी वेंकटरमणि जी से मुझे कुछ प्रश्न पूछने पड़े। कहते है कि २००० वर्ष पूर्व आदि शङ्कर का अवतार हुआ था। वे ऐतिहासिक ब्राह्मण ऋषियो मे सबसे बड़े माने जाते है। उनको यदि उच्च कोटि का दार्शनिक कहे तो कुछ भी अनुचित न होगा। उन्होने अपने ज़माने मे हिन्दू धर्म को वड़ा ही अव्यवस्थित और पतनोन्मुख पाया। उन्होने देखा कि उसका आध्यात्मिक अन्त - सत्व शीघ्र ही लुप्त होता जा रहा है। उनकी जीवनी को देखने से यही प्रकट होता है कि वे किसी उद्देश्य को लेकर ही पैदा हुए थे। १८ वर्ष की अवस्था से ही उन्होंने भारत का पैदल भ्रमण शुरू कर दिया था। अपने सफर से उन्होने कई विद्वानो और मठाधीशो से वाद-विवाद किया। हर जगह वे अपने प्रतिपादित सिद्धान्तो का उपदेश करते और पर्याप्त अनुयायियो का समुदाय एकत्रित करते गये। उनकी बुद्धि इतनी कुशाग्र थी कि कोई भी तर्क-वितर्क मे उनसे टक्कर नही ले सकता था। उनका यह बड़ा भाग्य था कि अन्य धर्म प्रवर्तको के समान दिवङ्गत होने के वाद नही, किन्तु उनके जीवन काल मे ही उनका मान बढ़ा था। सभी लोगो ने उन्हे एक विशिष्ट धर्म प्रवर्तक माना और उनका सर्वत्र वड़ा ही सत्कार हुआ।

उनके जीवन के कई ध्येय थे। उन्होंने प्रधानतया अपने देश को अपना धार्मिक संदेश सुनाने का बीड़ा उठाया था परन्तु इतने से ही उन्होने सन्तोप नही किया। धर्म के नाम पर जो अनेक हेच आदतें और संस्कार प्रचलित थे उनका समूल उच्छेद करने की उन्होंने कोशिश की थी। लोगों को शील और सच्चरित्रता का सबक सिखाने का भार उन्होंने अपने कंधों पर लिया था। अर्थ रहित कर्मकांड के आडम्बरों का थोथापन और उनकी अग्राह्यता का उन्होंने प्रतिपादन किया। उन्होंने वताया कि पुरुपार्थ को छोड़कर थोथे कर्मकांड पर ही निर्भर रहना टूटी लकड़ी का सहारा लेना है। पुरोहितों के वहिष्कार से कुछ भी विचलित न होकर, आश्रम धर्मों का एकदम उल्लंघन कर, उन्होंने अपनी माँ की अंत्येष्टि क्रिया की थी। जाति-पाँति के सर्वप्रथम तोड़ने वाले बुद्धदेव के समान ही शंकराचार्य जी भी इन मामलों मे दृढ़ थे। धर्माचार्यों के विरोध की कुछ भी परवाह न करते हुए उन्होने वताया कि जाति और वर्ण की अपेक्षा रक्खे विना, क्या ब्राह्मण, क्या शूद्र सभी ईश्वर के प्रणिधान के पात्र और परमार्थतत्व के आवेदन के पूर्ण अधिकारी वन सकते है। उन्होंने किसी पृथक जाति या धर्म की स्थापना नहीं की, पर उन्होंने यह अवश्य वताया था कि सभी धर्मों का एक ही गम्यस्थान, ईश्वर है। उन्होंने कहा था कि यदि लोग सच्चाई के साथ अपने अपने साम्प्रदायों के रहस्यपूर्ण अन्तः सत्यों का पर्यवेक्षण करें तो सभी धर्म एक ही ईश्वर की प्राप्ति के अनेक मार्ग मात्र सिद्ध होंगे। अपने मत की स्थापना के लिए उन्होंने सूक्ष्म और गम्भीर अर्थ वाले एक पृथक दर्शन का ही निर्माण कर डाला। यही नही वल्कि उसके प्रतिपादन करने वाले अनेक अमूल्य ग्रंथ भी वे छोड़ गये। जहाँ जहाँ अध्ययन अव भी जारी है वहाँ हर कहीं उन ग्रन्थों का पठन-पाठन जारी रहता है। पंडित लोग उस

ग्रन्थराशि अर्थात् उनकी दार्शनिक और धार्मिक थाती की बड़े गर्व के साथ रक्षा करते है, पर खेद है कि वे उनके ग्रंथो के अर्थ के बारे मे आपस से झगड़ पड़ते है, और ऐसा होना स्वाभाविक ही है।

श्री शंकराचार्य जी ने भगवा वस्त्र पहनकर और हाथ मे दण्ड ले कर सारे भारत का भ्रमण किया था। अच्छी तरह सोच समझ कर भारत की चारो दिशाओ मे चार बड़े बड़े मठो की उन्होने स्थापना की। उत्तर के बद्रीनाथ, पूरब के पुरी-जगन्नाथ, आदि स्थानो पर उन्होने अपने पीठ स्थापित किए। दक्षिण भारत मे, जहाँ से उन्होने अपना कार्य शुरू किया था, एक मन्दिर और मठ, जो उनके अन्य चारो मठो के केन्द्र है अव भी विद्यमान है। आज तक दक्षिण भारत हिन्दू धर्म की पवित्र से पवित्र धर्म-भूमि रही है। चातुर्मास के बीतने पर इन मठो से सुशिक्षित सन्यासी निकल कर सारे देश मे भ्रमण करके श्री शंकर के संदेश को फैलाते रहते है। इस महान् अवतार का निर्वाण ३२ वर्ष की अल्प अवस्था मे ही हुआ था। देश मे यह भी एक जनश्रुति है कि वे सशरीर ही अंतर्ध्यान हो गए थे। इन सब बातो की जानकारी मेरे लिए यह महत्व रखती थी कि इस समय मै।जिन शंकराचार्य का दर्शन करने जा रहा था वे भी उन्ही आदि शंकर के संदेश के प्रचारक थे। इस बारे मे भी एक जनश्रुति है। कहा जाता है कि श्री आदि शंकर ने अपने चेलो से यह बताया था कि उनके स्वर्ग सिधारने पर भी उनकी आत्मा संसारी लोगो के साथ रहेगी और ऐसा होना पर-काय-प्रवेश की अनुपम योग-सिद्धि के द्वारा ही साध्य है। तिब्बत के दलाई लामा की बात भी इसी से कुछ मिलती-जुलती है। मरणासन्न दलाई लामा अपनी मृत्यु के आखिरी क्षणो

में अपनी गद्दी के उत्तराधिकारी को बतला जाते हैं। प्रायः यह नया अधिकारी कोई शिशु ही होता है। दलाई लामा के स्वर्गवास के बाद उस बच्चे की बड़ी देखरेख होती है। उसकी देखभाल की ज़िम्मेदारी देश के नामी विद्वानों के सुपुर्द की जाती है। वे लोग उत्तम शिक्षा देकर उस बालक को उस उस उच्च पद के योग्य बनाते हैं। उसकी शिक्षा केवल धार्मिक और बौद्धिक विषयो तक ही सीमित नहीं रहती वरन् उत्तम योगमार्ग और ध्यान की प्रक्रियाओं में भी वह बालक दीक्षा पाता है। शिक्षा के बाद वह लामा जनता की सेवा में प्राणपण से लग जाता है। इस परम्परा का कई सदियों से अनुसरण होता आया है। अचरज यह है कि आज तक इस पदवी के धारण करने वाले किसी भी दलाई लामा में कभी भी उज्वल तथा स्वार्थ रहित चरित्र के अतिरिक्त कोई बट्टा लगाने वाला दोष देखने में नहीं आया।

श्री वेंकटरमणि ने अपने कथन को श्री शंकराचार्य जी की अनूठी विभूतियो की कथाओं से रोचक बना दिया। उन्होंने अपने चचेरे भाई के अश्चर्यजनक इलाज की बात भी बताई। वे कई साल तक आमवात रोग से पीड़ित रहे थे। श्री शंकराचार्य जी ने उन को छू दिया और तीन घंटे बाद ही रोगी की हालत यहाँ तक सुधरी कि वह पलंग छोड़कर खड़ा हुआ और थोड़े ही दिनों मे एकदम चंगा हो गया।

एक दूसरा दावा यह था कि श्री आचार्य जी दूसरों के अव्यक्त विचारों को जान सकते हैं। जो हो, वेंकटरमणि जी इन बातों की सच्चाई पर पूर्ण विश्वास रखते हैं।

× × ×

चेंगलपट जानेवाली सड़क बड़ी ही सुन्दर थी। दोनो ओर ताल वृक्षों का तांता सा लगा हुआ था। चेंगलपट चूने से पुते मकानो की एक अस्तव्यस्त राशि मात्र है। वहाँ की गलियाँ बहुत ही तंग है। मकानो के लाल छप्पर आपस मे सटे हुए रहते है। हम गाड़ी से उतर कर बीच नगर की ओर चलने लगे। वहाँ बड़ी भीड़ लगी हुई थी। वेंकटरमणि जी मुझे एक घर मे ले गये जहाँ कई व्यक्ति श्री शंकराचार्य जी की डाक के ढेर की, जो कुंभकोनम से आई थी, उचित व्यवस्था कर रहे थे। वेंकट-रमणि जी ने उनमे से एक को अपना कुछ संवाद देकर श्री शंकराचार्य जी के पास भेज दिया। हम लोग वही प्रतीक्षा करने लगे। वहाँ बैठने के लिए कुर्सी तक न थी। आध घंटे से कुछ अधिक ही बीता होगा कि वह आदमी लौटकर आया और उसने बताया कि स्वामी जी ने मुझसे मिलना अस्वीकार कर दिया है। वे किसी भी यूरोपियन से भेंट करना नही चाहते थे। इसके अतिरिक्त वहाँ कोई २०० से अधिक व्यक्ति स्वामी जी के दर्शन की प्रतीक्षा मे बैठे थे। कितने ही तो स्वामी जी से मिलने की अनुमति पाने के लिए कई दिन से आकर शहर मे ठहरे थे। स्वामी जी के सेक्रेटरी महाशय इस मजबूरी के लिए अपनी बेवसी प्रकट करते हुए मुझसे माफी माँगने लगे।

मैने विरक्ति के साथ इस परिस्थिति को स्वीकार कर लिया, पर वेंकटरमणि जी ने कहा कि वे स्वामी जी के विशेष कृपापात्र है और वे स्वामी जी से भेंट करके एक बार फिर उनसे अनु-रोध करेगे कि शंकराचार्य जी मेरे सम्बन्ध मे अपना निर्णय बदल दे। उपस्थित भीड़ मे से कई लोग, अपनी वारी की प्रतीक्षा किये विना श्री स्वामी जी के दर्शन की अनुचित चेष्टा करने वाले वेंकटरमणि जी को देखकर बडबडाने लगे। बहुत

समझा-बुझाकर और अनुनय-विनय करके वेंकटरमणि जी किसी तरह भीतर जाने पाये। थोड़ी देर बाद आनन्द से मुस्कराते हुए वे विजयगर्व के साथ लौट आये और बोले :

"श्री आचार्य जी ने आपके बारे में रिआयत कर दी है। एक घंटे के भीतर आप की उनसे भेंट होगी।"

तब तक नगर के प्रधान मन्दिर की ओर ले जाने वाली सुन्दर गलियों की मैं अलस भाव से सैर करता रहा। मैंने कुछ नौकरों को हाथियों के एक झुंड और ऊँचे ऊँचे ऊँटों की एक पंक्ति को पनघट की ओर ले जाते हुए देखा। किसी ने मुझे वह बढ़िया हाथी दिखाया जिसके ऊपर दक्षिण भारत के प्रधान आचार्य विराजमान होते हैं। स्वामी जी एक विशाल ऊँचे हाथी की पीठ पर एक बेशकीमत हौदे पर बैठकर चलते हैं। हौदे की खूब ही सजावट होती है। चारों ओर सुन्दर सुनहरे काम की झूल लटकती रहती है। हाथी की पीठ पर बेशकीमती सुनहले बेल-बूटे कढ़े हुए दुशाले डाले जाते हैं। मैंने देखा कि बीच बीच में अपनी सूँड को कभी उठाते और कभी लटकाते हुए वह गम्भीर गजराज गलियों में अलस भाव से झूमते झामते जा रहा है।

यह एक प्राचीन शिष्टाचार है कि किसी साधु-सन्त से भेंट के लिए जाते समय फल-फूल, मेवे-मिठाई आदि का उपहार उपस्थित किया जाता है। इसका स्मरण करके पूज्य स्वामी जी को भेंट चढ़ाने के लिए मैंने कुछ तुच्छ उपहारों का संग्रह कर लिया। सामने नारंगियाँ और फूल नज़र आये और अपनी सुविधा के अनुसार मैंने उन्हें मोल लिया।

श्री स्वामी जी के दरबार के सामने बड़ी भीड़ एकत्रित हुई थी और उसके कोलाहल में मैं शिष्टाचार की एक और

मुख्य बात भूल गया। वेंकटरमणि जी ने तुरन्त मुझे सहेजा—"जूते बाहर ही उतार दीजिये।" यह आशा करते हुए कि लौटने पर मेरे जूते वहीं मिल जायंगे मैंने उनको बाहर ही छोड़ दिया।

हम एक छोटे फाटक से होकर एक डेवढ़ी में पहुँच गये। उस दालान के एक धुंधले कोने में मैंने नाटे क़द के एक व्यक्ति को खड़े हुए पाया। मैंने उनके निकट जा कर भेंट का पूजा-द्रव्य उनके चरणों के समीप रख दिया और झुक कर प्रणाम किया। आदर और अभिनन्दन का आवश्यक बाह्य प्रदर्शन होने के अतिरिक्त उस प्रणाम की एक बड़ी ही कलात्मक महत्ता है जो मेरे मन को बहुत ही रुचिकर है। मुझे अच्छी तरह मालूम है कि श्री शंकराचार्य जी ईसाई धर्म के पोप के समान नहीं हैं, क्योंकि हिन्दू-धर्म में 'पोप' जैसी कोई पदवी है ही नहीं। वे सच्चे उपदेशक और आचार्य हैं और धार्मिक जनता के बड़े विराट समूह में जान फूकते हैं। उनके इस आचार्यत्व को सारा दक्षिण भारत सहर्ष मानता है।

× × ×

चुपचाप मैंने उनकी ओर देखा। वे छोटे कद के थे और गेरुआ वस्त्र पहने हुए तथा अपने दंड का सहारा ले कर खड़े हुए थे। मुझे बतलाया गया था कि उनकी आयु ४० वर्ष से भी कम है। अतः उनके एकदम पके बाल देख कर मैं चकित हो गया।

उनका वह गेहुँआ रंग का तेजपूर्ण चेहरा कितने ही दिन तक मेरे स्मृति मन्दिर की चित्रशाला में बहुत ही ऊँचे स्थान पर स्थित रहेगा। एक अवर्णनीय आध्यात्मिक दीप्ति जो सामान्य मानवों की दृष्टि से परे रहती है, उनके मुख-मंडल पर मौजूद रहती है। उनकी काली विशाल आँखें अत्यन्त प्रशान्त और सुन्दर हैं। उनके चेहरे की

आकृति सौम्य और आडम्बरशून्य है। नाक उनकी छोटी और सीधी थी मानों किसी सांचे में ढली हुई हो। उनकी ठुड्डी पर छोटी दाढ़ी बढ़ी हुई थी। उनके मुँह की गम्भीरता साफ़ ही नज़र आ रही थी। उनके चेहरे को देख कर मध्य कालीन ईसाई महात्माओं की याद आजाती थी, यद्यपि उन ईसाई महात्माओं की अपेक्षा शंकराचार्य जी में एक विशेषता थी कि इनके चेहरे से बुद्धिकुशलता भी टपकी पड़ती थी। मेरा अनुमान है कि हम पश्चिमी लोग इनको देख कर यही कह उठेंगे कि इनकी किसी सपना देखने वाले की सी आँखें हैं। जो हो, एक अकथनीय ढंग से मुझे भान होने लगा कि उन भारी पलकों के तले सपनों से भी अधिक महत्व रखने वाली कोई बात अवश्य छिपी है।

अपना परिचय देने के तौर पर मैं बोला :

"जगद्‌गुरु महाराज ने अपने दर्शन की अनुमति देकर मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया है।"

स्वामी जी मेरे साथी की ओर घूमे और अपनी मातृभाषा में कुछ बोले। मैंने उसका ठीक ठीक अर्थ ताड़ लिया।

वेंकटरमणि जी ने कहा—"स्वामी जी आपकी अंग्रेज़ी अच्छी तरह समझ लेते हैं पर उन्हें संकोच इस बात का है कि उनकी अंग्रेजी आप शायद समझ नहीं पावेंगे। इस कारण वे यही अधिक पसन्द करते हैं कि मै आपके लिए उनके वचनों का अनुवाद कर दूँ।"

इस भेंट की प्रारम्भिक और छोटी-मोटी बातो की मैं चर्चा नहीं करूँगा क्योंकि उनका स्वामी जी की अपेक्षा मुझसे अधिक सम्बन्ध है। उन्होंने हिन्दुस्तान के मेरे अनुभवों के बारे में प्रश्न किये। भारतीय व्यक्तियों तथा संस्थाओं का किसी विदेशी के

मन पर क्या प्रभाव पड़ता है यह जानने की उन्होंने बड़ी उत्कंठा दिखाई। मैंने उनके सामने अपना दिल खोल कर रख दिया और बिना कुछ छिपाये प्रशंसा और आलोचना से मिले हुए अपने सच्चे भाव साफ साफ बता दिये।

इसके बाद हमारी बातचीत का रूप बदला। बड़े गम्भीर और गहन विषयों की चर्चा होने लगी। यह जानकर मुझे बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि वे नियमपूर्वक अंग्रेज़ी अखबार पढा करते है और बाहरी दुनिया मे आजकल जो कुछ हो रहा है उसकी अच्छी जानकारी रखते है। वे यह तो अवश्य नही जानते कि वेस्ट मिनिस्टर मे आजकल क्या नया गुल खिल रहा है, पर वे यह स्पष्ट रूप से समझते है कि यूरोप का प्रजातंत्र रूपी शिशु किन दर्दनाक बाल-अरिष्टो के पंजे मे फँसकर कैसे तड़प रहा है।

वेकटरमणि जी का यह दृढ़ विश्वास भी मुझसे छिपा नही है कि श्री शंकराचार्य जी को अंतर्दृष्टि भी प्राप्त है और वे भविष्य के ज्ञाता है। मेरा हौसला हुआ कि दुनिया के भविष्य के बारे मे इनकी राय जान लू ।

"आपकी राय मे, दुनिया की राजनैतिक और आर्थिक दुरवस्था कब तक सुधर सकती है ?"

"निकट भविष्य मे उसका सुधरना एक अनहोनी बात है। सुधार के लिए पर्याप्त समय चाहिए। जब कि हर साल सहारक हथियारो के बनाने से दुनिया की सभी जातियाँ करोड़ो रुपये फूंक रही है तो दुनिया की हालत कैसे सुधर सकती है ?"

"लेकिन हर जगह निःशस्त्रीकरण की चर्चा भी तो जारी है, उससे क्या कुछ भी आशा नही की जा सकती ?"

"तुम चाहे अपने जंगी जहाजो के टुकड़े टुकड़े कर डालो,

अपनी तोपों में जंग लगने दो, तो भी युद्ध नहीं रुकेगा। लड़ने के लिए लोगों के पास यदि केवल लाठी ही बच रही तो भी लोग अवश्य ही लड़ेंगे।"

"तो फिर क्या इससे बचने की कोई सूरत नहीं है?"

"जब तक जातियों के आपस में, गरीब तथा अमीर दोनों के बीच में, वास्तविक अभिन्नता की तात्त्विक बात तथा आध्यात्मिक एकता की समझ पैदा नहीं होगी तब तक लोगों में सौजन्य, पारस्परिक शुभाकांक्षा, सच्ची शान्ति और उन्नति विराज नहीं सकती।"

"लेकिन यह दूर की बात है। तो क्या हमारी रक्षा का कोई उपाय, कोई आशा, नहीं है?"

श्री स्वामी जी दंड पर कुछ अधिक भार देकर, कोमल स्वर में बोले—"तब भी ईश्वर तो हैं ही।"

बड़ी दिलेरी के साथ मैं बोल उठा—"यदि हों भी तो जान पड़ता है कि बड़ी ही दूर पर हैं।"

इसका मृदु उत्तर था—"ईश्वर का मानवों पर प्रेम ही प्रेम है।"

भावावेग के कारण, अपने स्वर में गूंजने वाले कठोर तिरस्कार को मै नहीं छिपा सका। बोल उठा—"दुनिया आजकल जिस दुःख-दरिद्र में, जिस दीनता में, घुली जा रही है उसको देख कर यही अनुमान करना पड़ता है कि ईश्वर मानवों के प्रति अत्यन्त उदासीन है।"

स्वामी जी ने चकित हो कर मेरी ओर ताका। तुरन्त अपने शब्दों के लिए मैं बहुत पछताने लगा।

स्वामी जी ने कहा—"धैर्यवान व्यक्ति अधिक गहराई तक पहुँच सकता है। निश्चित समय पर सब कुछ सँभालने के लिए

ईश्वर मानवो को ही साधन बनायेगा। जातियो का संघर्ष, जनता का नैतिक पतन, लाखों करोड़ो की घोर दयनीय गरीबी व्यर्थ नही जायगी। इनकी जरूर ही कोई प्रतिक्रिया होगी ; और उसी प्रतिक्रिया के रूप मे ईश्वर की दैवी प्रेरणा से प्रेरित कोई महान् व्यक्ति रक्षा करने के लिए आगे बढ़ेगा। हर एक सदी मे इस प्रकार का कोई रक्षक अथवा अवतार पैदा होता है। यह दैवी नियम भौतिक विज्ञान के नियमों के समान ही चालू होता है। आध्यात्मिक अज्ञान और जड अनात्मवाद से जितनी अधिक मात्रा मे दुनिया की दुर्दशा बढ़ेगी उतने ही बड़े महात्मा दुनिया की रक्षा में तत्पर होकर अवतार ग्रहण करेगे।"

"तो आपको उम्मीद है कि हमारे इस जमाने में भी किसी रक्षक का अवतार होगा ?"

"इस जमाने मे क्यो इसी सदी मे। बेशक! दुनिया के लिए रक्षक की इतनी बड़ी जरूरत है, आध्यात्मिक अन्धकार इतने घोर रूप से फैल गया है कि ईश्वरीय प्रेरणा से प्रेरित कोई महात्मा अवश्य ही अवतार लेगे।"

"तो आपका यही विचार है कि मानव दिनप्रतिदिन अधिक गिरता जा रहा है ?"

"नही, मेरा ऐसा विचार नही है। हर एक मनुष्य में दैवी आत्मा रहती है। वही आत्मा कभी न कभी उसकी ईश्वर से भेट करा देगी।"

मैने अपने यहाँ के आधुनिक डकैतो को ध्यान मे रखते हुए कहा—"लेकिन हमारे पश्चिम मे ऐसे भी व्यक्ति देखने मे आते है जिनमे दैवी आत्मा की अपेक्षा शैतान निवास करता हुआ जान पड़ता है।"

"लोगों को उतना दोषी मत ठहराओ जितना कि वातावरण को। जन्म से ही वे ऐसे वातावरण में रहते हैं और उनकी परि-स्थितियाँ कुछ ऐसी रहती हैं जिनके कारण उनको लाचार होकर अपने सच्चे स्वभाव से बहुत ही नीचे उतर जाना पड़ता है। यह बात पश्चिम ही में क्यों पूर्व में भी उसी प्रकार लागू होती है। समाज को ही इतना उत्तम बनाना होगा कि उसके ताने बाने से एक मधुरिमा छा जाय। जड़वाद के साथ आदर्शवाद का उचित सामंजस्य स्थापित होना चाहिए। इसके अतिरिक्त संसार के संकटों का और कोई इलाज नहीं है। हर एक राष्ट्र मुसीबतों में फँसा जा रहा है। ये ही मुसीबतें, ये ही यंत्रणाएं, भावी परिवर्तन और सुधार के सच्चे कारण अवश्य साबित होंगी, जैसे कि प्रायः कोई असफलता सच्ची सफलता का मार्ग बताने का अच्छा साधन बन जाती है।"

"तो आपको यह पसन्द है कि लोग संसारी व्यवहार में भी आध्यात्मिकता के सिद्धान्तों को बरतें?"

"जी हाँ। यह असम्भव नहीं है, क्योंकि अन्त को इसी मार्ग के अवलम्बन से स्थायी और सभी को समान रूप से लाभ पहुंचाने वाले सुपरिणाम प्राप्त होंगे। यदि दुनिया में आध्यात्मिक ज्योति की प्राप्ति कर लेने वालों की संख्या अधिक हो जाय तो यह मार्ग शीघ्र ही सुगम हो जायगा। भारत के लिए यह गौरव की बात है कि वह अब भी अपने सच्चे आध्यात्मिक व्यक्तियों की रक्षा और आदर करता है, यद्यपि पहले की अपेक्षा इस समय इस बात में काफी कमी है। यदि सारी दुनिया भारत का अनु-करण करे और अंतर्दृष्टिवाले महात्माओं के आदेश पर चले, तो शीघ्र ही दुनिया में सुख-शान्ति विराजेगी और सारा संसार सुखी और संपन्न होगा।"

हमारी बातचीत जारी रही। मुझे प्रकट हुआ कि श्री शंकराचार्य जी अपने देश की महिमा को बढाने के लिए अपने अन्य देश भाइयो की तरह पश्चिम की निन्दा और तिरस्कार नही करते। वे मानते हैं कि प्राच्य और पाश्चात्य दोनो देशो में अपने अपने अच्छे और बुरे गुण अवश्य है। इन दोनो वर्गों के देशो को गुण-दोष मे एक समान मानते हुए श्री शंकराचार्य जी यह आशा करते है कि अधिक बुद्धिमान भावी संतान दोनो सभ्यताओं और संस्कृतियो की उत्तम बातो के सुन्दर समावेश से एक श्रेष्ठ और सुसंगठित समाज की रचना करेगी।

मैने विषय बदल कर कुछ उनकी निजी बाते पूछने की अनुमति माँगी। बिना किसी प्रकार की आपत्ति के मेरी माँग स्वीकृत हुई।

"कितने वर्षों से जगद्‌गुरु जो इस पीठ की शोभा बढ़ा रहे है ?"

"१९०७ ईसवी से। उस समय मै केवल १२ वर्ष का था। अपनी नियुक्ति के बाद मै कावेरी नदी के किनारे के एक गाँव मे रहकर तीन वर्ष तक सारा समय ध्यान और अध्ययन में बिताता रहा। बाद को मै जन-साधारण की सेवा करने लगा।"

"मै समझता हूं कि आप कुम्भकोणम मे बहुत ही कम रहते है ?"

"हां। इसकी यही वजह यह है कि सन् १९१८ मे नेपाल के महाराज ने मुझसे प्रार्थना की थी कि कुछ दिन तक मै उनका आतिथ्य स्वीकार करूँ। मैने इस निमंत्रण को स्वीकार कर लिया और तभी से नेपाल पहुँचने के लिए धीरे धीरे सफर कर रहा हूँ। लेकिन देखो, इतने वर्ष मे मैने बहुत ही कम रास्ता तय कर पाया

है। पीठाधिपति का धर्म है कि वह रास्ते के हर गाँव व शहर में, या कम से कम उन नज़दीक शहरों में जहाँ से न्योता मिल जाय, ठहरे और स्थानीय मन्दिर मे आध्यात्मिक विषयों की कुछ चर्चा करे तथा लोगों को कुछ न कुछ उपदेश दे।"

मैंने अपनी खोज की बात छेड़ी। श्री स्वामी जी ने मुझ से प्रश्न किया कि किन किन योगियों से अब तक मेरी भेंट हुई थी और उनके बारे में मेरे क्या विचार बने थे। मैंने उनसे स्पष्ट ही बता दिया :

"मै ऐसे योगी से मिलने के लिए बड़ा ही उत्सुक हूँ, जिसने उत्तम से उत्तम सिद्धि प्राप्त की हो और उन सिद्धियों का कुछ न कुछ प्रत्यक्ष प्रमाण दिखा सके। देश में ऐसे अनेक साधु हैं जो प्रमाण के बदले एक लम्बा चौड़ा उपदेश ही झाड़ देते हैं। क्या मेरा उत्साह उचित नहीं है ?"

उनकी प्रशान्त दृष्टि मेरी ओर लगी हुई थी।

मिनट भर सन्नाटा छाया रहा। धीरे धीरे श्री शंकर जी अपनी अंगुलियों से दाढ़ी सुहलाने लगे।

"यदि उत्तम योग-दीक्षा पाने की तुम्हारी अभिलाषा हो तो कुछ अनुचित नहीं है। तुम्हारे दृढ़ संकल्प को समझ कर मेरा विचार है कि तुम्हारा सच्चा उद्योग अवश्य ही तुम्हारी मदद करेगा। पर सुनो, तुम्हारे ही अंदर एक ज्योति जागृत होकर चमकने लगी है। निस्संदेह वही तुम को रास्ता दिखायेगी और तुम्हारे अभिलषित ध्येय पर पहुँचायेगी।"

मुझे विश्वास नहीं हुआ कि मैं उनकी बातों का ठीक ठीक अर्थ समझ सका हूँ। साहस बाँध कर मैंने कहा :

"अब तक मैं अपने ही भरोसे रहा हूँ। कोई राह दिखाने

वाला मुझे नही मिला। आपके यहाँ के कुछ प्राचीन ऋषि भी यही कह गये है कि अंतर्यामी को छोड़ कर और कोई ईश्वर नही है ?"

तुरन्त ही स्वामी जी का उत्तर मिला :

"भगवान सर्वत्र है। एक ही व्यक्ति की आत्मा मे 'वह' सीमित कैसे हो सकता है ? वही सारे विश्व का धर्ता है।"

मुझे मालूम हुआ कि बातचीत अब मेरी समझ से परे होती जा रही है। अतः शीघ्र ही इस अर्ध-धार्मिक विषय को पलट कर बोला :

"कौन सा मार्ग मेरे लिए सब से अधिक आचरण योग्य है ?"

"अपना सफर जारी रक्खो। जब वह समाप्त हो तो जिन जिन से तुम्हारी भेट हुई हो उन महात्माओ की एक बार याद करो। उनमे जो तुम्हारे दिल को बरबस खीचते हुए प्रतीत हो उनके पास लौट जाओ। वे जरूर तुम्हे दीक्षा प्रदान करेगे।"

मैने उनकी उस प्रशांत मूर्ति की ओर आँख भर ताका। मुझे आश्चर्य होने लगा कि वे कितने गम्भीर और कितने निराले है।

"लेकिन स्वामी जी, यदि कोई भी मेरे मन को आकर्षित न करे तब ?"

"ऐसी सूरत मे तुम अपने मार्ग का अकेले ही अनुसरण करो जब तक कि ईश्वर ही स्वयं तुम्हे दीक्षा प्रदान न करे। नियमपूर्वक ध्यान का अभ्यास करो। प्रेम के साथ उत्तम विषयो का ध्यान लगाओ। अधिकतर आत्मा के विषय में मनन करो। यही तुम्हारे हृदय को आत्मज्ञान की ज्योति से आलोकित करेगा। अभ्यास के लिए सबसे उत्तम मुहूर्त ब्राह्म मुहूर्त है। तब सारी

प्रकृति जागृत होने लगती है। इसके बाद गोधूलि का समय है। उस समय भी संसार प्रशान्त रहता है। इन समयों पर तुम्हारे ध्यान में बहुत ही कम अड़चनें पड़ेंगी।"

बड़ी दया के साथ वे मेरी ओर ताकने लगे। उनके उस दाढ़ी-युक्त चेहरे पर जो महात्मापन की शान्ति विराज रही थी, उसे देखकर मुझे ईर्ष्या सी होने लगी। निश्चय ही मेरे हृदय को जिन उपद्रवी तूफ़ानों ने उथल-पुथल कर दिया था वैसे तूफ़ान उनके हृदय में शायद ही उठे होंगे। प्रेरणावश मैं पूछ उठा :

"यदि मुझे असफलता हाथ लगी तो आपकी शरण में आ जाऊँ?"

श्री स्वामी जी ने सिर हिला दिया। कहा :

"मैं एक सार्वजनिक संस्था का अध्यक्ष हूँ, अतः मेरा कोई भी समय अपना नहीं रहता। मेरा सारा समय अपने पद के कर्तव्यों के पालन ही में लग जाता है। वर्षों से लगातार तीन घंटे की नींद शायद ही मैंने कभी पाई हो। मैं किसी को अपना खास चेला कैसे बना सकता हूँ? तुम को किसी ऐसे गुरू को खोजना चाहिए जो तुम्हारे लिए अपना सारा समय दे सके।"

"लेकिन मैंने सुना है कि सच्चे गुरू विरले ही किसी को बड़े भाग्य से मिलते हैं। यह भी कहा गया है कि यूरोपियनों को वे नहीं ही मिलेंगे।"

उन्होंने मेरी बात मान ली और कहा :

"हाँ, बात सच है। तब भी तुम को गुरू मिल ही जायँगे।"

"तो आप कृपया मुझे कोई ऐसा गुरू बता दीजिये जो आपकी राय में उच्चकोटि के योग का अस्तित्व सफलता पूर्वक प्रमाणित कर सकें।"

स्वामी जी बड़ी देर तक मौन रहे और तब उत्तर दिया :

"तुम्हारी इच्छा की पूर्ति कर सकने की योग्यता रखने वाले केवल दो योगी ही इस देश मे है। उनमे से एक काशी मे एक बड़े भारी मकान मे छिपे रहते है। वह मकान भी साधारण जनता की दृष्टि से छिपा रहता है। बहुत कम लोग उनका दर्शन कर पाते है। निश्चय ही अब तक कोई अंग्रेज उनकी शान्ति और एकान्त मे बाधा नही पहुॅचा पाया है। मै तुम्हे वहाॅ भेज सकता हूॅ। पर मुझे यही आशंका है कि वे शायद किसी अंग्रेज को अपना चेला बनाने के लिए राज़ी न होगे।"

मेरी उत्कंठा अब प्रबल हो गई। मै बोल उठा :

"और दूसरे ?"

"दूसरे योगी इस स्थान से भी दक्षिण की ओर रहते है। मैने उनका दर्शन एक बार किया है और मै जानता हूॅ कि वे बहुत ही उच्च कोटि के योगी है। मैं समझता हूॅ कि उनके पास जाने से तुम्हारी साध पूरी होगी।"

"उनका नाम क्या है।"

"वे महर्षि कहलाते है और वे ज्योतिर्गिरि अरुणाचल पर निवास करते है। यह स्थान उत्तरी आर्काट प्रदेश मे है। मै तुम्हे सारी बातो का पता बता दूॅगा ताकि तुम उन्हे सहज ही मे खोज लो।"

अचानक मेरे मन पर एक तसवीर खिच गई।

मुझे उन गेरुआवस्त्रधारी साधू की याद आई जिन्होने मुझे अपने गुरुदेव के दर्शन करने का न्योता दिया था किन्तु जिसे मैने अस्वीकृत कर दिया था। उनके बताए हुए पर्वत का नाम अब भी मेरे कानो मे गूॅज रहा था। 'ज्योतिर्गिरि अरुणाचल'।

मैंने उत्तर दिया—"आपका मैं चिरऋणी रहूँगा, लेकिन स्वामी जी, वहाँ के एक आदमी ने मुझे वहाँ ले जाने का बीड़ा उठा लिया है।"

"तो तुम वहाँ जाओगे ?"

मैं संकोच में पड़ गया। कुछ अनिश्चित भाव से मैं कह उठा—"दक्षिण से कल ही चले जाने का सारा इन्तजाम हो चुका है।"

"तो मेरी एक बात मान लो।"

"हाँ बताइये।"

"प्रतिज्ञा करो कि महर्षि के दर्शन किये बिना दक्षिण भारत नहीं छोड़ोगे।"

मैंने उनकी आँखों की ओर ताका। मुझे मदद पहुँचाने की सच्ची चाह उन आँखों से साफ़ ही झलक रही थी। मैंने कुछ हीला-हवाला किये बिना प्रतिज्ञा कर डाली।

उनके चेहरे पर बड़ी ही कृपापूर्ण मंद मुस्कान खिल उठी।

"उतावले मत होना। जिसको खोजते फिर रहे हो वह जरूर ही तुम्हें मिल जावेगा।"

बाहर लोगों की भीड़ की अशान्ति और गुनगुनाहट बढ़ती जा रही थी। मैंने नम्रता पूर्वक कहा :

"क्षमा कीजिये, मैंने आपका बहुत सा अमूल्य समय लिया है। इसका मुझे बड़ा खेद है।"

शंकराचार्य जी के मुख की गम्भीरता कुछ कम हो गई। वे मेरे साथ दालान के किनारे तक चले और वहाँ पर रुक कर मेरे साथी के कानों में उन्होंने कुछ कहा। उनके ओठों के हिलने से मुझे भास गया कि वे मेरे ही बारे में कुछ बातें कर रहे हैं।

द्वार पर पहुँचते ही मैंने घूम कर, बड़ी नम्रता के साथ स्वामी जी से विदा ली। श्री स्वामी जी ने अपना एक संदेश सुनाने के लिए मुझे फिर बुला लिया और कहा :

"तुम सदा ही मेरी याद रक्खोगे और हम भी तुम्हे कभी नही भूलेंगे।"

इस संक्षिप्त किन्तु सारपूर्ण वाक्य का मनन करते अनिच्छा के साथ इस महात्मा से, जिसने बचपन से ही अपना सारा जीवन ईश्वर के ध्यान मे अर्पण कर रक्खा है, मैंने बिदा ली।

वे ऐसे धर्माचार्य है जिनको सांसारिक विषयों की गंध भी नही छू गई है क्योकि उन्होने संसार से पूर्ण विरक्ति कर ली है। जो कुछ माया-ममता उनके साथ लगी रहती है वह उन्ही लोगो के लिए है जो उनकी जरूरत महसूस करते है। उनका वह सुन्दर तथा सौम्य व्यक्तित्व सदा के लिए मेरे मन-मन्दिर मे स्थिर रहेगा।

शाम तक चेंगलपट की गलियो मे, नगर की कलामय प्राचीन सुन्दरता का दर्शन करते घूमता रहा। तव स्वामी जी के फिर से अन्तिम बार दर्शन करके घर लौटा।

उस समय वे शहर के सबसे बड़े मन्दिर मे वैठे हुए थे। उनकी वह गेरुआ वस्त्र पहने हुई सुडौल सौम्य मूर्ति हजारो की भीड़ मे आसीन थी। सारी जगह एक विचित्र सन्नाटा छाया हुआ था। उनकी वातो को मैं कुछ भी नहीं समझ सका क्योकि वे अपनी मातृभाषा मे वोल रहे थे। किन्तु मुझे अच्छी तरह मालूम हो गया कि विद्वान ब्राह्मण से लेकर अपढ़ किसान तक कितनी श्रद्धा और ध्यान से उनकी वाते सुन रहे थे। मै समझ तो नहा पाया किन्तु मैंने यह अनुमान किया कि वे अति गूढ़

विषयों को भी बहुत ही सरल ढंग से समझा रहे थे। उनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में मेरी धारणा कुछ ऐसी ही बन गई है।

उनकी आत्मा की उज्वलता पर मैं जितना लट्टू हो रहा था, उनके अनुयाइयों पर उनके सरल विश्वास के लिए मै उतनी ही डाह करने लगा था। शंकाओं के झोंकों ने जीवन भर में उनको शायद ही कभी विचलित किया होगा। वे इसी बात पर खुश हो जाते हैं कि 'ईश्वर है'। बस, फिर शंका-समाधान, चर्चा-बहस आदि के लिए स्थान ही कहाँ है ? उन निरीह मंत्र-मुग्ध आत्माओं को चारों ओर से घिरने वाली अंधकारमय घोर निशा की सुध ही कहाँ जिसमें सारा संसार किसी भयानक जंगली युद्ध के समान दीखने लगता है, ईश्वर आँखों के सामने से ओझल होते होते केवल छायामय शून्यता में लीन हो जाता है और मानव इस नश्वर विश्व के क्षुद्र भूमिखंड पर अपनी ही सत्ता को चन्द रोज़ की तुच्छ मुसाफ़िरी समझने लग जाता है।

तारा-जटित नील अम्बर के सारे आडम्बर की बहार लूटते हुए हम दोनों चेंगलपट छोड़ कर चले। किसी आकस्मिक पवन के मन्द झोंके से ताल-वृक्ष बड़े ठाट से अपनी पत्रमय शाखाओं से पास के जलाशयों के किनारों को हिलोरते हुए एक निराली कहानी सुना रहे थे।

मेरे साथी ने अचानक इस सुखद सुन्दर शान्ति में बाधा पहुँचाई।

"सचमुच ही तुम बड़े भाग्यवान हो।"

"क्यों ?"

"क्योंकि यह पहला ही अवसर है जब कि स्वामी जी ने किसी यूरोपियन से बातें की हैं।"

"खैर—?"

"इस भेंट के कारण उनका शुभ आशीर्वाद भी तुम्हे प्राप्त हुआ है।"

× × ×

घर पहुँचते पहुँचते आधी रात हो गई। सिर उठाकर आसमान की ओर मैने नजर दौड़ाई। आकाश का वह महान कलश अगणित ताराओ से जटित होकर बड़ा ही सुन्दर लग रहा था। यूरोप भर मे कही भी इतने ताराओ की उज्ज्वल शोभा किसी ने नही देखी होगी। बिजली की बत्ती जला कर मैने सीढ़ियो को तेज़ी से पार किया और बरामदे मे पहुँचा।

अँधेरे में किसी की दबकी हुई मूर्ति ने उठकर मेरा स्वागत किया।

चकित होकर मैं चिल्ला उठा—"सुब्रह्मण्य जी! आप यहाँ कर क्या रहे है?"

सन्यासी फिर से एक विकट हंसी हंसने लगे।

कुछ भर्त्सनायुक्त आवाज़ मे उन्होने मुझे याद दिलाई—"मैने आपसे कहा नही था कि आपके दर्शन के लिए मै फिर से आऊँगा?"

"हाँ, कहा तो था।"

उस विशाल कमरे मे मै अचानक ही उनसे प्रश्न कर बैठा:

"आपके गुरुदेव को क्या महर्षि कहते है?"

अब उनके चकित होने की बारी थी। वे कुछ खिच से गये और बोले:

"आप कैसे जानते है? आपने किससे जान लिया?"

"इसकी ज़रूरत ही क्या है ? कल सुबह हम दोनों उनके यहाँ चलेंगे। मैं अपना कार्यक्रम बदल दूंगा।"

"यह बड़ी खुशी की बात है।"

"लेकिन मैं आपके गुरुदेव के यहाँ बहुत दिन तक रह नहीं सकूँगा। हाँ, दो-चार दिन तक रहने का अवश्य ही विचार हो रहा है।"

इसके बाद आध घंटे तक मैने उनसे प्रश्नों की झड़ी लगा दी। फिर खूब थककर पलंग पर लेट गया। सुब्रह्मण्य जी ने फर्श पर एक चटाई बिछा ली और बड़े आनन्द से पैर पसार कर लेट गये। वे एक सूती चादर से ही सन्तुष्ट थे। वही उनके ओढ़ने और बिछाने का काम दे रही थी। मैं उन्हे एक मुलायम बिस्तर देने लगा पर उन्होने इनकार कर दिया।

फिर जब मेरी आँख खुली तो देखा कि कमरे में एकदम अँधेरा था। मेरी नसें अजीब तौर से तन गई थी। चारों ओर की आब-हवा में एक तरह की बिजली दौड़ती हुई प्रतीत हो रही थी। तकिये के तले से घड़ी निकाली और उसके अंधेरे में चमकने वाले अक्षरों पर निगाह डाली तो देखा कि पौने तीन बज गये थे। तब मुझे भान हुआ कि बिस्तर के पैताने कोई चीज़ चमक रही है। मैं एकदम उठ बैठा और सीधी नज़र से उसको देखने लगा।

मेरी चकित दृष्टि के सामने श्री स्वामी शंकराचार्य जी की दिव्य मूर्ति दिखाई दी। निश्चय ही मुझे किसी प्रकार का भ्रम नहीं हुआ था और वह मूर्ति साफ़ साफ दिखाई पड़ रही थी। वह शरीरधारी मनुष्य की एक ठोस मूर्ति थी। चारों ओर के अंधकार से उस मूर्ति को अलग करते हुए एक विचित्र तेज-पुंज घिरा हुआ था।

वास्तव मे क्या यह सारा दृश्य भ्रम नही था ? क्या मैने चेंगलपट मे श्री स्वामी जी से बिदा नही ली थी ? इस घटना की सच्चाई की जॉच करने के लिए मैने मजबूती से अपनी ऑखे बंद कर ली। लेकिन इससे कोई अन्तर नही पड़ा। मुझे अब भी उनकी वह दिव्य मूर्ति स्पष्ट रूप से दीख पड़ रही थी।

मुझे प्रतीत हुआ कि उस मूर्ति से एक गरिमामय स्नेह भाव प्रसारित हो रहा है। मैने अपनी ऑखे खोल कर एक बार फिर उस गेरुआवस्त्रधारी मूर्त्ति की ओर देखा।

मूर्ति की मुख-मुद्रा कुछ बदली और उसके मुस्कराते हुए होठ कुछ कहते हुए जान पड़े :

"विनम्र बनो और तुम्हे अपनी साधना की वस्तु अवश्य ही प्राप्त होगी।"

पता नहीं क्यों मैने इस दर्शन को प्रेत-बाधा नही समझा। मुझे तो यही जान पड़ा कि शंकराचार्य जी का सजीव शरीर मेरे सामने खड़ा होकर बाते कर रहा है।

यह दृश्य जिस रहस्यमय ढंग से मेरे सामने उपस्थित हुआ था उसी प्रकार एकदम मिट गया। इस असाधारण घटना के परिणाम-स्वरूप मै और अधिक उत्साहमय, प्रसन्न और अविचलित बन गया। क्या मैं इसे कोरा सपना ही समझूॅ ? परन्तु ऐसा समझने से भी अन्तर ही क्या पड़ता है।

बाकी रात भर मुझे तनिक भी नीद नही आई। मै जागता हुआ लेटा रहा और कुंभकोणम के जगद्‌गुरु श्री शंकराचार्य, जिन्हे दक्षिण भारत की भोली हिन्दू जनता स्वयं ईश्वर का प्रतिनिधि मानती है, के साथ अपनी भेट पर मनन करने लगा।

६

ज्योतिर्गिरि अरुणाचल

साउथ इंडियन रेलवे मद्रास में आकर खतम हो जाती है। वहीं पर सुब्रह्मण्य जी के साथ सीलोन बोट मेल पर मैं सवार हो गया। कई घंटे तक विचित्र दृश्यों से होकर गाड़ी आगे बढ़ रही थी। जहाँ तक आँख जाती थी हरे-भरे धान के खेत चित्त को मोह रहे थे। बीच बीच में लाल टीले अपने मस्तक ऊँचे उठाए दिखाई दे रहे थे। कहीं खेतों के अगल बगल में और कहीं खेतों के बीच में बड़े ही ठाट से नारियल के वृक्ष अपने पत्र-मय मुकुटों को धीरे धीरे हिलाते हुए चारों ओर छाया बिखेर रहे थे। उन के पीछे खेतो मे यत्र-तत्र किसान धान के खेतों में अपने पसीने से स्वर्णराशि लूटने की आशा से काम मे लगे हुए थे।

मैं रेल में खिड़की के पास ही बैठा था। बहुत ही जल्द गोधूलि का समय हो गया और सारा दृश्य गायब सा होने लगा। मै अपना चित्त एकाग्र करके अन्य बातों के बारे में मनन करने लगा। मुझे अचरज होने लगा कि जब से मैंने ब्रह्म की दी हुई सोने की अँगूठी पहन ली है तब से आकस्मिक बातें होने लगी है। मेरी सारी तजवीजें पलट गई थीं, अनसोची घटनाओं के विचित्र समावेश ने मुझे दूर दक्षिण की ओर पयान करने को मजबूर किया, यद्यपि इसके विपरीत मेरा कार्यक्रम पूर्व की ओर जाने का था। मैं अपने मन में शंका करने लगा कि क्या सचमुच ही इस जड़ाऊ अँगूठी में ब्रह्म का बताया हुआ तिलिस्म मौजूद है?

मैं इस वात पर खुले दिल से विचार करना चाहता था। वैज्ञानिक मार्गों मे सुशिक्षित पश्चिमी व्यक्ति बड़ी ही कठिनाई से ऐसी वातो पर विश्वास कर सकेगा। इस विचार को मैंने अपने मन से निकाल दिया कि मेरी यात्रा के कार्यक्रम मे परिवर्तन अँगूठी के कारण हुआ है लेकिन उन विचारों के तले जो अनिश्चित भाव छिपा था उसको मै पूर्णतया दूर नही कर सका। इस पहाड़ी आश्रम की ओर किस लिए मै बेबस ही खिंचा जा रहा हूँ ? मुझ लापरवाह श्रद्धा-रहित व्यक्ति को महर्षि की ओर आकर्षित करने मे दो व्यक्ति, जो दोनो ही संन्यासी थे, नियति के दूत वने। 'नियति' का नाम मैंने इस लिए लिया है कि इससे अच्छा शब्द मुझे मिल ही नही रहा है। पर इसका मैंने एक खास अर्थ मे प्रयोग किया है। गत अनुभूतियो ने मुझे अच्छी तरह वतला दिया था कि स्थूल रूप से तुच्छ जॅचनेवाली छोटी घटनाएँ कभी कभी मनुष्य के जीवन मे प्रधान हो जाती है।

हम डाक गाड़ी से उतर कर छोटी लाइन पर सफर करने की इन्तजारी मे थे। हम भारत के फ्रेंच साम्राज्य के अवशिष्ट करुणाजनक चिह्न, पांडिचेरी, से लगभग ४० मील के फासले पर थे। एक ठंडे, धुंधले प्रकाश वाले वेटिंग रूम मे करीव दो घंटे तक हम छोटी लाइन से देश के और भी भीतरी भाग की ओर ले जाने वाली गाड़ी की प्रतीक्षा करने लगे। इस लाइन से वहुत ही कम आमदरफ़्त होती थी। अत. गाड़ियाँ भी वडी देर वाद और वहुत कम संख्या से छूटा करती थीं। मेरे साथी प्लेटफार्म की ओर भी ठंडी हवा मे इधर उधर टहलने लगे। तारागो के अल्प प्रकाश मे उनकी वह लम्बी मूर्ति अस्ति-नास्ति का भ्रम पैदा करती थी। अन्त मे किसी प्रकार वह गाड़ी आ ही गयी और हमे अपने साथ ले चली। गाड़ी मे वहुत ही कम यात्री थे।

मुझे अच्छी नींद आई और बीच बीच में कुछ सपने भी दिखाई पड़ रहे थे। इतने ही में मेरे साथी ने मुझे जगाया। हम एक छोटे स्टेशन पर उतर गये और गाड़ी चीख मार कर धीरे-धीरे मूक अंधकार में विलीन हो गई। अभी रात बाकी थी, इस लिए हम वेटिंग रूम में बैठ गये। उसमें आराम का कोई सामान न था। हमें ही वहाँ चिराग भी जलाना पड़ा।

हम बड़े सब्र के साथ पौफट की लाली की राह देख रहे थे। धीरे धीरे हमारे कमरे की पिछली दीवार के झरोखे में से ऊषा देवी के दर्शन होने लगे। अभी मुँह अँधेरा छाया था। बाहर की चीजें कुछ कुछ दीखने लगीं। सुबह के धुँधले प्रकाश में कुछ ही मील की दूरी पर एक अकेले पर्वत की अस्फुट रेखाएं दिखाई पड़ीं। पर्वत की तलहटी विशाल थी। मध्य भाग का घेरा काफी बड़ा था। लेकिन उस पर्वतराज का उन्नत मस्तक अभी सवेरे के कुहरे में ढँका था।

मेरे साथी बाहर चले और सामने एक छोटी बैलगाड़ी में गाड़ीवान को सोते पाया। दो तीन बार पुकारने पर उसकी मीठी नींद टूटी और उसे मालूम हो गया कि हाथ में काम आ गया। अपने गंतव्य स्थान की उसे खबर दी तो उसका हौसला बढ़ा। कुछ संदेह के साथ मैंने उसकी गाड़ी पर नज़र दौड़ाई। वह बहुत ही तंग थी। हम उस पर सवार हो गये। गाड़ीवान ने हमारा बोरा-बँधना गाड़ी पर लाद लिया। मेरे साथी बहुत ही थोड़ी जगह मे किसी प्रकार बैठे। मैं उस गाड़ी में झुक कर बैठ गया क्योंकि उसकी छत ऊँची न थी। मेरे पाँव गाड़ी के बाहर थे। गाड़ीवान अपने बैलो के बीच एक काठ के तख्ते पर बैठ गया। उसकी ठुड्डी घुटनो से लगी थी। इस तरह किसी प्रकार जब सब लोग बैठ गये तो गाड़ीवान ने गाड़ी हाँक दी।

उसके छोटे सफेद बैल बहुत मज़बूत थे। कँधा झुकाये वे गाड़ी खींचे लिए जा रहे थे। तो भी गाड़ी की चाल बड़ी धीमी थी। इस देश मे भार खींचने मे बैल बहुत काम आते है। हिन्दुस्तान के अधिकांश स्थानो में गरमी इतनी होती है कि घोड़ो की अपेक्षा बैल उसे अधिक सह सकते है। उनका पालन-पोषण भी उतना कठिन नही है। वे साधारण चारा खा कर ही सन्तोष कर लेते है। सदियाँ बीतने पर भी इन शान्त देहातियो तथा समुद्र से दूर छोटे शहरो के लोगो के रस्म-रिवाजो मे कोइ अधिक परिवर्तन नही हुआ है। ईसा से पूर्व पहली सदी मे जो आमदरफ़ के साधन थे, आज २००० वर्ष बीतने पर भी वे ही बैल और वे ही छकड़े काम आते है।

हमारा गाड़ीवान अपने बैलों पर लट्टू था, नही तो वह उनके बड़े बड़े टेढ़े सींगो को चमकदार आभूषणो से क्यो सजाता? उनकी पतली टाँगो पर छोटी छोटी पीतल की घटिया बँधी थी। उनके नथुनो को छेद कर एक रस्सी डाली गई थी और उसी रस्सी के सहारे वह गाड़ीवान बैल हाँकता था। धूल भरी सड़क पर वे बैल मौज के साथ झूमते-झामते चले जाते थे और मै प्रभात के सुन्दर दृश्य मे तल्लीन बैठा था। हमारे दोनो ओर सड़क के दोनो बाजू पर मनोहर दृश्य उपस्थित थे। यह कोई रूखा मैदान न था। जहाँ तक क्षितिज की ओर आँख दौड़ाते थे पर्वत मालाएं नजर आती थी। सड़क पर लाल मिट्टी कुटी हुई थी और सारी जगह जहाँ तहाँ कँटीली झाड़ियाँ उगी हुई थी। बीच बीच मे हरे-भरे सुन्दर खेत भी नज़र आते थे।

हमारी बगल से एक किसान गुजरा। उससे मुँह पर उसके जीवन की सारी कठिनाइयाँ साफ साफ अंकित थी। वह अपना पसीना बहा कर धरती माता को प्रसन्न करने के लिए जा रहा

था। एक छोटी लड़की अपने सिर पर एक पीतल की गगरी रक्खे दिखाई दी। उसका वदन एक लाल साड़ी से ढका हुआ था। उसके कँधे खुले हुए थे। उसकी नाक में लाल मणि की एक नथनी झूल रही थी। प्रभात के सूर्य की धुँधली रोशनी में उसकी बाँहों पर सोने के कड़े चमक रहे थे। उसके वदन का कालापन साफ़ ही बता रहा था कि वह द्रविड़ कन्या है। इन प्रान्तों में ब्राह्मणों और मुसलमानों को छोड़ प्रायः सभी द्रविड़ ही हैं। स्वाभाव से ही द्रविड़ बालिकाएं आनंदमग्न और मोदमयी होती हैं। वे प्रायः औरों की अपेक्षा अधिक बातूनी होती हैं और उनके स्वर में एक प्रकार की लोच भरी रहती है जो औरों में नहीं पाई जाती। वह लड़की हमारी ओर अकृत्रिम आश्चर्य से आँख भर ताकने लगी जिससे मैंने समझ लिया कि इस प्रदेश में विरले ही गोरे व्यक्तियों का आगमन होता है।

इस प्रकार हम शहर में पहुँच गये। वहाँ के मकान सम्पन्न दीखते थे और एक विराट मन्दिर के दोनों पार्श्व में सट कर बनाये गये थे। उनके बीच में से होकर अच्छी सड़कें जाती थीं। यदि मैं भूलता नहीं हूँ तो मन्दिर दो फलाँङ्ग लम्बा होगा। बाद में हम उस मन्दिर के विशाल फाटक पर पहुँचे। उस विराट शिल्प की एक मोटी तसवीर मेरे मन पर अंकित हो गयी। एक दो मिनट तक हम वहाँ ठहरे और मैंने भीतर की ओर झाँका ताकि उसका एक धुंधला चित्र मेरे मन पर खिंच जाय। उसकी महत्ता के समान उसका निरालापन भी मेरे मन पर असर करने लगा। कभी भी मैंने इस ढंग की शिल्पकला नहीं देखी थी। मन्दिर के भीतरी भाग के चारों ओर एक भूलभुलैया सा चतुष्कोण बना हुआ था। चारों ओर जो ऊँचे ऊँचे प्राकार खड़े थे वे सदियों की प्रखर धूप के कारण जल कर विवर्ण हो गये थे।

हर एक प्राकार में एक विराट द्वार था जिसके ऊपर ऊँचे ऊँचे गोपुर रचे गये थे। वे गोपुर रंग-विरंगे चित्रो, प्रतिमाओ आदि से अलंकृत मीनारो जैसे दीख पड़ते थे। उन गोपुरो का निचला हिस्सा पत्थर का बना हुआ था पर ऊपरी भाग ईंटो का था जिसके ऊपर सुन्दर काम किया हुआ था। गोपुर मे कई मंजिले थीं। उसका सादा बाहरी भाग भिन्न भिन्न प्रकार की मूर्तियो और प्रतिमाओ से सजा हुआ था। इन बाहर के गोपुरो के अतिरिक्त मन्दिर के भीतर और भी पॉच मेरे देखने मे आये। इनको देख कर मिस्र के पिरमिडो की याद आना अत्यन्त स्वाभाविक था।

आखिर को मैने लम्बे छप्पर वाले मकानो, अनेक समतल पत्थरो के खंभो वाली पंक्तियो, धुँधले प्रार्थना गृहों, अँधेरे बरामदो तथा अन्य अनेक छोटे छोटे मकानो को देखा। इस विचित्र मन्दिर के दर्शन करने का मैने मन ही मन संकल्प कर लिया।

हमारी बैलगाड़ी और आगे बढ़ी, हम फिर शहर के बाहर पहुँचे। सामने सुन्दर दृश्य दिखाई देने लगे। राह पर लाल धूल पड़ी हुई थी। दोनो ओर छोटी छोटी झाड़ियाँ और कभी कभी ऊँचे वृक्षो के झुरमुट नज़र आने लगे। उनकी शाखाओ मे विविध प्रकार के पक्षी निवास करते थे। मुझको उनके परो के फड़फड़ाने की आवाज़ साफ़ सुनाई पड़ती थी और सारे संसार को नींद से मीठी प्रभाती से जगाने वाला पक्षियो का वह सुन्दर कलरव कानो को बहुत ही प्यारा लगता था।

राह भर यत्र-तत्र सुन्दर मडप दिखाई देते थे। शिल्प की दृष्टि से उनमे काफी अन्तर नज़र आता था। अत' मुझे अनुमान हुआ कि वे भिन्न भिन्न समयो के है। कुछ तो हिन्दू शिल्पकला के अनुसार बहुत ही आडम्बर के साथ नकाशे गये थे। लेकिन

जो बड़े मंडप थे उनके लम्बे खंभे बहुत बड़े थे जिनकी बराबरी दक्षिण भारत को छोड़ और कहीं भी मेरे देखने में नहीं आई। दो-तीन ऐसे भी, मंडप थे जो अपने ढांचे में यूनानी शिल्प कला की याद दिलाते थे।

मेरा अनुमान था कि हमने चार-पाँच मील का फासला तय किया होगा कि हम उस पहाड़ की तलहटी पर पहुँच गये जो अस्फुट रूप से स्टेशन ही से हमें दिखाई पड़ी थी। सुबह के निर्मल उज्ज्वल प्रकाश में वह पर्वतराज मानों एक उठा हुआ लाल रात्न सा था। कुहरा अब कट गया था। पर्वत का विराट शिखर आसमान को चूमता नजर आया। पहाड़ पर कोई वृक्ष नहीं दिखाई दिए। उसका शिखर लाल और भूरे रंग से मिश्रित एक अकेला शिलाखंड है। पहाड़ पर हर कहीं बड़ी बड़ी शिलाएं अव्यवस्थित रूप से बिखरी पड़ी थीं।

मेरे साथी मेरा रुख देख कर बड़ी उमंग में बोल उठे— "पुनीत पर्वतराज अरुणाचल!" उनके चेहरे से श्रद्धा और भक्ति का आवेग साफ़ झलकने लगा। वह आनन्द के अतिरेक में किसी मध्यकालीन साधु के समान तल्लीन हो गये।

मैंने उनसे पूछा—"इस नाम का कोई अर्थ भी है?"

मुस्कराते हुए उन्होंने कहा—"मैंने अभी तो बताया है। इस नाम के दो खंड हैं, एक 'अरुण' और दूसरा 'अचल' जिनका अर्थ है 'लाल पहाड़'। चूँकि मन्दिर के देवता का भी अरुणाचल ही नाम है, इस शब्द का पूरा अर्थ हुआ 'पवित्र लाल पहाड़'।

"तो आखिर पुनीत ज्योति की बात कहाँ से आई?"

"साल में एक बार मन्दिर के पुजारी एक खास त्योहार मनाते हैं। जैसे ही मन्दिर में उत्सव का प्रारंभ होता है पहाड़ की

चोटी पर एक अखंड ज्योति जलाई जाती है। घी और कपूर आदि से वह गगनचुम्बी ज्वाला पुष्ट की जाती है। वह कई दिन तक उसी ढंग से प्रज्वलित होती रहती है और चारो ओर कई मील तक अपना आलोक फैलाती रहती है। जो कोई उस पवित्र ज्योति को देख लेता है उसके सामने दडवत् करता है। इसका अर्थ ही यह है कि यह पर्वत परम पावन है और उसका अधिष्ठाता कोई महान देवता है।"

अब पहाड़ का उन्नत मस्तक हमारे पास ही ऊपर आसमान मे विराजता दिखाई पड़ने लगा। यह अकेला शिखर, जो हर जगह लाल-भूरे शिलाखंडो से भरा हुआ था, अपने चपटे मस्तक को मुक्तोज्ज्वल गगन मे हजारो हाथो की ऊँचाई पर बड़े ही प्राकृतिक शोभा के साथ उठाये हुए है। उस सन्यासी की बातो से या और किसी कारण से, मै ठीक ठीक नही बता सकता हूँ किससे, न जाने क्यो उस पर्वतराज के चित्र के मेरे दिल मे समाते ही, उस पावन पर्वत के सीधे ढाल पर आश्चर्य के साथ नजर डालते ही, एक प्रकार की अजीब विस्मयता सारे शरीर मे दौड़ने लगी।

मेरे साथी ने मेरे कान मे कहा—"जानते हो कि यह पर्वत केवल पवित्र भूमि ही नही समझा जाता बल्कि स्थानीय विश्वासो के अनुसार यह कहा जाता है कि देवताओ ने संसार के आध्यात्मिक केन्द्र को जनाने के लिए ही इस पर्वत को यहाँ खड़ा किया है।"

इस छोटी पौराणिक गाथा को सुन कर मै अपनी हँसी नही रोक सका। यह कितना सरल विश्वास था।

अन्त को मुझे मालूम हुआ कि हम महर्षि के आश्रम के निकट पहुँच रहे है। सड़क छोड़ एक छोटी खुरदुरी राह से हम

नारियल और आम के पेड़ों के घने झुरमुट पर पहुँच गये। वही रास्ते का अन्त हुआ। फाटक बन्द था। गाड़ीवान गाड़ी से उतर पड़ा और किवाड़ों को ढकेल कर उसने गाड़ी अन्दर हाँकी। वह आश्रम का आँगन था। वह पत्थरों से पटा हुआ न था। मैंने अपने ऐंठे हुए अवयवों को तान दिया और नीचे उतर कर चारों ओर नज़र दौड़ाई।

महर्षि के इस आश्रम को सामने की ओर निबिड़ वृक्षराज और बाग के पेड़-पौदों के झुरमुट राहगीरों की दृष्टि से बचाते हैं। पिछवाड़े और अगल-बगल नागफनी तथा अन्य प्रकार की झाड़ियाँ कसरत से उग कर आश्रम की सीमा बताती हैं। दूर पश्चिम की ओर एक झाड़खंड खूब ही उगा हुआ दीख पड़ता था जो सचमुच एक घने जंगल का भ्रम पैदा करता था। यह आश्रम पर्वत की तलहटी की रमणीय गोद में निचली ओर स्थित है। सर्व साधारण की आँख से दूर और संसार के कारो-बार से विरक्त यह आश्रम ध्यान आदि योग साधनों के लिए बहुत ही उपयोगी मालूम होता था।

सहन की बायीं ओर छप्पर छाये हुए दो छोटे मकान खड़े थे। उन्हीं से सट कर एक लम्बा, आजकल के मकानों से मिलता हुआ, एक दालान था। उसका लाल खपरैल वाला छप्पर सामने की ओर झुका हुआ था। सामने के एक भाग पर एक छोटा बरामदा रचा गया था।

आँगन के बीच में एक बड़ा कुआँ था। मैंने देखा कि एक लड़का, जो कमर तक एकदम नंगा और रंग में बिलकुल काला है, धीरे धीरे एक चरखी की सहायता से एक बालटी पानी निकाल रहा है।

हमारे वहाँ पहुँचने की आहट से उन मकानो में रहने वाले कुछ लोग सहन मे आये। वे कई किस्म के कपड़े पहने हुए थे। एक तो एक अँगोछे के सिवा और कुछ भी नहीं पहने था, लेकिन एक दूसरा रेशम का वेशकीमती पहनावा धारण किए हुए था। उनकी आँखो से मेरे वारे मे कुछ जान लेने की उनकी चाह साफ हो प्रकट हो रही थी। मेरे साथी उनके विस्मय को देख कर खुश हुए। वे उनके पास जाकर तामिल भाषा मे कुछ वोले। तुरन्त उन लोगो के चेहरे खिल उठे और मुझे देख कर वे वहुत ही प्रसन्न होते दिखाई दिये। उनका वह रंग-रूप और चाल ढाल मुझे वहुत ही अच्छी लगी।

मेरे साथी ने मुझे अपने पीछे चलने का आदेश दिया और कहा—"हम अब महर्षि के दालान मे प्रवेश करेंगे। मैने उस खुले हुए पत्थर के बरामदे मे कुछ देर ठहर कर अपने जूते निकाले। महर्षि के चरणो मे चढ़ाने के लिए जो फल-फूल मै ले आया था उनको हाथ मे लेकर एक खुले द्वार से मै भीतर पैठा।

× × ×

लगभग २० चेहरे मेरी ओर घूमे। वे सब लोग लाल पत्थर से पटी जमीन पर अर्ध-वलयाकार मे वैठे हुए थे। वे वड़ी श्रद्धा के साथ दरवाजे की दाहिनी ओर सबसे दूर के कोने से काफी दूर पर इकट्ठे हुए थे। यह स्पष्ट था कि हमारे वहाँ पहुँचने के पूर्व वे सभी उसी कोने की ओर ताक रहे थे। मैने एक क्षण भर के लिए उधर नजर डाली तो देखा कि एक लम्बे सफेद आसन पर एक व्यक्ति आसीन थे। लेकिन इतना ही उनको महर्षि समझने के लिए काफी था।

मेरे साथी आसन के नजदीक गये और महर्षि के सामने साष्टांग दंडवत की।
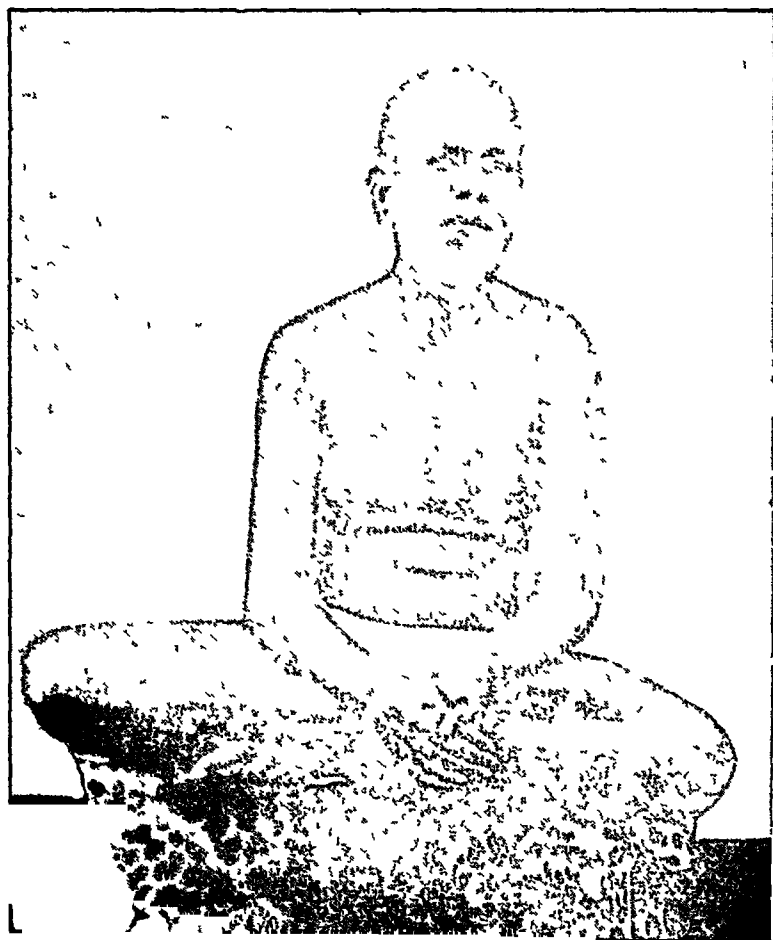
महर्षि जी

उस आसन से कुछ ही दूर पर दीवार में एक बड़ी भारी खिड़की थी। उसमें से होकर रोशनी सीधे महर्षि के ऊपर पड़ रही थी। उससे मैं महर्षि के रूप-रंग का पूरा पूरा व्यौरा जान सका क्योंकि वे उस समय एकदम अचल हो कर खिड़की में से बाहर की ओर ठीक उसी तरफ़ जिधर से कि हम आये थे स्थिर दृष्टि से ताक रहे थे। उनका सिर तनिक भी हिलता डुलता न था। अतः उनका ध्यान आकर्षित करने के लिए और भेंट चढ़ाते हुए उनको अपना प्रणाम सूचित करने के लिए मै चुपचाप खिड़की की ओर चला और उनके सामने फल-फूल रख दिये। फिर दो एक कदम पीछे की ओर हट गया।

उनकी गद्दी के सामने एक पीतल की छोटी अंगीठी थी। उसमें जलते हुए अंगारे भरे थे। चारों ओर एक खुशबू फैली थी। अतः मैंने समझ लिया कि उसमे कोई धूप-द्रव्य डाला गया है। पास ही एक धूपदान पर अगर बत्तियाँ जल रही थीं। नीले धूम की छोटी पंक्तियां उनसे उठकर उड़ते उड़ते हवा में मिल रही थीं। उनकी गंध कुछ निराली ही थी।

मैंने एक गद्दी तह करके ज़मीन पर बिछाई और बैठ कर आसन पर उतनी गम्भीरता के साथ मौन साधे बैठने वाली मूर्ति की ओर आशा भरी निगाह दौड़ाने लगा। महर्षि एक कोपीन के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं पहने थे। बदन का रंग कुछ कुछ ताँबे का सा था। तब भी और दक्षिणियों के रंग की अपेक्षा वह अधिक सुन्दर था। मुझे वे काफी लम्बे जान पड़े; उमर उनकी ५०-६० के करीब होगी। उनके सिर का ढाँचा खूब गठा हुआ था। बाल उनके छोटे और पके हुए थे। उनका विशाल और उन्नत ललाट उनके भावों की बौद्धिक विशिष्टता का परिचायक था। उनका रंग-ढंग भारतीयों का सा नहीं वरन् यूरोपियनों

के समान था। पहली मुलाकात मे मेरी कुछ ऐसी ही धारणा बन गई।

आसन पर सफेद मसनद बिछी हुई थी। महर्षि के चरणो के तले एक बहुत ही सुन्दर बाघम्बर सोह रहा था।

उस लम्बे दालान मे एकदम सन्नाटा छाया हुआ था। महर्षि बिलकुल ही स्थिर और अचल थे, हमारे आगमन से वे कुछ भी विचलित नही हुए। एक मोटा तगड़ा चेला आसन के पैताने कुछ दूर पर बैठ गया और पंखे की डोरी खीचने लगा। पंखा बॉस और चटाइयो का बना था। वह महर्षि के सिर के ऊपर लटकाया गया था। महर्षि की दृष्टि को अपनी ओर खीचने के प्रयत्न मे मै बराबर उन्ही की ऑखो की ओर टकटकी लगा कर देखने लगा। पंखे की क्रमबद्ध आवाज के सिवा और कोई शब्द सुनाई नही पड़ता था। महर्षि की ऑखे एकदम काली और खुली हुई थी।

यदि मेरी उपस्थिति का उन्हे पता लग भी गया हो तो भी वे कोई ऐसा चिन्ह प्रकट नही कर रहे थे। उनकी देह अलौकिक निश्चलता की मूर्ति बनी थी। वे मानो एक गढ़ी हुई पुतली के समान थे। उन्होने एक बार भी मेरी ओर नही ताका। वे दूर, अनन्त दूरी पर रहने वाली शून्यता की ओर, निहार रहे थे। इस अजीब दृश्य से मुझे और एक विचित्र बात का स्मरण हो आया। इसी प्रकार का दृश्य मैने कहाँ देखा था ? मै अपने स्मृति-मन्दिर की चित्रशाला की खोज करने लगा। हॉ, मुझे याद आ गई। ठीक इन्ही की सी मूर्ति मैने देखी थी। कहॉ ? मद्रास के निकट एक निर्जन कुटी म मौनीबाबा को मैने देखा था। वे भी यो ही गढ़े हुए शिल्प के मानिन्द एकदम निश्चल थे। इन दोनो व्यक्तियो के शरीरो की अपूर्व निश्चलता मे एक विचित्र समानता थी।

मेरा एक पुराना विश्वास था कि किसी की आँखों से उसकी आत्मा के स्वरूप का ठीक ठीक पता लग सकता है। पर महर्षि के दिव्य नेत्रों के आगे मेरा मन चकराया जा रहा था।

अकथ अलस भाव से मिनट गुज़रते गये। धीरे धीरे आश्रम की दीवार पर जो घड़ी थी उसके अनुसार आधा घटा गुज़र गया; वह भी बीता, फिर एक घंटा गुज़रा। तब भी दालान में बैठने वाले न हिलते थे न डुलते थे। कोई मुँह खोल कर बोलने की हिम्मत सचमुच ही नहीं करता था। मुझे भी एक प्रकार का दृष्टि-ध्यान सा हो गया। मुझे और किसी का पता नहीं चलता था। केवल एक ही व्यक्ति का, चौकी पर आसीन उस दिव्य मूर्ति का ही बोध हो रहा था। मैंने जो फूल-फल चढ़ाया था, उसकी किसी ने खबर तक नहीं ली और मेरी वह भेंट वहीं एक छोटी तिपाई पर पड़ी रही।

सुब्रह्मण्य जी ने तो मुझसे कहा था कि उनके गुरू ठीक मौनीबाबा के समान ही मेरी आवभगत करेंगे। महर्षि का यह रूखापन मुझे कुछ अखरा। घोर उदासीनता के साथ मेरी यह उपेक्षा ! किसी भी यूरोपियन के मन में महर्षि को देख कर सबसे पहले यह विचार अवश्य उठेगा कि क्या अपने भक्तों के चित्त को आकृष्ट करने के लिए उन्होंने यह मुद्रा ग्रहण की है ? मेरे मन में यही विचार एक दो बार उठता दिखाई दिया लेकिन मैंने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। यद्यपि सुब्रह्मण्य जी ने मुझ को नहीं बताया था, इस बात में कोई शक न था कि महर्षि समाधि में लीन थे। फिर मेरे मन में जो विचार की लहर उठी वह और कुछ समय तक बनी रही। क्या इस प्रकार के रहस्यमय ध्यान का तात्पर्य अर्थरहित शून्यता मे अपने को लय कर लेना तो नहीं

है ? पर मैंने इस सन्देह को भी छोड़ दिया क्योकि मै इस प्रश्न का कोई उत्तर नही दे सका ।

ज़रूर इन महात्मा मे कोई विशेषता थी । जैसे चुम्बक पत्थर लोहे को खीच लेता है ठीक उसी तरह वह मेरे ध्यान को वरवस अपनी ओर आकृष्ट कर रहे थे । उनके ऊपर मेरी दृष्टि जो एक बार पड़ी तो वही वह अड़ गयी और हटने का नाम न लेती थी । शुरू मे मै चकित था, उनकी घोर उदासीनता से मेरा मन चकराने लगा था । पर धीरे धीरे इस विचित्र आकर्षण का प्रभाव मेरे ऊपर अधिक होते होते मेरी सारी बेकली दूर होने लगी । लेकिन इस अजीब परिस्थिति और दृश्य मे करीब दो घंटे मैंने विताये तो मुझे पता चलने लगा कि मेरे अंतरंग के भीतर ही भीतर एक मूक, प्रशान्तिमय दुर्निवार परिवर्तन हो रहा था । रेल मे सफर करते समय बड़ी सावधानी के साथ महर्षि से पूछने के लिए मैंने प्रश्नो की एक तालिका तय्यार कर ली थी । लेकिन एक एक करके वे अब गायब होने लगे । मुझे भासने लगा कि उनका पूछना या न पूछना एक सा था, फिर जो शंकाएं मेरे मन को सता रही थी उनको हल करने का भी मुझे कुछ आग्रह या प्रयोजन नही दिखलाई पड़ा । मुझे केवल इसी बात का अभ्रान्त बोध हो रहा था कि शान्ति का गम्भीर प्रवाह मेरे निकट बह रहा है, मेरे अंतस्तल के अंतरतम पट तक महान् शान्ति पैठती जा रही है और इतने दिनो के बाद विचारो के तुमुल युद्ध से थकित मेरा मन किसी न किसी प्रकार के आराम का स्वाद लेने लगा है ।

कितनी ही वार जो प्रश्न मेरे दिल मे उठा करते थे वे अन्त मे कितने तुच्छ मालूम पड़े । मेरे अतीत जीवन के सारे दृश्य एकदम हेय जॅचने लगे । अचानक वड़ी स्पष्टता के साथ मेरे मन पर यह बात प्रकट हो गई कि मन ही मानव के बंधन

का असली कारण है, वही अपने गले में आपही समस्याओं का फँदा डाल लेता है और उसी कल्पित चक्र में पड़ कर उनको सुलझाने के प्रयत्न में हाय हाय मचाता रहता है। इतने दिन तक बुद्धि को बड़े महत्त्व की चीज समझने वाले मेरे मन में इस विचार का उठना एकदम आश्चर्यजनक था। यह मेरे लिए एक बिलकुल ही नयी बात थी।

दो घंटे तक इस शान्ति-धारा की अनवरत बढ़ने वाली गहराई में अपने आपको मैंने डुबो लिया। अब समय का गुजरना मुझे नहीं अखरता था क्योंकि मुझे साफ ही प्रतीत हो रहा था कि मनोकल्पित समस्याओं की जंजीरें एक एक करके ताबड़-तोड़ टूटती जा रही हैं। फिर धीरे धीरे एक नये प्रश्न ने अपना कोमल शिर उठाया और मन पर कब्जा पा लिया।

जैसे पुष्प से सुगंधि चारों ओर प्रसारित होती रहती है क्या ठीक उसी तरह महर्षि से आध्यात्मिक शान्ति की सुगंधि फैल रही है ? आध्यात्मिकता को पहचानने की मुझ में यद्यपि योग्यता नहीं थी तथापि दूसरों की आध्यात्मिकता का प्रभाव मेरे मन पर अवश्य पड़ता है।

मेरे मन में एक शंका पैदा हो रही थी कि मेरे भीतर जो शान्ति अजीब प्रकार से विराज रही थी उसका कारण केवल मेरे चारों ओर का तात्कालिक वायु मंडल था। महर्षि के सामने मेरी यह शंका एक प्रतिक्रिया मात्र थी। मुझे अचरज हो रहा था कि क्या किसी अज्ञात आत्मिक विभूति से या किसी अजनबी मानसिक शक्ति की प्रक्रिया से, महर्षि से ही मेरी कल्लोल-मय आत्मा को डुबाने वाली परम शान्ति प्रसारित हो रही थी ? तब भी वे बिलकुल ही उदासीन, यहाँ तक कि मेरी उपस्थिति के ज्ञान से शून्य, प्रतीत होते थे।

धीरे धीरे दिल मे एक छोटी हिलकोरी लहराने लगी। कोई मेरे निकट आया और कान मे कहने लगा—'आप महर्षि से कुछ पूछना नही चाहते ?"

मेरे मार्ग दिखाने वाले महाशय शायद ऊब उठे थे। कदाचित् वे समझे होगे कि मै, एक चंचल योरप निवासी, क्षमता की पराकाष्ठा को पहुँच गया हूं। हाय मेरे उत्सुक मित्र! सचमुच मै आपके गुरू से प्रश्न करने के लिए ही आया था लेकिन अब मेरे दिल मे शान्ति ही शान्ति विराज रही है, मेरे अपने ही दिल मे संघर्ष का, अशान्ति का नामो-निशान नही है। तब मैं प्रश्नो को सोच सोच कर व्यर्थ ही अपना माथा पच्ची क्यो करूँ? मुझे साफ साफ भासने लगा कि मेरी जीवन नैया का खेवनहार मिल गया है। मुझे अभी एक अद्भुत सागर को पार करना है, तब क्या मै फिर से तुमुल संघर्षमय संसार के दॉव-पेचा मे अपने को फँसा दूॅ। और वह भी तव जव कि मै किसी तरह खेवनहार को पाकर उसके साथ आगे बढ़ने जा रहा हूॅ।

जो कुछ हो, जादू टूट ही गया। दालान मे मूर्तियॉ उठकर इधर उधर चलने लगी, लोगो के बोलने की भनक मेरे कानो मे पड़ने लगी, मानो मेरे मित्र का वह अनुचित हस्तक्षेप इस सारी अशान्ति के लिए एक इशारा था। खास बात यह हुई कि महर्षि की काली चमकीली ऑखो की पलकें एक दो बार झपक गईं। फिर उनका सिर कुछ घूमा। धीरे धीरे उनकी दृष्टि फिर कर एक कोने मे नीचे की ओर लग गई। कुछ ही क्षण बाद उनकी पूरी दृष्टि मेरे ऊपर पड़ने लगी। पहली ही वार उनकी विचित्र रहस्यमय चितवन मेरे ऊपर पड़ी। यह साफ था कि वे अपनी दीर्घ समाधि से जाग उठे थे।

मेरे मित्र ने मेरे मौन का कुछ दूसरा ही अर्थ समझा। सोचा कि मैंने उनकी बात नहीं सुनी। अतः उन्होंने कुछ ज़ोर से अपना प्रश्न दुहराया। पर उन ज्योतिर्मय नेत्रों में, जो बड़ी प्रशान्ति के साथ मेरी ओर लगे हुए थे, मुझे एक दूसरा ही मूक प्रश्न सूझ रहा था।

क्या यह हो सकता है, क्या यह सम्भव है, कि तुमने जब एक बार अपने अन्दर रहने वाली पराशान्ति की एक झाँकी पा ली है—जिसको कि हर एक अवश्य पा सकता है—अब भी चित्त की शान्ति में खलल पहुँचाने वाली क्षोभमय शंकाएं तुम्हें सताती हों?

शान्ति मेरी आत्मा को प्लावित करने लगी। मैंने अपने मित्र की ओर घूमकर उत्तर दिया :

"नहीं, नहीं, मुझे अब कुछ पूछना नहीं है। किसी और समय— ।"

मुझे जान पड़ा कि अपने आने का कुछ हाल मुझे सुनाना है, महर्षि को नहीं बल्कि बहुत ही उत्सुकता के साथ मेरे निकट एकत्रित एक छोटी भीड़ को। अपने मित्र से मुझे मालूम हो गया था कि उनमें से बहुत थोड़े ही लोग आश्रमवासी थे। बाकी लोग महर्षि के दर्शनों के लिए अन्य स्थानों से आये हुए थे। आश्चर्य की बात यह हुई कि ठीक इसी समय मेरे मित्र मेरा परिचय देने लग गये। बड़े उत्साह के साथ ज़ोरदार तामिल में वे उस छोटी मंडली को मेरे बारे में कुछ बता रहे थे। मुझे संकोच होने लगा कि शायद वे सच्ची बातों के साथ कुछ कल्पित बातें भी कह रहे थे क्योंकि उस मंडली में मेरे सम्बन्ध में प्रशंसा-पूर्ण चर्चा होने लगी।

× × ×

दोपहर का भोजन हो गया। सूर्य बड़ी निठुरता के साथ सब कुछ जला रहे थे। मैने इससे पहले इतनी कड़ाके की धूप का अनुभव नही किया था। हम विषुवत् रेखा के निकट ही तो थे। मै भारत की आलस्य पैदा करने वाली आवहवा का एहसान मानने लगा, क्योकि सभी आश्रमवासी आराम करने के लिए झुरमुटो की छाया की खोज मे चले गये। अतः मुझे अपनी इच्छा के अनुकूल, बिना किसी प्रकार की हलचल पैदा किए, अकेले महर्षि से भेट करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

मैने दालान मे प्रवेश किया और महर्षि के निकट ही बैठ गया। वे चौकी पर तकियो का थोड़ा सहारा लेकर बैठे थे। एक चेला धीरे धीरे पंखा खीच रहा था। उसकी डोरी के खीचने से जो घर-घर की आवाज आ रही थी पंखे के इधर उधर डुलने की ध्वनि से मिलकर कानो को सुहावनी लगती थी।

महर्पि के हाथो मे तहाई हुई एक पांडुलिपि थी। वे बहुत ही धीरे कुछ लिख रहे थे। मेरे वहाॅ बैठने के कुछ मिनट बीतने पर उन्होने वह पांडुलिपि एक ओर रख दी और एक चेले को बुलाया। फिर उससे उन्होंने तामिल मे कुछ कहा। उसे सुनकर चेले ने मुझसे कहा—"महर्पि को बड़ा खेद है कि आप आश्रम का आतिथ्य ग्रहण नहीं कर सके। आश्रम मे रूखा-सूखा भोजन ही मिलता है। इससे पहले कभी किसी यूरोपियन की मेजबानी न होने के कारण आश्रमवासी नही जानते है कि आप लोगो की क्या रुचि है।" मैने महर्पि को धन्यवाद दिया और विनय की कि उन लोगो के रूखे-सूखे भोजन मे ही मुझे आनन्द है। बाकी आवश्यक चीजे मैं शहर से मंगा लूॅगा। भोजन का प्रश्न बहुत बड़े महत्व का तो नहीं है। आश्रम को ढूॅढ़ कर मै जिस खोज मे आया हूॅ वही खोज मेरे लिए अधिक प्रधान है।

महर्षि ने बड़े ध्यान के साथ मेरी बातें सुनीं। उनका मुख-मंडल बड़ा ही प्रशान्त और उदासीन तथा स्थिर था।

कुछ देर के बाद उन्होंने कहा—"यह तो बड़ा अच्छा उद्देश्य है।"

इस जवाब से मुझको कुछ बढ़ावा मिल गया और इसी विषय की और चर्चा करने का साहस प्राप्त हुआ।

"भगवन, मैंने अपने पश्चिम के सारे दर्शनों को पढ़ा है। विज्ञानों का भी अध्ययन किया है। खचाखच भरे हुए पश्चिम के शहरों में रह कर लोगों के बीच में काम भी किया है। उनके सुखों का स्वाद भी मैंने चक्खा है। उनकी लालसाओं के जाल मे अपने को फँसने भी दिया है। मुझे निर्जन स्थानों में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उन एकान्त स्थानों में रह कर गहरे विचारों की विविक्तता के बीचोबीच भूला-भटका भी हूँ। मैंने पश्चिम के विद्वानों से पूछ कर देखा, और अब मैं पूर्व की ओर आशा लगा कर आया हूँ। भगवन, मुझे ज्योति का आलोक चाहिए।"

महर्षि ने सिर हिला दिया मानों कह रहे थे 'बहुत अच्छा, अच्छी तरह समझा'।

"मैंने कई मत और कई सिद्धान्त सुने हैं। मेरे चारों ओर बुद्धि कुशलता से पगे हुए एक न एक धार्मिक विश्वास के प्रमाण ढेर के ढेर पड़े हुए हैं। मेरा उनसे जी ऊब उठा है। जिसका प्रत्यक्ष अनुभूति प्रमाण नहीं है उस बात के बारे में मुझे शंका होने लगी है। माफ कीजियेगा मैं धार्मिक नहीं हूँ। मेरा किसी धर्म पर विश्वास नहीं है। भौतिक अनुभूति के परे क्या और किसी चीज की सत्ता है? यदि हो तो मैं उसको कैसे जान सकता हूँ?"

मेरे निकट जो तीन चार भक्त बैठे हुए थे वे चकित हो कर मेरी ओर ताकने लगे। इतनी अशिष्टता और हिम्मत के साथ उनके गुरू के साथ बोलने मे आश्रम की नाज़ुक सभ्यता और शिष्टाचार मे तो मैने बाधा नही पहुँचाई है ? मुझे मालूम नही था कि मुझसे कोई भूल हुई या नही; पर मैने उसको कोई परवाह भी नही की। कई वर्षों की निरुद्ध और संचित इच्छा के आवेग ने अचानक मेरे जाने बिना ही मेरे मुँह को खोल दिया था। मै लाचार था, शब्द मुँह से निकल गये थे। यदि महर्षि सच्चे सिद्ध होगे तो अवश्य ही वे मेरा मतलब समझ जायँगे और शिष्टता की भूल-चूक को ताक पर रख देगे।

उन्होने कोई जबानी जवाब नही दिया, पर किसी विचार की धारा मे डूबे हुए प्रतीत हुए। चूंकि मुझे और कुछ तो करना नही था और मेरी जबान एक बार खुल चुकी थी अतः तीसरी बार उनको सम्बोधन करके मै बोलने लगा :

‘पश्चिम के विद्वान, हमारे वैज्ञानिक, अपनी बुद्धिमत्ता के लिए बड़े ही मशहूर है और लोग उनका बड़ा आदर-सत्कार करते है। तिस पर भी उन्होने मान लिया है कि जीवन के तले जो प्रच्छन्न सत्य है उस पर कुछ भी रोशनी वे नही डाल सकते। कहा जाता है कि आपके देश मे कुछ ऐसे लोग है जो उस सत्य को बता सकते है जो पश्चिमी विद्वानों के लिए असंभव ही है। क्या यह बात ठीक है ? ज्ञान के आलोक का अनुभव कर लेने मे आप मेरी मदद कर सकते है ? या यह सारी जिज्ञासा ही एक भारी मिथ्या मात्र है ?”

मै अब बातचीत के परम उद्देश्य पर पहुँच चुका था। अतः महर्षि के उत्तर की प्रतीक्षा करने का इरादा कर लिया। मनन-युक्त दृष्टि से वे मेरी ओर आँखे फाड़ कर देखते ही रहे। शायद

वे मेरे प्रश्नों पर विचार कर रहे थे। सन्नाटे में ही और दस मिनट बीत गये।

अन्ततोगत्वा उनके ओंठ खुले। बड़ी मृदुता के साथ वे बोले: "तुम 'मैं' कहते हो ; मैं जानना चाहता हूँ कि यह 'मैं' कौन सी चीज है ?"

उनका मतलब क्या था ? अब दुभाषिए की उन्हे ज़रूरत नहीं थी। मुझ से सीधे वे अंग्रेज़ी में बोलने लगे। मेरा मन हैरानी में भूला सा जा रहा था।

साफ साफ बिना कुछ छिपाये मैं बोल उठा—"खेद है मैंने आपके प्रश्न का आशय नहीं समझा।"

"क्या मतलब स्पष्ट नहीं है ? फिर सोच कर देखो ?"

फिर उनके शब्दों ने मुझे चकित कर दिया। अचानक मेरे दिमाग में एक बात चमक गई। मैंने उँगली से अपना निर्देश करके अपना नाम बता दिया।

"तुम उसको जानते हो ?"

मुस्कराते हुए मैं बोला—"क्यों नहीं, सारी उम्र मैंने उसे जाना है।"

"लेकिन यह तो तुम्हारा शरीर है। मेरा फिर यही प्रश्न है, 'तुम कौन हो ?'।"

इस अजीब प्रश्न का, मैं कोई तात्कालिक उत्तर नहीं दे सका।

महर्षि फिर बोलने लगे:

"पहले उस 'मैं' को जान लो, फिर तुमको सत्य मालूम हो जायगा।"

फिर भी मेरे मन मे अस्पष्टता का कुहरा छाया रहा। मैं बिलकुल ही चकित हो गया था। इस हैरानी ने शब्दो मे अपने को प्रकट कर ही दिया। पर महर्षि अपनी अंग्रेजी की हद तक स्पष्ट ही पहुँच चुके थे क्योंकि उन्होने दुभाषिए से कुछ कह दिया। धीरे धीरे उसका अनुवाद मुझको कुछ बता दिया गया

"करना तो एक ही काम है। अपनी आत्मा की झाँकी ले लो। इसको ठीक और सही मार्ग से कर लोगे तो फिर तुम्हारी सारी समस्याएं हल हो जायंगी।"

यह एक अजीव जवाब था। तब भी मैने प्रश्न किया:

"तब क्या करना होगा? मुझे किस मार्ग का अनुसरण करना चाहिए?"

"अपनी आत्मा के स्वरूप के बारे मे गहरा ध्यान लगाने से तथा निरन्तर मनन से ही क्या ज्योति नही पाई जा सकती?"

"मैने बहुधा मग्न होकर तत्व का ध्यान किया है पर मुझे उन्नति के कोई चिन्ह नजर नही आ रहे है।"

"तुम्हे क्योकर मालूम हुआ कि कुछ भी उन्नति नही हुई है। आध्यात्मिक साधना मे अपनी उन्नति का ठीक ठीक अंदाज लगा लेना कोई आसान बात नही है।"

"इस मार्ग मे गुरू की कोई आवश्यकता होगी?"

"हो सकती है।"

"आप के कहे अनुसार आत्मा की झाँकी ले लेने मे साधक को गुरू कोई सहायता पहुँचा सकते है?"

"इस जिज्ञासा के लिए, इस खोज के लिए जो कुछ भी साधक को आवश्यक जँचे गुरू प्रदान कर सकते है, पर वास्तविक झाँकी तो साधक को अपने आप ही लेनी पड़ेगी।"

"गुरू की सहायता के रहते कितने समय में साधक अपने ध्येय पर पहुँच सकता है ?"

"यह सब जिज्ञासु के मन के परिपाक पर निर्भर है। बारूद में आग लगते देरी क्या लगती है, पर कोयले में आग लगने में कितनी देरी लगती है ? तुम्हीं सोच कर देखो।"

मुझे न मालूम क्यों एक अजीब प्रकार से भान होने लगा कि गुरू और चेले की बातें महर्षि को पसन्द नहीं हैं। किन्तु तब भी मेरे मन में ऐसी ज़िद समा गई थी कि इस भावना की मैंने कोई परवाह ही नहीं की और इसी विषय पर फिर भी एक प्रश्न पूछने का साहस किया। उन्होंने मानों अनसुनी करके अपना मुँह घुमा लिया और दूर के पहाड़ी दृश्य की विपुलता की ओर निगाह दौड़ाने लगे। कुछ भी उत्तर न मिलने की सूरत देख कर मैंने उस बात का सिलसिला छोड़ दिया और बातचीत का रुख ही बदल दिया। पूछा :

"हम बड़े विकट जमाने में फँसे हुए हैं। दुनियाँ का आगे क्या होगा, महर्षि कृपया बता देंगे ?"

"भावी की तुम्हें चिन्ता करने की ज़रूरत ही क्या है ? वर्तमान को भी तो अच्छी तरह पहचान नही पाते हो। वर्तमान की फिक्र करो, फिर भावी अपनी खबर आप ही ले लेगी।"

फिर भी तिरस्कार। लेकिन अबकी बार मैंने उतने सहज में अपनी हार नहीं मानी। मै दुनियाँ के एक ऐसे भाग से आया हुआ था जहाँ जीवन की दुःखद परिस्थितियो का प्रभाव इस शान्त निर्जन आश्रम के नितान्त विपरीत है।

हठ के साथ मैंने पूछा—"क्या निकट भविष्य में ही दुनियाँ में मैत्री और करुणा का नया युग अवतरित होगा, या वह इसी

युद्ध और अशान्ति के विकट कल्लोल मे और भी गिरती फँसती चली जायगी ?"

मुझे ज्ञात हुआ कि महर्षि की अप्रसन्नता अधिक होती जा रही है। उनको मेरा प्रश्न बिलकुल ही पसन्द न आया। तब भी उन्होंने उत्तर दिया:

"सारी दुनियाँ का एक ही ईश्वर है। वही दुनियाँ की खबर लेगा। जिसने ससार की सृष्टि की है, वह अवश्य ही उसकी रक्षा करना भी जानता है। दुनियाँ का भार वह अपने मत्थे उठाये हुए है, तुम तो नही।"

मैने आपत्ति उठाई :

"पक्षपात को छोड़ कर चारो ओर नज़र दौड़ाने से उसके इस कृपामय भार-वहन की बात पर विश्वास करना ही मुश्किल हो गया है।"

महर्षि और भी अप्रसन्न होते दिखाई दिये। तिस पर भी उत्तर मिल ही गया :

"जैसे तुम हो, वैसे दुनियाँ भी है। अपने को जाने बिना दुनियाँ को समझ लेने की चेष्टा करना व्यर्थ है। जिज्ञासुओ को इस प्रश्न के पीछे पड़ने की कोई ज़रूरत नही है। ऐसे सारे प्रश्नो के पीछे लग कर लोग अपनी ताकत को व्यर्थ ही खोते रहते है। पहले अपने ही सत्य स्वरूप को जान लो, तब दुनियाँ के तले जो तत्त्व छिपा हुआ है उसको समझ लेने की अधिक योग्यता प्राप्त होगी, क्योकि तुम भी दुनियाँ के एक भाग ही हो।"

एकबारगी उनकी बातो की धारा रुक गई। कोई परिचारक निकट आया और उसने एक ऊदबत्ती जलाई। उसकी नील धूम-

रेखा बल खाती हुई ऊपर की ओर उड़ रही थी। कुछ देर तक महर्षि उसी की ओर ताकते रहे। फिर उन्होंने अपनी पांडुलिपि उठा ली और पन्ने खोल कर अपने ही काम में लग गये। उनको मेरी उपस्थिति की बात ही मानों भूल सी गई।

उनकी इस घोर उदासीनता के कारण मेरे आत्माभिमान पर पानी पड़ गया। मैं १५ मिनट तक और वहीं बैठा रहा पर मेरे प्रश्नों का उत्तर देने का महर्षि का रुख नहीं देख पड़ा। मुझे भासने लगा कि हमारी बातचीत अब रुक ही गई। मैं फर्श पर से उठा, हाथ जोड़ कर महर्षि को नमस्कार किया और बिदा ले ली।

× × ×

मैं अरुणाचलेश का मन्दिर देखने शहर जाना चाहता था। इसलिए गाड़ी बुलाने के लिए एक व्यक्ति को नगर में भेज दिया। उससे मैंने कहा था कि हो सके तो घोड़ागाड़ी ही लावे क्योंकि बैलगाड़ी देखने में चाहे सुन्दर लगे तो भी वह जल्द मुझे नहीं ले जा सकती थी।

सहन में आते ही मैंने देखा कि एक घोड़ागाड़ी मेरी इन्तजारी में खड़ी है। उसमें कोई आसन नहीं था। फिर भी मुझे अब ऐसी बातें अखरती नहीं थीं। गाड़ीवान का चेहरा कुछ खौफ़नाक था। उसके सिर पर एक मटमैला साफ़ा बँधा हुआ था। वह एक कोरे कपड़े की धोती पहने था।

एक लम्बी धूल भरी सड़क पार कर हम मन्दिर के द्वार-देश पर पहुँच गये। वह मानों अपने सुन्दर कलशों से मेरा स्वागत कर रहा था। मैं गाड़ी से उतर कर सरसरी निगाह से मन्दिर की ओर निहारने लगा।

मेरे पूछने पर मेरे साथी ने कहा—"मन्दिर कितना पुराना

है मै नही बता सकता । पर देखने से वह कुछ सदियो का मालूम होता है।"

मन्दिर के सिहद्वार के अगल बगल मे छोटी छोटी दूकाने थी। उनमे साधारण वेष के व्यापारी बैठे थे और वे पवित्र मूर्तियॉ तथा तसवीरें और शिव तथा अन्य देवताओ की पीतल की बनी मूर्तियाँ बेचते थे। जब दूसरे शहरो मे कृष्ण और राम की मूर्तियो का आधिक्य है, यहॉ शिव की प्रधानता देख कर मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। मेरे साथी ने मुझे इसका कारण बताया:

"हमारे पवित्र ग्रंथों तथा इतिहासो के अनुसार एक बार महादेव ने एक ज्योति के रूप मे पवित्र अरुणागिरि के शिखर पर दर्शन दिया था। इस कारण मन्दिर के पुजारी लोग साल मे एक बार इसी पुरानी घटना की याद मे एक महान् ज्योति पर्वत शिखर पर प्रज्ज्वलित करते है। यह घटना ज़रूर ही कई हज़ार वर्ष पूर्व घटी होगी। मेरा अनुमान है कि मन्दिर उसी घटना को एक स्थाई रूप देने के लिए बनाया गया था। अब भी यह पवित्र पर्वत शिव जी की छत्रछाया मे है।"

कुछ यात्री अलस भाव से दूकानें देख रहे थे। वहॉ केवल पीतल की मूर्तियॉ ही नही किन्तु रंग-बिरंगी तसवीरे, जिनमे किसी न किसी धार्मिक घटना का चित्रण था, तामिल और टेलुगू भाषाओ मे छपे धर्मग्रंथ, तिलक धारण करने के लिए उपयोगी श्रीचूर्ण, भभूत, चन्दन आदि वस्तुएँ भी मिलती थीं।

एक कोढ़ी हिचकिचाते हुए मेरी ओर भीख मॉगने के लिए बढ़ा आ रहा था। उसके अंगो का मांस कही कही गल गया था। वह डरता था कि शायद मै उसे खदेड़ दूँगा। उसे यह निश्चय नही था कि उसको देख कर मेरे दिल मे करुणा उत्पन्न होगी अथवा नहीं। उस भयानक बीमारी के कारण उसका चेहरा

विरूप हो गया था। उसके लिए कुछ भीख जमीन पर रखते हुए मुझे लज्जा होने लगी. पर क्या करूँ उसको छूने में मुझे भय मालूम होता था।

द्वारदेश का कलश बड़ा ही चित्ताकर्षक था। उस पर कई मूर्तिया खोद कर बनाई गई थीं। उसकी वह गगनचुम्बी ड्योढ़ी मिस्र के किसी पिरामिड, जिसकी चोटी गिरा दी गयी हो, के समान दिखाई पड़ती थी। अपने तीन और साथियो के साथ यह कलश मानों इर्द गिर्द पर अपना प्रभुत्व जमा रहा था। मीलों की दूरी से भी ये कलश दिखाई देते थे।

कलश के ऊपर खोदकर अनेक चित्र बनाये गये थे। यत्र-तत्र अजीब मूर्तियाँ भी दिखाई देती थीं। इन चित्रों का आधार पुराणों की कथाएँ थीं। अनेक घटनाओं के मिश्रित प्रतिनिधि कुछ हिन्दू देवता पवित्र समाधि में लीन नजर आते थे। उन्ही के आस-पास वे चित्र भी थे जिनमे देवताओं का मोहक आलिंगन आदि का चित्रण किया गया था। इन बेजोड़ और अनमिल चित्रों को देख कर प्रक्षकों को आश्चर्य होता है। इनको देख कर भान हुए बिना नहीं रहता कि हर एक दर्जे के आदमी के लिए विशाल हिन्दू धर्म मे स्थान है। हिन्दू धर्म की उदारता कुछ ऐसी ही है।

मैंने मन्दिर में प्रवेश किया तो भीतर एक विशाल आँगन था। उसमें बड़ी बड़ी सोपान-पंक्तियाँ, छोटे बड़े मन्दिर, कमरे, हजारों खम्भों की कतारें, छज्जे, मठ आदि रचे दिखाई देते थे। एथेन्स के देवताओं के दरबारो के आश्चर्य चकित करने वाले शिल्पों के समान यहाँ कोई शिल्प नहीं था। उसके विपरीत इन धुंधले शिल्पों मे कोई प्रच्छन्न मर्म, कोई अजीब रहस्य छिपा नजर आता था। इन विशाल शिल्पों की विचित्रता की शांततता

मुझे चकित और भयभीत कर रही थी। यह मन्दिर मानों एक भूलभूलैया था, पर मेरे साथी विश्वास के साथ डग आगे वढाते चले जा रहे थे। वाहर से कलशो की शिलाओ की लाली आँखो को खीच रही थी, पर भीतर की शिलाओ का रंग मटमैला था।

हम धीरे धीरे आगे वढ़े जा रहे थे कि मेरे मित्र अचानक बोल उठे—"हजार खंभो वाला मंडप"। वह जगह एकदम सूनी थी। मेरी आँखो के सामने दूर तक विराट शिला-स्तंभों की पंक्तियाँ खड़ी दिखाई पड़ीं। कोई चिड़िया का पूत तक वहाँ नही था। मंद आलोक मे से अनेक भीमकाय स्तभ ऊपर उठते अस्पष्टता के साथ दिखाई देते थे। मै भीतर प्रवेश कर समीप हो उन स्तंभो पर खुदे हुए चित्रो का परिशीलन करने लगा। एक एक स्तभ, एक ही शिलाखंड से बनाया गया था। ऊपर की छत भी बड़े बड़े शिला-प्रस्तरो से पटी हुई थी। फिर मैने देखा कि देवी-देवता शिल्पियो को कला के साथ मग्न होकर कलोले कर रहे है। जान पड़ा कि परिचित और अपरिचित जानवरो के खुदे हुए चेहरे मेरी ओर घूर रहे है।

हम इन अंधकारपूर्ण गलियो को पार कर, दीप-वत्तितो के मन्द आलोक को देखते हुए एक घेरे मे आ पहुँचे। उस घेर मे जाते हुए एक बार सूर्य की रश्मि के दर्शन से मेरा मन प्रफुल्लित हो उठ। अब हमे मन्दिर के भीतर पाँच छोटे कलश दिखलाई पड़े। वे ठीक ठीक वाहर के कलशो के ही रूप क थे। मैने अपने निकट के कलश को गौर से देखा और निश्चय कर लिया कि वह ईटों का बना है। उसके ऊपरी भाग मे जो सजावट की गई है वह लाल पत्थर की वनी न थी बल्कि पक्की चिकनी मिट्टी या कोई टिकाऊ पलस्तर की बनी थी। उस पर कई रंग-विरंगे चित्र बनाये गये थे जिनका रंग अब जाता रहा था।

हमने अब घेरे में प्रवेश किया और आगे बढ़ने लगे। मेरे साथी ने मुझे संकेत दिया कि इस गर्भगृह के निकट पहुँचने वाले में ज्ञान युगारियों को प्रवेश करने का अधिकार नहीं है। पर यद्यपि परम-पिता का दर्शन अविश्वासियों को मना है तो भी आँगन के पास से जाने वाली एक तंग राह से उस देवाधि-देव का एक झाँकी ली जा सकती है। उनकी चेतावनी की पुष्टि से नाना ढोल पिटने की आवाजें, शंख और घंटों का निनाद, उस पुराने पवित्र स्थल में कुछ बेमेल अंचनेवाले पुरोहितों के मंत्र आदि पढ़ने के नायून स्वर मेरे कानों में गूंजने लगे।

चाह भरी दृष्टि से मैंने एक झाँकी ले ली। भीतर के धुंध से एक मूर्ति के सामने एक सुनहली ज्योति चमक रही थी। पास ही का वेदी पर दो-तीन दीपक टिमटिमा रहे थे और कुछ उपासक किसी धार्मिक पूजा के क्रम में लगे हुए थे। मैं ठीक ठीक पुजारियों को पहचान नहीं सका। अब शंख, शृंग आदि का तुमुल कोलाहल भी गाने आदि की ध्वनि में मिल गया।

मेरे साथी ने मेरे कान में कहा कि यहाँ देर तक ठहरना अच्छा न होगा क्योंकि मेरी मौजूदगी अवश्य ही पुजारियों को अखरेगी। तब हम वहाँ से हट कर मन्दिर के बाहर की निराकुल पवित्रता की गोद में आ गये।

लगा कि उस बूढ़े की मूक प्रार्थना को स्वीकार कर कुछ खरीद लूँ।

शहर मे कही दूर पर से मुझे एक चमकती हुई मीनार दिखाई दे रही थी। अतः मै मन्दिर को छोड़ कर स्थानीय मसजिद देखने चला। मसजिदो के खूबसूरत मेहरावो और सुन्दर मीनारो तथा गुम्बजो को देखते ही न जाने क्यो हमेशा ही मेरे दिल मे खुशी की एक लहर उठने लगती है। अपने जूते निकाल कर उस लुभाने वाली सफेद इमारत मे मै दाखिल हुआ। उसके भीतर कदम रखते ही आत्मा बड़ी ही शान्त हो गई। भीतर कुछ मोमिन मौजूद थे। वे बैठ कर अपनी अपनी जानमाज़ो पर या तो सिजदा कर रहे थे या चुपचाप ही बैठे थे। यहाँ पर न तो कोई रहस्यपूर्ण इमारत ही थी और न कोई ठाठ की मूर्तियाँ ही नजर आती थी, क्योकि पैगम्बर ने लिखा है कि खुदा के बन्दे और खुदा के बीच मे किसी तीसरे की—मुल्ला तक की—कोई जगह नही है। अल्लाह के सामने सभी मोमिन एकसाँ है। खुदा के दरबार मे मुल्ला या मौलवी, छोटे या बड़े का कोई स्थान नही जो किवले की ओर चेहरा करते ही इनसान के ख्यालो तथा अल्लाहताला के बीच मे बोल सके।

जब हम खास सड़क से होकर आश्रम को लौटने लगे तो मैने देखा कि सड़क के दोनो बाजू मे तरह तरह की दूकाने है। ये सब यात्री लोगो की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए थी।

मै अब जल्दी महर्षि के यहाँ पहुँचने के लिए लालायित होने लगा। गाड़ीवान अपने टट्टू को बेतहाशा दौड़ाने लगा। मैने पीछे घूम कर और एक बार अरुणाचलेश के मन्दिर की ओर निगाह दौड़ाई। नवो कलश आसमान को ओर उठे हुए थे। वे मानो मुझको बता रहे थे कि ईश्वर के नाम पर कितना क्षमता-

पूर्ण परिश्रम इस मन्दिर के निर्माण में किया गया था। इसमें कोई सन्देह न था कि मन्दिर किसी एक व्यक्ति के जीवन-काल में तय्यार नहीं हुआ होगा। फिर भी मिस्र देश की बातें मुझे याद आने लगीं। सड़कों के तय्यार करने का ढंग, उनकी सजावट और रचना, सड़कों के बाजू के कम ऊँचे मकानों की श्रेणी और उनकी मोटी भीतें सब कुछ मानों मिस्र देश की कोई जीती जागती प्रतिछवि थी।

क्या कभी वह दिन भी होगा जब ये मन्दिर शून्य नीरवता में डूब कर धीरे धीरे ढह कर उसी लाल या मटमैली धूल में मिल जावेंगे जिससे वे बनवाये गये थे? या मानव ही नये देवताओं का आविष्कार करके उनकी उपासना के लिए नये मन्दिर रचेगा?

अरुणगिरि की तलहटी में स्थित आश्रम की ओर हमारी गाड़ी चली जा रही थी। सामने प्रकृति की निराली शोभा झलक रही थी। रात को अपनी आराम की सेज पर सुख पाने के लिए बड़े भारी ठाट के साथ सूर्य जब चलने लगता है उस घड़ी की प्रतीक्षा करते इस पूर्वीय भूभाग में मैंने कितनी आशा से कितने ही घंटे बिताये हैं। पूर्वीय देशों में अपने स्फुट वर्णों की चित्रसारी से सूर्य की अस्तमय वेला मन को बरबस मोह लेती है। तब भी समस्त दृश्य बहुत ही जल्दी आँखों से ओझल हो जाता है। शायद इस मनोमोहक दृश्य की शोभा केवल आध घंटे से कुछ कम ही फैली रहती है।

दूर, पश्चिम के क्षितिज पर एक प्रचंड प्रज्ज्वलित कंदुक जंगल में नील गगन से उतरते हुए दिखाई देता है। अपनी शीघ्र निष्क्रान्ति के पूर्व ही वह एक निराले नारंगी रंग को धारण कर लेता है। उसके आस-पास सारा आकाश चित्र-विचित्र वर्णों से

भर जाता है और अपनी छटा से प्रेक्षकों के रसिक नेत्रों को आनन्द विभोर कर देता है। उस अनूठी वेला की सारी वहार को किस चितेरे की निपुण कूंची चित्रित कर सकती है? हमारे चारों ओर सारे खेत और वृक्षों के झुरमुट मानों ध्यानस्थ, नीरव तथा प्रशान्त हुए। छोटी चिड़ियों की मीठी कल-कल की तान भी अब सुनने को नहीं मिल रही थी। जंगली वन्दरों की गुर-गुर ध्वनि शान्त सी हो गई थी। उस रक्त-ज्वाला का महान चक्र जल्द ही संकुचित होते होते गायब हुआ ही चाहता था। सांझ को यवनिका और भी गाढ़ी होने लगी और चमकने वाली अग्निशिखाओं का वह सारा दृश्य अनन्त अंधकार में विलीन हो गया।

वाह्य प्रशान्ति मेरे विचारों पर अपना साया डालने लगी। दृश्य की वह मधुरिमा मेरे दिल को छूने लगी। ईश्वरीय कृपा की ये उदात्त घड़ियाँ, जब कि हमारे दिल में जीवन के क्रूर अव-गुंठन के तले भी एक परम कृपामय सत्य शिव सुंदर रूपी महान् शक्ति के अस्तित्त्व को सद्भावना लहर मारने लगती है, भुलाये नहीं भूलती। इस अपूर्व पर्वकाल की घड़ियों के सामने सामान्य जीवन की घड़ियाँ लज्जित होकर विस्मृत हो जाती है। शून्य के अतल गर्भ से आशा की एक नश्वर ज्योति चमकाने के लिए वे उल्काओं के समान कौंध उठती है और देखते देखते हमारी नजरों से ओझल भी हो जाती है।

× × ×

अंधकार की भित्ति पर अपनी कान्ति झलकाते हुए जुगुनू आश्रम के वगीचे में हर कहीं चमक रहे थे। आँगन के चारों ओर नारियल के पेड़ खड़े थे। उसी मार्ग से हो कर मैंने दालान में प्रवेश किया और नीचे फर्श पर बैठ गया। मालूम

पड़ता था कि यहाँ की हवा ही में एक उदात्त प्रशान्ति समा गई थी।

दालान मे लोग घेरा बाँध कर बैठे थे, पर उनमें न कोई बातचीत होती थी न उनसे किसी प्रकार की आवाज़ ही निकलती थी। कोनेवाली चौकी पर आसन मारे महर्षि बैठे हुए थे। उनके हाथ यों ही उनके घुटनों पर लगे हुए थे। मुझे वे इस समय भी सरलता और नम्रता की मूर्ति दिखलाई पड़े; साथ ही वे बड़े ही उदात्त और रौबीले प्रतीत हो रहे थे। 'होमर' के समय के किसी ऋषिवर के समान उनका उन्नत मस्तक सोह रहा था। दालान के दूर के सिरे की ओर वे टकटकी लगाये देख रहे थे। क्या वे खिड़की के उस पार सूर्य की आखिरी किरन को अस्त होते देख रहे थे, या किसी स्वप्न के से ध्यान में इतने विलीन हो गये थे कि उन्हे इस मर्त्य जगत की कुछ भी सुधि नही थी? सदा की भांति आज भी ऊदवत्तियों से सुगंधित धूम रेखाओ के छोटे छोटे बादल छत की ओर उड़ रहे थे। मै सावधानी के साथ बैठ कर महर्षि के चेहरे पर अपनी चितवन को संलग्न करने की चेष्टा करने लगा। पर थोड़ी ही देर बाद किसी कोमल प्रेरणा के वश मेरी आंखें आप ही बंद होने लगीं। बहुत समय नही बीता होगा कि मै अपने को एक तंद्रा सी अवस्था में पाने लगा और धीरे धीरे महर्षि के सामीप्य मे एक अस्पष्ट शांति की लहर मेरी आत्मा में और भी गहरे तक पैठने लगी। अन्त में मेरी चेतना लुप्त हो गई और मैं एक स्वप्न का स्पष्ट चित्र देखने लगा।

भान हुआ था कि मैं पाँच वर्ष का एक छोटा बालक बन गया हूँ। पवित्र अरुणागिरि पर घूम फिर कर ले जाने वाली एक पेचदार खुरदुरी पगडंडी पर मै खड़ा हुआ था। मैंने महर्षि का हाथ

थाम लिया था, लेकिन अब मेरी बगल मे वे एक अत्यत दीर्घकाय मूर्त्ति धारण किये दिखलाई दिये। वे सचमुच बड़े ही भीमकाय जान पड़े। वे मुझे आश्रम से दूर ले चले। रात का समय था, एकदम अंधेरा था। तो भी वे मुझे एक सड़क से लिये जा रहे थे। हम दोनो धीमी चाल से आगे बढ रहे थे। कुछ देर बाद चॉद और तारे षड्यंत्र रच कर हमारे चारो ओर कुछ धुँधली रोशनी छिटकाने लगे। मैंने साफ देख लिया कि महर्षि मुझे एक बड़ी ही विकट बाट से लिए जा रहे थे, पर बड़ी सावधानी के साथ। हमारी राह पहाड़ो घाटियो मे से हो कर जाती थी। चारो ओर बड़े भयानक शिलाखड सिर पर मानो टूट कर गिरना ही चाहते थे। पहाड़ का चढाव बड़ा ही खतरनाक था। हमारी चाल अत्यंत मंद थी। पत्थरो के बीच मे से कहीं कहीं झाड़खंडो मे लुकी छिपी क्षुद्र कुटियाँ और आश्रमियो से शोभित पहाड़ी गुफाये दीखती थीं। हम चलने लगे तो उन निवासो से तपस्वी निकल निकल कर हमारी आवभगत करने लगे। यद्यपि ताराओ के मंद आलोक मे उनकी भूतो की सी मूर्तियाँ मुझे चकित करने लगीं, तो भी मुझे स्पष्ट ही भासने लगा कि वे भिन्न भिन्न प्रकार के योगी है। उनके लिए हम कहीं न रुके और चोटी पर पहुँचने तक चलते ही रहे। अन्त को हम रुके और मेरा दिल किसी भावी महत्त्वपूर्ण घटना की विचित्र आशा से धड़कने लगा।

महर्षि मेरी ओर घूम कर सीधे मेरे चेहरे को ताकने लगे; मै भी बड़ी उत्सुकता के साथ उनकी ओर देख रहा था। मुझे प्रतीत होने लगा कि मेरे मन और हृदय मे बड़ी तेजी के साथ एक अजीब परिवर्तन हो रहा है। मुझे लुभाने वाले सभी पुराने विचारों तथा आशाओ ने एक एक करके मुझे छोड़ दिया। अविश्वास

तथा तेजी के साथ उभड़ने वाली इच्छाएं, जिनका शिकार बन कर मैं अब तक मारा मारा फिरा था, न मालूम कैसे गायब होने लगीं। अपने साथियों के प्रति व्यवहार मे जो गलतफ़हमियाँ, जो स्वार्थ-परायणता, निठुरता आदि मेरे व्यवहार में साफ़ झलका करती थी, सब की सब किसी शून्य के अतल अंधकूप मे अदृश्य हो गईं। एक अकथनीय शांति मुझे आवृत करने लगी। मुझे सचमुच ही दृढ़ता के साथ भासने लगा कि जिन्दगी में इससे बढ़ कर और किसी भी वस्तु की चाह नही ही करूँगा।

सहसा महर्षि की आज्ञा सुनाई पड़ी। पहाड़ के नीचे अपनी दृष्टि डालने की मुझे ताकीद मिली। देखा तो क्या था? वहाँ पहाड़ के पद-तल में, कहीं नीचे की ओर हमारे पश्चिमी भूभाग फैले पड़े थे। असंख्य लोगो की भीड़ लगी थी। कुछ अस्पष्टता के साथ उनकी मूर्तियों का मुझे भान होने लगा, पर अभी उनको घेर कर रात का परदा पड़ा हुआ था।

महर्षि की आवाज़ मेरे कानों में गूँजने लगी। वे धीरे पर स्पष्टता के साथ बोल रहे थे—"जब तुम फिर वहाँ लौट जाओगे, अब जिस शांति का तुम अनुभव कर रहे हो वह तुम्हारा साथ न छोड़ेगी। लेकिन तुम्हें उसका दाम चुकाना पड़ेगा। आज से कभी तुम्हें सोचना नही चाहिए कि तुम ही यह शरीर हो, तुम ही मन हो। जब इस शांति की बाढ़ तुम में पैठेगी, तुम्हें फिर अपनी ही आत्मा को भूलना पड़ेगा क्योंकि उस समय तुम्हारा जीवन ही 'तत्' में लीन रहेगा।"

और महर्षि ने एक रुपहली ज्योति-शलाका का एक सिरा मेरे हाथ में पकड़ा दिया।

इस अनूठे, आश्चर्यजनक पर स्पष्ट स्वप्न से मैं जाग उठा। तब भी उदात्तता की छाया मेरे ऊपर पड़ी हुई थी। तुरन्त महर्षि

की और मेरी चार आँखे हुई। उनका चेहरा मेरी ओर घूमा हुआ था और वे स्थिर दृष्टि से मेरी आँखो की ओर ताक रहे थे।

इस स्वप्न के तल मे क्या मर्म छिपा था ? जीवन की सारी कालिमा अब शून्य मे विलीन हो गई थी। स्वप्न मे अपने प्रति जिस उदात्त उदासीनता का और अपने सहयात्रियो के प्रति जिस परम करुणा का मैने अनुभव किया था उनका प्रभाव अब भी, जागने पर भी, मेरे मन पर अंकित था। यह एक अपूर्व अनुभूति थी। यदि इस स्वप्न मे कोई सचाई रही हो तो भी वह मेरे लिए नही ही रहेगी क्यो कि मै अभी उतना आगे नही वढ़ा था।

मै कितनी देर तक स्वप्न मे मग्न रहा ? अवश्य ही इसमे बहुत समय वीता होगा, क्योकि दालान मे सब कोई उठ रहे थे और सोने की तय्यारियाँ कर रहे थे। शायद मुझे भी लाचार होकर उनका अनुकरण करना था।

दालान मे सोना कठिन था। उसमे हवा कम घुसने पाती थी और चारो ओर ऊमस थी। किसी लम्बे भूरी दाढ़ी वाले चेले ने मेरे लिए एक लालटेन का प्रवंध कर दिया। उसने मुझ से कहा कि रात भर मै वत्ती को गुल न करूँ क्योकि वहाँ साँपो और चीतो का भय था जो लालटेन के पास नही फटकते।

जमीन जल-भुन कर कड़ी हो गयी थी। मेरे पास कोई बिछावन न था। फलतः मुझे घंटो नीद नही आई। तो भी कोई परवाह न थी क्योकि मेरे मनन करने के लिए काफी मसाला मौजूद था। मुझे प्रतीत होने लगा कि अपनी जिन्दगी भर महर्षि का सा अद्भुत अनुभव, उनके से रहस्यपूर्ण महात्मा को देखने का मेरा सौभाग्य नही हुआ था।

मालूम पड़ता था कि मेरे जीवन पर इनका बड़ा ही महत्त्व-पूर्ण प्रभाव रहेगा पर उसका ठीक ठीक रूप क्या होगा यह मुझे सूझता नहीं था। वह अज्ञेय, अविगत और शायद आध्यात्मिक होगा। उस रात को मैंने इस प्रश्न पर जितने बार विचार किया, मुझे उसी स्वप्न का प्रत्यक्ष रूप दिखाई देता था और कोई निराली सनसनी मेरी रग रग में दौड़ कर मेरे हृदय को अस्पष्ट परन्तु अति उदात्त आशाओं से उछाल रही थी।

× × ×

इसके बाद मैं आश्रम में कुछ दिन तक रहा। उन दिनों मैंने महर्षि के अत्यंत निकट पहुँचने की चेष्टा की, पर मुझे सफलता नहीं मिली। मेरी इस विफलता के मुख्यतया तीन कारण थे। सब से पहला कारण महर्षि की कुछ खिंचे से रहने की प्रवृत्ति थी। वे दलीलें और वादविवादों को बिलकुल ही पसंद नहीं करते। दूसरों के विश्वासों तथा मतों के प्रति वे एकदम उदासीन थे। यह स्पष्टतया झलकने लगा था कि किसी को अपने मत में मिल लेने या किसी के मत को अपने अनुकूल बना लेने के लिए वे उतावले न थे।

दूसरा कारण कुछ निराला अवश्य था, किन्तु वह एक कारण जरूर था। उस विचित्र स्वप्न के बाद से उनके सामने आते जाते मुझे एक प्रकार के आदर मिश्रित भय का अनुभव होने लगा था। किसी दूसरी परिस्थिति में अपने आप ही मेरे ओठों से उमड़ने वाली प्रश्नों की झड़ी न जाने क्यों उनके सामने शांत होने लगती। बराबरी के दावे पर वाद-विवाद में उन्हें लगाने की चेष्टा ही मुझे एकदम कुत्सित प्रतीत होने लगी थी।

मेरी असफलता का तीसरा कारण बहुत ही स्पष्ट था। प्रायः लगातार कोई न कोई दालान में मौजूद रहता और उनकी उप-

स्थिति मे अपने दिल की बाते प्रकट करने मे मुझे संकोच होता था। मै उन लोगो के लिए एक अजनबी था। मेरा अन्य भाषा-भाषी होना उतना महत्त्व नहीं रखता था, पर जब मै अपने निजी भावो को प्रकट करना चाहता, धार्मिक आवेश से एकदम कोरे, अपने शक्कीपन तथा अविश्वास का मुझे भान हो जाता जिससे उन लोगो के मन मे मेरे विपरीत राय कायम होने की संभावना थी। उनके धार्मिक विश्वासो पर किसी ढंग का धक्का पहुँचाने की मेरी तनिक भी इच्छा न थी, पर साथ ही अपने दिल के दृढ़ विश्वास का गला घोट कर दूसरे ही प्रकार से अपने विचारो को प्रकट करना मुझे बिलकुल ही पसंद नहीं था। अतः मुझे कुछ हद तक अपना मुँह बंद रखना पड़ा।

इन सभी अड़चनो को दूर करने की कोई राह मुझे सहज मे नहीं सूझती थी। जब कभी मै महर्षि से प्रश्न पूछना चाहता था इन रुकावटो मे कोई न कोई बीच मे आकर मेरी उमगो पर पानी फेर देती।

मेरी वहाँ रहने की निर्दिष्ट अवधि पूरी होने वाली थी। मैने अपना कार्यक्रम बदल कर और भी एक सप्ताह तक आश्रम मे रहने का निश्चय किया। महर्षि के साथ नाममात्र की जो मेरी पहली बातचीत हुई, वही आखिरी भी सिद्ध हुई। एक-दो मामूली प्रश्नो या बेमतलब की बातचीत के सिवा उनके साथ मेरा कोई महत्त्वपूर्ण वार्तालाप नहीं हुआ।

सप्ताह समाप्त हुआ। मैने और एक पक्ष तक रहने का इरादा कर लिया। हर दिन मुझे महर्षि के चित्त की सुदर शांति और उनके चारो ओर छिटकने वाले प्रशांत गाम्भीर्य का अनुभव होने लगता था।

मेरे आश्रम निवास की अवधि पूरी हुआ ही चाहती थी; अन्तिम दिन भी आया पर अब तक मैं महर्षि के दिल में पैठ नहीं सका था। मेरे वहाँ रहने के दिन आशा और निराशा के विचित्र संयोग से भरे हुए थे। मैंने आंख उठाकर दालान के चारो ओर निगाह दौड़ाई तो मुझे एक प्रकार का निरुत्साह होने लगा। इन लोगो मे बहुतेरे तो मन से और मुँह से भी एक भिन्न भाषा-भाषी थे। उनके दिल में मेरे लिए क्योंकर स्थान मिल सकता था? मैने महर्षि की ओर ताक कर देखा। वे कहीं उन्नत हिमशिखर पर बैठे, संसार की चहल पहल से कहीं दूर, तटस्थ बने दिखाई दिए। उनमे कोई अनूठी विशेषता थी जो मेरे परिचित अन्य महात्माओ से उन्हें पृथक कर देती थी। न जाने क्यों मुझे प्रतीत होने लगा कि वे इस दुनिया के न थे; यहाँ तक कि चारों ओर बिखरी हुई प्रकृति माता से, आश्रम के पीछे ही अपने उन्नत मस्तक का उठाये आसमान को चूमने वाले अरुणागिरि से, दूर के जंगलो तक फैल कर उनमे विलीन होने वाली ऊजड़ झाड़ियों से, दुरूह आकाश की नीलिमा की अनन्तता से वे इतने एकरूप, इतने अभिन्न प्रतीत हो रहे थे!

मालूम होता था कि उस निराली अरुणागिरि की जड़ अचलता के अंश ने महर्षि में प्रवेश किया है। मुझे बतलाया गया कि महर्षि ने ३० साल तक इस पर्वत पर निवास किया है और अब भी वे किसी छोटे सफर के लिए भी उसकी गोद को छोड़ना नहीं चाहते। इस प्रकार के निकट संबंध का मानव के चरित्र पर असर पड़ना अवश्यम्भावी है। मुझे मालूम है कि वे इस गिरि को बड़ा प्यार करते हैं। किसी ने महर्षि की लिखी एक सुन्दर कविता का अनुवाद किया है जो वास्तव में गिरि के प्रति महर्षि के प्रेम को बहुत ही मनोहर रूप से प्रकट करती है। इस

न्यारे पर्वत का उन्नतकाय जंगल के एक छोर से गगन की ओर उभड़ उठता है और उसका उन्नत मस्तक नीले आकाश के निरालेपन का अनुभव करता है। उसी प्रकार इन महात्मा की भी साधारण जनता के बीच मे अपने ढंग की एक विचित्र निराली शोभा है। जिस प्रकार ज्योतिर्गिरि अरुणाचल चारो ओर घिरी रहने वाली पर्वतावली से दूर अकेले खड़ा है, उसी प्रकार महर्षि भी अपने चारो ओर श्रद्धालु शिष्यो तथा भक्तो से घिर कर भी उनसे दूर किसी एक दूसरे ही रहस्यमय जगत मे रहते है। इस पवित्र गिरि से इतने विभिन्न रूप से अभिव्यक्त होने वाली प्रकृति की दुरूहता और अव्यक्त निरालापन न जाने कैसे महर्षि मे पैठ गया है। शायद सदा के लिए वे अपने इन गुणो के कारण अपने दुर्बल भाइयो से पृथक हो गये है। कभी कभी मेरे दिल मे यह लालसा लहर मारती दिखाई देती कि यदि वे थोड़ा और मानवीय रहते, हमारे लिए प्रायः साधारण लगने वाली, किन्तु उनकी सन्निधि मे एक तुच्छ और निद्य कमज़ोरी प्रतीत होने वाली सांसारिकता को वे कुछ समझते तो क्या ही अच्छा होता। तब भी यदि उन्होने सच ही साधारण जनता की पहुँच के परे किसी अलौकिक अनुभूति या सिद्धि को प्राप्त किया है, तो साधारण मानव की सीमा को लाँघे बिना वे ऐसा क्योकर कर सकते थे? उनकी निराली दृष्टि के तले मुझे नियत रूप से एक विचित्र आशा की, मानो शीघ्र ही किसी महान् दैवी संदेश की प्राप्ति होने वाली है, क्यो कर अनुभूति होती है?

तब भी शांति की स्फुट छाया मे, स्मृति के विमल गगन से, जगमगाने वाले एक स्वप्न के सिवा और किसी प्रकार का उपदेश या और किसी भाँति का संदेश मुझे प्राप्त नही हुआ। काल को गुजर जाते देख मुझे कुछ साहस हो जाता था। करीब एक पाख

बीत गया और केवल एक ही बार बातचीत करने का सौभाग्य ; और वह भी ऐसा जिसका कोई खास महत्त्व नहीं था ! महर्षि का स्वर कुछ खिचा सा रहता था। यह भी मुझे उनसे दूर रखने में काफी सफलता पाता था। उनकी वह उदासीनता मेरी आशा के एकदम विपरीत थी, क्योंकि यहाँ पर आने के लिए सुब्रह्मण्य जी ने जो उज्ज्वल बातें मुझसे कही थीं वे सब अभी मुझे भूली नहीं थी। सबसे अधिक ललचाने वाली बात यह थी कि मैं सच्चे हृदय से महर्षि के वचनों को सुनने के लिए बहुत ही तरस रहा था क्योंकि किसी भाँति एक विचार ने मेरे मन पर अधिकार जमा लिया था। वह विचार मेरे मन मे किसी तर्कोपतर्क से पैदा नहीं हुआ था ; वह अपने आप, मेरी ओर से कोई प्रयत्न किये बिना ही, दिल में उठा था और उस पर सर्वतोमुख अधिकार प्राप्त कर लिया था।

'महर्षि सारी समस्याओं से एकदम छूटे हुए हैं, उनकी सारी शंकाओं का उच्छेद हो गया है, किसी प्रकार को दुःख चिता उनको आकुल नहीं कर सकती।'

यही मेरे मन में लहर मारने वाले विचार का सारभूत आशय था।

मैंने अपने प्रश्नों को शब्द-रूप में किसी प्रकार प्रकट करने की फिर से चेष्टा करने और महर्षि को उनके उत्तर देने में लगा देने की ठान ली। उनके एक पुराने शिष्य बगल की एक कुटी मे कुछ काम कर रहे थे। उनकी मेरे ऊपर बड़ी ही दया थी। मैंने उनके निकट पहुँच कर साफ साफ बता डाला कि उनके गुरुदेव से अंतिम बार बात करने की मेरी कैसी गहरी अभिलाषा थी। मैंने स्वीकार कर लिया कि महर्षि से स्वयं अनुमति माँगने में मुझे बड़ा ही संकोच हो रहा था। वे बड़ी हम-

दर्दी के साथ मुस्कराने लगे। मुझे वे वही छोड़ कर चले गये और जल्द ही यह खबर ले आये कि उनके गुरू मुझे बातचीत का मौका देने के लिए राजी है।

मैने उतावली के साथ दालान मे प्रवेश किया और महर्षि की चौकी के पास आराम के साथ बैठ गया। तुरन्त महर्षि मेरी ओर घूमे और बड़े हर्ष के साथ मेरे स्वागत मे मुस्कराने लगे। फिर तो मुझे कोई संकोच न रहा और सीधे उनसे प्रश्न कर बैठा' "योगो लोगो का कहना है कि सत्य की खोज के लिए संसार का त्याग करके निर्जन वन और पर्वतो का आश्रय लेना पड़ता है। पश्चिम मे ऐसी बाते हो ही नही सकती, हम लोगो की जिन्दगी ही कुछ और प्रकार की है। क्या आप योगियो के मत से सहमत है?"

महर्षि ने एक सभ्य सज्जन की ओर ताका। उन्होने महर्षि के वाक्यो का अनुवाद किया—"कर्म सन्यास की आवश्यकता नही है। यदि तुम हर रोज एक-दो घटे तक ध्यान करोगे तो अपने सांसारिक कर्तव्यो का त्याग करने की जरूरत नही होगी। तुम यदि ठीक मार्ग पर ध्यान करोगे तो उससे एक प्रकार की विचार-धारा उत्पन्न होगी। फिर तुम कोई भी काम करते रहो वह धारा तुम्हारे मन मे बहती ही रहेगी। यह कुछ उसी प्रकार की बात है कि एक ही भाव को व्यक्त करने के दो भिन्न मार्ग है; ध्यान मे तुम जिस मार्ग का अनुकरण करोगे, वह तुम्हारे कार्य-कलाप मे भी अपने को प्रकट करेगा ही।"

"उस मार्ग का अनुसरण करने का क्या फल होगा?"

"मार्ग पर आरूढ़ हो कर जैसे जैसे तुम उन्नति करने लगोगे वैसे वैसे लोगो के प्रति और अन्य घटनाओ तथा वस्तुओ के प्रति जो तुम्हारा दृष्टिकोण है, उसमे क्रमश: भारी परिवर्तन

नज़र आने लगेगा। तुम्हारे कार्य-कलाप आप ही तुम्हारे ध्यान-मार्ग का अनुकरण करने को उन्मुख हो जायँगे।"

मैंने महर्षि की ठीक और सही राय जानने के लिए एक जटिल प्रश्न किया—"तब आप योगियों से सहमत नहीं हैं?"

महर्षि ने सीधा जवाब नहीं दिया। बोले—"इस संसार में साधक को अपने निजी स्वार्थ का समर्पण कर डालना होगा। अपने झूठे अहं को छोड़ना ही सच्चा सन्यास है।"

"साँसारिक जीवन व्यतीत करते हुए नितान्त स्वार्थ-रहित होना क्यों कर संभव है?"

"कर्म और ज्ञान में कोई विरोध नहीं है।"

"तो आपका यही कहना है कि अपने पुराने पेशे के सारे कार्य-कलाप को करते हुए भी उसके साथ ही ज्ञान प्राप्त करने की आशा भी रख सकते हैं?"

"क्यों नहीं? लेकिन उस सूरत में साधक कभी नहीं समझेगा कि उसका पुराना 'अहं' कार्य कर रहा है, क्योंकि साधक के चैतन्य या बोध का क्रमिक विकास तब तक होता ही रहेगा जब तक कि वह क्षुद्र अहं के परे होकर परम-आत्मा में केंद्रीभूत न हो जाय।"

"यदि कोई काम-काज में डूबा रहे तो फिर ध्यान करने के लिए उसको वक्त ही कहाँ मिलेगा?" मेरे इस जटिल प्रश्न से महर्षि कुछ भी नहीं बिचले। उन्होंने उत्तर में कहा:

"ध्यान के लिए अगल एक निश्चित समय रखने की केवल अभ्यास में कच्चे रहने वालों को ही ज़रूरत पड़ती है। मार्ग पर उन्नति करने वाला, चाहे काम में मग्न रहे या न रहे, अपने अंतरतम में सुख का भोग करता रहता है। एक ओर तो

वह समाज के काम-काज मे लीन रहता है पर दूसरी ओर वह अपने मन को शांत एकान्त में क़ायम रख सकता है।"

"तो आप योग मार्ग का उपदेश नही देते ?"

"जैसे ग्वाला हाथ मे लकड़ी लेकर बैल को गतव्य स्थान की ओर चलाता है, योगी भी कुछ उसी भांति से गंतव्य की ओर चलने लगता है। लेकिन इस मार्ग मे जिज्ञासु हाथ मे घास फूस लिए बैल को ललचाते हुए गंतव्य पर पहुँचा देता है।"

"ऐसा क्यो कर किया जाता है ?"

"तुम्हे अपने से प्रश्न करना होगा 'मै कौन हूँ ?'। इसी खोज का अनुसरण करने से तुम्हे अपने अदर ही एक ऐसी चीज दीख पड़ेगी जो मन के भी परे है। उस महान समस्या को सुलझा लोगे तो उसी से अन्य सारी समस्यायें सुलझ जायेगी।"

इन बातो का आशय समझ लेने मे मुझे कुछ देर लगी। सामने की खिड़की मे से पावन अरुणागिरि की रम्य तटी का झांकी मन को बरबस खीच रही थी। उसकी वह गंभीर वाह्य-मूर्ति प्रभातवेला के बाल अरुण की सुनहली किरणो मे मानो स्नान कर रही थी।

महर्षि ने फिर कहा :

"क्यो ? इस प्रकार कहे तो आसान होगा कि सभी मानव ऐसे शाश्वत आनंद के लिए लालायित है, जिसमे दु:ख का किसी प्रकार का पुट न हो। वे एक नित्य आनंद को पाना चाहते है। उनकी यह वासना एकदम सच्ची और सही है। पर कभी यह भी तुम्हारे ध्यान मे आया है कि ये सभी लोग अपने आपको ही सब से अधिक,प्यार करते है ?"

"अच्छा, तो ?"

" तो उसके साथ इस बात का भी विचार करो कि वे हमेशा किसी न किसी ज़रिये से आनंद ही पाना चाहते हैं ; चाहे शराब पीकर या धार्मिक हो कर। इन दोनों बातों का एक साथ ध्यान करके देखोगे तो मानव के असली स्वरूप का तुम्हें मूल-मंत्र मिल जायेगा। "

" ये बातें मेरी समझ में नहीं आतीं।"

महर्षि का स्वर कुछ उच्च हो गया। बोले :

" मानव की सहज स्थिति, सहज प्रकृति, आनंद भोगी है। आत्मा का यह सहज स्वरूप है। आनंद के लिए मानव की जो खोज है, वह वास्तव में एक अव्यक्त, एक अज्ञात आत्म-अन्वेषण ही है। सद्-आत्मा अविनाशी है, अव्यय है, अमर है। अतः मानव जब उसको पहचानता है, वह एक अव्यय, नित्य आनंद का भागी बन जाता है; वह अमर हो जाता है। "

" लेकिन दुनियां में तो इतना दुःख है ? "

"ठीक है। पर संसार इसीलिए दुःखी है कि वह अनात्मविद् है, अपनी सद्-आत्मा को नहीं पहचानता है। सभी मानव जाने या अनजाने उसी की खोज कर रहे हैं। "

" सभी मानव ! लुच्चे, बदमाश, ज़ालिम भी ? "

" हाँ ! वे भी अपने हर एक पाप में अपनी आत्मा का ही सच्चा आनंद पाने की चेष्टा करते हैं। आनंद की आशा से ही वे पापाचरण करते हैं। आनंद पाने की वह चेष्टा मानव के लिए स्वाभाविक है। लेकिन वे नहीं जानते कि वे अपनी सद्-आत्मा को ही वास्तव में खोज रहे हैं। इसीलिए वे पहले पहल आनंद का साधन मान कर कुमार्ग पर चल पड़ते हैं। निस्संदेह वे बुरे मार्ग ही हैं, क्योंकि मानव के कर्मों की छाया उसी पर ही तो पड़ जाती है। "

"तो सदात्मा को पहचानने पर हमे शाश्वत आनंद की अनुभूति प्राप्त होगी ?"

महर्षि ने सिर हिलाया।

खिड़की के ज़रिये सूर्य की एक तिरछी किरण महर्षि के मुखमंडल पर पड़ा। उस प्रशांत मुख-बिंब पर एक गंभीरता छाई रही। उस स्थिर मुख पर संतोष की छाया झलक रही थी और उन उज्ज्वल नेत्रो मे मंदिर की सी शांति टपकी पड़ती थी। उनका वह चेहरा उनकी उन दिव्य बातो का सच्चा प्रमाण दे रहा था।

महर्षि की इन आसान दीखने वाली बातो का क्या मतलब था ? दुभाषिए ने उनका बाह्य अर्थ ही मुझ को बता दिया था। पर उनमे कुछ गंभीर अर्थ छिपा था जिसका अनुवाद उनसे करते नही बना। मुझे मालूम था कि मुझको ही वह अर्थ ढूंढ़ निकालना पड़ेगा। मुझे प्रतीत हुआ कि महर्षि अपने सिद्धांत की स्थापना करने वाले किसी पंडित या दार्शनिक के समान बोल नही रहे थे किन्तु अपने ही दिल की गंभीरतम तह से बोल रहे थे। क्या उनकी बाते उन्ही की सौभाग्यमय अनुभूति के बाह्य चिह्न थी ?

"आप जिस आत्मा की बात कह रहे है उसका अन्तिम और ठीक ठीक स्वरूप क्या है ? आपकी बात यदि सत्य है तो मानना पड़ेगा कि मानव के भीतर एक और सूक्ष्म आत्मा भी है।"

क्षण भर के लिए महर्षि के ओठो पर मुस्कान खिल उठी।

"क्या मानव के भीतर दो आत्माएं रह सकती है ? इस बात को समझने के लिए आदमी को चाहिए कि वह पहले अपने ही चित्त का विकलन करे। सदा से वह दूसरो की दृष्टि से ही अपने को देखता आया है। सच्चे ढंग पर 'मै' का अर्थ समझने की

उसने चेष्टा नहीं की है। उसको अपनी ही सच्ची तसवीर का वास्तविक अंदाज़ नहीं है। बहुत ही दीर्घ काल से अपने शरीर और दिमाग को ही वह अपनी आत्मा मान बैठा है। इसीलिए मेरा तुमसे यही कहना है कि आत्म-जिज्ञासा करो, अपने से प्रश्न करते जाओ 'मैं कौन हूँ ?'।"

इन बातों का असर मेरे ऊपर पड़ जाय और इनका अर्थ मेरे दिमाग में पैठ जाय इस विचार से महर्षि थोड़ी देर तक चुप रहे। फिर उनकी बातों को मैं बड़ी व्यग्रता के साथ सुनने लगा।

"तुम चाहते हो कि मैं तुम्हारे लिए सदात्मा का वर्णन करूँ, पर कहा ही क्या जा सकता है ? जिससे तुम्हारी क्षुद्र अहंता या 'मैं' का बोध उदित हो और जिसमें वह विलुप्त होता जान पड़े वही सद्-आत्मा है।"

"विलुप्त हो ? अपने ही अस्तित्व का बोध कोई भी कैसे खो सकता है ?"

"हर एक मनुष्य का सबसे पहला, सबसे प्रधान और सबसे प्राचीन विचार 'अहं' का विचार है। इस विचार की उत्पत्ति के बाद ही अन्य विचारों का उदय संभव है। प्रथम पुरुष सर्वनाम 'मैं' के उत्पन्न होने के बाद ही द्वितीय पुरुष सर्वनाम 'तू' का आविर्भाव होता है। इस 'मैं' के विचार-सूत्र को पकड़ कर, मानसिक रूप से, उसकी उत्पत्ति के स्थान पर पहुँचने तक अपनी दृष्टि को भीतर की ओर मुड़ा कर ले जा सकते हो। तब तुम को पता लग जायगा कि जैसे वह उत्पन्न होने वाले सभी विचारों में पहला है उसी प्रकार वह विलुप्त होने वाले सभी विचारों में आखिरी है। यह तो अनुभूति से जाना जा सकता है।"

"आपका यही विचार है कि इस प्रकार अपनी ही आत्मा का विकलन करके देखना एकदम संभव है ?"

"निस्संदेह ! प्रत्याहार से, दृष्टि को भीतर की ओर मोड़ कर अंतरंग का विकलन करते करते, अंतिम विचार 'मैं' के गुम होने तक अंतरंग में डुबकी लगाई जा सकती है।"

"तो अन्त में बच क्या रहेगा ? उस हालत में आदमी या तो एकदम बेसुध हो जायगा या वह मूर्ख बन जायगा ?"

"कभी नहीं। उलटे, वह नित्य-बोध का भागी बनेगा। जब मानव अपने सत्य-स्वरूप, अपनी सद्-आत्मा को पहचान जायगा तो वह वास्तव में मूर्ख नहीं, बड़ा भारी ज्ञानी बनेगा ?"

"लेकिन उस बोध को भी वह 'मैं' ही तो कहेगा ? वह बोध भी तो अहं-प्रत्यय-गोचर होगा ?"

महर्षि ने बड़ी शांति के साथ उत्तर दिया :

"अहं प्रत्यय से व्यक्ति, शरीर और मन संबद्ध है। पहली बार जब साधक अपनी सद्-आत्मा की झाँकी ले ले, तो उसकी अंतरतम सत्ता से और एक प्रकार की निराली वस्तु उभड़ उठेगी और उसके सारे शरीर पर अधिकार जमा लेगी। वह निराली वस्तु मन के परे है। वह अनंत है, दिव्य है, नित्य है। कोई उसको 'स्वर्ग राज्य कहते हैं' और कोई उसे 'आत्मा' के नाम से पुकारते हैं, कुछ अन्य उसको 'निर्वाण' का नाम देते हैं। हम हिंदुओं में उस स्थिति की संज्ञा 'मुक्ति' है। तुम उसको जैसे चाहो पुकारो, जो चाहो नाम दो। जब यह अद्भुत दशा मानव को प्राप्त होती है तब वह अपने को खोता तो नहीं है, वास्तव में वह अपने को पाता है।"

अनुवादक के मुँह से अंतिम शब्द मेरे कानों में पहुँचते ही मेरे मन में गैलिली के उस परिव्राजक-प्रवर्तक की चिर-स्मरणीय

उक्ति बिजली के समान कौंध गई—वह उक्ति जिसने बड़े बड़ों को भी चकरा दिया है !

'जो अपने जीवन की रक्षा करने का प्रयत्न करेगा वह उसे खो बैठेगा, और जो अपने जीवन को खो बैठे वही उसकी रक्षा कर लेगा।' इन दोनों की बातों में कैसी आश्चर्यजनक समानता है !

लेकिन भारतवर्ष के ये महर्षि अपने ही प्रत्याहार के मानसिक रूप से, जो बड़ा ही विकट और अज्ञात मालूम पड़ा, इसी सिद्धांत पर पहुँच गये।

महर्षि फिर बोलने लगे। उनके वचन मेरे विचारों में पैठने लगे :

"जब तक कि मानव सदात्मा की खोज में अपने को तल्लीन न कर ले, तब तक अपने जीवन भर शंका और संदेह से वह अपने को मुक्त नहीं कर सकेगा। बड़े बड़े सम्राट और राजनीतिज्ञ यह खूब जानते हुए भी कि उनका स्वयं अपने ही ऊपर अधिकार नहीं है, दूसरों के ऊपर प्रभुता करने की चेष्टा करते हैं। तब भी जो अपनी अंतरतम तह तक पहुँच गया हो उस की मुट्ठी में सबसे जबरदस्त शक्ति रहती है। दुनिया में कई विषयों की गवेषणा करते हुए अपना सारा जीवन व्यतीत करने वाले बड़े बुद्धिशाली, अत्यंत मेधावी कितने नहीं हैं ? उनसे पूछो कि क्या मानव का रहस्य उन्होंने सुलझाया है ? पूछो कि क्या उन लोगों ने अपने ऊपर विजय पा ली है ? इसका वे क्या उत्तर दे सकते हैं। वे तो सिर्फ मौन धारण कर शरम के मारे मुँह लटकायेंगे। भाई, जब तुम अपने ही बारे में जान नहीं पाये कि तुम कौन हो तो फिर संसार भर की बातों का

मर्म जानने की चेष्टा किस काम की ? लोग इस आत्म-जिज्ञासा से बचना चाहते हैं। पर सोच कर देखो इससे उत्तम और क्या करणीय है ?"

"लेकिन यह बात तो बड़ी ही टेढ़ी और मानव की शक्ति के एकदम परे है।"

महर्षि के कंधे कुछ सिकुड़ते से दीख पड़े। बोले—"यह बात संभव है कि नहीं यह तो अपनी अपनी अनुभूति से ही जाना जा सकता है। तुम जिसको कठिनाई समझ रहे हो वह कोई सच्ची कठिनाई तो शायद नहीं है। हाँ, वह कुछ कठिन सा भास सकती है।"

"हम चलते-फिरते कामकाजी पश्चिमियों के लिए इस प्रकार के प्रत्यवेक्षण—?" मुझे स्वयं ही अपने कथन पर शंका होने लगी और मेरा वाक्य अधूरा ही हवा में गूँजता रह गया।

महर्षि ने झुक कर एक ऊदबत्ती जलाई और बुतने वाली के स्थान पर उसे खोंस दिया। फिर बोले—"सत्य का अन्वेषण, तत्त्व का जान लेना, हिंदुओं और यूरोपियनों दोनों के लिये एकसाँ है। निस्सन्देह, जो दुनियाबी काम-काज में तन मन से लग गये हों उनके लिए यह मार्ग कुछ अधिक कठिन हो सकता है। तब भी उनको यह बात जान लेनी चाहिए और उनमें इसको जानने की ताकत भी अवश्यमेव है। ध्यान के समय जो विचार-धारा, जो विमर्श-धारा जाग पड़ेगी, अभ्यास से उसको जारी रक्खा जा सकता है। तब उस धारा में ही रह कर आदमी अपना दुनियाबी काम-काज कर सकता है। इस प्रकार के आचरण में कहीं किसी प्रकार का विच्छेद नहीं होगा। तब ध्यान तथा बाह्य क्रियाओं में कोई अंतर रह नहीं जायगा। यदि तुम विचारो कि 'मैं कौन हूँ ?', यदि तुम इसी ध्यान की रट लगाओ, यदि तुम

पहचान लो कि 'मैं' सचमुच न शरीर है, न बुद्धि है, न कामनाएँ ही है, तो जिज्ञासा की यह पद्धति ही, विचार का यह प्रकार ही, तुम्हारे अन्तःस्तल से इस प्रश्न का जवाब अपने आप गुंजा देगा; सदुत्तर अपने आप तत्त्वानुभूति या आत्म-विज्ञान के रूप में प्रकट हो जावेगा।"

मै उनके वचनो पर फिर मनन करने लगा। वे बोलते गये—"सच्ची सद्-आत्मा को जान लो तो तुम्हारा मन सत्य-सूर्य के स्वच्छ प्रकाश से आलोकित हो जायेगा। मन की सारी अशांति दूर होगी और वास्तविक आनंद का समुद्र उमड़ उठेगा क्योंकि सत्-आनंद और आत्मा एकदम अभिन्न हैं, अद्वय हैं। इस आत्म-विमर्श की उपलब्धि के पश्चात् तुम्हारी सारी शंकाएं छिन्न भिन्न हो जायेंगी।"

महर्षि ने अपना सिर घुमा लिया और दालान के परले सिरे पर अपनी स्थिर दृष्टि से ताकने लगे। मुझे मालूम होगया कि वे बातचीत की सीमा तक पहुँच गये और अब नहीं बोलेंगे। इस प्रकार से हमारी अन्तिम बातचीत खतम हुई और मैंने अपने भाग्य को खूब ही सराहा कि इस स्थान से बिदा होने के पहले किसी तरह महर्षि को उनके स्वाभाविक मौन के आवरण से हटा कर अपनी ओर आकृष्ट करने में मैं सफल हो ही गया।

× × ×

मैंने महर्षि को छोड़कर दूर तक भटकते भटकते जंगल के एक शांत कोने का आश्रय लिया। वहाँ बैठकर मैंने दिन का अधिक भाग नोट लेने तथा पुस्तकावलोकन में बिताया। गोधूलि की वेला निकट होते ही मैं दालान में लौट आया क्योंकि दो-एक घंटे में मुझे आश्रम से ले जाने वाली घोड़ागाड़ी या कोई छकड़ा आने वाला था।

ऊदवत्तियों के धुएं से सारा दालान महक रहा था। पंखा झूल रहा था और उसके नीचे महर्षि अपने आसन पर आधे लेटे हुए थे। मेरे दालान मे प्रवेश करते ही वे उठ बैठे और उन्होंने अपना प्रिय आसन जमा लिया। उस आसन का नाम सुखासन है। यह एक प्रकार का अर्ध-पद्मासन ही था। इसके साधने म मुझे कोई कठिनाई प्रतीत नही होती थी। मुझे इसो आसन को और कही देखने की बात याद आ गई। ब्रह्म सुखानंद जी ने मुझे यह आसन दिखाया था। महर्षि यही आसन जमाए हुए थे और अपनी आदत के अनुसार अपने दाहने हाथ से ठुड्डी पकड़े थे। उनकी दाहिनी कुहनी उनके घुटने पर रक्खी थी। मेरी ओर वे स्थिर दृष्टि से ताक रहे थे पर एकदम मौन होकर। फर्श पर उनकी बगल मे उनका कमंडल और दण्ड पड़ा था। कोपीन के अतिरिक्त ये ही उनकी एक मात्र संसारी सपत्ति थे। पाश्चात्य व्यक्तियो की संग्रह करने की प्रवल उत्कंठा की यह कैसी मूक टिप्पणी थी।

सदा चमकने वाली उनकी आँखे धीरे धीरे और भी स्थिर होकर और चमकने लगी। उनका वदन एकदम निश्चल था। उनका माथा कुछ कुछ काँपकर फिर स्थिर हो गया। कुछ मिनट और गुजरे। मुझे साफ भासने लगा कि वे समाधिस्थ हो गये। जब मैंने उनसे पहले पहल भेट की थी उनकी यही दशा थी। कितने आश्चर्य की बात थी कि मेरे विदा लेते समय उनकी वही दशा थी जो प्रथम मिलाप के समय थी। किसी ने मेरे कान तक झुककर कहा—"महर्षि समाधिस्थ हो गये। अब बातचीत करना व्यर्थ है।"

दालान के सभी लोगो पर सन्नाटे की छाया पड़ी हुई थी। धीरे धीरे मिनट गुजरते जा रहे थे, पर सन्नाटा और भी गहरा

होता गया। मैं कोई धार्मिक पुरुष न था, परन्तु जैसे भौंरा सरस कुसुम के लुभावने विकास को देख कर अपने मन पर काबू ही भूल बैठता है उसी प्रकार अब मुझसे उस धार्मिक श्रद्धा का क्षण क्षण बढ़नेवाला प्रभाव रोका नहीं जाता था।

सारा दालान एक सूक्ष्म अकथनीय और अगोचर शक्ति के प्रसार से ओतप्रोत होने लगा। इस वायुमंडल का मुझ पर गहरा असर पड़ रहा था। मुझे कुछ भी शंका या संकोच नहीं रहा कि इस रहस्यपूर्ण शक्ति प्रसार का केंद्र महर्षि को छोड़ और कोई नहीं था।

उनकी आँखों की चमक मुझे चौंधिया रही थी। अजीब वेदनाये मेरे बदन में दौड़ने लगीं। भान होने लगा कि वे ज्योर्तिमय नेत्र मेरी आत्मा के अंतरम तल की झाँकी ले रहे थे। मुझे साफ साफ प्रतीत होने लगा कि मेरे दिल की कौन कौन सी बातें वे देख रहे थे। उनकी वह मर्म भरी दृष्टि मेरे विचार, मेरे भाव, मेरी इच्छाएं, सभी मे पैठी जा रही थी। उनके सामने मैं बेबस हो गया था। पहले उनकी दृष्टि ने मुझे कुछ कुछ व्याकुल बना दिया, न जाने क्यों मुझे एक अस्पष्ट बेचैनी मालूम हो रही थी। मुझे भासने लगा कि उन्होंने मुझ से विस्मृत मेरे अतीत इतिहास के पन्ने उलट दिये है। मुझे निश्चय था कि उन्होने सब कुछ जान लिया है। उनकी उस दृष्टि से मैं बच नहीं सकता था, और वास्तव में बचने की मेरी चाह भी न थी। उस निर्मम दृष्टि को किसी भावी लाभ की आकांक्षा की प्रेरणा से मैं विवश ही सह रहा था।

इस प्रकार महर्षि मेरी आत्मा के ओछेपन, उसकी निर्बलता, मुझे इधर उधर प्रेरित करने वाले भावों के विचित्र जमघट आदि का पता लगाते जा रहे थे। पर मेरा विश्वास है कि वे यह भी

जानते थे कि मन को हराने वाली कैसी तीव्र उत्कंठा और उनके जैसे महात्माओ को खोजने की कैसी प्रबल जिज्ञासा मुझे साधारण जनता के मार्ग से कही दूर ले गई है।

हम दोनो के बीच मे जो गुप्त शक्ति की लहरें बह रही थी उनमे एक परिवर्तन साफ नज़र आने लगा। उनकी आँखों के पलक झपकते तक न थे, पर मेरी आँखे बारंबार मिच जाने लगी। मुझे स्पष्ट रूप से मालूम हुआ कि वे सचमुच मेरे मन को अपने से बाँध रहे है, वे मेरे दिल को इस प्रकार से उद्बुद्ध कर रहे है कि उसमे एक तरह की उज्ज्वल शान्ति विराजे और मै भी उन्ही के से शाश्वत आनन्द का स्वाद ले लूँ। इस अलौकिक शान्ति के बीच मे मुझे एक प्रकार की उदात्तता और हलकेपन का भान होने लगा। प्रतीत होता था कि काल-चक्र की गति रुक गई है। मेरा दिल चिताओ की ऐचातानी से एकदम मुक्त था। मुझे विश्वास होने लगा कि अब फिर कभी क्रोध की विषम ज्वाला, और अतृप्त वासनाओ की व्याकुलता मेरी शांति मे खलल नही पहुँचावेगी। मुझे अच्छी तरह अवगत होने लगा कि मानव को आगे बढ़ने की प्रेरणा देने वाली, हमेशा मस्तक ऊँचा किये उन्नति की ओर कदम बढ़ाने को मानव को सदा उकसाने वाली, अँधेरे की विकट घड़ियो में उसे दिलासा देकर धीरज बँधाने वाली वह वासना एक बिलकुल ही स्वाभाविक और सहज वासना है, वह एक सच्ची वासना है क्योकि उसके अस्तित्व का सार ही अच्छाई है। इस अनुत्तम शांति की भव्य घड़ी मे, जब कि घड़ी ही रुकी सी दीखती थी, जब अतीत के दुःख और प्रमाद सब अत्यंत तुच्छ दीखने लगे, मेरी क्षुद्र जीवन नदी का महर्षि के समुद्र जैसे गम्भीर मन मे लोप हो रहा था और मेरी बुद्धि अब पराकाष्ठा को पहुँच गयी थी। इन महात्मा की दृष्टि

मेरी अपवित्र दृष्टि के सामने अनाकांक्षित गुप्त जगत की निराली शोभा का उन्मीलन करने वाली कुंजी नहीं तो और क्या थी ?

कभी कभी मेरे मन में यह प्रश्न उठा था कि बिना बातचीत किये, बहुत सी तकलीफों को झेलते हुए भी, किसी प्रकार के दिल बहलाव की सामग्री के बिना, इतने शिष्य वर्षों तक महर्षि के पास क्यों कर रहते हैं ? अब मुझे धीरे धीरे मालूम हो रहा था—मनन के कारण नहीं वरन् एक बिजली जैसी ज्योति के चमक उठने से—कि इन शिष्यों को इतने दिनों से एक अमूल्य गहरा महत्त्वपूर्ण पर मूक प्रतिफल मिलता रहा है।

अब तक दालान में हर किसी पर मूर्छा सी विचित्र खामोशी छाई रही। अन्त को कोई चुपचाप उठ कर बाहर चला गया। उनके पीछे और एक, फिर एक एक करके सभी चले गये और दालान में महर्षि के साथ मैं ही अकेला रह गया।

इससे पहले कभी भी ऐसी बात मेरे देखने में नहीं आई थी। उनकी आँखों में एक प्रकार का परिवर्तन होने लगा। वे मिंचते मिंचते इतनी सूक्ष्म हो गईं मानों वे सुइयों की नोक हों। उनकी पलकों के बीच में उनकी पुतलियों की भव्य ज्योति अब चरम सीमा को पहुँच गई। सहसा मुझे भासने लगा कि मेरा शरीर गिरा सा जा रहा है, और हम दोनों अनन्त आकाश में हैं।

वह बहुत ही नाजुक घड़ी थी। मैं संकोच में पड़ गया। ठान लिया कि इस जादूगर की जादू से अवश्य छूटना होगा। संकल्प से कुछ शक्ति पैदा होती है और फिर मेरा शरीर-बोध मुझमें लौट आया। मैं फिर दालान में बैठा था।

वे मुझ से कुछ नहीं बोले। मैंने अपने विचारों को बटोर

लिया, घड़ी देखी, और चुपचाप उठ खड़ा हुआ। विदा लेने का समय आ पहुँचा।

सिर झुका कर मैंने विदा माँगी। मूक ही उन्होंने मेरी बात सुन ली। मैंने अपना एहसान जताया। फिर भी मूक भाव से ही उन्होंने सिर हिलाया।

चौखट पर कुछ देर के लिए मेरा मन डाँवाडोल होने लगा। फाटक के पास एक घंटी की आवाज सुनाई दी। मेरे जाने के लिए सवारी आ गई थी, फिर मैंने हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

यों मैं महर्षि से विदा हो ही गया।

१०

जादूगर तथा महात्मा

काल और देश, मानव के उद्धत शत्रु, फिर एक बार मुझे अपनी लेखनी को ज़ोर से चलाने पर विवश कर रहे हैं। मेरी कलम ने लिखने योग्य कुछ मुख्य बातों को लिपि-बद्ध कर दिया है। फिर भी मुझे लम्बी डग भरते हुए अपने भ्रमण को समाप्त करना था।

यदि राह का फ़क़ीर, जो कुछ हाथ की सफाई, कुछ टोना-टटका, कर सकता है जैसे सभी के दिल को खींच लेता है वैसे मेरे चित्त को भी स्वभावतः अपनी ओर खींच ले तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? लेकिन अंतर यही है कि मेरी उत्सुकता शीघ्र नष्ट होने वाली है, क्योंकि मानव के गंभीर विचार के योग्य जो मानव जीवन के गहरे रहस्य हैं, उन पर बेचारे जादूगर क्या रोशनी डाल सकेंगे? तब भी जादूगरों की उपस्थिति ही एक ऐसी बात है जो चन्द मिनट के लिए मेरे दिल को मोह लेती है। वह एक तरह का दिलबहलाव है। इसलिए कभी कभी मैं ऐसों की खोज मे भी निकल पड़ा हूँ।

भ्रमण में जिन थोड़े जादूगरों से मेरी भेंट हुई थी उनमें से कुछ की कहानी सुनाना अनुचित न होगा। वे आपस मे एक दूसरे से इतने भिन्न हैं कि उनके बारे में चन्द बातें जानना अरुचिकर नहीं हो सकता। मेरे स्मृतिपट पर एक ऐसे जादूगर की तसवीर अभी ताजी है। वह कोई बड़ा जादूगर न था।

मद्रास प्रान्त के उत्तर-पूर्व की ओर राजमहेन्द्री नाम का एक छोटा शहर है। वही उससे मेरी भेट हुई थी।

मै उस शहर की मटरगश्ती करने लगा तो एक ऐसी जगह पहुँच गया जहाँ की नरम बालू मे मेरे जूते धँसे जा रहे थे। वहाँ से चल कर मै एक तंग गली मे चलने लगा जो कि बाजार की ओर जाती थी। बहुत ही अधिक ऊमस हवा मे भरी हुई थी। बूढ़े लोग घर के दरवाजे खोल कर बैठे थे, बच्चे मस्त होकर धूल मे खेल कूद कर रहे थे। एक नंगधड़ंग लड़का घर से बाहर उछलते कूदते दौड़ पड़ा पर मुझ अजनबी को देख फिर घर मे छिप गया।

शहर के लम्बे बाजार मे अधेड़ उम्र के सौदागर अपनी छोटी दूकानो पर बैठे ग्राहको की ताक मे अपनी दाढ़ियाँ सुहला रहे थे। नाज के व्यापारी अपने माल के खुले ढेरो के पीछे बैठे हुए थे और मक्खियो का झुंड बेधड़क माल पर टूट कर भिनभिनाता था। कुछ देर बाद मैने अपने को एक मंदिर के कुछ भड़कीले विशाल भवन के सामने पाया। मेरे वहाँ पर पहुँचते ही वहाँ की धूल पर बैठा मर्दों और औरतों का एक छोटा झुंड मेरी नजर मे आया। वे मुझे देख कर अपनी जगह पर हिलने-डुलने लगे। भारत के कई शहरो मे गरीब, कोढ़ी और दीन मुफलिस प्रायः मंदिरो और स्टेशनो के पास ही यात्रियो के दिल खीच लेने के लिए अपना अड्डा जमा लेते है। यात्री लोग चुपचाप नंगे पाँव मंदिर मे पैठ रहे थे। क्या मै भी मंदिर मे घुस पड़ूँ और पुजारियो की पूजा आदि का विधान देख लूं? मैने इस बात पर खूब विचार किया और अन्दर न जाने का इरादा कर लिया।

यो ही बहुत दूर तक घूमते-घामते मै चल रहा था कि मुझे एक नौजवान दिखाई पड़ा। उसके दाहिने हाथ मे कुछ कपड़े की जिल्द वाली किताबे थी। जब हम दोनो मिले तो उसने

स्वभावतः अपना सिर उठाया; हमारी आँखें मिलीं और परिचय शुरू हुआ।

अपने पेशे के सिलसिले में ज़रूरत के अनुकूल आचार और परिपाटियों का, रस्म और रिवाजों का, पालना अथवा त्याग मैं खूब ही सीख गया था। जब कभी मेरे और मेरे उद्देश्य के बीच मे रस्म और रिवाजो से कोई बाधा पहुँचने की आशंका होती तो मै उनको ताक़ पर रख देता। मैं सफर को बहुत ही पसन्द करता हूँ, साधारण लोगों के जैसे सफर मुझे नहीं रुचते। इसलिए मेरी भारतवर्ष की मुसाफिरी अन्य विदेशियों की मुसाफिरी से भिन्न मालूम होगी।

वह नौजवान स्थानीय कालेज का एक छात्र निकला। वह अच्छी तरह संसार का सामान्य ज्ञान रखता प्रतीत होता था। अतएव वह मेरे दिल को खींच रहा था। यही नहीं, उसके चेहरे से अपनी पुरानी संस्कृति के प्रति उसका आदर और प्रेम साफ़ ही झलक रहा था। जब मैंने उसको बताया कि प्राचीन भारतीय संस्कृति का मैं कितना प्रेमी हूँ उसके आनन्द की कोई सीमा न रही। भारतवर्ष के अनेक नौजवान, प्रायः शहरो मे रहने वाले विद्यार्थी, राजनीति के शिकार बने हुए थे। देश के कोने कोने में राजनैतिक आंदोलन मचा हुआ था। तब भी उस नौजवान को ये बातें छू भी नहीं गई थीं।

आधा घंटा बीता। वह नौजवान मुझे एक खुली जगह की ओर ले चला। वहाँ पर एक भीड़ बड़ी उत्सुकता से खड़ी हुई किसी आदमी की वक्तृता सुन रही थी। वक्ता भीड़ के ऐन बीच में था। अपनी शक्ति भर ऊँची आवाज़ में वह कुछ बता रहा था। पूछने पर मालूम हुआ कि वह अपनी योग विभूतियों की डुग्गी पीट रहा है।

अपनी हाँकने वाला वह योगी खूब मजबूत था। उसका बदन गठा हुआ था, माथा लंबा और ऊँचा, विशाल मांसल भुजाएं, और उसकी कसी लँगोटी के कारण उभड़ने वाली तोंद, वड़ी ही विचित्र थी। उसने अपनी कमर पर बड़ा भारी कमरवन्द बांधा था। वह एक ढीला, लम्बा सफेद चोगा पहने था। इस आदमी की बातो मे आत्मश्लाघा का काफी मिश्रण था। जब काफी पैसे मिलने पर धूल से आम का पौधा उगाने की बात उसने कही तो औरो के साथ मैने भी कुछ पैसे उसके पैरो की ओर फेके।

उसने करामात शुरू की। मिट्टी के एक वड़े मटके को सामने रख कर उसी के पास स्वयं बैठ गया। मटके मे लाल और भूरे रंग की मिट्टी भरी हुई थी। उसने हमको आम की एक छोटी गुठली दिखा दी और उसको मिट्टी मे बो दिया। उसके बाद उसने अपनी झोली से एक बड़ा कपड़ा निकाल कर घड़े और अपने घुटने तथा जाँघो पर डाल लिया।

कई मिनट तक वह कुछ अजीब मंत्र पढ़ता रहा। बाद को कपड़ा हटा दिया गया। आम का छोटा अंकुर धीरे धीरे मिट्टी के तल से अपना सिर उठा रहा था।

फिर उसने पहले जैसे कपड़ा ढक दिया और बाँसुरी बजाने लगा। उससे एक अजीब आवाज़ निकलने लगी। शायद हमे उसको संगीत ही समझ लेना था। कुछ मिनट बाद उसने कपड़ा हटा कर हमे दिखा दिया कि आम का एक कोमल पौधा उगा हुआ है। इसी प्रकार कपड़े से ढाँकते और फिर हटाते, बीच बीच मे बाँसुरी बजाते उसने अन्त मे मिट्टी से नौ-दस अंगुल ऊँचा आम का एक पौधा खड़ा कर दिया। वह आम का वृक्ष तो

था नहीं, किन्तु उस छोटे पौधे की सब से ऊँची टहनी से एक सुनहला पका हुआ आम भी लटक रहा था।

विजय गर्व के साथ योगी बोल उठा—"देखो यह सब उसी आम की गुठली से उगा हुआ है।"

मेरे दिमाग की बनावट ही कुछ ऐसी है कि मै उसी क्षण उसकी बातो को स्वीकार नही कर सका। मुझे, न मालूम क्यो, प्रतीत होने लगा कि यह सारी बात इंद्रजाल का एक अच्छा उदाहरण है।

मेरे साथी ने अपनी राय ज़ाहिर की:

"साहब, ये तो योगी है। ऐसे लोग कई विचित्र बाते दिखा सकते है।"

लेकिन मुझे उसकी बातों से कुछ भी संतोष नहीं हुआ। इस मर्म के रहस्य को जानने की मैंने कोशिश की। मुझे पश्चिम के कुछ ऐसे ही लोग, और ऐसे लोगों की संस्थाएं, याद आयीं पर अभी मेरी कोई निश्चित राय क़ायम नही हुई थी।

योगी ने अपनी झोली आदि ले ली और अपने पुट्ठों के बल बैठ कर भीड़ को चले जाते हुए देखा।

अचानक मुझे एक बात सूझ गई। जब एकान्त हुआ, मैं योगी के निकट पहुँचा और पाँच रुपये का नोट दिखा कर विद्यार्थी से कहा:

"भाई, उससे कह दो कि इस जादू का रहस्य यदि वह बता दे तो ये रुपये मिलेंगे।"

उस नौजवान ने मेरी बातों का अनुवाद करके योगी को सुना दिया। योगी ने दिखावे भर को इनकार कर दी लेकिन उसकी आँखों में साफ़ ही लालच की झलक दिखाई दे रही थी।

" सात रुपये देंगे।"

तब भी योगी टस से मस न हुआ और मेरे सौदे पर कुछ तिरस्कार की बात कही।

"तो उससे कह दो कि हमें उसका रहस्य जानने की कोई उत्कंठा नहीं है। लो, हम चले जाते हैं।"

हम चलने लगे, पर मैं जानबूझ कर धीरे धीरे कदम बढ़ा रहा था। चन्द सेकण्ड नहीं गुज़रे होंगे कि योगी ने हमें पुकार कर बुलाया। उसने कहा :

"सौ रुपये दे तो मैं अपना मर्म बता दूँगा।"

" नहीं, सात रुपये, इससे अधिक नहीं आप अपना रहस्य अपने ही पास रखिए।"

हम फिर आगे चले। फिर एक पुकार। हम पीछे लौटे।

"योगी सात रुपये पर राज़ी है।"

योगी सारी करामात का मर्म समझाने लगा।

उसने अपनी थैली खोली और प्रदर्शन की सारी सामग्री बाहर निकाल कर रख दी। उसमें एक अंकुरित आम की गुठली और एक से एक बड़े आम के कई छोटे छोटे पौधे थे। सब से छोटे पौधे को दबाकर उसने खाली सीप के सम्पुट में रख दिया। वह छोटा पौधा इस प्रकार एक तंग जगह में बंद कर दिया गया और मिट्टी के तले गाड़ कर रक्खा गया। आम का अंकुर दिखाने के लिए जादूगर को सिर्फ अंगुलियाँ मिट्टी के तले गाड़कर धीरे से ढक्कन निकालना ही था। फिर वह छोटा पौधा अपना छोटा सिर उठा सकता था।

इससे कुछ लम्बे जो पौधे थे, उनको उसने अपने कटि-फेंट में छिपा रक्खा था। बीच बीच में कपड़ा ढाँकते और गाते बजाते,

मंत्रों का उच्चारण करते, वह कपड़ा उठा कर देखा करता था कि पौधा कैसे उग रहा है। याद रहे कि वह दूसरों को तो ऐसे देखने नहीं देता था। इस आडम्बर के बीच मे समय पाकर बड़ी फुर्ती से लम्बे पौधे को फेंट से निकाल कर, वह उसे मिट्टी में रोप देता था और छोटे पौधे को छिपा लेता था। इस प्रकार आम की गुठली से पौधे के उगने का भ्रम देखने वालो को हो जाता था।

पहले से इन बातों के बारे में मुझे कुछ अधिक ज्ञान अवश्य हुआ था पर मेरे मन में एक विचार उठने लगा। शायद योगियों के बारे मे जो कुछ ख्याल मेरे मन मे थे वे सब पतझड़ के पीले पत्तों के समान झड़ तो नही जायेंगे ?

मुझे अडयार नदी के किनारे रहने वाले योगी ब्रह्म की चेतावनी याद आने लगी। उन्होंने मुझसे साफ साफ कह दिया था कि तुच्छ श्रेणी के फ़कीर और नामधारी योगी गलियों में अपनी करामातें दिखाते रहते हैं पर वह सब टोना-टोटका के सिवा और कुछ नही है। ऐसे लोगों को देख कर ही पढ़े-लिखे लोग और नौजवान योग के नाम से चिढ़ने लगते है।

यह जो आधे घंटे में आम का पेड़ उगा सकता है सच्चा योगी कैसे बन सकता है ? यह तो अव्वल दर्जे का धोखेबाज़ निकला।

× × ×

फिर भी सच्ची जादू दिखाने वाले फ़कीर भी हैं। ऐसा ही एक फ़कीर जब बरहमपुर मे मै टिका हुआ था मेरे यहाँ आया था। पुरी मे भी एक अन्य ऐसे फ़कीर से मेरी भेंट हुई थी।

बरहमपुर ऐसा शहर है जहाँ पुराने विचार और हिंदू जीवन के गंदे रस्म और रिवाज अभी मज़बूती से कदम जमाये

"सात रुपये देंगे।"

तब भी योगी टस से मस न हुआ और मेरे सौदे पर कुछ तिरस्कार की बात कही।

"तो उससे कह दो कि हमें उसका रहस्य जानने की कोई उत्कंठा नहीं है। लो, हम चले जाते हैं।"

हम चलने लगे, पर मैं जानबूझ कर धीरे धीरे कदम बढ़ा रहा था। चन्द सेकण्ड नहीं गुजरे होंगे कि योगी ने हमें पुकार कर बुलाया। उसने कहा :

"सौ रुपये दें तो मैं अपना मर्म बता दूँगा।"

"नहीं, सात रुपये, इससे अधिक नहीं आप अपना रहस्य अपने ही पास रखिए।"

हम फिर आगे चले। फिर एक पुकार। हम पीछे लौटे।

"योगी सात रुपये पर राज़ी है।"

योगी सारी करामात का मर्म समझाने लगा।

उसने अपनी थैली खोली और प्रदर्शन की सारी सामग्री बाहर निकाल कर रख दी। उसमें एक अंकुरित आम की गुठली और एक से एक बड़े आम के कई छोटे छोटे पौधे थे। सब से छोटे पौधे को दबाकर उसने खाली सीप के सम्पुट में रख दिया। वह छोटा पौधा इस प्रकार एक तंग जगह में बंद कर दिया गया और मिट्टी के तले गाड़ कर रक्खा गया। आम का अंकुर दिखाने के लिए जादूगर को सिर्फ अंगुलियाँ मिट्टी के तले गाड़कर धीरे से ढक्कन निकालना ही था। फिर वह छोटा पौधा अपना छोटा सिर उठा सकता था।

इससे कुछ लम्बे जो पौधे थे, उनको उसने अपने कटि-फेंट में छिपा रक्खा था। बीच बीच में कपड़ा ढाँकते और गाते बजाते,

मंत्रों का उच्चारण करते, वह कपड़ा उठा कर देखा करता था कि पौधा कैसे उग रहा है। याद रहे कि वह दूसरों को तो ऐसे देखने नहीं देता था। इस आडम्वर के वीच मे समय पाकर वड़ी फुर्ती से लम्वे पौधे को फेंट से निकाल कर, वह उसे मिट्टी में रोप देता था और छोटे पौधे को छिपा लेता था। इस प्रकार आम की गुठली से पौधे के उगने का भ्रम देखने वालों को हो जाता था।

पहले से इन वातों के वारे में मुझे कुछ अधिक ज्ञान अवश्य हुआ था पर मेरे मन मे एक विचार उठने लगा। शायद योगियों के वारे मे जो कुछ ख्याल मेरे मन मे थे वे सव पतझड़ के पीले पत्तों के समान झड़ तो नहीं जायेंगे ?

मुझे अडयार नदी के किनारे रहने वाले योगी ब्रह्म की चेतावनी याद आने लगी। उन्होंने मुझसे साफ साफ कह दिया था कि तुच्छ श्रेणी के फकीर और नामधारी योगी गलियो मे अपनी करामातें दिखाते रहते हैं पर वह सव टोना-टोटका के सिवा और कुछ नहीं है। ऐसे लोगों को देख कर ही पढ़े-लिखे लोग और नौजवान योग के नाम से चिढ़ने लगते हैं।

यह जो आधे घंटे में आम का पेड़ उगा सकता है सच्चा योगी कैसे वन सकता है ? यह तो अव्वल दर्जे का धोखेवाज़ निकला।

× × ×

फिर भी सच्ची जादू दिखाने वाले फकीर भी हैं। ऐसा ही एक फकीर जव वरहमपुर मे मै टिका हुआ था मेरे यहाँ आया था। पुरी से भी एक अन्य ऐसे फकीर से मेरी भेंट हुई थी।

वरहमपुर ऐसा शहर है जहाँ पुराने विचार और हिंदू जीवन के गंदे रस्म और रिवाज अभी मजवूती से कदम जमाये

हुए हैं। मै एक डाकबंगले में टिका था। बंगले मे एक लम्बा और अच्छा बरामदा था। एक शाम को जब कि ऊमस के मारे भीतर दम घुट रहा था मै बरामदे मे बैठ गया और शीतल छाया का मज़ा लूटने लगा। बाग मे पौधे हर कहो उगे हुए थे और सारी जगह ऐसी सुन्दर थी मानो हरी मखमल का बिछौना बिछा हो। सूरज की किरणे उस सुन्दर फर्श पर अति कोमलता के साथ थिरक रही थी। मै अपनी आराम कुर्सी पर लेटे लेटे दृश्य की बहार लूट रहा था।

अहाते के निकट कोई अजनबी पहुँचता दिखाई दिया। उसके पाँव नगे थे और वह इतनी दबी चाल से चल रहा था कि उसकी आहट ही न मिलती थी। उसके हाथ मे बाँस की एक छोटी टोकरी थी। उसके लम्बे और काले बालो की उलझी हुई जटाएं लटक रही थी। उसकी आँखो मे एक प्रकार की लालिमा छाई हुई थी। वह और भी नज़दीक आया, टोकरी नीचे जमीन पर रख दी और माथा छू कर, हाथ जोड़े, नमस्कार किया। वह मुझ से एक खिचड़ी भाषा बोलने लगा जिसमे किसी देशी भाषा के साथ कुछ अस्पष्ट अंग्रेजी शब्द भी मिले हुए थे। शायद वह तेलुगू भाषा बोल रहा था। उसका अंग्रेजी-उच्चारण इतना भद्दा और भ्रष्ट था कि मुश्किल से मै दो तीन शब्द ही समझ पाया। मै भी उससे अंग्रेजी से बोलने लगा पर वह अंग्रेजी बहुत कम समझ पाता था। अतः उसने मेरा मतलब नही समझा। पर उसका मतलब समझने के लिए मेरा तेलुगू का ज्ञान इससे कही कम पर्य्याप्त था। थोड़ी देर तक आपस मे कुछ बोलने की चेष्टा करके हम दोनो जान गये कि दोनो एक दूसरे के लिए अस्पष्ट ध्वनियो के अतिरिक्त और कुछ बोल नही रहे है। आखिर उसने एक सांकेतिक भाषा का आविष्कार करने की चेष्टा की। उसके

इशारों और मौखिक चेष्टाओं से मैं समझ गया कि टोकरी में कोई खास चीज़ है जिसको मुझे अवश्य ही देखना चाहिए।

मैंने बँगले के भीतर जा कर एक नौकर को बुलाया जो कम से कम इतनी अंग्रेज़ी जानता था कि उस अजनबी के शब्दों का मेरे लिए कुछ अर्थ बतला सके। मैंने उसको आज्ञा दी कि वह यथाशक्ति अजनबी की बातों का मेरे लिए अनुवाद करे।

"वह साहब को कुछ जादू दिखाना चाहता है।"

"खैर, दिखावे। पर वह कितने पैसे चाहता है?"

"जो आपकी खुशी हो।"

"उससे कहो कि जादू शुरू कर दे।"

उस फकीर की भद्दी सूरत और अज्ञात वंश और जाति सभी एक साथ मेरे मन में घृणा का भाव पैदा कर रही थीं। उसके चेहरे के भावों की तह तक पहुँचना कोई सरल बात न थी। उससे एक प्रकार की मनहूसियत झलक रही थी, पर उस पर किसी प्रकार की बुराई का मुझे पता नहीं चला। इस व्यक्ति के चारों ओर अज्ञात शक्तियों और निराली विभूतियों का एक घेरा मुझे भासने लगा था।

उसने बरामदे की सीढ़ियों पर चढ़ने की कोई चेष्टा नहीं की। सामने बरगद का एक विशाल पेड़ था। उसकी दूर तक फैलने वाली शाखाएं मानों उसके सिर पर चंदोवे का काम दे रही थी। उसने अपनी बाँस की टोकरी से एक बड़े ज़हरीले बिच्छू को एक भद्दे लकड़ी के चिमटे से पकड़ कर निकाला।

वह कुत्सित प्राणी इधर-उधर भागने की चेष्टा करने लगा। झट फ़क़ीर ने उसके चारों ओर धूल में अपनी तर्जनी से एक रेखा खींची। बिच्छू उस चक्कर के भीतर ही दौड़ने लगा। जब

जब वह रेखा के पास आता तो हिचकने लगता, मानो कोई गैबी रुकावट उसकी राह मे डाल दी गई हो। चौंधियाने वाली धूप मे मै उस बिच्छू को अच्छी तरह देख सकता था।

इस विचित्र प्रदर्शन के दो-तीन मिनट बीतने पर अपना हाथ उठा कर मैंने फकीर को जता दिया कि मुझे प्रदर्शन पसंद आया है। फकीर ने बिच्छू को टोकरी मे रख लिया और फिर लोहे की दो तेज़, पतली और नुकीली कीले निकाली।

अपनी भयानक लाल लाल आँखे उसने कुछ बंद कर ली। प्रतीत हुआ कि दूसरी करामात दिखाने के ऐन मौके का वह इन्तज़ार कर रहा था। कुछ देर बाद उसने अपनी आँखे खोली, एक कील ली और उसको नोक की तरफ से सीधे अपने मुँह के भीतर रख लिया। फिर उसको जोर के साथ अपने गाल म भीतर की ओर से ऐसे चुभा लिया कि कील की अधिक भाग बाहर निकल आया। इससे उसका जी नही भरा और दूसरी कील लेकर इसी प्रकार दूसरे गाल से घुसेड़ ली। मेरे बदन मे सनसनी दौड़ गई। आश्चर्य और घृणा ने मिल कर मेरे दिल पर कब्ज़ा जमा लिया।

जब उसको जान पडा कि मै काफी देर तक देख चुका हूँ तो उसने दोनो कीले निकाल ली और सलाम किया। मै बरामदे से नीचे उतर कर उसके पास गया और गौर के साथ उसके चेहरे को परखा। एक दो खून की बूँदो और चमड़े में दो छोटे छिद्रो को छोड़ कर घाव बिलकुल ही भर गये थे।

फकीर ने मुझको इशारे से बताया कि मै फिर अपनी कुर्सी पर बैठ जाऊँ। मैने वैसा ही किया। वह दो तीन मिनट तक अपने को जरा संभालता रहा और मालूम होने लगा कि वह कोई अनोखी बात दिखाने की तैयारी मे है।

बड़ी शांति के साथ और इतनी उदासीनता के साथ मानों वह अपने कुरते के बटन खोलने जा रहा हो, फकीर का दाहिना हाथ उसकी आँखो के पास गया। उसने अपनी दाहिनी आँख के डेले को पकड़ा और धीरे धीरे उसको उसके गड्ढे से बाहर की ओर खींचने लगा।

मैं एकदम चकित हो गया।

कुछ सेकेण्ड के लिए वह रुका; फिर डेले को और भी बाहर की ओर खीचा, यहाँ तक कि वह उसके गाल पर ढीला हो कर मांसपेशियों और नसों के बल लटकने लगा।

इस खौफनाक घटना को देख कर मुझे मतली सी आने लगी। जब तक उसने अपने डेले को फिर से यथास्थान नहीं कर दिया मैं बड़ा ही बेचैन रहा।

मै अब काफी देख चुका था। उसे कुछ रुपये दे दिये। बिना आग्रह के मैंने नौकर के ज़रिये उससे पूछा कि इन भयानक बातों को वह क्यों कर करता है इसे समझायेगा या नहीं ?

"नही साहब। बाप अपने बेटे को ही बताता है। कुटुम्ब के लोग ही इसे जान पाते हैं।"

उसकी अनिच्छा से मुझे कोई व्याकुलता नहीं हुई। यह बात तो सर्जनों और डाक्टरो की तहकीकात के काबिल थी, मुझ भटकने वाले लेखक को इससे क्या काम।

फ़क़ीर ने सलाम करके विदा ली, अहाते के फाटक से गुज़रा और धूल भरी सड़क पर चलते चलते गायब हो गया।

× × ×

पुरी-जगन्नाथ में समुद्र की मृदुल हिलकोरियों का मधुर कलकल नाद मेरे कानों को बहुत ही प्यारा लगा। बंगाल की

खाड़ी से वहने वाले मंद पवन के झोकों की लोनी सुगंधि दिल को खूब ही भाई। एक दिन समुद्र तट पर यो ही घूमने गया। वहाँ लोगो की आमदरफ़ बहुत ही कम थी। आँखो के सामने सफेदी मिश्रित सुनहली वालू के विशाल पुलिन दूर के क्षितिज तक फैले हुए थे। दूर पर जल मरीचिकाओ की चमकने वालो लहरो मे से क्षितिज दिखाई देता था। समुद्र मानो गला हुआ नीलम था।

मैने जेब से घड़ी निकाली तो वह सूरज की चौंधियाने वाली धूप मे जगमगा उठी। मै कुछ देर तक घूम कर शहर की ओर चल पड़ा। वहाँ पर अनजाने ही एक ऐसी बात मुझे दिखाई दी जिसका कोई भी समाधान अभी तक मुझे मालूम नही हुआ है। वह मेरे जीवन मे एक स्थाई समस्या के रूप मे रह गई है।

वहाँ एक भीड़ के बीच मे एक आदमी खूब ही भड़कीला भेष बनाये खड़ा हुआ था। उसके साफे और पायजामे से वह मुसल-मान मालूम होता था। एक मुख्य हिंदू नगर मे, हिंदुओं के पवित्र नगर मे, मुसलमान का इतना रौब! समय का फेर था। मै इन्ही विचारो मे क्षण भर के लिए पड़ा रहा। इस आदमी को देखकर मेरे हौसले और मेरी उत्सुकता न जाने क्यो लहर मारने लगी। उसका एक पालतू बन्दर था। वह भी अजीव ढंग से तरह तरह के रंगदार कपड़े पहने हुए था। हर बार वह अपने मालिक की आज्ञाओ का बिना किसी प्रकार की भूलचूक के पालन करता था। मानव की बुद्धि से उसकी बुद्धि किसी प्रकार कम नही मालूम होती थी।

मुझे देखते ही उस आदमी ने अपने बंदर से कुछ कहा तो वंदर भीड़ मे से उछलते कूदते मेरे पास आया और एक गमगीन

आवाज़ करके उसने मुझे सलाम किया । उसने अपनी टोपी निकाली और, इस ढंग से मानों मुझसे भीख माँगता हो, टोपी मेरी ओर वढ़ा दी । मैंने उसमें एक चवन्नी फेंक दी । वंदर ने अदव के साथ सर झुकाकर सलाम किया और अपने मालिक के पास लौट गया ।

फिर उसने एक अजीव नाच दिखाया । आदमी एक ढंग का वाजा वजाने लगा । उसकी आवाज़ के अनुरूप वह वंदर कदम डालते नाचने लगा । ऊँचे प्राणियों में दिखाई देने वाली कलात्मक शोभा और ताल का ज्ञान उस वंदर में साफ़ ही दिखाई देता था ।

जव प्रदर्शन समाप्त हुआ, उस आदमी ने अपने अनुचर मुसलमान भाई से उर्दू में कुछ कहा और मेरे निकट आकर उसने मुझ से प्रार्थना की कि मै उसके साथ पीछे के तम्वू में दाखिल होऊँ क्योंकि उसका मालिक मुझे कुछ खास वातें दिखाना चाहता था ।

युवक तम्वू के वाहर ही भीड़ को रोकने के लिए खड़ा हो गया और मैं उसके उस्ताद के साथ तम्वू में दाखिल हुआ । भीतर प्रवेश करते ही मैंने देखा कि तम्वू में कोई छत न थी । चारों ओर चार खम्भे गाड़ दिये गये थे और उनके चारों ओर एक मोटा परदा वाँध दिया गया था । उस घेरे के वीचोवीच एक सादी और हलकी मेज़ रक्खी हुई थी ।

उस आदमी ने एक कपड़े की लपेट में से दो-दो अंगुल के कई खिलौने निकाले । उन खिलौनों के सिर रंगे मोम के वने थे और उनके पैर कुछ कड़े तिनकों के वने थे । पैरों के नीचे लोहे के चपटे टुकड़े ठोक दिये गये थे । उसने सभी खिलौनों को मेज़ पर खड़ा किया ।

खुद मेज से एक गज की दूरी पर खड़े होकर उर्दू मे वह उनको हुक्म देने लगा। एक या दो मिनट मे सबके सब खिलौने मेज पर उछलते कूदते नाचने लगे।

उसके हाथ मे एक छोटी छड़ी थी। वह अपनी छड़ी को इधर उधर फेरने लगा जैसे कि पश्चिमी संगीत मे ताल को जताने के लिए गायक लोग छड़ी फेरते रहते है। उस छड़ी की गति के बिलकुल अनुकूल वे रंगदार खिलौने नाच उठे।

वे मेज के चारो ओर उछलते कूदते नाच रहे थे किन्तु भूलकर भी नीचे गिरते न थे। शाम को चार बजे की खुली रोशनी मे मै यह खेल देख रहा था। मुझे अनुमान हुआ कि हो न हो इसमे कोई चालाकी है। अत मै मेज के बिलकुल ही निकट गया और गौर के साथ उसको परखा। अपने हाथो से मेज के ऊपर और नीचे भी टटोल कर देखा कि कही पतले तागे तो नही बँधे है; किन्तु मुझे किसी तागे का पता नही चला। मुझे शक होने लगा कि यह आदमी केवल जादूगर है या सच्चा फकीर?

तब उस आदमी ने इशारो से मुझे बता दिया कि मै मेज के किसी भाग को अपनी अँगुली से जता दूँ। मैने ऐसा ही किया तो सभी खिलौने ठीक उधर ही आ जाते थे जिधर मेरी उँगली का इशारा था। जिधर मै दिखाऊँ उधर ही वे आ कर नाचने लगे।

आखिर को उसने मुझे एक रुपया दिखाया और कुछ बोला तो मैने समझ लिया कि वह एक रुपया जेब से निकालने का मुझे इशारा कर रहा है। मैने एक रुपया निकाल कर मेज पर रख दिया। तुरन्त वह सिक्का नाचते हुए फकीर की ओर चलने लगा। जब वह मेज के छोर पर पहुँचा तो नीचे गिरा

और ढुलकते हुए उसके पाँवों के पास जाकर रुक गया। आदमी ने उसे उठाकर जेब में रख लिया और अदब के साथ सलाम किया।

मै किसी विचित्र इंद्रजाल का तमाशा देख रहा था या सच्चे योग की एक विभूति का प्रदर्शन, मै ही नहीं कह सकता। शायद मेरी शंकाएँ मेरे मुखमंडल पर अंकित हो रही थीं। उस आदमी ने अपने साथी को बुला लिया। नौजवान ने मुझसे पूछा कि आप और भी देखना चाहते हैं? मैंने हामी भरी तो उसने बाजा फ़कीर के हाथ मे दिया और मुझको बता दिया कि मै अपनी अँगूठी मेज़ पर रख दूँ। मैंने उसकी बात मान ली। वह अंगूठी अडयार नदी के तट पर रहने वाले योगी ब्रह्म की दी हुई थी। मै उस अंगूठी के सुनहले पंजे और हरी मणि की ओर ताक रहा था। फ़कीर कुछ पग पीछे हटा और उर्दू मे बारम्बार हुक्म देने लगा। हर एक आज्ञा पर अंगूठी आसमान की ओर उछलती और फिर गिर जाती। आदमी अपने बॉये हाथ में बाजा रखकर दाहिने हाथ से, अपनी आज्ञाओं के साथ साथ कुछ अनुकूल इशारे करने लगा। वह फिर बाजा बजाने लगा तो मेरी चकित दृष्टि के सामने मेरो अंगूठी बाजे के ताल के अनुरूप ही नाचने लगी। आदमी न तो अंगूठी के पास गया था न उसने उसको छुआ ही था। इस अजीब तमाशे का क्या अर्थ है, मेरी समझ में नहीं आया। एक जड़-अचेतन वस्तु से क्योंकर शाब्दिक आज्ञाओं का पालन करवाया जा सकता है, मेरी समझ के बाहर की बात थी। इतने विचित्र प्रकार से अचेतन वस्तु को बदल देना क्या संभव है?

जब दूसरे आदमी ने मेरी अंगूठी मुझे लौटा दी मैंने उसकी

गौर से परीक्षा की किन्तु उस पर किसी भी प्रकार के चिह्न नजर नही आये।

फिर फकीर ने एक रुई की लपेट मे से एक जंग चढ़ा हुआ लौह-दंड निकाला। वह चपटा था, ढाई इंच लंबा और आधा अंगुल चौड़ा। वह उसको मेज़ पर रक्खा ही चाहता था कि मैने नौजवान से प्रार्थना की कि एक बार मै उसको देख तो लूँ। उसने किसी प्रकार की आपत्ति नही उठायी। मैने उस लौह-दंड को ध्यानपूर्वक देखा। उस पर किसी प्रकार के तागे नही बंधे थे। मैने उसको लौटा दिया और मेज़ की ओर ताका लेकिन उस पर भी कोई ऐसी वस्तु नही थी जिससे शक पैदा हो जाय।

लौह-दंड मेज़ पर पड़ा हुआ था। फकीर ज़ोर से अपने दोनो हाथ मलने लगा। फिर अपना बदन कुछ झुकाकर उसने लौह-दंड के कुछ अंगुल ऊपर ही अपने दोनो हाथ रक्खे। मै ग़ौर से सारी बात देख रहा था। अपनी अंगुलियो को लौह-दंड की ओर करके फकीर ने धीरे से अपने हाथ पीछे खींच लिए। न मालूम कैसे वह लोहा ठीक हाथो की तरफ बढ़ने लगा। मै एकदम हैरान हो गया था। ठीक फकीर के हाथो के नीचे ही नीचे उनके चलने के अनुसार मेज़ पर लौह-दंड फिरने लगा।

आदमी के हाथ और लौह-दंड दोनों के बीच मे करीब पांच अंगुल का अन्तर था। मैने फिर उसे परखने की अनुमति मॉगी और वह मिल गयी। मैने तुरन्त उसको उठाकर देखा, पर कोई विशेप बात मेरे देखने मे नही आयी। वह पुराने लोहे का एक टुकड़ा मात्र था।

इसी प्रकार से फकीर ने एक छुरी के साथ भी प्रयोग करके दिखा दिया।

इन विचित्र प्रदर्शनों के बदले मैंने उसे अच्छा पुरस्कार दिया और उससे इन बातो के रहस्य के बारे में प्रश्न करने लगा। उसने मुझे यकीन दिलाया कि यह एक जरूरी बात है कि प्रयोग करने वाली हर चीज में लोहा किसी न किसी प्रकार मिला रहे। उसका कहना था कि लोहे में एक अनूठी चेतन शक्ति है। फकीर ने कहा कि वह इस काम में इतना निपुण बन चुका था कि ये ही करामातें सोने की चीज़ों से भी कर सकता है।

मन ही मन इस पहेली को बुझाने की मैंने कोशिश की। अचानक ही मुझे सूझ पड़ा कि बाल का एक फंदा बनाकर लौह-दंड को उसमें बाँध सकते हैं और इस प्रकार से फंदा भी अदृश्य रहेगा। लेकिन मुझे शीघ्र ही याद आ गया कि मेरी अंगूठी को नचाते समय फकीर कई कदम पीछे हटकर खड़ा हुआ था और वह दोनों हाथों से बाजा बजाता था। उसके साथी को भी इस कूट उपाय का दोषी नहीं बना सकता था, क्योंकि वह खिलौनों के नाचते समय खीमे के बाहर ही खड़ा हुआ था। तो भी इस रहस्य की और भी तहकीकात करने की चाह रखकर मैंने उस फकीर से उसकी तारीफ करते हुए कहा—"आप तो बड़े ही होशियार जादूगर हैं।"

उसके ललाट पर स्याही छा गयी। बड़े आवेग में आकर उसने मेरे कथन का विरोध किया। मैंने उसको फँसाने के वास्ते पूछा—"तब आप कौन हैं ?"

उसने अकड़ के साथ अपने साथी के ज़रिये मुझसे कहलाया—"मैं एक सच्चा फकीर हूँ।.. कला का अभ्यास करने वाला हूँ।"

उसने उर्दू मे किसी कला का नाम बताया पर मैं उसको ठीक ठीक नहीं सुन सका।

मैने इन वातो मे अपनी उत्कंठा प्रकट की। वड़ी उदासीनता के साथ फकीर ने कहा :

" जी हॉ, आपके भीड़ से आने से पहले ही मै इस वात को जान गया था। तभी तो आप से तम्वू मे पधारने की प्रार्थना की थी। "

" सचमुच ! "

" जी हॉ, भूल कर भी यह न सोचियेगा कि मै रुपये-पैसे के लालच से ये सारे तमाशे दिखा रहा हूँ। मुझे अपने उस्ताद के लिए रौज़ा वनवाने के वास्ते कुछ रकम की जरूरत है। मै इस काम मे दिल व जान से लग गया हूँ। जव तक रौजा पूरा वन नही जायगा तव तक मुझे आराम की नींद कहॉ ? "

मैने उससे प्रार्थना की कि वह अपने जीवन का और कुछ खुलासा कह सुनावे। वड़ी अनिच्छा के साथ उसने मेरी वात मान ली। कहने लगा :

" जव मै तेरह वरस का था अपने वालिद की भेड़-वकरी चराया करता था। एक रोज़ हमारे गांव मे एक दुवला पतला फ़कीर आ टपका। उसका वदन इतना पतला था कि देख कर डर लगता था। हड्डियॉ निकल आयी थी। उसने एक रात के लिए आराम करने के लिए स्थान और खाना मॉगा। मेरे वालिद ने मान लिया। वे हमेशा फकीरो का वड़ा अदव व इज्जत किया करते थे। लेकिन एक रात की जगह वह फकीर एक साल से कुछ अधिक ही हमारे यहॉ रहा। पर उससे हमारे घरवालो को ऐसी मुहव्वत पैदा हो गयी थी कि मेरे वालिद उसको अपने यहॉ रहने और मेहमानी स्वीकार करने के लिए वरावर मजवूर करते गये। वे वड़े विचित्र आदमी थे। चन्द रोज ही मे हमे पता लग गया

कि वे अजीब ताक़त रखते हैं। एक शाम को बात है। हम सब अपनी रूखी-सूखी खाने के लिए तैयार बैठे थे। फकीर ने मेरी ओर कई बार ग़ौर से ताका। मैं हैरान था कि इसका क्या मतलब है। दूसरे दिन सुबह मैं भेड़ें चरा रहा था कि वे मेरे नजदीक आकर बैठ गये और कहा—"बेटा, तुम फकीर बनना चाहते हो ?"

"मुझे इस बात का तनिक भी अनुमान न था कि फ़क़ीर की जिन्दगी कैसी होती है। उस जिन्दगी के निरालेपन के विचार से मेरी उमंग लहर मारने लगी। मैंने अपनी पसंदगी की बात कह दी। उन्होंने मेरे माँ-बाप से बातें की और तीन साल बाद आ कर मुझे साथ ले चलने की बात कह कर कहीं चल दिये। किस्मत की बात कि इसी बीच में मेरे माँ-बाप की मौत हो गयी। इसलिए जब मेरे उस्ताद आ गये तब उनके साथ चलने को मैं बिलकुल ही आज़ाद था। हम दोनों ने साथ साथ मुल्क में फेरा लगाया। इस सिलसिले में हमने कई गाँव और कस्बे देखे। मैं उनका चेला बन गया और वे मेरे उस्ताद। जो करामातें मैंने आपको अभी अभी दिखायी हैं वे सब की सब हक़ीक़त में उनकी हैं। उन्होंने ही मुझे यह सारी बातें सिखायी थीं।"

"क्या सहज में ये बातें सीखी जा सकती हैं ?"

फ़क़ीर हँस पड़ा।

"कई साल की कड़ी साधना से कोई भी इन पर कब्ज़ा पा सकता है।"

न जाने क्यों मुझे उसकी बातों में सच्चाई की गूँज सुनाई पड़ रही थी। वह ईमानदार मालूम होता था। स्वभाव से मैं बड़ा ही शक्की था, तब भी उसकी बाबत मैंने अपने शक्कीपन को ताक़ पर रख दिया।

मै उस खीमे से कुछ अनिश्चित और भ्रान्त हो कर वाहर निकला। मै एक अजीव चक्कर मे फँस गया था। सोचता था कि क्या मैंने कोई स्वप्न तो नही देखा है। सुखद पवन की हिलकोरियाँ मुझे हरा-भरा करने लगी। दूर के हाते पर अपनी शीतल छाया फैलाते हुए नारियल के पेड़ धीरे धीरे अपने पत्रमय मुकुट ठाट के साथ हिलाने लगे। ज्यो ज्यो मै पग आगे वढ़ाता जाता था त्यो त्यो वे करामातें मुझे अधिकाधिक अविश्वसनीय भासती जा रही थी। इच्छा होती थी कि फकीर के मत्थे किसी जादू-टोना करने की वात मढ़ दूँ, लेकिन न जाने क्यो उसके ईमान मे संदेह करना असंभव ही मालूम होता था। छुए बिना जो जड़ वस्तुओ को वह नचाने लगा था इसका मर्म क्यो कर समझाया जा सकता है ? प्राकृतिक नियमो मे कोई भी मनमाने परिवर्तन कैसे पैदा कर सकता है यह मेरी समझ के वाहर की वात मालूम होती थी। प्रकृति के नियमो के वारे मे जितना हम समझे हुए है शायद उतना पर्याप्त नही है।

पुरी-जगन्नाथ भारतवर्ष के पवित्र नगरो मे एक है। वहुत पुराने जमाने से ही यह शहर अपने मठ और मंदिरो के लिए विख्यात रहा है। जव मेले लगते है हजारो की तादाद मे यात्री इस नगर मे इकट्ठे हो जाते है और दो मील तक जगन्नाथ जी का महान रथ खीच कर अपने को कृतकृत्य मानते है। एक ऐसे मेले से मैने काफी लाभ उठाया और वहाँ पर आने वाले साधु महात्माओ का गहरा अध्ययन करने का मौका हाथ से जाने नही दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि पहले जो विरोधी और प्रतिकूल भाव मेरे मन पर अंकित हो गये थे उनमे काफी परिवर्तन हो गया।

एक घुमक्कड़ साधु, जो टूटी फूटी पर समझने लायक

अंग्रेज़ी का जानकार था, मिला। निकट परिचय प्राप्त होने पर अन्त में वह बड़ा ही सज्जन निकला। वह चालीस से कुछ कम आयु का था। अपने गले में वह कंठी पहने था और एक माला भी दीख पड़ती थी। उसने मुझको बताया कि वह यात्रा करते, क्षेत्र से क्षेत्र को देखते, एक मठ से दूसरे मठ का दर्शन करते देश का भ्रमण कर रहा था। तन ढकने के लिए एक ही कुर्ता लिए और भोजन के लिए भीख मॉगते पूरब और दक्षिण के सारे क्षेत्रों को देख लेने की उसकी बड़ी साध थी। मैंने भी उसको कुछ भिक्षा दी। खुश हो कर उसने एक छोटी तामिल भाषा की किताब दिखाई। उसके पन्ने बहुत ही पुराने होने के कारण पीले पड़ गये थे। मालूम होता था कि वह एक सौ वर्ष की पुरानी होगी। उसमें विचित्र लकड़ी के ठप्पे भरे पड़े थे। धीरे धीरे सावधानी के साथ उसने दो तसवीरें निकाल कर मुझे दे दीं।

मैं उसको पंडित साधू कह कर पुकारूँगा। वह बहुत ही दिल-चस्प आदमी था। एक दिन सुबह की बात है। मैं रेत पर बैठकर उमर खय्याम के ग्रंथ के सुन्दर पन्ने उलट रहा था। हमेशा ही उनकी रूबाइयां मेरे दिल को मोह लेती हैं। पर जिस दिन से एक नौजवान फारसी लेखक ने उनके गूढ़ार्थ से मुझे वाकिफ करा दिया था तभी से उस अमूल्य ग्रंथ की रूबाइयों को मादक मदिरा को ढालते ढालते मेरा जी अब तक नहीं अघाया है। इस मनोहारिणी रचना के नशे में जब मैं गोता लगाता हूँ तो मुझे दुनियाँ का फिर होश कहाँ ? शायद यही वजह थी कि बालू पर चल कर मेरी ही ओर जो व्यक्ति आ रहा था उसका मुझको कुछ भी ख्याल नहीं रहा। जब मैंने उस किताब की अमृतमय पंक्तियों से आँखें उठायीं तब कहीं मुझे पता चला कि एक आकस्मिक आगन्तुक मेरे निकट ही पलथी मारे बैठा है।

वह गेरुआ वस्त्र पहने हुए था। ज़मीन पर उसने अपना दंड रख दिया। उसके पास एक छोटा बंडल रक्खा था। उस बंडल मे से कुछ किताबों के कोने झाँकते हुए मुझे दिखायी दिये।

बहुत अच्छी अंग्रेजी मे अपना परिचय देते हुए आगन्तुक महाशय ने कहा—"क्षमा कीजियेगा। मै भी आपके साहित्य का एक प्रेमी हूँ।" उन्होंने बंडल खोलते खोलते कहा—"बुरा न मानिये, आपसे बातचीत किये बिना मुझसे रहा नही गया।"

मुस्कराते हुए मै बोला—"बुरा मानूँगा? कभी नही।"

"आप एक यात्री है?"

"कोरा यात्री ही तो नही हूँ।"

हठ पूर्वक उन्होंने कहा—"पर आप इस मुल्क मे बहुत दिन नही रहे है।"

मैने उनकी बात मान ली।

उन्होंने अपना बंडल खोल कर कपड़े की जिल्द वाली तीन किताबे दिखाई। उनके कोने फटे थे, जिल्द धुँधली थी। बंडल मे कुछ परचे भी लपेटे हुए रखे थे। कुछ सादा कागज़ भी साथ था।

उन्होंने कहा—"देखिये साहब, यह 'मेकाले के लेख' है। कैसी ऊँची श्रेणी की शैली है। बड़े ही बुद्धिशाली मालूम होते है; पर कैसे 'जड़वादी' है।"

मैने सोचा कि अन्त मे मै एक नौसिखिया साहित्य समालोचक की सन्निधि मे पहुँच गया।

"यह चार्ल्स डिकेन्स की 'दो शहरो की कहानी' है। कैसी उत्तम भावना है, आँखो मे आँसू भर देने वाली कैसी करुणा है।"

इसके बाद उस आदमी ने जल्दी अपनी इस निधि की गठरी बाँध ली और फिर मुझसे कहने लगे :

"यदि गुस्ताखी माफ हो, मैं उस पुस्तक का नाम जान सकता हूँ जो आप के हाथ मे है ?"

"यह तो खय्याम की एक किताब है।"

"मिस्टर खय्याम ? मैंने तो उनके बारे में नहीं सुना। क्या वे आप के यहाँ के उपन्यास लेखकों में एक हैं ?"

उनका प्रश्न सुन कर मुझे हँसी आ गई।

"नहीं वे एक कवि है।"

फिर थोड़ी देर तक हम दोनों मौन रहे।

मै बोल उठा—"आपकी उत्सुकता बहुत ही अधिक है। क्या आप कुछ भिक्षा चाहते हैं ?"

उन्होने धीरे धीरे जवाब दिया—"मैं पैसे का भूखा नहीं हूँ। मेरी वास्तविक उम्मीद, मेरी असली इच्छा है कि आप से मुझे एक किताब मिल जाय। देखते नही मेरे सिर पर पढ़ने की धुन सवार है।"

"अच्छा, आपको एक किताब जरूर मिल जायगी। जब मैं बंगले पर लौटूँगा आप मेरे साथ हो लेना और विक्टोरियन युग की कोई न कोई ऐसी किताब आपको मिल हो जायगी जिसको पढ़ कर आप की तबियत फड़क उठेगी।"

"आपका बड़ा ही एहसानमंद हूँ।"

"एक क्षण और ठहरिए। किताब देने से पहले मैं भी आप से कुछ जानना चाहता हूँ। आपकी गठरी में वह तीसरी पुस्तक कौन सी है ?"

" वह कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिसमें आपका दिल लगे।"

" हो सकता है, पर मैं उसका नाम जानना चाहता हूँ।"

" वह बतलाने के लायक नहीं है ।"

" क्या आप अब भी मुझसे किताब पाने की आशा रखते है ?"

आगन्तुक कुछ डर गये । बोले :

" आप मुझे मजबूर करते है इसलिये बतलाना पड़ता है। यह एक हिंदू समालोचक की लिखी किताब है। नाम है 'धन-लिप्सा और जड अनात्मवाद : पश्चिम की एक झाँकी'।"

मै ऊपर से कुछ चकित हुआ सा दिखलायी पड़ा।

मै बोला—" ओफ ! आप ऐसे साहित्य के प्रेमी है ?"

वे गिडगिड़ाने लगे और दीन स्वर मे बोले—"शहर के एक रईस ने यह किताब दी है।"

" जरा मै भी तो देखूँ।"

इस पुरानी जिल्द के पन्ने मैंने उलटे और अध्यायों के नाम पढ़े। कहीं कहीं एक दो पन्ने भी पढ़ लिये। किसी बंगाली बाबू ने यह किताब एक निंदात्मक शैली मे लिखी थी और कलकत्ते मे शायद लेखक के ही पैसे से इसका प्रकाशन हुआ था। उनके नाम के पीछे कई हरफ वाली उपाधि थी। उसी के बूते पर, विषय का प्रत्यक्ष ज्ञान रखे बगैर ही इस लेखक ने यूरोप और अमेरिका के ऐसे ऐसे चित्र खीचे थे जिनको पढ़ कर भ्रम होता था कि ये देश एक नये प्रकार के नरक है, या वे यंत्रणा और अंधकार से भरे हुए है अथवा वे देश ऐसे लोगो से आबाद है जिनमे एक ओर तो पीडित और सताये हुए मज़दूर और दूसरी ओर

बेहयाई के तुच्छ विलास प्रमोद में डूबे हुए आरामतलब और धन-लोलुप हैं।

कुछ भी टीका टिप्पणी के बिना मैंने पुस्तक लौटा दी। उन्हों ने उसको जल्दी के साथ बंडल में रख लिया और अपने परचे मुझे दिखाने लगे।

उन्होंने मुझ से कहा—"यह एक भारतीय साधु की संक्षिप्त जीवनी है, पर यह बंगला में छपी है।"

मैंने उनसे पूछा—" अच्छा बताइये तो सही इस 'धनलिप्सा' वाली किताब के विचारों से आप सहमत हैं ? "

"हाँ, एक हद तक। मेरी इच्छा है कि एक दिन मैं पश्चिम की यात्रा करूँ। तब सारी बातें अपनी आँखो से देख लूँगा।"

"आप वहाँ पर क्या करेंगे ?"

वहाँ की जनता के अज्ञान को दूर करने, उनके हृदयो को ज्ञान के आलोक से चमकाने के लिए मैं व्याख्यान दूँगा। महा-पुरुष स्वामी विवेकानन्द जी ने आपके शहरों में जादू फेरने वाले व्याख्यान सुनाये नही थे। मै भी उन्ही का अनुसरण करूँगा। बदकिस्मती है कि विवेकानन्द जी इतनी छोटी उम्र में स्वर्गवासी हो गये। उनके साथ ही कैसी प्रभावोत्पादक भाषा चली गयी ! हाय !"

मैंने कहा—"वास्तव में आप एक विचित्र साधु हैं।"

उन्होंने अपनी तर्जनी नाक पर लगायी और ज्ञानी बनकर कहने लगे :

"वह विश्वात्मा नटवर रंग-स्थल सजाता है। आप के विश्व प्रसिद्ध शेक्सपियर को अमर रचनाओं में प्रवेश तथा प्रस्थान करने वाले नाटकीय पात्रों के सिवा हम है ही कौन !"

× × × ×

मुझे निश्चय हो गया था कि भारतवर्ष के महात्माओं मे अनेक प्रकार के अजीव लोग शामिल है। बहुतेरे तो प्रायः अच्छे और सीधे होते हैं, पर ज्ञान की दृष्टि से वे बहुत ही कोरे उतरते है। अन्य लोग या तो जीवन से तङ्ग आये हुए या आराम-तलब आदमी निकलते है। इनमे से एक ने मेरे निकट पहुँच कर बख्शीश माँगी। उसके वालो की जटाये बन गयी थी और वह बदन पर भस्म रमाए हुए था। उसके बदमाशो के से चेहरे को देख कर मुझे घृणा पैदा हुई। मैने उसकी माँग इसी विचार से पूरी नही की कि देखूँ क्या नतीजा निकलता है। प्रतिरोध से उसकी जिद और भी बढ़ी। अन्त को उसने एक तजवीज सोची। उसने मुझको अपनी तुलसी की माला बेचने की बात छेड दी। माला का उसने जो दाम बताया उससे मालूम होता था कि उसकी दृष्टि मे वह रद्दी माला बहुत महत्व रखती थी। मैने साफ इनकार किया और उससे हट जाने के लिए कहा।

इनसे कुछ कम वे लोग हैं जो खुले आम अपने बदन पर जुल्म करने की बेवकूफी करते है। कोई तो तब तक अपना हाथ आसमान मे उठाए रखते है जब तक कि उनके नख एक हाथ लम्बे न हो जाँय। दूसरे वे है जो बरसों तक एक ही पाँव पर खड़े रहते है। इन दोनो प्रकार के लोगो को इन जुगुप्साजनक प्रदर्शनो से क्या हासिल होता होगा कुछ समझ मे नही आता। हाँ, उनके भिक्षापात्र मे यदि कुछ पैसे इकट्ठे हो तो हो। इससे बढ़ कर उनको और क्या मिलता होगा यह कहना कठिन है।

बहुत ही कम तादाद मे वे लोग होते है जो खुले आम झाड़फूँक करते है और मूठ चलाते है। ये लोग प्रायः गाँवो मे रहा करते है। चन्द पैसो के लिए वे किसी के शत्रु को चोट पहुँचाते है, अनचाही बहू को इस दुनिया से ही अलग कर देते

हैं, किसी के प्रतिद्वन्दी को अजीब बीमारी का शिकार बना कर उसके मार्ग को उसकी लालसाओं की पूर्त्ति के लिए एकदम सीधा बना देते हैं। इन कुत्सित ओझाओं के बारे में बहुत ही भयानक और आश्चर्यजनक कहानियाँ सुनने में आती है। ऐसे लोग भी अपने को योगी बताने में अपना बड़प्पन मानते है।

बाकी रही कुछ इने गिने सभ्य संस्कृत महात्माओ की बात। वे वर्षो तक अपनी इच्छा से चित्त को व्यग्र करने वाली एक कठिन जिज्ञासा के पीछे पड़ जाते हैं और संगठित मानव समाज से अपने को बाह्य समझने लगते हैं। इसी कारण से वे असीम कठिनाइयों का सहर्ष सामना करते हुए सत्य के अन्वेषक बनते हैं। उनमें उचित या अनुचित चाहे जो भी हो एक प्रेरणा, एक स्वाभाविक विश्वास है जो उनको दृढ़ता के साथ बता देता है कि सत्य की प्राप्ति होने पर वे अमर आनन्द के भागी बनेंगे। हिन्दुस्तानी जिस पुरानी मृतप्राय लीक के अनुसार धार्मिक और संसार से मुँह मोड़ने वाली पद्धति से इस खोज मे लग जाते है उसका चाहे हम विरोध भले ही करें पर जिस प्रेरणा के वश होकर वे वैसा करते है उसकी ओर हम अपनी उँगली शायद ही उठा सकेंगे।

पश्चिम का कोई भी साधारण व्यक्ति ऐसी खोज के लिए समय ही नहीं पाता। इन बातो के बारे में पाश्चात्य देशों मे जो उदासीनता फैली हुई है उसकी छत्रछाया को स्वीकार करने मे वह बड़ी सुविधा से दलीलें पेश कर सकता है। वह खूब जानता है कि यदि वह भूल रहा है तो उस भूल में एक महान भूखंड के सारे निवासी उसी के साथ हैं। यह शक्की ज़माना ऐसी चीजों के पीछे बड़ी व्यग्रता के साथ अपनी सारी ताकत को खर्च कर रहा है जो एक क्षण भर के उत्तम विचार

के सामने बहुत ही नाचीज़ ठहरेगे। फलतः सत्य की जिज्ञासा को वह किसी काम की नही समझता। नमालूम क्योंकर हमे भूल कर भी यह भान नही होता कि वे लोग जिन्होने आज अपनी सारी जिदगी जीवन का सच्चा मर्म जानने के पीछे दिल व जान से बाजी लगायी है, शायद वे ही लोग, उन लोगो की अपेक्षा जिन्होने कितनी ही संसारी चीजो के पीछे अपनी ताकत लगाकर सत्य की खोज करने में शायद ही मन दिया हो इस विनश्वर संसार की समस्याओं के बारे मे भी अधिक सच्चे विचार इख्तियार कर सकते है।

एक बार एक पश्चिम का निवासी मुझसे कुछ भिन्न ही प्रयोजन रखकर पंजाब आया था। पर वहाँ कुछ ऐसे रोगियो से उसकी भेंट हुई थी कि जिसके कारण वह एक ऐसे मार्ग पर चलने लगा कि अन्त को उसे अपने निर्दिष्ट प्रयोजन को भुलाने की भी नौबत आ गयी। शाह सिकन्दर अपने राज्य की सीमा को बेहद बढ़ाने की और अनेक राज्यो को अपने अधिकार मे कर लेने की लालसा रखते थे। वह एक सिपाही होकर आये थे पर प्रतीत होने लगा था कि वे शायद एक दार्शनिक होकर अपने जीवन को समाप्त करेगे।

सिकदर शाह जब अपने रथ को हिमावृत पर्वत प्रदेशो और सूखे रेगिस्तानो से लेकर घर की ओर चलाने लगे तब उनके मन मे कौन कौन से विचार दौड़े होगे यह बात बार बार मेरे दिमाग़ मे उठी है। यह सोचना कोई कठिन बात नही है कि जिन ऋषि-मुनियों का जादू उन पर फिर गया था, जिन योगिवरो से बहुत ही उत्सुकता के साथ दर्शन के गूढ़ रहस्यो के विषय मे उन्होने पूछ-ताछ की थी, उन ऋषि-मुनियो के प्रभाव ने मेसिडोनिया के उस बादशाह के मन पर जरूर असर डाला होगा, और यदि

वे उन्हीं योगियों के बीच में वे और कुछ दिन रह पाते तो जरूर अपनी नई नीतियों से उन्होंने पश्चिम को चकित कर दिया होता।

हिन्दुस्तान में जो कुछ आदर्शवाद और आध्यात्मिकता बाकी रह गई है उसकी ज्योति को अपने में प्रज्वलित रखने वाले कुछ महात्मा अब भी देखे जा सकते हैं। हो सकता है कि नामधारी योगियों की तादाद कहीं अधिक हो। यदि ऐसा ही हो तो इसका कारण हमेशा अवनति की ओर ले चलने वाले समय के अवश्य-म्भावी फेर की महिमा ही है। इसी से हमको कभी भी बहुत ही उज्ज्वल तारों के समान चमकने वाले सच्चे योगिवरों की उप-स्थिति की बात नहीं भूलना चाहिए।

हमको कभी नहीं भूलना चाहिए कि इसी कारण और उज्ज्वल होकर चमकने वाले योगिवर हिन्दुस्तान में अब भी मौजूद हैं। योगियों में इतने भिन्न प्रकार के लोग हैं कि किसको भला कहें और किसको बुरा, यह बड़ी ही कठिन बात हो जाती है। ऐसी सूरत में चन्द योगियों की बात से सारे योगियों को स्तुत्य या निंद्य समझ बैठना मूर्खता के सिवा और क्या होगा? मैं उन जोशीले नौजवानों की बातों को अच्छी तरह समझ सकता हूं जो आवेश में आकर कह बैठते हैं कि इन दूसरों के खून को चूसने वाले योगियों का एकदम अन्त कर देने से भारत का कल्याण जरूर होगा। साथ ही मैं उन साधु-सज्जनों की, जो उम्र में कुछ बड़े हुए और अधिक प्रशांत शहरों में रहते हैं, बात भी खूब समझ सकता हूँ जिनका यह विचार है कि यदि हिंदू समाज में उनके साधु-सन्तों के लिए जगह न रही तो फिर उसके नेस्त-नाबूद होने में देर ही क्या लगेगी?

यह प्रश्न भारत के लिए और कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। आर्थिक कठिनाइयों के कारण भारत में सभी चीजों का मूल्य

बढ़ता जा रहा है। देश की आर्थिक स्थिति मे महात्मा लोग किसी काम के नही दीखते है। अशिक्षित और अपढ व्यक्ति साधुओ का वेप पहने झुंड के झुंड गॉवो का भ्रमण करते और कही कही शहरो के धार्मिक मेलाओ मे भी दर्शन देते रहते है। वे तो बच्चो के लिये हौआ बन जाते हैं। प्राय' वे सरकश और बदमाश होते है और लोगो को भीख के लिए तंग कर देते है।

वे समाज के लिए बोझ मात्र है क्योंकि उनका पोषण करने के बदले उनसे समाज को कुछ भी प्रतिफल नही मिलता। लेकिन ऐसे भी कुछ लोग अवश्य है जिन्होने ईश्वर को और सत्य की खोज के पीछे अच्छे अच्छे ओहदो और जायदादो को भी लात मार दी है। ऐसे लोग कही भी जायॅ, उनकी संगति से लोग तर जाते है। उनकी हमेशा यह चेष्टा रहती है कि अपने पास आये हुए व्यक्तियो को पार लगा दें। यदि सच्चरित्रता का कोई मूल्य हो तो उनकी अपने और दूसरो के उद्धार करने की चेष्टा, समाज से जो रूखी-सूखी उनको मिल जाती है, उसके बराबर मूल्य अवश्य रखती है।

गरज़ यह कि यदि किसी के चरित्र का सच्चा अंदाज़ा लगाना है तो चाहे वह धूर्त धर्मध्वजी हो या घूमने वाला महात्मा, उसके बाह्य रूप को एकदम ताक पर रख कर विचारना पड़ेगा।

× × ×

रात का काला पर्दा पृथ्वी की विशाल भुजाओ पर पड़ गया और मै पुराने कलकत्ते की भीड़ से भरी तंग गलियो मे अपनी राह खोज रहा था।

मेरे मन पर सवेरे की विषाद भरी घटना की छाया अब भी पड़ी हुई थी। हम जिस गाड़ी से हावड़ा स्टेशन पर पहुॅचे थे

उसका इंजन अपने साथ एक खौफनाक बोझ ले आया था। रेल को कई मील तक एक घने जंगल से होकर जाना पड़ता है। उस जंगल में चीते आदि मस्त घूमते रहते हैं। रात के अँधेरे में इंजन से एक बनैले जानवर ने टक्कर खाई थी। तुरन्त उसके प्राण पखेरू उड़ गये। इंजन उस जानवर की छिन्न भिन्न लाश को स्टेशन पर ले आया था। उसका कटा हुआ मांस इंजन के लोहमय ढाँचे से मुश्किल से अलग होता था।

लेकिन कलकत्ता पहुँचाने वाली गाड़ी में अपनी खोज के लिए उपयोगी एक और सूत्र मुझे मिल गया। हिन्दुस्तान की कई खास लाइनों की गाड़ियों की भांति वह भी खचाखच भरी हुई थी। जिस डिब्बे मे मैंने खुशकिस्मती से एक सीट अपने लिए रिजर्व करा ली थी उसमें कई प्रकार के लोग थे। वे लोग अपने कारोबार की बाबत इतने खुले तौर पर बोल रहे थे कि जल्द ही मुझे मालूम हो गया कि वे कौन हैं। उनमे एक शरीफ मुसलमान था। वह एक लंबा और काला रेशम का कोट पहने हुए था जिसमें गले के पास एक बटन लगा था। उसके सिर पर एक बेल-बूटे वाली कालो टोपी थी, सफेद ढीला पायजामा और पाँवों में लाल और हरा कामदार जूता उसकी पोशाक की शोभा बढ़ा रहे थे। पश्चिम भारत का एक मराठा और अपनी बिरादरी के समान ही लेनदेन का कारोबार करने वाला, सुनहली पगड़ी पहने हुए, एक मारवाड़ी महाजन, दक्षिण के एक मोटे तगड़े वकील साहब ये ही हमारे डिब्बे की शरण में आये थे। वे सब के सब धनी थे क्योकि उनके नौकर बार बार, जहाँ कहीं गाड़ी रुक जाती, थर्ड क्लास से झपट कर अपने मालिकों को आराम पहुँचाते थे।

मुसलमान ने एक बार मेरी ओर ताका, फिर आँखें बन्द

करके निद्रा की शून्यता मे लीन हो गया। मराठे ने मारवाड़ी के साथ बात करने मे अपने को लगाया। वकील साहब ने सब से अन्त मे गाड़ी मे प्रवेश किया था। उनको अभी आराम के साथ बैठना था।

मेरा दिल बातचीत के लिए लालायित हो रहा था, लेकिन मुझे ऐसा कोई भी नही मिला जिससे मै बात करता। पूरब और पश्चिम के बीच मे जो एक अदृश्य यवनिका है शायद उसी के कारण मैं सबो से छँटा हुआ मालूम होता था। इसलिए जब उस ब्राह्मण वकील ने एक किताब निकाली जिसका नाम 'रामकृष्ण की जीवनी' अँग्रेजी मे इतने मोटे अक्षरो मे छपा हुआ था कि मेरी आँख को दूर से भी दिखलाई पड़ा, तो मेरी खुशी का ठिकाना नही रहा। मैंने उनको बातो मे लगा लिया। मुझे याद आई कि किसी ने मुझसे कहा था कि रामकृष्णदेव आध्यात्मिक गुरुओ मे, ऋषियो मे, आखिरी थे। इसी विषय पर मै अपने साथी से बाते करने लगा और देखा कि वे भी कुछ बातचीत के लिए उत्सुक थे। हम दार्शनिक वाद-विवाद की एकदम ऊँचाई तक पहुँचने पर फिर भारतीय जीवन के और निकटतर साधारण पहलुओ पर भी विचार करने लग गये।

जब कभी वे ऋषियो का नाम लेते थे, भक्ति और श्रद्धा के कारण उनका गला भर आता और उनकी आँखें चमक उठती। रामकृष्णदेव के प्रति उनको सच्ची श्रद्धा और भक्ति मे तनिक भी शंका नही हो सकती। दो ही घंटे मे मुझे मालूम हो गया कि उनके गुरुदेव, रामकृष्णदेव के बचे हुए निकटतम तीन शिष्यो मे एक है। उनकी उम्र करीब अस्सी वर्ष की होगी और वे अन्य साधुओ की भाँति किसी निर्जन स्थान मे नही बल्कि कलकत्ते के हिन्दुओ की बस्ती के बीच मे ही रहते है।

मास्टर महाशय

मैंने उनका पता-ठिकाना पूछा तो सहज ही मिल गया।

वकील साहब ने कहा—"उनसे परिचय पाने को तुम्हारी पक्की चाह है तो यही काफी है, और किसी प्रकार के परिचय-पत्र आदि की कोई जरूरत नहीं है।"

इस प्रकार मैं कलकत्ता पहुँच गया और रामकृष्णदेव के बूढ़े शिष्य मास्टर महाशय की खोज मे चल पड़ा। सड़क से लगे हुए एक खुले आँगन में से होकर मै एक ऊँची सोपान-पंक्ति पर पहुँचा। उसको तय कर एक विशाल पर अस्तव्यस्त पुराने मकान में प्रवेश किया। थोड़ी देर में मैने अपने को एक छोटे कमरे में पाया। उसका एक दरवाजा खुलो छत की ओर था। कमरे में दो दीवारों से लगे हुए कुछ सोफे रक्खे हुए थे।

लैम्प और पुस्तकों तथा कागज़ों को छोड़ उस कमरे में और कोई सामान न था। किसी युवक ने मुझसे थोड़ी देर तक मास्टर महाशय के लिए इंतज़ार करने के लिए कहा क्योंकि उस समय वे नीचे की मंजिल में थे।

दस मिनट बीते। मैंने किसी के ऊपर चलने की आहट पाई। तुरन्त मुझ में एक अजीब प्रकार की सनसनी फैली। अचानक मेरे मन में यह विचार दौड़ गया कि आने वाले व्यक्ति ने अपने सारे विचार मुझ पर लगा दिए हैं। आहट और भी समीप आती जाती थी। जब आखिर को—क्योंकि वे बहुत ही धीमी चाल से चलते थे—उन्होंने कमरे में प्रवेश किया तो उनको अपना परिचय देने की और कोई जरूरत नहीं हुई। मालूम होता था कि अंजील मे वर्णित कोई पुराने पूज्य ऋषि फिर अतीत की गोद से उठ कर मुझे अनुगृहीत करने के लिए स्थूल शरीर धारण करके आ गये है। उनका सिर बालों से रहित, सफेद, और नाभि तक लटकने वाली लम्बी दाढ़ी, सफेद मूँछें, गंभीर

चितवन तथा विशाल और मननशील नेत्र थे। जिनका ऐसा प्रभावशाली दर्शन था, जिनकी भुजाएं करीब अस्सी वर्ष के सांसारिक जीवन के भार से कुछ झुक चली थी वे दिव्य पुरुष मास्टर महाशय के सिवा और कौन हो सकते थे।

उन्होने चौकी पर अपना आसन ग्रहण किया और मेरी ओर ताकने लगे। उनकी उस गंभीर और संयमशील उपस्थिति मे बारंबार मेरी आत्मा को आवृत करने वाली ओछी बाते करने की इच्छा की, कोई भी हँसी मज़ाक की, किसी कठोर शक्कीपन और निराशा की बातो की, छाया तक नहीं हो सकती थी। उनका चरित्र और ईश्वर पर पूर्ण श्रद्धा, आचरण और शील की उत्तमता, उनके चेहरे पर साफ अंकित थी।

उन्होने अच्छी अंग्रेजी मे साफ़ उच्चारण के साथ मुझसे कहा—"आप का यहाँ स्वागत है।"

उन्होने मुझे और भी निकट बुला लिया और अपनी ही चौकी पर बैठ जाने को कहा। फिर कुछ मिनट तक वे मेरे हाथ अपने हाथो मे लिये रहे। मैने अपना परिचय देकर अपनी इस यात्रा का उद्देश उन पर प्रकट करना उचित समझा। जब मेरा कहना समाप्त हुआ उन्होने दया दिखाते हुए मेरे हाथ कुछ दाब दिये और कहा :

"एक अप्राकृतिक शक्ति ने तुम्हे भारत में आने के लिए प्रोत्साहित किया है और वही तुम्हे हमारे देश के साधु-संतो से मिला रही है। भावी अवश्य प्रकट करेगी कि उसके इस प्रकार के व्यवहार का एक सच्चा, पर गूढ़ आशय है। शांति के साथ उसकी प्रतीक्षा मे रहो।"

"अपने गुरु श्री रामकृष्ण के बारे मे कुछ बतलाइयेगा ?"

"आपने ऐसी बात छेड़ दी है जो मुझे जान से भी प्यारी है। उनका निधन हुए अब कोई पचास वर्ष बीत गये, पर उनकी वह पवित्र स्मृति मुझसे कभी भी बिछुड़ नहीं सकती। हमेशा वह मेरे हृदय में हरी-भरी रहती है। अपनी आयु के सत्ताइसवें साल में मेरी उनसे भेंट हुई थी। उनके जीवन के अंतिम पाँच वर्ष मैं सदा उनके संग रहता था। इसके परिणामस्वरूप मेरा जीवन ही बदल गया। मैंने अब मानों एक दूसरा ही जन्म लिया था। जीवन सम्बन्धी मेरे जो विचार थे उन्होंने एकदम पलटा खाया। इन पुरुषोत्तम रामकृष्णदेव का कुछ ऐसा ही प्रभाव था। जो कोई उनको देखने आता था उस पर उनकी आध्यात्मिक जादू फिर ही जाती थी। वास्तव में यों कहिये कि वे उन पर अपनी मोहिनी फूँक देते थे। उनको देखते ही लोग मंत्रमुग्ध हो जाते थे। नास्तिक लोग जो उनकी हँसी उड़ाने आते थे वे भी उनके सामने गूँगे बन जाते थे।"

मुझे कुछ हैरान होना पड़ा। मैं बीच मे ही बोल उठा—"ऐसे लोगो को आध्यात्मिकता के प्रति—जिसमें उनका रत्ती भर भी विश्वास न हो—श्रद्धा क्यो कर हो सकती है?"

एक मंद मुसकान उनके ओठों पर खिल गई। बोले—"दो आदमियों ने लाल मिर्चा खा लिया जिनमें से एक को तो उसका नाम ही मालूम न हो, शायद उसने ऐसी चीज़ ही देखी ही न हो, दूसरा और उस चीज को खूब ही जानता हो; क्या दोनो को एक ही प्रकार का स्वाद नही मिलेगा? क्यों? दोनों की जीभ जल नही उठेगी? उसी तरह रामकृष्णदेव की आध्यात्मिकता के तेजोमय प्रभाव के आस्वाद से नास्तिक लोग भी वंचित नहीं रहे।"

"तो वे वास्तव में एक आध्यात्मिक पुरुष, पुरुषोत्तम थे?"

"जी हाँ, मेरे विचार में वे इससे भी कुछ अधिक ही थे। रामकृष्णदेव एक सीधे सादे व्यक्ति थे; वे निरे अपढ़ और अशिक्षित रहे। वे इतने अपढ़ थे कि अपना नाम भी लिख नहीं सकते थे, चिट्ठी-पत्री की फिर बात ही क्या? देखने मे उनका जीवन बड़ी सादगी का था और उनके रूप-रंग से नम्रता टपकी पड़ती थी। तिस पर भी उन्होंने अपने समकालीन बड़े से बड़े शिक्षित और बहुत ही सभ्य और संस्कृत व्यक्तियो पर अपना असर जमा दिया। उनकी आध्यात्मिकता इतनी प्रस्फुटित थी कि सभी को उसका प्रत्यक्ष अनुभव हो सकता था। उनके सामने सब किसी को, चाहे वे कैसे भी शिक्षित और पढ़े हुए हो, सिर झुकाना ही पड़ता था। उन्होंने हमे सिखाया है कि आध्यात्मिकता की तुलना मे गर्व, कामिनी-काँचन, धन-दौलत आदि सब कुछ बहुत ही तुच्छ और विनश्वर हैं, वे सब धोखे मे डालने वाले आभास मात्र है। वे कैसे अच्छे निराले दिन थे। प्रायः वे ऐसी समाधियो मे लीन हो जाया करते थे जो साफ साफ इतनी दैवी मालूम होती थी कि हमे बोध होने लगता था कि वे आदमी नहीं देवता थे। आश्चर्य की बात यह है कि रामकृष्णदेव अपने एक स्पर्श से उसी स्थिति को अपने शिष्यो मे भी पैदा कर सकते थे। इस अजीब हालत मे उनके शिष्य अपरोक्ष अनुभूति से ईश्वर के अतुल गंभीर रहस्यो का प्रत्यक्ष कर सकते थे। खैर, मै आपको बता तो दूँ कि उनका मुझ पर प्रभाव किस प्रकार से पड़ा।

"मुझे पश्चिमी ढंग की शिक्षा मिली है। मै अपने बुद्धि बल के घमंड मे चूर था। समय समय पर मै कलकत्ते के कालेजो मे अंग्रेजी साहित्य, इतिहास, अर्थ शास्त्र आदि का प्रोफेसर रह चुका था। रामकृष्णदेव कलकत्ते से कुछ दूर पर दक्षिणेश्वर मे

माता शारदा देवी

रहा करते थे। एक चिरस्मरणीय वासंतिक प्रभात के समय मैंने उनसे भेंट की और उनके निजी अनुभवजन्य आध्यात्मिक भावों का सरल बयान सुन पाया। मैंने उनसे वाद-विवाद करने की भी कुछ चेष्टा की लेकिन उनकी उस दिव्य सन्निधि में, जिसका मैं शब्दों में बयान कर ही नहीं सकता, मेरा मुँह मानों बंद ही रह गया। वारंवार मैंने उनका दर्शन किया, क्योंकि उस गरीब, नम्र, पर दिव्य महानुभाव के दर्शन के लिए मैं न जाने क्यों विवश हो जाता था। आखिर को, एक दिन रामकृष्णदेव ने हँसी में कह दिया—'चार वजे के समय एक मोर को अफीम की एक गोली खिलायी गयी। दूसरे दिन वह ऐन समय पर फिर आ पहुँचा क्योंकि वह अफीम के प्रभाव में अपने को विवश पाकर और एक गोली के लिए लालायित होने लगा था।'

"उनका कहना बिलकुल ही ठीक था। उनकी सन्निधि में मुझे जो आनंद का स्वाद चखने को मिलता था वह कभी कहीं भी मुझे प्राप्त नहीं हुआ था। तब यदि मैं बारम्बार उनके दर्शनों को जाने लगा तो इसमें आश्चर्य ही क्या था? धीरे धीरे मैं उनके अन्तरंग चेलों में एक हो गया। एक दिन गुरुदेव ने कहा :

'आँखों के इशारों, ललाट और चेहरे से तुम योगी मालूम होते हो, इसलिये तुम अपना सारा काम करते रहो किन्तु हमेशा मन ईश्वर पर लगाये रक्खो। पत्नी, वाल-बच्चे, माँ-बाप सबके साथ रहो और उन सबकी सेवा सुश्रूषा करते रहो, मानों वे तुम्हारे अपने ही हैं। देखो, कछुवी क्या करती है। वह तालाब में हर कहीं तैरती रहती है पर उसका मन तो तीर पर के उसके अंडों पर लगा रहता है। यों ही तुम भी अपने सारे दुनियावी काम करते रहो किन्तु मन को ईश्वर पर लगाये रक्खो।'

"इसी कारण से जब हमारे गुरुदेव का निर्वाण हो गया

और अन्यान्य चेलो ने स्वयं ही दुनिया से विरक्त होकर सन्यास की दीक्षा ले ली और भारत भर मे रामकृष्ण के संदेश को सुनाने का भार अपने कंधो पर ले लिया, मैने अपनी वृत्ति नही छोड़ी और अध्यापकी करते ही रहा। लेकिन इस दुनिया के दांव-पेंच मे न आने का मेरा इतना जबर्दस्त आग्रह था कि कभी कभी आधी रात के समय अकेले घर से निकलकर सेनेट हाउस के सामने खुले बरामदे मे शहर के दीन, गृह-विहीन मुहताजो और भिखमंगो मे सो जाता था। इससे तत्काल के लिए ही सही, मुझे बोध होने लगता था कि इस दुनिया मे कुछ भी धन-दौलत मेरी नही है।

"रामकृष्णदेव तो चले गये, लेकिन भारत के अपने सफर के समय तुम जरूर देख लोगे कि उनके प्रथम शिष्यो की प्रेरणा से देश भर मे सामाजिक, दान-धर्मादिक, वैद्यक और शिक्षा का कैसा कार्य चल रहा है। पर हाय! उन पुराने चेलो मे अब कई तो स्वर्गवासी हो चुके है। सहज मे तुम्हारे देखने मे यह बात आही नही सकती कि इस अजीब व्यक्ति के कारण कितनो के जीवन मे कायापलट हो गया, कितने गिरते से एकदम बच गये। उनका दिव्य संदेश एक व्यक्ति के जरिये दूसरे को, और उसके जरिये तीसरे को, इसी प्रकार जहाँ तक बन पड़ा फैला दिया गया है। मेरा अहोभाग्य था कि मुझे उनके वचनामृत को, बंगला मे कही हुई उनकी बातो को लिपिबद्ध करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी छपी हुई पोथी बंगाल के घर घर में पहुँच गई है और उसके अनुवाद भारत की अन्य भाषाओ मे भी हो गये है। अब तो तुम सहज ही मे समझ सकते हो कि श्री रामकृष्णदेव का प्रभाव उनके निकटतम शिष्यो की परिधि को लाँघकर कितना व्यापक बन गया है।"

मास्टर महाशय ने अपना लम्बा कथन समाप्त करके मौन धारण किया। मैंने उनके चेहरे की ओर फिर देखा तो उनके चेहरे की आध्यात्मिक रूपरेखा की ओर मेरा मन आकृष्ट हुआ। फिर भी मेरा मन एशिया माइनर के एक छोटे राज्य के ध्यान में लीन हुआ जहाँ इज़राइल की सन्तान अपने विपत्ति के मारे जीवन से क्षणिक आराम ले लेती थी। मेरी दृष्टि में मास्टर महाशय उन लोगों के बीच में एक धर्म प्रवर्तक के रूप में दिखाई देने लगे। वे कितने उदात्त और गंभीर थे! उनकी अच्छाई, ईमानदारी, शील, श्रद्धा और भक्ति साफ ही उनके चेहरे से झलक रही थीं। उनमें वह आत्माभिमान स्पष्ट हो जागरूक था जो उन लोगों में ही पाया जाता है जिन्होंने अन्तःकरण की आज्ञाओं के एकदम अनुकूल ही अपना जीवन बिताया हो।

मैं गुनगुनाते हुए पूछ बैठा—"मुझे आश्चर्य होता है कि रामकृष्णदेव ने उन व्यक्तियों से क्या कहा होगा जो श्रद्धा से ही जीवन नहीं बिता सके और अपनी बुद्धि और तर्क को सन्तुष्ट किये बिना नहीं माने।"

"वे उनसे प्रार्थना करने के लिए कहते थे। प्रार्थना में अपूर्व शक्ति है। रामकृष्ण ने स्वयं ही ईश्वर से प्रार्थना की थी कि उनके पास वे दार्शनिक रुख वाले व्यक्तियों को भेजें। इसके कुछ दिन बाद ही उनके पास वे लोग इकट्ठे होने लगे जो बाद में उनके शिष्य और भक्त हो गये।"

"यदि किसी ने एक बार भी प्रार्थना न की हो—तब ?"

"प्रार्थना अन्तिम उपाय है। मानव के हाथ में इससे बढ़कर दूसरा उपाय नहीं है। जहाँ तर्क से काम नहीं चलता वहाँ प्रार्थना ही मानव का बेड़ा पार लगा सकती है।"

"लेकिन यदि कोई आपके पास आये और कहे कि प्रार्थना उसके दिल को नहीं भाती तो आप ऐसे व्यक्ति को कौन सा उपदेश देगे ?"

"ऐसे व्यक्ति को चाहिये कि वह अपना जीवन उन साधु-सन्तो की सेवा मे, उनके सग मे, बितावे जिन्होने सच्ची आध्यात्मिक अनुभूति पा ली हो। बड़े लोगो, पहुँचे हुए साधुओ, के संग मे हमारा मन फिर जाता है और दैवी विषयो की ओर प्रवृत्त होने लगता है। उनके संग से सबसे बढ़कर यह लाभ होता है कि हमारे भीतर आध्यात्मिक जीवन की एक प्रबल प्रेरणा पैदा हो जाती है। अतः ऐसे महात्माओ का साहचर्य पहले पहल अत्यत उपयोगी है। रामकृष्णदेव कहा करते थे कि यही प्राय आखिरी सीढ़ी भी है।"

हम इस ढग से पवित्र और उदात्त विषयो पर विचार करते और यह सोचते हुए कि शाश्वत सत्ता मे छोड़ और कहीं भी मानव को परा शांति प्राप्त नही हो सकती समय बिताने लगे। शाम को कई आगन्तुक मास्टर महाशय के दर्शनो के लिए पधारे ; यहाँ तक कि वह छोटी कोठरी मास्टर महाशय के शिष्यो से एकदम भर गयी। उनके शिष्य हर रात को आते और बड़े ध्यान के साथ अपने गुरू के प्रत्येक शब्द को सुनते।

कुछ समय तक मैं भी इन बैठको मे शामिल रहा। हर रात को मै भी मास्टर महाशय के यहाँ जाने लगा, उनके भक्तिपूर्ण उपदेशो को सुनने के लिए उतना नही जितना कि उनकी सन्निधि के आध्यात्मिक आलोक मे अपने को तपाने के उद्देश से। उनके चारों ओर कोमलता, सुन्दरता प्रेममय प्रशांति छिटकती रहती थी। उन्होने अवश्य ही कोई आंतरिक आनद प्राप्त कर लिया था और उसका प्रसार साफ ही अनुभूत होता था। प्रायः मै उनकी

बातों को भूल जाता था किंतु उनका वह दिव्य अनुभाव मुझे कभी भी नहीं भूलता है। जिस अज्ञात शक्ति से खिंच कर वे बार बार रामकृष्णदेव के दर्शनों को जाया करते थे उसी आकर्षण से मैं भी मास्टर महाशय की ओर खिच कर जाने लगा। धीरे धीरे मुझ पर यह बात झलकने लगी कि जब शिष्य ही की मेरे ऊपर इतनी मोहिनी है तो उनके गुरू की कैसी प्रभावोत्पादक मोहिनी रही होगी।

मेरी अंतिम भेंट को वह शाम आ पहुँची। मुझे समय की गति का कुछ भी ख्याल नहीं रहा। आनन्द विभोर होकर मैं मास्टर महाशय के साथ सोफे पर बैठा हुआ था। घंटे बीतते चले जा रहे थे। हमारी आपस की बातचीत का रुख बदलने वाला सन्नाटा अभी उपस्थित नही हुआ था। पर अन्त में वह भी आ गया। मास्टर महाशय मेरा हाथ पकड़ कर मुझे खुली छत पर ले गये। चारों ओर चंद्रमा की धवल चाँदनो छिटकी हुई थी। गोलाकार मे गमलों के लम्बे पौधे मुझे साफ ही दिखाई दे रहे थे। नीचे कलकत्ते के मकानों से अगणित दीपकों की चमक फूट कर बाहर निकल रही थी।

चन्द्रमा सोलहों कलाओं से परिपूर्ण था। मास्टर महाशय ने निशानाथ के मुखबिंब की ओर इशारा किया और क्षण भर के लिए मूक प्रार्थना में विलीन रहे। उनके सजग होने तक मै उन्हीं की बगल मे प्रसन्नता से प्रतीक्षा करता रहा। मास्टर महाशय का ध्यान टूटा। घूम कर, मानो मुझे अशीर्वाद दे रहे थे, हाथ उठा कर मेरे सिर पर फेरा।

इस महान पुरुष के सामने नास्तिक होते हुए भी मैंने माथा टेक दिया। कुछ मिनट तक अटूट प्रशांति विराजती रही। वे बड़ी नरमी के साथ बोले :

"मेरा काम पूरा हुआ ही चाहता है। भगवान ने मुझे जिस आदेश के पालन के लिए यह चोला दिया था उसकी पूर्ति हो गई। मेरी महायात्रा के पूर्व यह मेरा आशीर्वाद लो।" *

इसका मेरे ऊपर बड़ा ही अपूर्व प्रभाव पड़ा। नींद का विचार छोड़ कर मैं कलकत्ते की गलियो मे घूमने लगा। आखिर एक बडी मसजिद से आधी रात की उस गम्भीर प्रशांति में से 'अल्लाहो अकबर' (ईश्वर बड़ा है) की टेर सुनाई पड़ी तो मैं सोचने लगा कि यदि कोई मुझे मेरे बौद्धिक शक्कीपन से विलग कर, सरल विश्वास के शांतिदायी अमृत सेवन से मेरी आत्मा को भर सकते हैं तो वे निस्संदेह मास्टर महाशय ही हैं।

× × × ×

"बहुत ही अच्छा मौका आपने खो दिया। शायद ऐसा ही आपके भाग्य मे बदा था। कौन कह सकता है ?"

कलकत्ते के एक अस्पताल मे डाक्टर बन्दोपाध्याय जी हाउस सर्जन है। शहर के नामी सर्जनो में वे गिने जा चुके हैं। अब तक उनके हाथो से करीब छः हज़ार नश्तर लगाये जा चुके है। उनके नाम के पीछे उनकी उपाधियो का एक बड़ा लम्बा ताँता लगा हुआ है। उनके साथ मिलकर अपनी सीखी हुई हठ योग की कुछ प्रक्रियाओं की बहुत ही सूक्ष्म परीक्षा करने का मुझे सौभाग्य मिला है। योग शास्त्र को कार्य-कारण संबंध की भित्ति पर खड़ा कर देने मे, उसको हेतुवाद और तर्क की कसौटी पर कस कर परखने मे, उनकी डाक्टरी की वैज्ञानिक शिक्षा और शरीर रचना शास्त्र की उनकी बहुत ही अच्छी जानकारी दोनो से अत्यधिक सहायता प्राप्त हुई। उन्होने साफ शब्दो मे मुझसे स्वीकार किया :

---

* थोडे दिनो बाद ही मुझे उनके स्वर्ग सिधारने की खबर *मिली*।

" मुझे योगशास्त्र का कुछ भी ज्ञान नहीं है। जो तुम कहते हो वह मेरे लिए एकदम नयी बात है। कुछ दिन पहले कलकत्ते में जो आये थे उन नरसिह स्वामी को छोड़ कर और किसी भी योगी से मेरी भेंट नही हुई है।"

तब मै नरसिंह स्वामी के पता ठिकाने आदि के बारे में पूछने लगा तो उनसे केवल एक निराशाजनक उत्तर मिला। डाक्टर साहब बोले :

" नरसिह स्वामी कलकत्ते में पुच्छलतारे के समान चमक उठे। लोगों मे सनसनी फैल गई। फिर न जाने वे कहाॅ चले गये। मैंने समझ लिया है कि वे अपने एकान्तवास को छोड़ कर अचानक कलकत्ते आये थे। इसीलिये वे फिर अपने एकान्त-वास में चले गये होगे। "

"बात क्या हुई थी ? कुछ तो समझाइये।"

"कुछ दिन तक हर कहीं उन्ही की बात होती रही। कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रेसिडेंसी कालेज के रसायन शास्त्र विभाग के प्रोफेसर नियोगी जी से उनकी बात लोग जान पाये थे। एक-दो महीने पहले की बात है। डाक्टर नियोगी जी मधुपुर गये थे। वहाँ पर उन्होंने नरसिह स्वामी को एक भयानक ज़हरीला तेज़ाब चाटते और जलते हुए अंगारों को मुँह में रखते हुए देखा था। डाक्टर के हौसिले बढ़े। किसी प्रकार योगी को कलकत्ते आने पर उन्होंने राज़ी कर लिया। यूनिवर्सिटी ने ही प्रदर्शन का सारा भार ले लिया था। दर्शको में केवल वैज्ञानिक और डाक्टर ही थे। मुझे भी न्योता दिया गया था। प्रेसिडेसी कालेज की भौतिक प्रयोगशाला में प्रदर्शन का इन्तज़ाम किया गया था। हम लोगों का एक खासा समालोचकों का गुट था। तुम जानते हो

हो धर्म, योग आदि की ओर मैने बहुत कम ध्यान दिया है क्योंकि अपने पेशे की बातें सीखने मे मै मशगूल रहा हूँ। नरसिह योगी जी शाला के बीच मे खड़े हुए थे। कालेज की प्रयोगशाला से जो जहर लाये गये थे उनके हाथो से दिये गये। पहले गंधक के तेजाब की बोतल दी गई। उन्होंने कुछ बूँद अपनी हथेली पर डाल लिये और उसे अपनी जीभ से चाट डाला। फिर उनको तेज कारबोलिक तेजाब दिया गया। उसे भी उन्होंने चाट लिया। खतरनाक जहर पोटासियम साइनाइड भी दिया गया। चुपचाप उन्होंने उसे भी निगल लिया और उनका बाल भी बाँका नही हुआ। हम सब दग रह गये, अपनी आँखो का हमे विश्वास नहीं रहा। तब भी हमे इस बात को झख मार कर मानना ही पडा। किसी दूसरे को ज्यादा से ज्यादा तीन मिनट मे जो मार सकता था उतनी ही मात्रा मे पोटासियम साइनाइड निगल कर ये योगी हमारे बीच मे मुस्कराते खड़े थे और उनको किसो प्रकार का नुकसान नही हुआ।

"उसके बाद एक मोटी काँच की बोतल फोड़ दी गयी और उसका महीन चूर्ण कर दिया गया। नरसिह स्वामी ने वह चूर्ण भी निगल लिया। वह चूर्ण धीरे धीरे किसी आदमी को मार सकता था। इस अजीब प्रदर्शन के तीन घंटे बाद हमारे एक डाक्टर भाई ने 'यन्त्र' के सहारे से उन योगी के पेट के अन्दर की चीजे बाहर निकाली। सारे जहर उसमे ज्यों के त्यो पड़े थे। दूसरे दिन उनके दस्त मे काँच का चूर्ण भी पाया गया।

"हमारी जाँच की कसौटी कोई मामूली बात न थी। उसमें किसी को नुक्ताचीनी करने की गुंजायश न थी। गंधक के तेजाब की शक्ति का प्रभाव एक ताँबे के सिक्के पर साफ साफ देखा गया था। प्रेक्षको मे सर सी० वी० रमन जैसे प्रमुख वैज्ञानिक भी

मौजूद थे। रमन साहब ने बताया कि प्रदर्शन आधुनिक विज्ञान को चुनौती दे रहा है। नरसिंह स्वामी जी से जब हम लोगों ने प्रश्न किया कि वे किस शक्ति के बूते पर अपने शरीर के साथ ऐसे जुल्म कर सकते हैं तो उन्होंने बता दिया कि घर लौटते ही वे योग समाधि मे लीन हो जाते है और तीव्र ध्यान के द्वारा ज़हर के प्रभाव को मिट्टी मे मिला देते है।"*

"अपने डाक्टरो के ज्ञान के आधार पर आप इन बातों को कुछ न कुछ समझा सकते है?"

डाक्टर ने सिर हिला कर कहा—"नहीं, मैं कोई समाधान नहीं दे सकता। मैं खुद ही बहुत हैरान हूँ।"

घर जाते ही मैने संदूक की तलाशी ली और एक छोटी नोट-बुक निकाली। इसा में मैंने अडयार नदी के तीर के योगी ब्रह्म के साथ जो मेरी बातचीत हुई थो उसका व्यौरा लिख रक्खा था। मैं जल्द पन्ने उलटते गया कि एक जगह नीचे की बातें लिखी हुई मिलीं।

'परम अभ्यास को जो प्राप्त कर चुका हो उस योगिराज का, चाहे कैसा भी भयानक ज़हर क्यों न हो, बाल भी बाँका नहीं कर सकता। इस अभ्यास के लिए एक ख़ास प्रकार का आसन, एक प्रकार का प्राणायाम, धारणा शक्ति और ध्यान के अभ्यास

---

* कुछ समय बाद नरसिंह स्वामी जी फिर एक बार कलकत्ता आये। वहाँ से रंगून और ब्रह्मदेश गये। वहाँ उन्होंने उपरोक्त प्रकार का एक प्रदर्शन दिखाया और कुछ आगन्तुकों के, जिनके आने की उन्हे कोई खबर नहीं थी, आगमन के कारण घर पर पहुँचते ही समाधि मे लीन नहीं हो सके। इसका बुरा नतीजा यह निकला कि वे एकबारगी मृत्यु का कौर बन गये।

आवश्यक है। गुरुजनो का कहना है कि इनसे अभ्यास-कुशल योगी को एक ऐसी शक्ति प्राप्त हो जाती है जिससे वह किसी तकलीफ के विना कैसा भी विष हो हजम कर सकता है। वह वहुत ही कठिन अभ्यास है, और अभ्यास को निरंतर करते रहने से ही वह फल देता है। नहीं तो उसका प्रभाव जाता रहता है।'

एक वहुत ही वुड्ढे आदमी ने मुझसे वनारस के एक योगी के वारे मे कहा था कि वे किसी प्रकार की जोखिम के विना अधिक मात्रा मे जहर पी सकते है। योगी का नाम त्रैलिग्य स्वामी था। उन दिनो सारे शहर मे उनकी वड़ी ही धूम थी। उनको स्वर्ग सिधारे कई साल हो गये। त्रैलिग्य जी हठयोग की सिद्धियो मे वड़े ही कुशल थे। वर्षों वे नंगधड़ंग गंगा जी के किनारे वैठे रहे थे और उनकी मौन दीक्षा से कोई उनको विचलित न कर सका था।

जव पहली वार ब्रह्म ने इस वात की मुझे सूचना दी थी तव जहर के प्रभाव से एकदम उन्मुक्त रहने की इस वात को मैंने विलकुल ही झूठ और अविश्वसनीय समझ रक्खा था। लेकिन अव तो वात दूसरी ही थी। इस सम्बन्ध मे पहले के मेरे जो विचार थे वे अव जड़ से उखड़ने लगे। कभी कभी ये योगी लोग जो अविश्वसनीय और विलकुल ही अज्ञेय और अविगत सिद्धियाँ कर दिखाते है उन्होने मेरे दिल को चकित कर डाला है। पर कौन जाने आज पश्चिम जिन वातो के मर्मों के ईजाद करने की लाखो प्रयोगशालाओ मे व्यर्थ चेष्टा कर रहा है उन्हीं वातो को उनसे कहीं पहले ही प्राच्य के वासी शायद जान नहीं गये थे ?

११

बनारस का मायावी

बंगाल के भ्रमण तथा बुद्ध गया में तिब्बत के तीन लामाओं से अपनी भेंट आदि का मैं उल्लेख नहीं करूँगा क्योंकि मै हिन्दुओं की परम पुनीत नगरी काशी की चर्चा करने के लिए बड़ा ही उतावला हो रहा हूँ।

शहर के समीप लोहे के विराट पुल के ऊपर से रेलगाड़ी गड़गड़ाती हुई चलने लगी। उसकी वह आवाज़ मानों एक प्राचीन गतिहीन समाज पर नई रोशनी के एक और धावे का प्रबल प्रमाण थी। जब कि म्लेच्छ विदेशियों ने गंगा जी के जल के ऊपर गरजने वाले अग्नि-रथों को चला ही दिया फिर गंगा जी की वह पवित्रता और कितने दिन तक बनी रहेगी!

यही तो बनारस है।

यात्री आपस में धक्कमधक्का करते हुए स्टेशन से बाहर चलने लगे। उनमे से होकर किसी प्रकार मैं बाहर पहुँचा और एक तांगे पर, जो मेरी इन्तजारी मे खड़ा था, बैठ गया।

तो यही भारतवर्ष की सब से पुनीत नगरी है! अरे! यहाँ तो बड़ी ही विषैली बदबू फैली हुई है। अपनी प्राचीनता के लिए बनारस बहुत ही प्रसिद्ध है। उसकी इस प्रसिद्धि का यह बदबू प्रबल प्रमाण कही जा सकती है! दुर्गन्धि के कारण दम घुटने लगा। मेरी हिम्मत छूट गई। विचार हुआ कि ताँगेवाले से कह दूँ कि फिर मुझे स्टेशन वापिस ले चले। ऐसे महँगे सौदे पर भक्ति

तथा श्रद्धा की उपासना करने की अपेक्षा परम नास्तिक ही रह कर स्वच्छ वायु का सेवन करना क्या उत्तम नही है ? धीरे धीरे मुझे सूझने लगा कि इस पुराने देश मे जैसे अन्य अजनवी चीजो के अनुकूल मेरी प्रवृत्ति किसी न किसी तरह बन गई है उसी भांति इस आबहवा और भयानक दुर्गन्धि के भी अनुकूल वह क्यो न बनेगी ?

लेकिन बनारस, नाराज़ न होना यदि मै कहूँ कि चाहे तुम हिन्दू-संस्कृति का केद्र भले ही वने रहो, परन्तु अनात्मवादी गोरो से कुछ तो कृपा करके सीख लो और स्वास्थ्य विज्ञान की आग मे अपनी पवित्रता को थोड़ा सा तपा लो ।

बाद मे मालूम हुआ कि नगर की सड़के गोवर और मिट्टी से लिपी हुई है और शहर के चारो ओर जो खाई है वह भी कई पीढ़ियो से कूड़ा-करकट फेकने का वड़ा ही अनुकूल घूरा वन गई है। इसी से इस असहनीय गंदी बू ने सारे वायुमंडल को विपैला बना दिया है ।

यदि हिन्दुओं के पुराणो आदि का विश्वास किया जाय तो बनारस ईसा से १२०० वर्ष पूर्व ही एक संपन्न नगर था । मध्ययुग में जैसे श्रद्धालु धार्मिक अंग्रेज पवित्र नगरी कैंटरवरी की यात्रा किया करते थे ठीक उसी प्रकार हिन्दुस्तानी भारतवर्ष के कोने कोने से आकर इस नगर के दर्शन से अपने को कृतकृत्य समझते है । चाहे राजा हो चाहे रंक, सभी विश्वनाथ पुरी मे विश्वनाथ से वर-प्रसाद पाने की चाह रखते है। बीमार लोग यही अपने अन्तिम दिन बिताने आते है क्योकि उनका यह विश्वास रहता है कि काशी मे मरने से ‘ शिव सायुज्य ’ प्राप्त हो जाता है ।

दूसरे दिन मै काशी की पैदल ही सैर करने लगा और उसकी टेढ़ीमेढ़ी तंग गलियों को खाक छानने मे बिलकुल मग्न हो गया ।

मेरे घूमने का कुछ प्रयोजन अवश्य था। मेरी जेब में एक करिश्मे दिखाने वाले योगी का पता-ठिकाना बताने वाला एक कागज़ पड़ा हुआ था। उनके एक शिष्य से बम्बई में मेरी मुलाकात हुई थी।

मैं उन तंग गलियों में, जिनमे कि कोई गाड़ी मुश्किल से ही गुज़रने नही पाती, भटकने लगा। बाजारों में लोगों की भारी भीड़ थी। दर्जनों जातियों के लोग वहाँ देखने में आते हैं। दुबले कुत्तों का भूँकना और मक्खियों की भिनभिनाहट के मारे वहाँ का शोरगुल बहुत ही बढ़ा रहता है। पके बाल वाली बूढ़ियाँ, चिक्कण तथा मसृण अंग वाली कोमल ललनाएं, विभिन्न पहनावा वाले यात्री, भस्मधारी वलित शरीर वाले वृद्ध साधु, और भी कितने ही प्रकार के लोग वहाँ की गलियों में नजर आते हैं। शोर गुल से भरी हुई तरह तरह की गलियों की भीड़ मे अपनी राह खेते हुए अचानक मैं विश्वनाथ जी के स्वर्ण मन्दिर पर पहुँच गया।

सारे भारत में इस मन्दिर की बड़ी धूम है। फाटक पर पश्चिमी आँखों को घृणित और जुगुप्साजनक लगने वाले भस्मधारी साधू दबक कर बैठे रहते हैं। लगातार यात्रियों का एक ताँता बँधा रहता है। कई लोग सुन्दर मालाएं लेकर विश्वनाथ जी की पूजा के लिए आते हैं जिससे उस धूम्रमय वायुमंडल में एक प्रकार की चमक सी फैल जाती है। श्रद्धालु लोग घर लौटते समय मन्दिर के फाटक के पत्थरों पर माथा टेकते हैं और घूम कर मुझ अंग्रेज को देख क्षण भर के लिए विस्मय से चकित हो जाते है। इन यात्रियो और अपने बीच मे मुझे भी एक अदृश्य अन्तर प्रकट होने लगा।

सूर्य की प्रखर धूप में सोने से मढ़े हुए दो कलश चमकते रहते हैं। उसके निकट के गुम्बद से चीखने वाले तोतो की

फड़फड़ाहट सुनाई पड़ती है। यह स्वर्ण मंदिर महादेव जी का है। मुझे संशय होता है कि जिन महादेव की ये हिन्दू दुहाई देते है, जिनके सामने नाक रगड़ कर प्रार्थना करते है, जिनकी पत्थर की मूर्ति पर सुरभित सुमन और लाई की भेट चढ़ाते है, वह ईश्वर आखिर है भी कही ?

वहाँ से चलकर मैने गोपाल मन्दिर की राह ली। एक स्वर्ण मूर्ति के सामने कपूर की आरती उतारी जा रही थी। मन्दिर के घंटे भक्तो के ध्यान को आकर्षित करते हुए बारम्बार घहराते थे। शंख और घंटो की तुमुलध्वनि उनके बहरे कानो मे न मालूम क्या मंत्र फूँक रही थी। एक सौम्य रूप वाले, दुबले और कट्टर पुजारी मंदिर से निकल कर मेरे पास आये और मेरी ओर घूरने लगे मानो मुझ से कोई प्रश्न करते हो। तब मैने अपनी राह ली।

बनारस के मन्दिरो तथा मकानों मे रहने वाली असंख्य मूर्तियों को कौन गिन सकता है ? गंभीर प्रकृति वाले इन हिन्दुओ का व्यवहार भी कभी तो बच्चो जैसा होता है और कभी ये दर्शन के निगूढ़ रहस्यो मे मग्न होते है। क्या कोई भी इस मर्म का ठीक ठीक समाधान कर सकेगा ?

उन धुँधली गलियो मे मै अकेले ही पैदल चल कर अपने विचित्र मायावी योगी का मकान ढूंढ़ने लगा। अन्त को तंग पगडंडियो के जाल से निकल कर मै पक्की सड़क पर आ गया। फटे पुराने कपड़े पहने हुए, छोटे बालको की एक पंक्ति, जिसमे कुछ क्षीणकाय युवक और वृद्ध भी शामिल थे, एक कतार में मेरे पास से गुजर चली। उनके अगुए के हाथ मे एक साधारण सा झंडा था। उस पर कुछ लिखा हुआ था, लेकिन वह क्या था मुझे तो पता नही चला।

वे तेज़ आवाज़ से अजीब नारे लगाते जा रहे थे। बीच

बीच में किसी गाने के कुछ चरण भी सुनने में आते थे। जब वे मेरे पास से गुज़रे तो मेरी ओर घोर घृणा के साथ घूरने लगे। इस विचित्र समावेश का राजनैतिक स्वरूप मैंने समझ लिया।

पिछली रात को एक जनाकीर्ण बाज़ार में, जहाँ किसी गोरे या पुलिस का पता भी न था, कोई मेरे पीछे गरज उठा—"तुम्हे गोली मारेंगे।" मैंने झट घूम कर देखा तो मुझे कुछ कोमल बालकों के चेहरे ही दिखाई पड़े क्योंकि जिसने मेरा जान लेने की धमकी दी थी वह पागल नवयुवक—हाँ आवाज़ से वह जवान ही मालूम होता था--किसी गली के मोड़ पर अँधेरे में गायब हो गया। इस छोटे बच्चों के जुलूस को दूर की सड़क पर चलते हुए देखकर मुझे बड़ा ही अफसोस हुआ। सभी को मुँह माँगी वस्तु देने की झूठी आशा दिखाने वाली मायाविनी राजनीति ने अपनी गोद में इतने छोटे छोटे बच्चों को भी उठा लिया है!

आखिर को मै एक विशाल राजपथ पर आया। दोनों बगल कतार के कतार आलीशान मकान खड़े थे। विशाल साफ़-सुथरे अहाते मन को खुश कर रहे थे। मै जल्दी चलने लगा और चलते चलते एक बड़े मकान के फाटक पर पहुँच गया। फाटक के एक स्तंभ में एक छोटे पत्थर पर 'विशुद्धानन्द' के नामाक्षर खुदे हुए थे। मैंने भीतर प्रवेश किया। इसी घर को इतनी देर से मै खोज रहा था। बरामदे में कोई पड़े पड़े पिनक रहा था। चेहरे से वह बुड्ढ़ा मालूम होता था। मैंने उस नौजवान से पूछा—"गुरु जी भीतर हैं?" उसने सिर हिला दिया मानो यह कह रहा हो कि इस नाम का तो यहाँ कोई नही रहता। मैंने गुरू का नाम भी बता दिया पर कोई लाभ नही हुआ। मुझे बड़ी निराशा हुई। तब भी मैंने धीरज नहीं छोड़ा। दिल में कोई आवाज़ गूंज रही थी कि

यह बुड्ढू मेरे गोरे चमड़े को देख कर यह समझने लगा है कि यहाँ मेरा क्या काम होगा। इसीलिए उसने समझा कि मैं किसी दूसरे मकान की खोज मे हूं। मैंने और एक वार उस युवक की ओर ताका। मुझे पक्का निश्चय हो गया कि वह निरा बुद्धू है। अतः उसकी मनाही को परवाह किये विना मैंने सीधे घर के भीतर प्रवेश किया। भीतर एक कोठरी मे अच्छी पोशाक पहने हुए कुछ भारतीय व्यक्ति अर्धगोलाकार मे नीचे फर्श पर बैठे हुए थे। कमरे मे दूर पर एक सोफे पर एक भूरी दाढ़ी वाले एक वृद्ध बैठे थे। उनका आदर योग्य चेहरा और उच्च आसन, दोनो को देखते ही मैंने जान लिया कि जिनकी मैं खोज कर रहा था वे ये ही है। मैंने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और हिन्दुस्तानी रस्म के अनुसार बोला—"नमस्कार"।

मैंने उनको अपने पते आदि का परिचय दिया और बताया कि मैं एक लेखक हूँ और भारत का भ्रमण कर रहा हूँ तथा मुझे भारतीय दर्शन शास्त्र और योग मार्गो के अध्ययन करने की बड़ी लालसा है। मैंने उनको सूचित किया कि मेरी उनके एक शिष्य के साथ भेट हुई थी और उस शिष्य ने मुझे सावधान किया था कि उनके गुरू सर्व साधारण मे ही नही, एकान्त की छाया मे भी, अजनबियो तक के सामने अपनी अनूठी विभूतियो का प्रदर्शन नही करते। मैंने उन महाशय से प्रार्थना की कि भारतीय प्राचीन विज्ञान के प्रति अभिरुचि होने के कारण वे मेरे बारे मे कुछ रिआयत करने की कृपा करे।

उनके चेले अचम्भे मे आकर अपने गुरुदेव की ओर निहारने लगे और प्रतीक्षा करने लगे कि उनके गुरुदेव पर मेरी प्रार्थना का कैसा प्रभाव पड़ेगा। विशुद्धानन्द जी ढलती उम्र के थे। नाक

मायावी विशुद्धानन्द जी

उनकी छोटी और दाढ़ी लम्बी थी। उनकी आँखें बड़ी विशाल पर धँसी हुई थीं। उनके कंधे पर जनेऊ सोह रहा था।

उस बुजुर्ग की तीखी नज़र मेरे ऊपर पड़ गई। वे मेरी ओर यों घूर कर देख रहे थे मानों मै कोई सूक्ष्म वस्तु हूँ कि अनुवीक्षण यंत्र से देखा जाऊँ। मेरे दिल में कोई मोहिनी काम कर रही थी। सारे कमरे में एक अजीब प्रकार की शक्ति के प्रसार का बोध होने लगा। मुझे एक प्रकार की बेचैनी मालूम होने लगी।

कुछ देर के बाद उन्होंने अपने चेले से कुछ कहा। शायद वे बंगला भाषा बोल रहे थे। चेले ने मुझ को बताया—"बग़ैर गवर्नमेंट कालेज के कविराज जी को लाये कुछ भी बातचीत हो नहीं सकती।" कविराज जो अंग्रेज़ी के अच्छे ज्ञाता है, साथ ही वे विशुद्धानन्द जी के पुराने चेले भी हैं; अतः दुभाषी बनने का उनका पहला हक था।

विशुद्धानंद जी बोले—" कल उनको साथ ले आइये। ४ बजे मैं आप लोगों की राह देखूंगा।"

मुझे अब लौटना ही पड़ा। सड़क पर आकर एक ताँगेवाले को बुलाया। फिर टेढ़ी-मेढ़ी सड़कों से होकर कालेज पहुँच गया। लेकिन वहाँ पर कविराज जी नहीं थे। किसी ने बताया कि वे शायद घर पर होंगे। अतः उनके घर का पता लगाने मे एक-आध घंटा और लगा। आखिर को एक पुराने दुमंजिले मकान मे वे मुझको मिल गये। मकान की रचना मध्यकालीन इटली के शिल्पों से कुछ कुछ मिलती थी।

पंडित जी दूसरी मंजिल पर एक कमरे में फर्श पर बैठे थे। चारों ओर ढेर के ढेर किताबें पड़ी हुई थीं। कागज़, स्याही आदि लेखन सामग्री पास ही रक्खी थी। उन ब्राह्मण देवता का उन्नत

ललाट बडा ही विलक्षण था। नाक उनकी पतली और सीधी थी और बदन का रंग कुछ हलका था। चेहरे से उनकी संस्कृति और सभ्यता टपकी पडती थी। मैंने अपने आगमन का उद्देश्य उन पर प्रकट कर दिया। पहले वे कुछ हिचकिचाने लगे लेकिन किसी प्रकार मेरे साथ चलने के लिए राजो हो गये। दूसरे दिन फिर मिलने की बात पक्की करके मै उनसे बिदा हुआ। ताँगेवाले को किराया देकर मैंने उसको बिदा किया और स्वय गंगा जी के दर्शन करने मे मग्न हो गया। किनारे पर स्नानार्थियो का बड़ा जमघट था। उनकी सुविधा का ख्याल कर किसी ने बहुत सुंदर सीढ़ियाँ बनवायी थी। लाखो यात्रियो के पैरो के तले घिस कर वे कुछ खुरदुरी हो गयी थी। यह पनघट एकदम गंदा और मैला था। कही पर मंदिर ढह कर पानी मे गिर गये थे, कही आँखो को चकाचौंध करने वाले कलशो के अगल बगल मे, सजे सजाये चपटे और चौरस, गगन चुंबी महलो की श्रेणी दिखाई देती थी। हर जगह मकान एक के ऊपर एक बनवाये गये से जान पड़ते थे और प्राचीनता और नवीनता का वहाँ बड़ा ही अनमिल मेल हो गया था।

जहाँ देखो वही पंडो और यात्रियो के झुंड नज़र आते थे। छोटे और खुले हुए कमरो मे अध्यापक शास्त्र पढ़ा रहे थे। उन मकानो की दीवारो पर चूना पुता हुआ था। अध्यापक लोग छोटे छोटे आसनो पर बैठे हुए थे और चेले बड़ी श्रद्धा के साथ फर्श पर बैठे दत्तचित्त होकर गुरू के सिद्धान्तो की जटिल समस्याओ के समझने मे तल्लीन थे।

मैं यो ही घूम रहा था कि मेरी नज़र एक अजीब साधु पर पड़ी। उसकी बड़ी लम्बी दाढ़ी थी। पूछने पर मालूम हुआ कि ज़मीन पर लोट लोट कर उसने ४०० मील का फासला तय

किया है। काशीधाम की यात्रा करने का क्या ही विचित्र तरीका था! और कुछ आगे बढ़ा तो इससे भी अजीब बात देखने में आयी। वहाँ मेरे सामने एक आदमी था जिसने वर्षों से एक हाथ उठाये ही रक्खा है। उस अभागे हाथ की मॉस पेशी और नाड़ी सूख चली थीं। केवल हाथ का ढाँचा भर रह गया था। भला इन व्यर्थ के घोर तपों का क्या कोई अर्थ हो सकता है? इस मुल्क की झुलसाने वाली सूर्य की धूप ने इन बेचारों को सिड़ी तो नहीं बनाया है। अभागे हिन्दू पहले ही से अति धार्मिकता की बीमारी के कौर बने हैं, तिस पर सूर्य के उग्र ताप से इनके दिमाग़ और भी चकरा तो नहीं गये?

× × ×

दूसरे दिन चार बजते बजते मैं कविराज जी को साथ लेकर विशुद्धानंद जी के यहाँ पहुँच गया। उस बड़े कमरे में पॉव रखते ही हमने आचार्य की अभ्यर्थना की। वहाँ पर उस समय और भी छः शिष्य मौजूद थे।

विशुद्धानंद जी ने मुझे अपने पास बुलाया तो मैं उनकी गद्दी के बहुत ही निकट बैठ गया।

उनका सब से पहला प्रश्न यह था:

"मेरी कोई करामात देखना चाहते हो?"

"जी हाँ, आपका बड़ा एहसानमंद रहूँगा।"

पंडित कविराज ने कहा—"अपना रूमाल दो। रेशमी हो तो बेहतर है। जैसी खुशबू चाहते हो पा सकते हो। केवल एक आतशी शीशे भर की जरूरत है और सूर्य की रोशनी की।"

सौभाग्य से मेरी जेब में रेशमी रूमाल निकल आया। मैंने उसको जादूगर के हाथ में दे दिया। उन्होंने एक छोटा आतशी

शीशा निकाला और कहा—"मै इसमें सूर्य की किरणो को केद्रीभूत करना चाहता हूँ पर सूर्य की इस समय की स्थिति और कमरे की छाया के करण यह काम अच्छी तरह नही किया जा सकेगा। कोई आँगन मे जाकर शीशे के जरिये सूर्य की किरणो को भीतर पहुँचा सके तो सारी कठिनाई दूर होगी। आप जो चाहे वह खुशबू हवा से ही पैदा की जा सकती है। कहिये कौन सी सुगंधि चाहिये।"

"क्या आप बेले की सुगंधि पैदा कर सकते हैं ?"

आचार्य ने अपने बाँये हाथ मे रूमाल लिया और उसके ऊपर शीशा रक्खा। दो क्षण तक सूर्य की किरणें रेशम पर थिरक उठी। उन्होने काँच नीचे रख दिया और मुझे रूमाल वापिस कर दिया। मैने उसको नाक पर लगा कर देखा तो बेले की भीनी महक से तबियत फड़क उठी।

मैने रूमाल को बड़े गौर से परखा। कही नमी का नाम तक न था। कोई इत्र छिड़का गया हो सो भी बात नही थी। मै हैरान था और बूढ़े की ओर अधखुली दृष्टि से संदेह के साथ ताकने लगा। वे फिर से यह करामात दिखाने को तय्यार थे।

अबकी बार मैने गुलाब की खुशबू चाही। विशुद्धानंद जो प्रयोग करने लगे तो मै उनकी ओर गौर से ताकने लगा। उनके हाथो और पाँवो का हिलना डुलना, उनके चारो ओर जो कोई चीज़ धरी थी, एक भी बात मेरी नजरो से नहीं बची। उनके बलिष्ट बाहु और बेदाग पहरावे की बड़े गौर से मैने परीक्षा ली लेकिन शङ्का के लिए कही जगह नही थी। पहले के समान ही उन्होने प्रयोग किया और गुलाब के मधुर सौरभ से रूमाल का दूसरा किनारा परिमलित हो उठा।

तीसरी बार मैंने बनफशे के फूल की सुगंधि चाही। अब की बार भी वे अपने प्रयोग में सफल हुए।

विशुद्धानन्द जी अपनी सफलता पर फूल नहीं जाते। वे इन सारी विभूतियों को बिलकुल मामूली ही समझते हैं। उनका गंभीर मुखमण्डल भावनाओं के उतार-चढ़ाव से कुछ भी प्रभावित नहीं होता।

वे एकबारगी बोल उठे—"अब मैं एक नई सुगंधि पैदा करूंगा, एक नये फूल की खुशबू दिखा दूँगा। वह तिब्बत में ही मिलता है।"

उन्होंने रूमाल के आखिरी कोरे पर, जो अब तक छुआ नहीं गया था, सूर्य रश्मि को केन्द्रीभूत किया। एक अजीब परिमल आने लगा। वह मेरे लिए एकदम नया था।

कुछ चकित हो मैंने रूमाल जेब में रख लिया। यह सारी घटना मानों कोई करामात मालूम होने लगी। सारे फूलों के इत्र उन्होंने अपने लबादे में तो छिपा नहीं रक्खे थे? लेकिन प्रश्न यह था कि कितने प्रकार के इत्र वे छिपाये रख सकते हैं। मेरे पूछने तक वे क्या जानते थे कि मै कौन सी सुगंधि पसन्द करूंगा। उनके उस सादे लबादे में कितने इत्र छिप सकते हैं? इसके अतिरिक्त जादू दिखाते हुए उन्होंने एक भी बार अपने लबादे के अन्दर हाथ नहीं जाने दिया था।

मैंने उनके काँच की परीक्षा करने की अनुमति माँगी। वह एक मामूली काँच था। तार के ढाँचे में बँधा था और उसमें तार का एक दस्ता भी लगा था। उसमें संदेह का कोई स्थान नहीं था।

यह भी एक बात थी कि प्रेक्षकों में अकेला मैं ही तो था

ही। छ सात लोग उनकी ओर टकटकी लगाये देख रहे थे। पंडित कविराज जी ने मुझको इस बात का विश्वास दिलाया कि प्रेक्षक सब सच्चे, ईमानदार और अपनी जिम्मेदारी जानने वाले उच्च विचार के व्यक्ति है।

शायद यह सब सम्मोहन विद्या का एक उदाहरण तो नहीं है ? यदि ऐस हो तो तो इसकी बड़ी सुलभता से परीक्षा ली जा सकती है। जब घर लौटू , अपने साथियो को रूमाल दिखला दूं।

विशुद्धानन्द जी ने और एक बात बता दी। वे मुझे अपनी एक अद्भुत विभूति दिखाना चाहते थे जो वे बहुत ही विरले किया करते थे। उन्होने कहा कि इस प्रयोग के लिए कड़ी धूप की जरूरत होती है। उस समय सूर्य ढलना ही चाहता था। संध्या की लाली हर कही फैल रही थी। अतः मुझसे कहा गया कि फिर कभी दुपहर के वक्त आ जाऊँ। उस समय तत्काल के लिए मुरदो को फिर से जिलाने की अद्भुत बात दिखाने का वचन दिया गया।

मैने घर पहुँच कर तीन सज्जनो को रूमाल दिखाया। हर एक को फूलो की खुशबू आती दिखायी दी। इसलिए इन सारी बातो को सम्मोहन विद्या कहकर एक चुटकी मे उड़ा नहीं दे सकता था। न इसको छल-कपट ही कह कर मै तुष्ट हो सकता था।

× × ×

दुबारा मै जादूगर के घर पर पहुँच गया। उन्होने मुझ को शुरू मे ही बता दिया कि वे छोटे जानवरो को ही जिला सकत है। प्रायः वे चिड़ियो के साथ प्रयोग किया करते थे।

एक छोटी गौरैया की गरदन मरोड़ डाली गयी। एक घंटे

तक वह हमारी आँख के सामने रक्खी गई ताकि हमें विश्वास हो जाय कि वह सचमुच मरी ही है। उसकी आँखें अचल थीं; बदन न हिलता था न डुलता था। सारी देह तन कर हमको अपनी दारुण कहानी सुना रही थी। एक भी ऐसा चिह्न न था कि हमें उसके जीवित होने का भ्रम पैदा हो।

जादूगर ने काँच निकाला और सूर्य की किरणों को चिड़िया की आँखों पर केन्द्रस्थ कर दिया। कुछ मिनट तक कोई विशेषता देखने में नहीं आयी। वृद्ध जादूगर अपने विचित्र प्रयोग में लगे हुए थे। उनके विशाल नेत्र बिलकुल निश्चल थे। चेहरा उनका एकदम गंभीर था। उस पर किसी भावना का वेग नजर नहीं आता था। उनके चेहरे से एक प्रकार का निर्लिप्त भाव झलक रहा था। अचानक ही उनके ओंठ खुले और वे किसी अजीब भाषा में एक मंत्र का पुरश्चरण करने लगे। थोड़ी देर बाद चिड़िया की लाश कुछ कुछ हिलने लगी। मैंने एक मरणासन्न कुत्ते को इस प्रकार झटके खाते देखा है। बाद में धीरे धीरे उसके पंख फड़फड़ाने लगे। चन्द मिनट बाद ही गौरैया अपने पाँवों पर खड़ी हो गई।

इस विचित्र पुनर्जीवन के बाद चिड़िया में काफी मज़बूती आ गई, यहाँ तक कि वह कमरे में चारो ओर उड़ कर अपने बैठने के लिए नये नये आलम्बन खोजने लगी। यह सारी घटना इतनी गज़ब की मालूम होने लगी कि मै एकदम चकित होकर अपने दिमाग को ठिकाने पर लाने की चेष्टा मे लग गया। मेरे चारों ओर जो व्यक्ति बैठे हुए थे वे सच्चे थे या कल्पित, इसी बात का निश्चय कर लेने की मुझे ज़रूरत हुई।

इसी प्रकार गंभीरता से आध घंटा बीत गया। मैं उस पुनरुज्जीवित बेचारी चिड़िया के फड़फड़ाने की चेष्टा को देखते हुए

अपने को भूला हुआ था कि अन्त मे एक आकस्मिक बात प्रकट हुई जिसने मेरे प्राणो को उछालकर ओठो तक पहुँचा दिया। वह बेचारी गौरैया अब फिर नही उड़ी। मर कर हमारे पैरो के सामने गिर पड़ी। वही वह पड़ी हुई थी, न हिलती थी न डुलती थी। मैने उसको गौर से देखा। उसकी साँसे नही चलती थी। वह सचमुच मर ही गई थी।

मैने जादूगर से प्रश्न किया—"उसको और कुछ समय तक जीवित रख सकते है ?"

उन्होने कहा—"अभी तो इससे अधिक मै नही दिखा सकता। कविराज जी ने मेरे कान मे कहा कि विशुद्धानंद जी अपने भावी प्रयोगो से और अधिक आशा रखते है। वे और भी कई विचित्र बाते करके दिखा सकते थे। लेकिन उनके अनुग्रह का अनुचित लाभ उठा कर उनको राह की गर्द फाँकने वाले किसी जादूगर की कोटि मे रखना मुझे सोहता नही था। जो मै देख चुका था उसी से मुझे सन्तुष्ट होना पड़ा। मुझे फिर से भासने लगा कि कमरे की आबहवा मे एक निराली जादू भरी हुई है। विशुद्धानंद जी की अन्यान्य विभूतियो की कथाये मेरी इस धारणा को और भी बढ़ाने लगी।

मुझे मालूम हुआ कि वे शून्य से ताजे अंगूर पैदा कर सकते है, हवा मे से मिठाइयाँ मंगा सकते है और वे यदि अपने हाथ मे मुरझाया हुआ फूल ले ले तो वह फिर से हरा-भरा हो जायगा।

× × ×

आँखो देखी इन करामातो का क्या रहस्य है इसी बात को सोचते सोचते मुझे एक असाधारण बात का पता लगा। वह

बात भी ऐसी है कि जिसके बयान से असली विषय का ज्ञान नहीं होता। अब भी बनारस के उस जादूगर के समतल ललाट के तले कोई वास्तविक रहस्य छिपा है और आज तक उनके सबसे अंतरंग चेले भी उसको जान नहीं पाये हैं।

विशुद्धानंद जी ने मुझको बताया कि उनका जन्म स्थान बंगाल प्रान्त है। तेरह वर्ष की उम्र में किसी जहरीले जानवर ने उनको डस लिया और वे एक खतरनाक बीमारी के पंजे में पड़ गये। उनके जीने की कोई आशा न देख उनकी माँ उनको गंगा जी के तीर पर ले गयीं क्योंकि गंगा जी के किनारे प्राण छोड़ने में बड़ा ही पुण्य माना जाता है। परिवार के सब लोग किनारे पर रोते हुए खड़े हुए थे और अंत्येष्टि की सारी तय्यारियाँ एक ओर हो रही थीं। विशुद्धानंद जी को पानी मे ले गये तो एक अद्भुत बात देखने में आयी। ज्यों ज्यो उनको और गहरे पानी मे उतारते जाते थे त्यों त्यों उनके बदन के चारो ओर पानी घटता जाता था। ज्यो ज्यों बालक को ऊपर उठाते जाते थे त्यो त्यों अपनी सहज स्थिति तक पानी ऊपर चढ़ आता था। बार बार उनको डुबाने की चेष्टा की गई और हर बार यही बात देखने मे आयी। शायद इस मरणासन्न बाल अतिथि को गंगा माई स्वीकार करना नहीं चाहती थी।

किनारे पर एक योगी बैठे हुए यह सारी घटना देख रहे थे। वे आसन से उठकर वहाँ पर गये और उन्होंने यह भविष्यवाणी की कि बालक दीर्घायु होगा और महापुरुष बनेगा; वह एक प्रसिद्ध योगी बनेगा और उसके भाग्य के तारे खूब ही चमकेंगे। बाद को योगी ने उस बालक के जहरीले घाव पर कुछ जड़ी-बूटियों के अर्क की मालिश की और चले गये। सातवें दिन वे फिर लौट आये और बालक के माँ-बाप से बता दिया कि लड़का

चंगा हो गया। उनकी बात ठीक और सही थी। लेकिन इस बीच मे बालक के जीवन मे एक अजीब परिवर्तन देखने मे आया। उसकी मनोवृत्तियाँ और सारा चरित्र ही एकदम पलटा खा गये। घर पर माता-पिता के संग आराम के साथ रहने के बजाय एक घुमक्कड़ योगी बन जाने की धुन उस पर सवार हो गई। वह तभी से अपनी माँ को बड़ा ही तंग करने लगा, यहाँ तक कि आखिर को कुछ वर्ष के बाद उसकी माता ने घर छोड़ने की अनुमति उसे दे दी और विशुद्धानंद जी योगियो की खोज मे निकल पड़े।

हिमालय के उस ओर जो रहस्यमय भूमि तिब्बत है उसने उनके मन को खींच लिया। वहाँ के विभूति-संपन्न योगियो मे अपने योग्य गुरुदेव की खोज मे वे जी-जान से लग गये। भारतीयो की यह दृढ़ धारणा होती है कि यदि सच्चे योगी बनने की इच्छा हो और योग मार्ग मे सफलता पाना हो तो अवश्य ही जिज्ञासु को चाहिये कि वह किसी ऐसे योगिवर का, जो योग के सारे मर्मो से भली प्रकार परिचित हो, अंतरंग शिष्य बने। बालक विशुद्धानंद ने ऐसे योगिवर के लिए झोपड़ियो, गुफाओ आदि मे ही नही बल्कि उन पहाड़ो मे भी, जहाँ कि हड्डियो को भी सुन्न करने वाला तुषारमय पवन बहता है, तत्परता के साथ खोज की लेकिन वे निराश होकर घर लौटे।

कई वर्ष किसी महत्वपूर्ण घटना के बिना गुजर गये। तो भी उनका हौसला कुछ भी नही घटा और दुबारा उन्होंने भारतवर्ष की सीमा को पार कर दक्षिण तिब्बत की हिमाकीर्ण बंजर भूमियों की खाक छानी। किस्मत की बात है कि पहाड़ो के बीचोबीच एक अति साधारण कुटिया मे उन्हे एक ऐसे व्यक्ति मिले जो अन्त को उनके इतने दिनो के खोजे हुए गुरू निकले।

इस सम्बन्ध मे विशुद्धानंद जी ने मुझे एक ऐसी अविश्वस-

नीय बात बतायी जिसको सुन कर मैंने किसी और अवसर पर हँसी मज़ाक़ में उड़ाया होता पर अब उनकी बात ने मुझे चकित कर दिया। बहुत गंभीरता के साथ मुझसे निश्चय ही बताया गया था कि उनके गुरू की उम्र १२०० वर्ष से किसी भाँति कम नहीं है। विशुद्धानंद जी ने यह बात इतनी शांतिपूर्वक बतायी कि जैसे कोई पश्चिमी मामूली तौर पर कह दे कि वह ४० वर्ष का है।

इस दीर्घ जीवन की आश्चर्यजनक कथा इससे पहले मैं दो बार सुन चुका था। अडयार नदी के किनारे पर रहने वाले योगी ब्रह्म ने मुझसे बताया था कि उनके गुरू ४०० वर्ष से कुछ ऊपर के होंगे और पश्चिम भारत के एक महात्मा से मैंने सुना था कि हिमालय पर किसी दुर्गम पहाड़ी खोह में १००० वर्ष की उम्र वाले योगी निवास कर रहे हैं। उन्होंने कहा था कि वे योगी इतने बूढ़े हैं कि उनकी पलकें एकदम झुक पड़ी हैं। मैंने इन दोनों बातों को निरी गप्प समझ कर उड़ा दिया था लेकिन अब की बार उनको भी मुझे कुछ कुछ सच मानना पड़ा क्योंकि मेरे सामने विशुद्धानंद जी अमर जीवन के मार्ग पर आरूढ़ होने की मूक सूचना दे रहे थे।

तिब्बत के योगी ने बालक विशुद्धानंद को हठ योग की क्रियाओं और सिद्धान्तों में दीक्षित कर दिया। उनके कठिन शिक्षण में शिष्य ने अलौकिक शारीरिक और मानसिक विभूतियाँ प्राप्त की। वे सौर विद्या में भी शिक्षित किये गये। बारह वर्ष तक इस हिमाकीर्ण भूमिखंड में कई कठिनाइयाँ झेलते हुए भी उस तिब्बत के अमर जीवन के स्थूल कीर्तिस्तम्भ ऋषिवर के चरणों की बालक विशुद्धानंद शुश्रूषा करते रहे। जब शिक्षा पूरी हुई वे भारत में भेजे गये। वे पहाड़ी घाटियाँ पार कर देश में आ गये और

समय पाकर स्वयं योग मार्ग के एक आचार्य बने। कुछ समय तक उन्होंने पुरी-जगन्नाथ धाम मे एक अच्छा बंगला बनवा कर निवास किया। उनके चारो ओर उच्च कुल के हिंदू लोग बहुतायत से शिष्य और चेले बन कर इकट्ठे होते है। धनी व्यापारी, अमीर जमीदार, सरकारी अफसर और एक राजा भी उनके चेलो मे है। शायद मुझसे भूल हो गई हो तो हो, पर यह बात मेरे दिमाग़ मे बैठ गई है कि न तो साधारण जनता की वहाँ तक पहुँच है और न उसे योगी द्वारा कोई प्रोत्साहन ही मिलता है।

मैने उनसे सीधे प्रश्न किया—"आपने ये सारी करामाते कैसे दिखाई ?"

विशुद्धानंद जी ने अपने मोटे हाथो को समेट कर कहा—"जो कुछ आपने देखा वह योग का फल नहीं है, वह है सौर विद्या का फल। योग का सार यही है कि योगी अपनी चित्तवृत्तियो का निरोध कर ले और ध्यान, धारणा तथा समाधि के अभ्यास करते आगे बढ़े। लेकिन सौर विद्या मे इन बातो के अभ्यास की कोई ज़रूरत नही है। सौर विज्ञान कुछ निगूढ़ रहस्यो का संग्रह है। उनसे काम लेने के लिए किसी विशेष शिक्षा की आवश्यकता नहीं है। जैसे किसी पश्चिमीय भौतिक विज्ञान का अध्ययन किया जाता है ठीक उसी प्रकार इस विद्या का भी अध्ययन किया जा सकता है।"

कविराज जी ने इसकी पुष्टि करते हुए कहा—"इस विचित्र सौर विज्ञान का संबंध अन्य विज्ञानो की अपेक्षा विद्युत् शक्ति और आकर्षण शक्ति से अधिक है।"

मै पूर्ववत् नासमझ ही रहा। अतः विशुद्धानंद जी और भी बताने लगे :

"तिब्बत की यह सौर विद्या कोई नई बात नहीं है। अति प्राचीन समय के भारतीय योगियों को इसकी अच्छी जानकारी थी। लेकिन अब तो बहुत ही कम लोगों को छोड़ भारत में भी इस विद्या के जानने वाले नहीं हैं। भारत में भी एक ढंग से इस विद्या का लोप सा हो गया है। सूर्य रश्मि में कुछ प्राणद शक्तियाँ मिली हुई हैं। यदि तुम जान लोगे कि इनको सूर्य रश्मि में रहने-वाली अन्य चीज़ों से अलग कर कैसे इकट्ठा कर सकते हैं तो तुम भी अद्भुत करामातें दिखा सकोगे। सूर्य रश्मि में कुछ आकाश की शक्तियाँ मौजूद हैं। वे यदि तुम्हारे वश में हो जावें तो तुम में जादू सी ताकत आ जायगी।"

"क्या आप अपने चेलों को सौर विद्या के मर्म समझा रहे हैं?"

"अभी नहीं, किंतु सिखाने का प्रबंध किया जा रहा है। कुछ इने गिने शिष्यों को ही ये रहस्य बताये जायंगे। अभी हम एक बड़ी प्रयोगशाला, जहाँ प्रत्यक्ष निदर्शनों के साथ पढ़ाई हो सके, बनवाने में लगे हैं।"

"तो आपके शिष्य इस समय क्या सीख रहे हैं?"

"उनको योग की दीक्षा दी जा रही है।"

पंडित कविराज जी प्रयोगशाला दिखाने मुझे ले चले। वह रूप रंग में किसी यूरोपियन मकान से मिलती थी। उसकी कई मंजिलें थी और वह नये ढंग से बनी थी। दीवारें पक्की लाल ईंटों की थीं जिनमें खिड़कियों के स्थान पर बड़े बड़े छिद्र दिखाई दे रहे थे। उनमें बड़े बड़े शीशों के तख्ते लगने को थे, पर वे अभी तैयार नहीं हुए थे। शीशों की जरूरत इसीलिये पड़ी कि गवेषणा करने में सूर्य रश्मि को लाल, नीले, हरे, पीले और स्फटिक कांचों में से प्रतिबिंबित करने की आवश्यकता थी।

पंडित जी ने मुझे बताया कि जिस ढंग के शीशो की उन विराट खिड़कियो के लिए ज़रूरत थी वैसे बड़े शीशे हिंदुस्तान भर मे किसी कारखाने मे तैयार नही हो पाये थे। अतएव काम अधूरा ही रह गया था। उन्होने मुझसे कहा कि तुम इंगलैंड मे इस बारे मे कुछ दर्याफ़्त करो, पर यह जरूर ध्यान मे रहे कि विशुद्धानंद जी चाहते है कि उनके आदेशो मे और काम के ब्यौरे मे रत्ती भर भी फर्क न आने पावे। ये आदेश इस किस्म के थे कि कांचो के निर्माताओ को विश्वास दिलाना पड़ेगा कि कांच हवा के बुलबुलो से एकदम खाली है, रंगा हुआ शीशा एकदम पारदर्शी है, , और तख़्ते १२ फीट लंबे, आठ फीट चौड़े और $\frac{1}{4}$ अंगुल की मोटाई के है।* प्रयोगशाला को विशाल बाग बगीचे घेरे हुए थे। पर वे ताड़ जाति के कुछ घनी शाखावाले पेड़ो की शृंखला की ओट मे बाहर के प्रेक्षको की निगाहो से प्रच्छन्न थे।

लौट कर मै विशुद्धानद जी के सामने आ बैठा। बहुत से

---

* मैने इंग्लिस्तान के सबसे बडे कॉच के तख्ते बनाने वाले कारखाने को सारा ब्योरा लिख भेजा पर वे इस काम मे हाथ डालने को तैयार न हुए क्योकि विशुद्धानद जी ने शीशे की बनावट के बारे मे जो शर्ते लगायी थी उनको पूरा करना असभव था। उन्होंने साफ ही प्रकट कर दिया कि यह किसी कारखाने के मालिक की समझ के परे की बात है कि कोई ऐसी राह निकले जिससे काच एकदम हवा के बुलबुलो से खाली हो, पारदर्शिता मे कुछ न्यूनता लाये बिना काचो को रग सके और सचमुच $\frac{1}{4}$ अगुल से अधिक मोटाई का शीशा ठीक ठीक तैयार हो। उन्होने बताया कि इस मोटाई का शीशा बन जाय तो भी उन्हे आधे आधे करके भेजना होगा नही तो बनारस तक पहुँचते पहुँचते उनके टूट जाने की बडी ही सभावना थी।

चेले एक एक करके चले गये थे , सिर्फ दो चार ही रह गये थे। कविराज जो मेरी बगल में बैठे हुए थे। अध्ययन की गहरी छाप वाले अपने मुख को गुरुदेव की ओर करके वे गहरी श्रद्धा के साथ उन्हें निहार रहे थे।

पल भर के लिए विशुद्धानंद जी ने मेरी ओर ताका और फिर फ़र्श की ओर गौर से देखने लगे। उनके व्यवहार मे एक उदात्तता और एक प्रकार के संकोच का मिलाप था। उनके मुख पर एक अलौकिक गंभीरता झलक रही थी। वह गंभीरता उनके चेलों के चेहरों में भी प्रतिबिंबित हो रही थी।

विशुद्धानंद जी की इस गंभीरता के तले क्या छिपा है इस बात के जानने की कोशिश करके भी मैंने कुछ नही पाया। जैसे इस पवित्र नगरी के स्वर्ण मंदिर का गर्भगृह मुझ पश्चिमी के लिए दुर्गम है ठीक उसी भाँति इनका मन मेरे लिए दुरूह और दुर्बोध जँचने लगा। वे प्राच्य तिलिस्मों के अजीब विज्ञान में बड़े ही निष्णात है। मेरे मन में यह दृढ़ धारणा बैठ गई कि हालाँकि दुबारा मेरी प्रार्थना के पहले ही इन्होने अपने करिश्मे दिखा दिये थे तो भी हमारे आपस में हमेशा ही एक दुर्गम मानसिक अवरोध खड़ा हुआ है। मुझे भासने लगा कि यहाँ पर तो मेरी ऊपरी आवभगत हुई थी। यहाँ पश्चिमी शिष्य और पश्चिम के गवेषकों की कोई आवश्यकता नही थी।

अचानक उन्होंने एक ऐसी बात कह डाली जिसकी मुझे तनिक भी आशा नहीं थी। उन्होने कहा :

"जब तक मुझे अपने तिब्बत के गुरू से अनुमति प्राप्त न हो तब तक मैं यदि चाहूँ तो भी तुमको दीक्षा नही दे सकता। इसी शर्त पर मुझे काम करना पड़ता है।"

क्या वे मेरे मन की बाते ताड़ गये ? मैने उनकी ओर ताका। उनके उन्नत ललाट पर कुछ अस्पष्ट सिकुड़न पड़ गई। जो हो, मैने उनका शिष्य होने की कोई लालसा प्रकट नही की थी। किसी का चेला बनने का मै उतना उतावला नही था। पर एक बात का तो मुझ को निश्चय हो ही गया था। यदि भूल से भी ऐसी कोई प्रार्थना करूँ तो 'नही' के निराशाजनक उत्तर के सिवा और कुछ भी हाथ नही लगेगा। मैने पूछा :

" आप के गुरू यदि सुदूर तिब्बत मे है तो आप उनसे अनुमति कैसे ले सकते है ?"

उन्होने जवाब दिया—"हम दोनो के बीच आत्मिक जगत में व्यवहार अच्छी तरह चलता है।"

मै सुन तो रहा था पर कुछ भी समझ मे नही आता था। तव भी उनकी उस आकस्मिक बात से मेरा मन थोड़ी देर तक भटक गया। मै गहरे सोच मे पड़ गया। बे समझे बूझे मै यह प्रश्न कर वैठा :

" महाशय, 'संबोध' किस तरह प्राप्त हो सकता है ? "

विशुद्धानंद जी ने उत्तर न देकर उलटे मुझसे ही एक प्रश्न किया--" जब तक योग का अभ्यास न करो संबोध प्राप्त कैसे होवे ?"

चन्द मिनट तक मै इन बातो के अर्थ पर मनन करता रहा। और तब बोला—" लेकिन मुझे बताया गया है कि बिना गुरू के योग के सफल अभ्यास की बात तो दूर रही उसका श्री गणेश भी किया नही जा सकता। सच्चे गुरुओ का होना दुर्घट है।"

उनके चेहरे का रंग नही बदला। वे उसी भांति उदासीन और अविचल बने रहे। बोले :

"जिज्ञासु तय्यार हो तो गुरू अपने आप मिल जावेंगे।"

मैंने अपनी शंकाओं की पोथी खोली तो वे अपने मज़बूत हाथ को सामने बढ़ाकर बोले :

" पहले मानव को चाहिए कि वह अपने आप को तय्यार कर ले , फिर चाहे वह कहीं भी रहे, गुरू प्राप्त हो ही जावेंगे। यदि हाड़-माँस में गुरू का प्रत्यक्ष न भी हो तो भी वे जिज्ञासु की अंतर्दृष्टि के रूप में प्रकट होवेंगे।"

" इस साधना का प्रारम्भ कैसे हो ?"

" प्रतिदिन एक निश्चित समय पर निश्चित अवधि तक यह सहज आसन मार कर बैठने का अभ्यास करो। यह तुम्हारी तैयारी में खूब मदद पहुँचावेगा। सावधानी के साथ क्रोध और काम को अपने वश मे रखने की कोशिश करना।"

विशुद्धानंद जी यह कह कर पद्मासन की पद्धति मुझे दिखाने लगे। मुझ को तो वह पहले ही से आता था। मेरी समझ मे नहीं आया कि इस आसन को, जिसमें पैरों को टेढ़ा मेढ़ा करना पड़ता है, वे सहज आसन क्यों बताते है। मैं बोल उठा :

" कौन यूरोपियन युवा यह जटिल आसन जमा सकेगा ?"

" प्रारंभ में कुछ कठिनाई अवश्य होगी। हर दिन सुबह शाम अभ्यास करने से यह बहुत ही आसानी से स.खा जा सकेगा। सबसे मुख्य बात यही है कि योग के अभ्यास के लिए एक निश्चित समय ठीक कर ले और उससे किसी हालत में विचलित न होवे। शुरू शुरू म पाँच ही मिनट काफी है। एक महीने के बाद इस समय को दस मिनट तक बढ़ा सकते हो, और तीन महीने बाद बीस मिनट तक। यों ही धीरे धीरे अभ्यास की अवधि को बढ़ाते जाना होगा। ध्यान रहे कि मेरुदंड को सीधा

रक्खे। इससे साधु को एक शारीरिक समता और मानसिक शांति प्राप्त होती है।"

"तो आप हठयोग का उपदेश कर रहे है ?"

"हाँ, यह न समझना कि राजयोग हठयोग से किसी तरह बेहतर है। जैसे हर मनुष्य सोचता और विचारता है और साथ ही कार्य भी करता है उसी तरह हमे जीवन के दोनो पहलुओ को शिक्षित करना होगा। शरीर का मन पर, और मन का शरीर पर असर होता रहता है। किसो क्रियात्मिका उन्नति मे हम इन दोनो को एक दूसरे से कदापि अलग नही कर सकते।"

मुझे फिर से प्रतीत होने लगा कि ये महाशय मेरी इस तहकीकात को भीतर ही भोतर पसद नही करते। वहां के वातावरण मे ही एक प्रकार की निराशा और मानसिक जड़ता समा गई थी। मैने निश्चय कर लिया कि शीघ्र ही उनसे रुखसत लूं, लेकिन एक आखिरी प्रश्न पूछे बिना नही।

"क्या आपने जान लिया है कि जीवन का कोई ध्येय, कोई उद्देश्य सचमुच ही है ?"

मेरे भोलेपन पर उनके चेलो की गंभीरता एक मुसकान मे परिणत हो गई। ऐसा प्रश्न कोई नास्तिक ही, कोई अनजान पश्चिमी ही पूछ सकता है। वेद आदि सब हिंदू धर्म ग्रंथ क्या एक कंठ से नही बता रहे है कि ईश्वर ने अपने किसी उद्देश्य की पूर्ति के वास्ते यह सारा संसार सिरजा है और उसो वास्ते इसका पालन भी कर रहा है।

विशुद्धानंद जी ने मेरे प्रश्न का कोई उत्तर नही दिया। पं० गोपीनाथ कविराज जी की ओर।उन्होने एक बार ताका तो वे जवाब देने लगे :

"क्यों नहीं ? ईश्वर की इस सृष्टि का सचमुच ही एक उद्देश्य है। हम सबों को चाहिए कि हम आध्यात्मिक पूर्णता हासिल कर लें और ईश्वर से एक हो जावें।"

फिर एक घंटे तक कमरे मे सन्नाटा था। विशुद्धानंद जी ने एक मोटी किताब उठा ली और उसके बड़े बड़े पन्ने उलटने लगे। उसकी जिल्द पर बंगला मे कुछ छपा हुआ था। कोई कोई चेले ध्यान करने लगे, कोई सोने लगे और कोई शून्य दृष्टि से ताकने लगे। मुझ पर भी एक प्रकार की बेहोशी छाने लगी। मुझे प्रतीत होने लगा कि देर तक यहीं ठहरूं तो या तो मैं सोने लगूंगा या किसी प्रकार की बेहोशी का शिकार बनूंगा। अतः मैंने अपनी सारी शक्तियों को समेट लिया और विशुद्धानंद जी को प्रणाम करके उनसे छुट्टी ली।

× × ×

हलके भोजन के बाद इस विचित्र शहर की, जो महात्माओं तथा बदमाशों दोनों को समान रूप से आश्रय देता प्रतीत हुआ, टेढ़ी-मेढ़ी गलियों में चल पड़ा। इस नगरी के जनाकीर्ण आवास देश भर के भक्तजनों को आकृष्ट करते हैं। साथ ही नोच-खसोट करने वाले पंडों के अतिरिक्त बदमाशों और गुंडों के लिए यह खास अड्डा ही बन गया है।

गंगा जी के किनारे पर मंदिरों की घंटियां तुमल नाद करती हुई भक्तों को सांध्यकालीन प्रार्थना की वेला बता रही थीं। भूरे वर्ण के आकाश पर रात का अँधेरा झपटा ही चाहता था। साँझ के वक्त की और भी कई तरह की आवाजें उस समय नादमय वायुमंडल को गुंजा रही थी। एक ओर मुअज्ज़िनों की अजान की पुकार अपने अनुयाइयों को नमाज़ के लिए बुला रही थी।

मैं अति प्राचीन और अत्यंत श्रद्धा से पूजित गंगा जी के तट पर बैठ कर मंद पवन की हिलकोरियों से अलस भाव से झूमने वाले वृक्षों की मर्मर ध्वनि सुनने लगा।

इतने में भसम रमाये कोई साधू मेरे निकट आये। वे थोडी देर वहीं रुके। मैं उनकी ओर ताकने लगा। वे कोई महात्मा अवश्य थे क्योंकि उनकी आँखों से कोई अलौकिक ज्योति चमक रही थी। मैं समझने लगा कि जितना मैंने चाहा उस कदर इस प्राचीन भारत को समझ लेने में मुझे सफलता हाथ नहीं लगी। अचरज से डूब कर यह सोचते सोचते कि प्रच्य से कोसों दूर रखने वाली प्राच्य सभ्यता की अगाध गहराई को हम कभी पार कर सकेंगे या नहीं, मैंने अपनी जेब में हाथ डाला और मेरी अंगुलियाँ फुटकर पैसों की खोज करने लगीं। उन महाशय ने प्रशांत उदात्तता के साथ भिक्षा ग्रहण की, अपने ललाट को हाथ से छू कर नमस्कार किया और चले गये।

आकाश की किसी शक्ति के सहारे करिश्मा कर दिखाने वाले, मरी हुई चिड़ियों में, कुछ मिनट के लिए ही सही, जान फूंक कर उनमें फड़फड़ाते हुए उड़ने की ताकत पैदा करने वाले, महान् जादूगर विशुद्धानंद जी की रहस्यपूर्ण जीवन पहेली के बारे में मैंने बहुत दिन ध्यान से मनन किया। हर प्रकार ठीक और सही जँचने वाले सौर विज्ञान के बारे में उनका संक्षिप्त बयान मुझे रुचा नहीं। कोई मूर्ख ही यह सोच सकता है कि आज कल के नवीन विज्ञान ने सूर्य रश्मि में रहने वाली सारी शक्तियों का पूर्ण रूप से आविष्कार नहीं किया है। किन्तु इस मामले में कुछ ऐसी बातें जरूर थीं जिनके कारण मुझे कई प्रकार के समाधान ढूँढ़ने पड़े।

पश्चिम भारत में भी मुझे दो योगियों की खबर मिली

थी जो विशुद्धानंद जी की करामातों में से एक को, अर्थात् हवा से कई प्रकार के इत्र पैदा करना, दिखा सकते थे। मेरी बदकिस्मती थी कि पिछली सदी के अन्त में उनकी मृत्यु हो गयी। तिस पर भी जिस ज़रिये से मुझे उनकी खबर मिली थी वह ज़रूर विश्वसनीय था। दोनों के बारे में यह कहा गया था कि उनकी हथेली पर कोई सुवासित तैल जैसी वस्तु पैदा हो जाती थी मानों वह उनके ही बदन से चू गई हो। कभी कभी उसका परिमल इतना तेज़ रहता था कि सारा कमरा उस सुगंधि से खूब ही महक उठता।

यदि विशुद्धानंद जी भी इसी प्रकार की विभूति रखते हों तो सहज ही आतशी शीशे से कोई काम करते रहने का बहाना करके रूमाल पर अपने हाथ के तेल की खुशबू चढ़ा सकते हैं। गरज़ यह कि सूर्य की किरणों को कांच के द्वारा केंद्रीभूत करना आदि सभी बातें शायद हाथ के जादू के तेल को छिपा कर रूमाल पर चढ़ाने का बहाना भर तो नहीं था? मेरी इस शंका को यह बात भी पुष्ट कर रही थी कि अब तक एक भी शिष्य को उन्होंने यह मर्म नहीं सिखा पाया है। बहुत दिनों से बेशकीमती प्रयोग-शालाओं की रचना करवाते हुए उन बेचारे चेलों की आशाओं को प्रोत्साहित तो नहीं रक्खा है? उस प्रयोगशाला की रचना भी अब रुक गई है क्योंकि आवश्यक पैमाने के कांच के तख्ते हिंदुस्तान में प्राप्त नहीं हो सकते। अतः वे चेले आशा ही आशा मे प्रतीक्षा करते हुए दिन गुज़ार रहे हैं।

यदि सूर्य की रश्मि को केंद्रस्थ करना आदि, आँखों में धूल झोंकने वाला ढकोसला भर था, तो विशुद्धानन्द जी ने वह इत्र क्यों कर पैदा किया था? शायद इस प्रकार की सुगंधि पैदा करना भी एक विभूति ही है और अभ्यास से यह ताक़त भी हाथ लग

सकती है। यद्यपि मै इस जादूगर की करामातो को किसी ठीक और सही सिद्धान्त का प्रतिपादन करके नहीं समझा सका हूँ तब भी उनके प्रतिपादित सोर-विद्या के सिद्धांत का विश्वास करने की कोई आवश्यकता नही मालूम होती। फिजूल की इस माथापच्ची से क्या लाभ था? मेरा तो काम लेखक का है। जो बाते मेरे देखने मे आयी उनका ब्यौरेवार बयान करना ही मेरा कर्तव्य है, न कि असमाधेय बातो का समाधान ढूँढते रहना। भारतीय जीवन का एक ऐसा पहलू है जो हमेशा के लिए पोशीदा ही रह जायगा क्योकि यदि कभी इस मोटे, तगड़े नाटे जादूगर या उनके किसी चुने हुए चेले ने दुनियाँ के सामने अपनी अद्भुत विभूतियो का प्रदर्शन भी किया और चकित वैज्ञानिको के ध्यान को खीच भी लिया तब भी शायद ही इस रहस्य का उद्‌घाटन किया जावेगा। मेरा विश्वास है कि कम से कम मैने तो इसी प्रकार से उनके चरित्र को समझा है।

मेरे दिल मे एक आवाज़ गूँज उठी: उन्होने क्यों कर एक चिड़िया को, कुछ क्षण के लिए ही, जिला दिया? सिद्ध पुरुष का अपनी इच्छा के अनुसार ही अपने जीवन के दिनो को बढ़ा सकने की बात कहां तक ठीक है? क्या सचमुच ही कुछ प्राच्य वासियो ने चिर-जीवन के मर्म का आविष्कार कर डाला है?

इस आंतरिक प्रश्न से मुँह मोड़ कर मै आसमान की ओर ताकने लगा। उस अनंत तारांकित आकाश की अचित्य महत्ता को देखकर मै दंग रह गया। इस गरम देश के विनील आकाश के ताराओ की सी शुभ्र ज्योति मुझे और कही नही मिली। मै निश्चल दृष्टि से उन टिमटिमाने वाले ज्योति बिंदुओ की ओर ताकता ही रहा। जब फिर जाग कर

अपने समान प्राणियों तथा जड़ आवासों के अव्यवस्थित झुंड की ओर निगाह दौड़ायी तो इस दुनिया के गुप्त रहस्य का मुझ पर गहरा असर पड़ने लगा। स्थूल, प्रत्यक्ष और गोचर साधारण चीजें बहुत ही शीघ्र मिथ्यामय प्रतीत होने लगीं। नदी तल पर धीरे धीरे अठखेलियाँ करती हुई चलने वाली नौकाएँ तथा इधर उधर चलने फिरने वाली छायामय मूर्तियाँ और कहीं कहीं पर चमकने वाली उज्ज्वल दीप मालाएं सभी मिलकर उस रात के सारे वायुमंडल को किसी जादूभरे स्वप्न साम्राज्य में लिये जा रही थीं। भारत का वह प्राचीन दार्शनिक सिद्धांत कि यह सारा विश्व जलमरीचिकावत् मिथ्याभासमय है मेरे मन मे, जो वस्तु-सत्ता के ज्ञान के लिए पागल हो रहा था, पैठ कर उसकी जोरों के साथ पुष्टि करने लगा। शून्य की अथाह गहराई में इतनी तेज घूमने वाली इस पार्थिव संसार की सबसे अनूठी अनुभूतियों के लिए मै तय्यार होने लगा।

लेकिन किसी मनुष्य ने किसी जी उबाने वाले भारतीय गाने की टेक को उच्च स्वर से अलाप कर मेरी इस स्वर्गीय स्वप्निक अनुभूति को बड़ी ही कर्कशता से ठेस पहुँचायी। मैं उस अनिश्चित सुखों और अचिंतित दुःख के मिश्रित जाल का, जिसको मनुष्य जीवन कहते हैं, फिर से प्रेक्षक बना।

१२

ज्योतिष के चमत्कार

चारों ओर उज्ज्वल धूप छाई हुई थी। मंदिरो के ऊँचे कलश विमल प्रकाश मे कौंध रहे थे। गङ्गा जी में स्नान करने वालो का तुमुल नाद आसमान को गुँजा देता था। बनारस के घाटो की यह कल्लोल भरी प्राच्य शोभा मेरी अजनबी आँखो को बिलकुल नई प्रतीत हो रही थी।

एक भारी नाव मे, जिसका अग्रभाग काले नाग का सा था, अलस भाव से मै बहाव की ओर बढ़ता जाता था। मै नाव की छोटी कोठरी की छत पर बैठा हुआ था और तीन मल्लाह नीचे बैठ कर डाँड चला रहे थे।

मेरे साथ बंबई का एक व्यापारी भी था। उसने मुझ से कहा—"मै जब बम्बई लौट जाऊँगा तो अपने कारबार से अलग हो जाऊँगा।" वह बड़ा ही धार्मिक पुरुष प्रतीत हो रहा था। स्वर्ग मे भोग करने के लिए पुण्य की राशि इकट्ठी करते हुए व्यवहार मे दक्ष होने के कारण, बैंक मे काफ़ी पूँजी इकट्ठा करके रखना वह नहीं भूला था। हम दोनो का एक सप्ताह का परिचय था। वह सुशील, दयावान और मिलनसार था।

अपनी बात को और भी समझाते हुए उसने कहा—"सुधी बाबू की भविष्यवाणी के अनुसार ही उन्हीं की बतायी हुई अवस्था मे मै व्यापार से निवृत्त हो रहा हूँ।"

इस विचित्र बात से मेरा दिल उछल कर ओठों तक आ गया। उत्सुकता के साथ मैंने पूछा—"सुधी बाबू? वे कौन हैं?"

"आप नहीं जानते। वे बनारस भर में बहुत ही चतुर और निपुण ज्योतिषी हैं।"

मैं कुछ तिरस्कार के साथ गुनगुनाया—"एक ज्योतिषी!"

मैंने इन्हीं ज्योतिषियों के झुंड को बम्बई के मैदान की धूल में बैठे देखा था। कलकत्ते की ऊमस भरी दूकानों मे भी इनके भाईबन्दों को बैठे पाया था। जहाँ जहाँ यात्री गुज़रते है वहाँ, चाहे वह कैसा ही छोटा कसबा क्यों न हो, मैंने इनको इकट्ठे होते देखा है। उनमें बहुतेरे गंदे रहते हैं और अपने वालो को भद्दी जटाएँ बनाये रखते हैं। अंधविश्वास और अज्ञान की अमिट मुद्रा उनके चेहरो पर अंकित रहती है। उनका पेशा तेल से चिकनी दो तीन पुरानी जिल्दें और कुछ विचित्र चिह्न वाली एक जंत्री से चल जाता है। ये खुद तो लक्ष्मी की कृपाकटाक्ष से वंचित रहते हैं और दूसरों के भाग्य परखने की इनकी उत्सुकता देख कर प्रायः मेरे मन में तिरस्कार के भाव उठे हैं।

मैं धीमी आवाज़ में, मानो सलाह दे रहा था, बोला—"तुम्हें देख कर मुझे आश्चर्य होता है। व्यापार वाणिज्य करने वाले को सितारों के भरोसे बैठे रहना और और ज्योतिषियों की मीन-मेख का विश्वास करना क्या खतरनाक नहीं है? तुम नहीं सोचते कि सांसारिक अनुभव ही इसकी अपेक्षा एक उत्तम मार्गदर्शक है?"

सेठ जी ने मेरी ओर देख कर सहनशीलता के साथ मुस्कराते हुए कुछ सिर हिलाया।

"मेरे बारे मे जो यह भविष्यवाणी की गयी है उसे आप कैसे समझ सकेगे। आप को मालूम हो कि मै चालीस से कुछ ऊपर का हूँ। किसने सोचा होगा कि मै इतनी छोटी उम्र मे कारोबार से हाथ खीच लूँगा।"

"शायद संयोग ही इसका कारण हो?"

"खैर मै आप को एक छोटा किस्सा सुना दूँ। कुछ साल हुए लाहौर मे एक बड़े ज्योतिषी जी से मेरी भेट हुई थी। उनकी सलाह पर बड़े पैमाने के एक कारोबार मे मैने हाथ लगाया। उस समय एक बड़े सौदागर का और मेरा एक साथ साझा था। मेरे साझेदार ने मुझे सचेत किया कि बात जोखिम की है। अतएव वह मुझसे सहमत नही हुआ। इसी बात पर हम दोनो का साझा टूट गया। मैने अकेले ही करोबार जारी रक्खा। उसमे मुझे आश्चर्यजनक सफलता हाथ लगी और मेरे पास कुछ पूँजी भी इकट्ठी हो गई। सोचिये तो सही कि यदि मुझे लाहौर के ज्योतिषी ने जोर देकर बढ़ावा न दिया होता तो मै भी इस काम मे हाथ डालते डर गया होता।"

"तो क्या आप का यही विश्वास है कि ."

मेरे साथी ने मेरा वाक्य पूरा कर दिया—"हमारे जीवन को चलाने वाली एक नियति है और ताराओ के स्थान आदि से उस नियति का पता भी लग सकता है।"

"जिनसे मेरी भेट हुई है वे ज्योतिषी तो निठल्लू अनाड़ी और जाहिल दिखाई पड़े। उनको देखकर मुझे यह विश्वास नही होता कि किसी को भी वे उपयोगी सलाह कैसे दे सकते है।"

"देखिये तो, आप भ्रम मे पड़ कर सुधी बाबू जैसे पंडित और विद्वान ज्योतिषी को भी उन मूर्खों की श्रेणी का कैसे मान

लेंगे ? वास्तव में वे मूर्ख हैं भी ऐसे ठगों और छलिये। लेकिन मुर्धा बाबू की बात कुछ और है। वे बहुत बुद्धिमान ब्राह्मण हैं। उनका अपना एक बड़ा भारी मकान है। वर्षों उन्होंने इस विषय का गहरा अध्ययन किया है और उनके पास अनेक अपूर्व ग्रंथ भी हैं।"

एकबारगी मुझे प्रतीत हुआ कि मेरा साथी मूर्ख नहीं है। वे इस जमाने के उन नई रोशनी वाले हिंदुओं के समान हैं जो उत्साही और कार्यदक्ष हैं और जो पश्चिमी सभ्यता के उत्तम से उत्तम, नये से नये आविष्कारों से लाभ उठाने से हाथ नहीं खींचते। कुछ बातों में वे मुझ से भी कुछ कदम आगे बढ़ गये हैं। उनके पास नाव ही में एक चल-चित्र वाला केमरा था जब कि मेरे पास केवल एक साधारण जेबी केमरा ही था। उनके नौकर ने, जो सफर में काम देने वाली बरफ की बोतल जैसी बढ़िया चीज न रखने की मेरी शोचनीय लापरवाही पर मानों उलहना दे रहा था, बोतल से एक प्याला शरबत ढाल दिया। उनकी बातों से मुझे मालूम हुआ कि बंबई में रहते वक्त टेलीफोन से वे इतना काम लिया करते हैं जितना कि मैंने यूरोप में कभी भी नहीं लिया है। तिस पर भी उनका ज्योतिषियों पर ऐसा विश्वास! उनके स्वभाव की इन बेतुकी बातों को देखकर मैं चकित हो गया।

"भाई, हम एक दूसरे को अच्छी तरह समझ लें। आप क्या इस सिद्धांत के कायल हैं कि ये तारे, जो भूमंडल से कहीं दूर पर हैं—इतनी दूरी पर जिसका कुछ ख्याल तक नहीं किया जा सकता—हर एक मानव के जीवन और हर एक सांसारिक घटना पर अपना प्रभाव डालते हैं और उनका नियमन करते हैं ?"

सेठ ने शांतभाव से उत्तर दिया—"जी हाँ।"

मुझे कुछ भी नहीं सूझता था कि मै क्या कहूँ। मै एकदम हैरत मे आ गया था। सेठ जी कुछ नरमी से बोलने लगे .

"महाशय, आप ही जाकर क्यो नही परख लेते। जाकर देखिये कि सुधी बाबू आपके बारे मे क्या क्या बता सकते है। मुझे भी उन झूठे छलियो से कोई प्रेम नही है। किन्तु सुधी बाबू की सच्चाई पर मेरी श्रद्धा और विश्वास है।"

"पेशगोई को एक पेशा बना लेने वालो पर मेरा घोर अविश्वास है। तो भी आपकी बात का मै विश्वास करता हूँ। आप इस ज्योतिषी से मेरा परिचय करा देगे ?"

"बेशक। कल सुबह मेरे यहाँ नाश्ता कीजिये। फिर दोनों एक साथ उनसे मिलने जावेगे।"

हमारी नाव अथाह जल पर तैरती जा रही थी। आँखो के सामने आलीशान मकानो, महलो, पुराने मदिरो तथा फूल चढ़ाये हुए छोटे छोटे पूजा गृहो आदि का एक निराला दृश्य छाया हुआ था। स्नानार्थियो से खचाखच भरी हुई विशाल घाटो की पथ-रीली सीढ़ियाँ सामने दिखाई देती थी। बड़ी उदासीनता के साथ अलस भाव से हमारी नाव अठखेलियाँ करती आगे बढ़ रही थी। मेरा मन इस विचार मे डूब गया था कि यद्यपि विज्ञान अधविश्वास की बढ़ती को रोकने का उचित ही दम भरता है, तथापि मुझे अभी सीखना है कि वैज्ञानिक के रुख का भी कहीं न कहीं अंत हो जाता है। भारत के सभी लोग नियतिवाद के कायल है और उनके समान विश्वास रखने वाले मेरे साथी यदि इस नियति के अस्तित्व के प्रमाण मे अचूक और अभ्रान्त घटनाये पेश कर सकते है, तो मुझे जरूर चाहिये कि मै उनकी खुले दिल से समीक्षा करूँ।

× × ×

दूसरे दिन मेरे सुशील साथी मुझे एक पुरानी तंग गली मे ले गये। गली के दोनो ओर चपटी छतवाले मकान झुंड के झुंड खड़े थे। हम एक पुराने पथरीले घर पर रुक गये। वे मुझे एक तंग, नीची छतवाली राह से ले गये। फिर हम कई पत्थर की सीढ़ियों पर, जो आदमी के बदन की जितनी चौड़ी थीं, चढ़ कर जाने लगे। तब एक तंग कमरा आया। सामने एक बरामदा था। बरामदे के उस ओर एक विशाल आँगन था। उसी आँगन के के चारो ओर घर बना हुआ था।

वहाँ एक जंजीर से एक कुत्ता बँधा हुआ था। हमे देखकर वह जोर से भूंकने लगा। बरामदे मे एक कतार से बड़े बड़े गमले रक्खे हुए थे। हर एक मे एक न एक प्रकार का क्रोटन पौधा लगा हुआ था। अपने साथी के पीछे पीछे एक अँधेरे कमरे मे मैंने प्रवेश किया और साथ ही कुछ छोटे छोटे पत्थरो के टुकड़ों से मेरा पाँव अटक गया। मैं गिरते गिरते बच गया। नीचे देखा तो मालूम हुआ कि बरामदे के फर्श पर जैसी मिट्टी पड़ी हुई थी वैसी ही मिट्टी यहाँ भी थी। मुझे अचरज हुआ कि क्या तारा-मंडल की खोज से थक कर ये ज्योतिषी कभी कभी पौधे लगा कर अपना दिल बहलाते हैं।

मेरे साथी ज्योतिषी जी को पुकारने लगे। उन पुरानी दीवारो से उस नाम की प्रतिध्वनि गूंज उठी। हम दो तीन मिनट और ठहरे।

मै सोचने लगा कि शायद हमारा आना व्यर्थ हुआ कि इतने मे ऊपर की छत से किसी के चलने की आहट मिली। शीघ्र ही किसी की पदध्वनि हमारी ओर आती सुनाई दी।

दरवाजे पर हमे ज्योतिषी जी की पतली मूर्ति एक हाथ में एक लैम्प लिये और दूसरे मे चाबियो के गुच्छे को झनझनाते

हुए दिखाई दी। उस कमरे की धुँधली रोशनी मे कुछ मिनट तक बातचीत हुई और फिर ज्योतिषी जी ने और एक दरवाज़ा खोल दिया। उन्होने दो भारी परदे हटाकर छज्जे की लम्बी खिड़कियो के किवाड़ खोल दिये।

एकबारगी खुली खिड़कियो से रोशनी भीतर घुस पड़ी। उस रोशनी से ज्योतिषी जी का मुख और भी साफ नज़र आने लगा। उनकी मूर्ति प्रेतलोक की सी प्रतीत हुई। वे हाड़-मांस वाले आदमी मालूम नही होते थे। इसके पूर्व मैने किसी को विचार और विमर्श करते करते इतना फीका और इतना मरीज सा बनते नही देखा है। उनकी मृत्यु की सी चितवन, बहुत ही दुबला पतला शरीर, संसार भर से निराली धीमी चाल, सभी ने मिलकर एक जादू फेर दी। इस विचार को उनकी आँखो की सफेदी और भी अधिक पुष्ट कर रही थी क्योकि उनकी सफेदी उनकी पुतलियो की कजली से एकदम निराली दिखाई पड़ती थी। वे एक बड़ी मेज के सामने बैठ गये। मेज़ पर कई प्रकार के कागज़ अंधाधुंध पड़े हुए थे। मुझे मालूम हुआ कि वे अच्छी तरह अंग्रेज़ी बोल सकते है, लेकिन बहुत कहने सुनने पर ही दुभाषिए की मदद के बिना मुझ से सीधे बातचीत करने को वे राज़ी हुए।

मैने कहा—"आप यह स्पष्ट रूप से समझ जाइये कि मै जिज्ञासु हो कर आया हूँ, विश्वासी हो कर नही।"

उन्होने अपना दुबला सिर हिला दिया। कहा—"हाँ, मै तुम्हारी जन्मपत्र बना दूँगा। तब कहना कि तुम खुश हो या नही।"

"आपका मेहनताना क्या है?"

"कुछ भी निश्चित नही है। आदमी अच्छी औकात के हों तो ६० रु० तक देते है और कोई २० रु० ही। तुम्हारी खुशी, जो चाहो सो दो।"

मैने पहले भविष्य की अपेक्षा भूत को जानने की उनकी ताकत परख लेने को अपनी चाह प्रकट की। यह उनको स्वीकार था।

थोड़ी देर तक वे मेरी जन्म तिथि के बारे में कुछ हिसाब लगाने में लगे रहे। लगभग दस मिनट बीते कि उन्होने फर्श की ओर झुक कर एक अस्तव्यस्त पड़े हुए पुराने कागजो और पांडुलिपि वाले पत्रों के ढेर को छान डाला। अन्त को उनमे से कुछ पुराने कागजो का एक छोटा बंडल निकाला। एक कागज़ के तख्ते पर एक अजीब चित्र खींच कर उन्होने कहा :

"जब तुम जन्मे थे उस समय की राशियो की यह स्थिति थी। ये संस्कृत श्लोक चित्र की हर एक बात पर रोशनी डालते है। अब मै बता दूँ कि सितारे तुम्हारे बारे में क्या किस्सा सुना रहे है।"

बड़े गौर के साथ उन्होने चित्र को परखा और अपने स्वभाव के ठीक अनुकूल, भावशून्य धीमी आवाज़ मे बोले—"तुम पश्चिम के एक लेखक हो ? क्या यह ठीक है ?"

मैने स्वीकार किया।

उसके बाद वे मेरी किशोरावस्था और जवानी की कथा सिलसिलेवार सुनान लगे। मेरे वचपन की कुछ खास घटनाओ का उन्होने ज़िक्र किया। मेरे भूत जीवन के बारे मे उन्होने कुल सात बाते बतायी। उनमें पाँच प्रायः सही निकली। बाकी दो एकदम गलत थी। अतः मै उनकी अच्छी कद्रदानी कर सका। कहाँ तक उनकी बातें ठीक निकलेंगी, मुझे एक ढंग से मालूम हो गया।

उनकी ईमानदारी मे कोई शक न था। मुझे विश्वास हो गया कि वे भूल कर भी धोखा नही दे सकते। सर्वप्रथम परीक्षा मे बारह आने की सफलता ही इस बात की काफी गवाह है कि हिंदू ज्योतिष शास्त्र कोई गपोड़बाज़ी नही है, उसकी अच्छी गवेषणा और खोज होनी चाहिये। उनकी उस आंशिक सफलता ने यह भी प्रकट कर दिया कि ज्योतिष शास्त्र एकदम ठीक और अभ्रान्त शास्त्र नही है।

एक बार फिर सुधी बाबू अपने बिखरे कागजो मे तल्लीन हो गये और मेरे चरित्र का काफी सफलता के साथ बयान करने लगे। बाद को मेरी उन मानसिक शक्तियो का उन्होने जिक्र किया जिनके कारण मुझे एक बड़ा ही अनुकूल पेशा हाथ लगा। जभी वे अपना सिर उठा कर मुझ से पूछते—'क्यो ठीक है न?' मै उनके विरुद्ध मुँह खोल नहीं सका।

उन्होने अपने कागजो को उलट पलट दिया। मूक हो कर पंचांग को ग़ौर से देखा और भविष्य की कथा बखानने लगे :

"तुम्हारे लिए संसार ही घर होगा। तुम बड़े लम्बे सफर करोगे। तो भी अपनी लेखनी नही छोड़ोगे।"

इसी सिलसिले मे वे पेशगोई करते गये। मै किसी भाँति उनकी पेशगोइयो की परख नही सकता था, अतः मैने उनके सच होने या न होने की चिंता छोड़ दी।*

अपनी बात समाप्त करते हुए उन्होने मुझ से पूछा कि मुझे

---

*उनकी पेशगोई को मैने अपने शक्कीपन के कारण अनहोनी ठहरा कर खूब ही दिल्लगी उड़ायी, लेकिन वह एकदम ठीक निकली। एक घटना तो बतायी हुई तारीख पर घटी। अन्य बातों की सत्यता का निरूपण काल ही करेगा।

संतोष मिला या नहीं। इस विचित्र विज्ञान के द्वारा मेरी चालीस बरस की जिंदगी का उन्होंने काफी सफलता के साथ हाल बताया और मेरे मानसिक जगत की मेरे लिए तसवीर खींचने की कोशिश में करीब करीब उन्हे पूरी कामयाबी हाथ लगी। अतः टीका टिप्पणी करने का जो मेरा हौसला था वह एकदम जाता रहा।

मेरी इच्छा हुई कि अपने ही दिल से पूछ लूँ कि 'क्या यह आदमी यों ही केवल अन्दाज तो नही लगा रहा है ? होशियारी के साथ केवल अटकलपच्चू बातें तो नही कर रहा है ?' किन्तु मुझे दिल से स्वीकार करना ही पड़ता है उनकी पेशगोइयो का मेरे ऊपर काफी असर पड़ा। तो भी उन बातो का सच्चा मूल्य क्या है इसे काल चक्र ही साबित कर सकता है।

कर्मवाद के गूढ प्रश्न की ओर हम पश्चिमियो का जो रुख है उसको किसी घरौंदे के समान ही एकदम ढहा देना होगा ? मै खिड़की के पास गया और जेब के रुपयो को झनझनाते हुए मैने सामने वाले मकान पर निगाह दौड़ायी। अन्त को अपनी जगह पर लौटकर मैंने ज्योतिषी जी से अपना संशय प्रकट किया। उन्होंने बड़ो नरमी से जवाब दिया—"आप इस बात को एकदम असंभव क्यों मानने लगते है कि दूर के तारे आदमियो के जीवन पर असर डाले। लहरों के ज्वार-भाटे पर दूर के चद्र का क्या प्रभाव नही पड़ता ? स्त्रियों के शरीर मे हर महीने एक परिवर्तन नही हो रहा है ? सूर्य के उदय न होने से मानवों मे मायूसी और उदासी अधिक नही छा जाती ?"

"जी हाँ, लेकिन ये बाते ज्योतिष के दावे को कैसे साबित करेंगी ? बृहस्पति या मंगल को इस बात की तनिक भी चिन्ता क्यो रहे कि किसी मनुष्य की नाव डूबेगी या नही ?"

उन्होने अपनी प्रशांत दृष्टि मेरी ओर फेरी और बोले :

"यही बेहतर है कि आप इन ग्रहो को आसमान मे रहने वाले चिह्न मात्र मान लें ; वास्तव मे हमारे ऊपर जो प्रभाव पड़ता है वह उन ताराओ का नही है, वह तो हमारे अपने कर्मों का है। ज्योतिष शास्त्र तर्क की कसौटी पर खरा निकलेगा। पर यह बात तब तक आप पर प्रकट नही हो सकती जब तक कि आप आवागमन और जन्म के पीछे लगे रहने वाले कर्म नियम को मान न ले। अपने कुकर्मों का फल पाने से कोई एक जिन्दगी मे बच भले हो जाय, पर फिर भी उसे उनके दंड को दूसरे जन्म मे ज़रूर ही भुगतना पड़ेगा। हो सकता है एक जन्म में अपने सुकृत का फल न भी मिल जाय पर दूसरे जन्म मे वह उसका भागी अवश्य बनेगा। जब तक जीव सिद्धावस्था को न पहुँच जाय तब तक उसका इस प्रकार की जन्म-मृत्यु परंपरा से किसी भी प्रकार से निस्तार नही हो सकता। इस सिद्धांत को यदि स्वीकार न करे तो हमे भिन्न भिन्न लोगो के भोग-भाग्य के अनियत हेर-फेर को केवल अंध-भाग्य और आकस्मिक संयोग का फल मात्र बताना पड़ेगा।

क्या न्यायप्रिय ईश्वर कभी ऐसा अंधेर देख सकता है? कभी नही। हमारा विश्वास है कि मरने पर आदमी का चरित्र, उसकी कामनाये, विचार आदि नष्ट नही होते। दूसरा कलेवर जब तक न मिल जाय वे रहेंगे ही। और अपनी अनुकूल योनि पाने पर वे नवजात शिशु के रूप मे दुनिया मे प्रवेश करेगे। पूर्व जन्म मे किये सुकृत या दुष्कृत का उचित पुरस्कार या दंड इस जन्म मे नही तो आगामी जन्मो मे अवश्य मिलेगा। हम नियति की सार्वभौमिकता को इसी प्रकार समझाते है। जब मैने यह कहा कि तुम्हारा जहाज टूट जायगा और अपने जीवन

में जलमय समाधि प्राप्त होने की भयानक संभावना का तुम्हें सामना करना पड़ेगा तो जानो कि भगवान ने अपने गुप्त न्याय के अनुसार तुम्हारे जीवन मे यही निर्धारित किया है, और वह भी पूर्व जन्म मे किये हुए किसी कर्म के फल स्वरूप। ग्रहों के प्रभाव से तुम्हारा जहाज़ नहीं टूटेगा वरन् अपने दुर्निवार कर्म संचय के अवश्यम्भावी परिणाम के कारण। ग्रह और उनकी स्थिति से तुम्हारी नियति का केवल पता लगता है; ऐसा क्यों होता है मै कह नही सकता। किसी एक आदमी के दिमाग में ज्योतिष शास्त्र का ईजाद करने की ताकत कभी नहीं रही होगी। किसी ने इस शास्त्र की सृष्टि नहीं की होगी। पुराने ज़माने से वह चला आ रहा है; लोक संग्रह के लिए महर्षियों ने इस शास्त्र का, पुराने ज़माने मे, उन्मीलन किया होगा।"

उनकी बाते सच्ची भास रही थीं। क्या कहूँ सो मुझको नहीं समझ पड़ा। वे आदमी की आत्मा को, आदमी के सर्वस्व को जड़ नियति के सिपुर्द कर रहे थे। लेकिन पश्चिम का कोई भी व्यक्ति 'संकल्प की स्वतंत्रता' के सिद्धान्त जैसे अमूल्य रत्न से वंचित रहना कब पसन्द करेगा? गति प्रधान, क्रियाशक्ति से पूर्ण पश्चिम का कौन निवासी इस विश्वास को सुनकर फूले अंग न समायेगा कि उसकी हर बात का निर्णय उसका 'स्वाधीन संकल्प' नहीं कर रहा है वरन् केवल एक जड़ नियति। स्वाप्निक जगत मे रहने वाले, ज्योतिर्मंडल के दूरवर्ती चिह्नों की खाक छानने वाले इस दुबले व्यक्ति के ज़र्द चेहरे की ओर अचरज मे डूबे हुए मैने एक बार ताका और कहा:

"आप जानते है कि दक्षिण के कुछ प्रान्तो में पुरोहितों के बाद ज्योतिषी का भाग्य खूब चमकता है? उनसे पूछे बगैर कोई भी बड़ा काम नहीं किया जाता। हम विलायतियो के लिए

यह हँसी की बात मालूम होगी क्योंकि भविष्यवाणियो से हमें कोई प्रेम नही होता। हम अपने को स्वतंत्र समझना पसन्द करते है न कि दुर्निवार नियति के हाथो की बेबस कठपुतली।"

कंधे झाड़कर ज्योतिषी ने कहा :

"हमारे यहाँ 'हितोपदेश' मे कहा गया है कि भाग्य मे जो लिखा है उसे कोई नही बदल सकता।"

ज्योतिषी जी कुछ देर तक अपने शब्दो का असर देखने के लिए रुके, फिर बोले :

"तुम कर क्या सकते हो ? अपने कर्म फल भोगना ही पड़ेगा।"

लेकिन इसी बात मे मेरा संदेह था। अतः मैंने उनके सामने अपना विचार रक्खा।

कर्म-फल-भोग-सिद्धांत के ये प्रवक्ता कुर्सी से उठकर खड़े हो गये। मैंने इस सकेत का अर्थ समझ लिया और बिदा लेने को तैय्यार हुआ। वे फिर कुछ गुनगुनाने लगे :

"सब कुछ ईश्वर के हाथ मे है। वे ही सर्वशक्तिमान हैं। उनसे कुछ भी, कोई भी छिप नही सकता। हममे कौन ऐसा है जो सचमुच ही आजाद हो ? कौन ऐसी जगह है जहाँ भगवान् न हो ?"

दरवाज़े पर रुक कर कुछ सकुचाते हुए उन्होने कहा :

"यदि आप फिर आना चाहे तो आ सकते है। हम इन बातो पर और भी विचार करेगे।"

मैंने धन्यवाद दिया और उनका न्यौता स्वीकार किया।

"खैर, कल आपकी राह देखता रहूँगा, सूर्य ढलने पर, छ. बजे के करीब।"

× × ×

दूसरे दिन गोधूलि के समय मैं ज्योतिषी के घर पर गया। उनकी हाँ में हाँ मिलाने का मेरा तनिक भी विचार नहीं था। साथ ही उनकी बातों को अस्वीकार करने का भी मैंने कोई बीड़ा नही उठाया था। मै उनकी बातें सुनने के लिए, शायद कुछ सीखने के लिए भी, तैय्यार होकर आया था। पर सीखना और न सीखना, सब कुछ इसी बात पर निर्भर था कि उनकी बाते कहाँ तक प्रयोग से परखी जा सकती है। इस समय मै कुछ प्रयोग करने के लिए तैयार था, लेकिन उसी हालत मे जब कि उनकी पुष्टि में ध्रुव प्रमाण पेश किये जाँय। तब भी सुधी बाबू ने मेरी जन्मपत्री के बारे मे जो कुछ बताया था उसने मेरे दिल मे यह धारणा पैदा कर दी थी कि हिंदू ज्योतिष शास्त्र अंधविश्वास का एक असभ्य पोथा नही है, वरन् वह एक ऐसा शास्त्र है जो गहरी खोज के योग्य है। उस समय के मेरे विचार इसी निश्चय पर पहुँचे थे।

हम दोनो एक दूसरे के सामने होकर बैठ गये। वे अपनी लम्बी मेज़ के सामने आसीन थे। एक छोटा सा दिया अपनी धुंधली रोशनी चारो ओर बिखेर रहा था। मैने सोचा इसी तरह के दिये आज भारत के लाखों घरों मे जलाये जाते होंगे।

ज्योतिषी जी ने मुझको बताया :

"मेरे मकान में चौदह कमरे है। सब के सब प्रायः संस्कृत की पुरानी पाँडुलिपियो से भरे पड़े है। मै अकेला तो हूँ, तब भी इन्हीं के वास्ते मुझे इतने विशाल भवन की ज़रूरत हुई है। आइये, मेरे ग्रंथागार को देख लीजिये।"

लालटेन हाथ मे लेकर वे मुझे राह दिखाने लगे। हम एक दूसरे कमरे मे आ गये। दीवारों से सटी हुई कई खुली पेटियाँ

थी। उनमे से एक मे मैने झाँककर देखा तो वह किताबो और कागजो से एकदम भरी हुई थी। कमरे का फर्श भी पोथियो, कागजो और ताड़पत्रो पर लिखी पाँडुलिपियो तथा काल के विकट प्रभाव से जर्जर पोथियो आदि के तले छिप सा गया था। मैने एक छोटी पोथी उठायी। उसके पन्नो के अक्षर धुंधले पड़ गये थे। उसकी भाषा भी मेरे लिए एकदम नयी थी। हम एक कमरे से दूसरे मे होते हुए सभी कमरो मे गये। हर जगह यही बात देखने मे आयी। ज्योतिषी जी का सरस्वती भवन घोर अव्यवस्था मे था, तो भी उन्होने मुझे विश्वास दिलाया कि वे अच्छी तरह जानते है कि कौन सी पोथी कहाँ पर है और कौन सा कागज़ कहाँ पड़ा है। मुझे प्रतीत होने लगा कि सारे भारत का विज्ञान एक जगह बटोरा गया है। सचमुच ही इन संस्कृत पुस्तको मे, इन प्राचीन पाँडुलिपियो के अज्ञेय अर्थवाले पत्रो मे, हिंदुस्तान का अनूठा ज्ञान बहुत अधिक मात्रा मे संगृहीत हुआ हो तो क्या आश्चर्य है ?

हम अपनी कुर्सियो के पास लौटे और ज्योतिषी जी ने मुझसे कहा :

"पुस्तको और पाँडुलिपियो को खरीदते खरीदते मेरा सारा धन लुट गया है। इनमे कई किताबे अपूर्व और बेशकीमती है। परिणाम यह है कि आज मै एकदम गरीब बन गया हूँ।"

"ये किस विषय की किताबे है ?"

"कुछ मनुष्य जीवन और दैवी रहस्यो के बारे मे है। बहुतेरी ज्योतिष की है।"

"तो आप दार्शनिक भी हैं ?"

उनके पतले ओठो पर एक मंद मुस्कान खिल उठी :

"जो अच्छा दार्शनिक न हो वह अच्छा ज्योतिषी नहीं बन सकता।"

"बेअदबी माफ हो, आप इन किताबों के कीड़े तो नहीं बने? आप से जब मेरी पहली भेंट हुई तो आपके ज़र्द चेहरे को देख मैं चकित हो गया था।"

"इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। यहाँ तो छः रोज़ का फाका है।"

मैंने अपनी व्यग्रता दिखाई तो उन्होंने कहा :

"पैसे को कोई कमी नहीं है। महराजिन छः दिन से नहीं आयी। वह बहुत ही बीमार हो गई है।"

"तो आप किसी दूसरे को क्यों नहीं बुला लेते?"

उन्होंने दृढ़ता पूर्वक सिर हिलाया और गंभीर स्वर से कहा :

"नहीं, मैं कम जातिवालों के हाथ का बनाया भोजन नहीं कर सकता। भले ही एक महीने तक उपवास करना पड़े; मुझ से यह काम नहीं हो सकता। मैं तब तक नौकरानी की प्रतीक्षा करूँगा जब तक कि वह चंगी न हो जाय। मेरी उम्मीद है कि एक-दो दिन में वह लौट आवेगी।"

मैंने गौर से उनकी ओर ताका। उनके गले में ठुड्डी के नीचे त्रिसूत्र वाला यज्ञोपवीत नजर आया। वे ब्राह्मण थे। मैंने जोर देकर कहा :

"झूठमूठ के अंधविश्वास से भरे इन परहेजों को आप क्यों मानते हैं? उससे तो आपका स्वास्थ्य कहीं अधिक प्रधान है।"

"यह अंधविश्वास नहीं है। हर एक प्राणी से एक वैद्युतिक प्रभाव प्रसारित होता रहता है। तुम्हारे पश्चिमी वैज्ञानिक

यंत्रो को उसका अब तक पता नही है। रसोई बनाने वाली महराजिन, अज्ञात रूप से, रसोई पर अपना असर डालती है। यदि रसोई बनाने वाला नीची जाति का हो तो वह रसोई को अपने हीन प्रभाव से रंजित कर देगा और वह रसोई के साथ खानेवाले के वदन मे समा जायेगा।"

"यह ग़जब का सिद्धांत है!"

"लेकिन है तो यथार्थ।"

मैने विषय वदल दिया।

"कब से आप यह पेशा कर रहे हैं?"

"उन्नीस वर्ष से मै यही पेशा करता आया हूँ। विवाह के बाद मैने इस पेशे मे हाथ डाला।"

"मै समझा।"

"नही, मै विधुर नहीं हूँ। जब मै १३ बरस का था प्रायः भगवान से प्रार्थना किया करता था कि मुझको ज्ञान दो। इसी खोज के पीछे मेरी कई प्रकार के लोगो से भेट हुई। उन लोगो से मुझे कई उपदेश मिले। अनेक अपूर्व ग्रंथराजो का पता चला। मुझे तभी से पढ़ने का ऐसा चस्का लग गया कि पढ़ते पढ़ते कभी कभी रतजगा भी किया करता था। मेरे माता-पिता ने व्याह का इन्तजाम कर दिया। मेरे विवाह के कुछ ही दिन बाद मेरी स्त्री मुझसे बिगड़ उठी और बोली—'मेरी शादी किसी मर्द से नही हुई, वरन् पुरुष के आकार वाले किताबो के एक ढेर से'। आठवे दिन उसे हमारा कोचवान उड़ा ले गया।"

सुधी बाबू कुछ रुके। मै उनकी पत्नी के उस कठोर वाक्य को सुनकर अपनी हँसी नही रोक सका। उसके विवाह के बाद इतनी जल्द किसी के साथ यो चम्पत हो जाने से उस समय

दकियानूस भारत मे एक खलबली मची होगी। लेकिन औरतों का कुछ ऐसा स्वभाव ही है जो बहुत पेचीदा होता है और किसी की समझ में नहीं आता।

सुधी बाबू कहने लगे :

"कुछ दिन बीतने पर इस आघात से मै चंगा हो गया और वह सारी घटना मुझे एकदम भूल गई। मेरी सारी भावनाओं पर पानी फिर गया था और दिल एकदम रूखा बन गया। अब मै पोथी-पत्रो, ज्योतिष और दैवी रहस्यो के अनंत समुद्र मे पहले की अपेक्षा अधिक डूब गया। तभी मैने अपने सब से बढ़िया अध्ययन का प्रारम्भ किया।"

"शायद आप मुझे उस ग्रन्थ के विषय में कुछ ज़रूर बताएंगे?"

"इस पुस्तक का नाम है 'ब्रह्मचिता'। उसका अर्थ है ब्रह्म के बारे मे मनन करना, या ब्रह्म जिज्ञासा भी उसका अर्थ हो सकता है। उसका अर्थ 'ईश्वर ज्ञान' भी हो सकता है। ग्रन्थ के हज़ारो पन्ने है। जिसका मै अध्ययन कर रहा हूँ वह उसका केवल एक भाग है। इसका संग्रह करने में मुझे बीस वर्ष लगे है क्योकि इसके छोटे-मोटे भाग कई जगह बिखर गये थे। भारत के अनेक प्रान्तो मे अपने आदमी भेज कर मैंने धीरे धीरे इसका संग्रह कराया है। इसका विषय बारह मुख्य विभागों और अनेक उपविभागो मे बॅटा हुआ है। दर्शन, ज्योतिप, योग, मरने के बाद का जीवन आदि गहरे विषय इस ग्रन्थ मे बताये गये है।"

"क्या इसका अंग्रेजी अनुवाद हो चुका है?"

"नहीं, मेरे सुनने मे नहीं आया। इस किताब का अस्तित्व ही कितनो को मालूम है? अब तक इस किताब का अस्तित्व गुप्त

रक्खा गया है। पहले पहल यह ग्रंथ तिव्वत मे मिला। वहाँ पर यह वड़ा पवित्र समझा जाता है। तिव्वत मे कुछ इने-गिने लोग ही इसका अध्ययन करते है।"

"इसकी रचना कब हुई ?"

भृगु महाराज ने हज़ारो वर्ष पूर्व इस ग्रन्थराज की रचना की थी। वह ठीक कब हुई मै वता नही सकता। आजकल भारत मे जो योग मार्ग मौजूद है उन सब से विलक्षण एक नवीन प्रकार के योग का यह प्रतिपादन करता है। तुम्हे योग से प्रेम है न ? क्यो ?"

"आप कैसे जानते है ?"

उत्तर मे सुधी वावू ने चुपचाप मेरी कुंडली दिखाई और अपनी पेसिल राशिग्रहो पर फेरने लगे। वोले :

"तुम्हारी जन्मपत्री देख कर मुझे आश्चर्य होता है। यह किसी साधारण यूरोपियन की तो मालूम नही होती। किसी हिंदू की भी विरले ही ऐसी जन्मपत्री होती है। इससे पता चलता है कि तुम्हारा योग के प्रति बड़ा भारी झुकाव है। तुम पर योगियो तथा ऋषियो की कृपा बनी रहेगी। उन महात्माओ की मदद पा कर तुम योग के रहस्यो मे खूब ही गहरे तक पहुँच जाओगे। तिस पर भी अकेले योग मार्ग से तुम्हे तृप्ति नही होगी। अन्यान्य रहस्यपूर्ण दर्शनो की भी तह तक पहुँच जाओगे।"

वे रुक कर मेरी आँखो की ओर सीधी निगाह दौड़ाने लगे। मुझे सूक्ष्म रूप से भास गया कि वे कुछ ऐसी बातें बताने जा रहे है जो उनके अंतरतम जीवन के रहस्यो से किसी प्रकार कम नही है। उन्होने कहा—"दो प्रकार के ऋषि होते है। एक वे जो स्वार्थी होकर अपने लिए ही ज्ञान का भंडार कमा लेते है, दूसरे वे

महात्मा है जो प्राप्त विज्ञान धन को जिज्ञासुओं के साथ बाँट लेते है। तुम्हारी कुंडली बताती है कि तुम्हे अब ज्ञान-ज्योति प्राप्त होने ही वाली है। तुम उस आलोक के एकदम निकट पहुँच गये हो। अतः मेरी बाते व्यर्थ नही होगी। मै अपना ज्ञान तुम्हे बताने के लिए तैय्यार हूँ।"

सारी बातो के इस नये रंग को देख कर मै दंग रह गया। पहले मै भारतीय ज्योतिष के दावे की सच्चाई परखने के लिए सुधी बाबू के यहाँ गया था। बाद में उनके ज्योतिष सिद्धांत की सच्चाई की पुष्टि से जो समाधान है उनको सुनने गया। अब अचानक ही वे योग विद्या में मेरे आचार्य बनने पर तुले हुए थे। कैसे आश्चर्य की बात है!

सुधी बाबू कहते गये :

"यदि तुम ब्रह्मचिता में बताये हुए मार्ग पर आरूढ़ हो जाओगे तो तुम्हे और किसी गुरू की ज़रूरत नही पड़ेगी। तुम्हारी आत्मा ही तुम्हारा पथप्रदर्शन करेगी।"

मै अपनी भूल पर पछताने लगा। मै चकित था कि हो न हो वे मेरे मन के भावो को स्पष्ट ही जान लेते है।

मैने सिर्फ यही कहा—"आप मुझे चकित कर रहे हैं।"

"मैने इस ज्ञान का कुछ लोगो को उपदेश दिया है लेकिन कभी भी मै अपने आपको उनका दीक्षा-गुरु नही मानता—मैं अपने को उनका सहचर, उनका मित्र मानता हूँ। इस कारण से संसार की दृष्टि में मै तुम्हारा गुरू नहीं बनूँगा। भृगु की आत्मा मेरे शरीर और मन के ज़रिये तुम्हे अपने उपदेश सुनावेगी।"

"मेरी समझ मे नही आता कि आप योग के उपदेशक होने के साथ ही साथ ज्योतिषी की वृत्ति भी कैसे कर रहे है?"

अपने पतले हाथों को मेज़ पर टेक कर सुधी बाबू बोले—"इसका उत्तर यही है, कि मै दुनियां मे रहता हूँ और अपने काम-काज से उसकी सेवा करता हूँ। मेरी इस सेवा का रूप ज्योतिषी वृत्ति है। और एक बात है। कोई मुझे योग का उपदेशक कह कर पुकारे भी तो मै उसको स्वीकार नही कर सकता, क्योकि हमारी ब्रह्मचिन्ता मे ईश्वर को छोड़ और कोई गुरु नही है। उनको ही हम अपना आचार्य मानते है। वह विश्वात्मा बनकर हमारे भीतर है और हमे उपदेश देते है। यदि स्वीकार हो तो मुझे अपना एक भाई समझ लीजिये। भूल कर भी मुझे आध्यात्मिक गुरू न मानिये। जिनके कोई आचार्य रहते है वे लोग प्रायः अपनी आत्मा पर निर्भर रहने के वदले उन्ही पर निर्भर रहते है।"

मै बोल उठा—"तिस पर भी अपनी आत्मा पर निर्भर हुए बिना सच्चा मार्ग जानने के लिए ज्योतिष का आश्रय क्यों लेना है ?"

"तुम गलती कर रहे हो। मै कभी अपनी जन्मकुंडली की ओर ताकता तक नही हूँ। विश्वास मानो कई साल हुए, मैंने उसे फाड़ डाला है।"

इस बात पर मैंने अपना आश्चर्य प्रकट किया। उन्होने जवाब दिया :

"मुझे ज्ञान का आलोक मिल गया है। राह जानने के लिए मुझे ज्योतिष की कोई आवश्यकता नही है। ज्योतिप उन लोगो के लिए है जो अंधेरे मे टटोलते जा रहे है। मेरा जीवन हो भगवदर्पण किया गया है। मै भावी और भूत का कोई विचार अपने पास नही फटकने देता और इस ढंग से अपने स्वात्मार्पण को ठीक गन्तव्य स्थान पर पहुँचा रहा हूँ। जो कुछ ईश्वर की

कृपा से मिल जाय उसी को उसका अनुग्रह समझ कर स्वीकार करता हूँ। काया, मनसा, वाचा अपना सब कुछ परमपिता के, सर्वशक्तिमान के चरणों में मैंने निछावर कर दिया है।"

"यदि कोई दुष्ट आपकी जान लेने लगे उसे भी भगवान की इच्छा समझ कर चुप रहेगे ?"

"आफत के सामने भगवान से प्रार्थना करने ही की देरी है और मुझे मालूम है कि तुरन्त उनकी शरण मिल जायगी। जो आवश्यक है वह प्रार्थना है, न कि भय। प्रायः मैं प्रार्थना करता हूँ कि भगवान ने इस तुच्छ की कैसी रक्षा की है। तो भी मेरे जीवन मे मुझे अनेक विपत्तियाँ झेलनी पड़ी। उन सब मे ईश्वर की सहायता कदम कदम पर मुझे दिखाई दे रही थी। किसी भी हालत मे ईश्वर पर अपना सारा भार डाल कर, अभय होकर विश्वास करना मै सीख गया हूँ। एक दिन आवेगा जब तुम भी इसी प्रकार भावी की सारी चिन्ताओ को तिलांजलि देकर तटस्थवत् रहने लगोगे।"

मैंने रुखाई से कहा—"उसके पहले मेरा कायापलट ही हो जायगा।"

"जरूर तुम्हारा कायापलट हो जायगा।"

"सच ही ?"

"हाँ, तुम अपनी नियति से छुटकारा नही पा सकते। यह जो कह रहा हूँ, आध्यात्मिक आलोक मे दूसरा जन्म लेना अपने आप ईश्वर के प्रणिधान से, तुम्हारी इच्छा और अनिच्छा की कुछ भी अपेक्षा रक्खे बिना, आ जायगा।

"सुधी बाबू आप अनूठी बातें करते है।"

भारत में कहीं भी जाऊँ, किसी से बातचीत करूँ तो एक-

अज्ञात ईश्वर की बात आये बिना नही रहती। खासकर हिंदुओ की जाति धर्म-प्राण है। यो ही वे भगवान का ज़िक्र करने लगते है जिससे मेरा भी दिल कई बार ललचा गया था। जिसने जटिल तर्क की वेदी पर अपने साधारण विश्वास और श्रद्धा की बलि चढ़ायी है उस मेरे जैसे शक्की पश्चिम निवासी का दृष्टिकोण कभी इनकी समझ मे आ सकता है? मुझे भासने लगा कि ज्योतिषी के साथ ईश्वर के अस्तित्व के बारे मे तर्क-वितर्क कर बैठने से न तो मेरा काम सिद्ध होगा और न किसी और प्रकार का लाभ ही होगा। वे संभवतः मुझे धार्मिक खुराक खिलाने लग जायॅ इस डर से मै बात बदल कर कम विवादग्रस्त बातो मे फिर से लग गया। बोला—"ईश्वर से मेरी भेट कभी नहीं हुई है। अतः अन्य किसी विषय की चर्चा हो तो अच्छा हो।"

उन्होने स्थिरता से मेरी ओर देखा। उनकी निराली काली और सफेदी लिये हुई ऑखें मानो मेरे अंतरंग की तलाशी ले रही थी। ज्योतिषी बोले :

"तुम्हारी जन्मकुॅडली तय्यार करने मे भूल होना असम्भव है, वरना मै अपने ज्ञान को कच्चा समझ कर सुरक्षित रखता। लेकिन ताराओ की गति मे भूल-चूक होना एकदम असम्भव है। आज जिसे तुम नही समझ सकते हो वह तुम्हारे दिमाग मे कुछ दिन तक प्रसुप्त होकर अवश्य रहेगा और फिर समय पा कर दुगुने वेग के साथ धावा करेगा। मै और एक बार तुम्हे बताये देता हूॅ। तुम्हे ब्रह्मचिन्ता का मर्म बताने के लिए मै प्रस्तुत हूॅ।"

"और मै भी उसे सीखने को।"

× × ×

हर शाम को मै उनके उस पुराने मकान पर जाता था और ब्रह्मचिन्ता की शिक्षा पाता था। उनके पतले मुख पर दीपक की

धुँधली रोशनी अपनी टिमटिमाने वाली छाया डालती रहती है और वे मुझे तिब्बत के प्राचीन योग के निगूढ़ रहस्यो की दीक्षा देते जाते हैं।* भूलकर भी वे अपने व्यवहार मे आध्यात्मिक बड़प्पन अथवा गर्व को प्रदर्शित करने की चेष्टा नहीं करते। वे विनय की मूर्ति थे। अपने प्रत्येक उपदेश को 'ब्रह्मचिन्ता मे कहा गया है' इसी वाक्य से शुरू करते थे।

एक दिन शाम को मैंने उनसे पूछा—"इस ब्रह्मचिता के योग मार्ग का परम ध्येय—परम पुरुषार्थ—क्या है ?"

"हम पुनीत समाधि की तलाश में हैं, क्योंकि उस दशा मे आदमी पर यह ध्रुव सत्य दृढ़ता के साथ प्रकट हो जाता है कि वह 'जीवात्मा' है। तभी वह बाह्य और आंतरंगिक परिस्थिति से अपने मन को मुक्त कर लेता है, बाह्य जगत का मानो लोप सा हो जाता है। वह अपने ही भीतर रहने वाला एकमात्र जीती जागती सच्ची सद् आत्मा को पहचान जाता है। उस समय

---

*इस योग मार्ग के रहस्यो को लिपिबद्ध करने की मेरी हिम्मत नही। लिख भी दें तो इनसे मेरे समान लाभ शायद ही किसी को नसीब हो। उसका साराश यही है कि उस मार्ग मे कई किस्म के ध्यान की पद्धतियाँ हैं। उनका उद्देश्य 'आत्म-भाव' की दशा पैदा करना है। इस योग मे छः प्रकार के मार्गों का अध्ययन करना पडता है। इसमे से सबसे मुख्य मार्ग पर आरूढ़ होने पर १० मुख्य सीढियो को पार करना होगा। यूरोप के साधारण निवासी को, जंगलो मे या पहाड़ी गुफाओ मे रहने वाले योगियो को सोहनेवाली, इन पद्धतियो का न तो उपयोग ही है, न अनुकूलता ही। उलटे कभी कभी ये खतरनाक भी सिद्ध हो सकती है। ऐसी क्रियाओं में असावधानी से हस्तक्षेप करने वाले पश्चिमियो को सम्भवत पागलपन का शिकार बनना पडे तो आश्चर्य ही क्या होगा।

के परम आनंद, पराशांति, अनुपमेय सर्वशक्तिमत्ता की उद्वेग-शून्य बाढ से वह प्लावित हो उठता है। अपने अंदर के दिव्य और अमर जीवन के सबूत मे ऐसी एक अनुभूति ही पर्य्याप्त होगी। फिर कभी भी वह इस अनुभूति को भूल नहीं सकता।"

एक सन्देह की छाया ने मेरे मन को घेर लिया तो मैंने प्रश्न किया—"आपको निश्चय है कि यह सब आत्मप्रेरणा का प्रभाव नही है?"

एक विकट हँसी उनके ओठो के कोनो पर लहराने लगी। बोले—"प्रसव के समय, एक मिनट के लिए ही सही, किसी माता को प्रसव की घटना की वास्तविकता मे कभी सन्देह हो सकता है? जब वह बाद मे प्रसव की इस अनुभूति का स्मरण करेगी तो क्या वह कभी अपने मन मे यह विचार ला सकती है कि प्रसव की घटना सिर्फ आत्म-प्रेरणा का फल थी? और जब उसके सामने उसका बालक गिरते-पड़ते, तनिक तनिक पॉव बढ़ाते चलने लगता है, जब वह दिन दिन बढ़ने लगता है तो क्या यह कभी सम्भव है कि माता को अपने बच्चे के अस्तित्व मे ही सन्देह हो जाय? इसी प्रकार आध्यात्मिक पुनर्जन्म की प्रसव वेदना ही ऐसी महत्वपूर्ण घटना है कि वह भुलाये नहीं भूलती। जब साधक एक बार पुनीत समाधि मे लीन हो जाता है मन के अंदर एक प्रकार की शून्यता जगह कर लेती है। उस शून्य मे ईश्वर दिखाई पड़ता है। तुम्हे यदि ईश्वर शब्द न रुचे तो मै यह कहूँगा कि मन के अन्दर आत्मा, पुरुषोत्तम, सर्व शक्तिमय विराजने लग जाता है। यदि एक बार यह अवस्था हो जाय तो फिर असम्भव है कि साधक पूर्ण आनंद से विभोर न हो उठे। उस समय विश्व-प्रेम दिल मे लहर मारने लगता है। प्रेक्षक को मालूम होता है कि शरीर केवल समाधिस्थ ही नही है बल्कि एक

प्रकार से मृतक भी बन गया है ; जब पराकाष्ठा प्राप्त होती है तो साँस भी रुक जाती है।"

"क्या यह बड़ा ही खतरनाक नहीं है ?"

"नही। समाधि केवल पूर्ण विरक्ति में प्राप्त होती है। यदि कोई मित्र साधक की खबर लेने के लिए उपस्थित रहे तो कोई हर्ज नहीं है। प्रायः मैं इस समाधि में डूब चलता हूँ और जब चाहूँ तब फिर होश मे आ भी सकता हूँ। साधारणतः मैं इस अवस्था मे दो-तीन घंटे तक रह सकता हूँ। समाधि कितनी देर तक रहे यह बात पहले ही निश्चित हो जाती है। तुम जो वाह्य विश्व का प्रत्यक्ष कर रहे हो उसे मै अपने ही अंदर देखने लगता हूँ। यह अनुभूति कैसी निराली है! इसीलिए बारम्बार मै तुमसे यही कहते आया हूँ कि जो कुछ तुम्हे सीखना है, अपनी आत्मा से ही सीखा जा सकता है। एकबार मै ब्रह्मचिता के योग शास्त्र को पूरा पूरा बता दूँ फिर तुम्हें किसी गुरू की आवश्यकता प्रतीत न होगी। किसी वाह्य मार्ग दर्शक की उस समय आवश्यकता नही जँचेगी।"

"क्या आपके कोई गुरू न थे ?"

"नही। जब से ब्रह्मचिता देखने को मिली मुझे किसी गुरू की आवश्यकता नही रही। तिस पर भी समय समय पर बड़े बड़े गुरुजन मेरे यहाँ पधारे है। यह शुभ घड़ी उसी समय आयी थी जब मै समाधि मे लीन होकर अपने अंतर्जगत की चेतना मे जगा हुआ था। ये महान् गुरुजन अपने सूक्ष्म शरीर के रूप में मुझे दिखाई दिये और मेरे सिर पर अपना हाथ धर कर उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया है। अतः मेरा फिर से यही कहना है कि अपनी आत्मा का ही विश्वास करो। आचार्य,

गुरुदेव अपने आप तुम्हारे पास तुम्हारे अंतर्जगत मे दर्शन देगे और तुम्हे कृतकृत्य बनावेगे।"

इसके बाद दो मिनट तक सोच भरी शांति विराजती रही। सुधी बाबू मानो विचार मेघो मे घिरे हुए थे। तब बड़ी शांति और विनय से इस अपूर्व आचार्य ने कहा :

"एक समय समाधि मे मुझे ईसामसीह का दर्शन हुआ था।"

मै बोल उठा—"आप मुझे चकित कर रहे है।"

वे अपनी बाते समझाने के लिए उतावले न थे। इसके बदले अचानक उन्होंने भयानक रूप से अपनी आंखो के डेले ऊपर की ओर घुमा दिये। फिर एक मिनट बिलकुल खामोशी रही। जब उन्होंने अपनी आँखे पूर्ववत् कर ली तब मेरा धीरज बँधा।

फिर मुझ से जब वे बोलने लगे उनके ओठो पर पहेली भरी मुसकान थिरकने लगी :

"इस पुनीत समाधि का इतना बड़प्पन है कि मृत्यु भी समाधि मे रहनेवाले व्यक्ति के पास आ नही सकती। हिमालय के उस ओर तिब्बत मे कुछ ऐसे योगी है जो ब्रह्मचिंता मे सिद्ध-हस्त है। चूँकि यही उनको पसंद था, उन्होने पहाड़ी गुफाओ की शरण ली और विजन एकान्त मे इसी पुनीत समाधि की पराकाष्ठा को पहुँच गये। उस हालत मे नाड़ी का स्पंदन रुक जाता है, हृदय का धड़कना बंद होजाता है और स्थिर अचल शरीर की नसों मे लहू भी नही बहता। जो कोई उनको उस हालत मे देखेगा उन्हे एकदम मृतक समझेगा। कभी न सोचना कि वे एक प्रकार की निद्रावस्था मे रहते हैं क्योकि वे तुम्हारे और मेरे समान ही पूरी चेतना अथवा होश रखते है। वे अपने अंतरंग मे लीन होते है और उनका उत्तम जीवन प्रकट होता है। शरीर

के बंधनों और सीमाओं से उनका मन मुक्त रहता है और वे अपनी ही आत्मा में सर्वभूतों को, सारे विश्व को अवस्थित देखते है। एक दिन आयेगा जब उनकी वह समाधि टूटेगी, लेकिन तब तक वह सैकड़ों वर्ष के बूढ़े होंगे।"

मै फिर एक बार अमर मानव जीवन की अविश्वसनीय कथा सुनने लगा। स्पष्ट है कि पूरबी संसार मे कही भी जाऊँ इस कहानी से मेरा पिंड न छूटेगा। किंतु क्या कभी इन कल्पना-मय पुरुषो से मेरी भेंट होगी? क्या पता कि तिब्बत की शीतल आबहवा से पले हुए इस प्राचीन सिद्धान्त को विज्ञान और मानसिक शास्त्र के लिए महत्वपूर्ण मान कर पश्चिम कभी स्वीकार करेगा या नही?

× × ×

ब्रह्मचिंता के इन विचित्र सिद्धान्तो की मेरी प्रारंभिक शिक्षा का आखिरी सबक खतम हुआ।

मैने किसी तरह उस कभी बाहर न निकलने वाले ज्योतिषी को कुछ सैर-सपाटे के लिए चलकर सुस्त अवयवो को कुछ काम देने के लिए राजो किया। गंगा जी की ओर जाने का हमारा विचार हुआ। रास्ते की भीड़-भाड़ से बचने के लिए आम सड़क छोड़ कर तंग गलियो मे से होकर हम चलने लगे। यद्यपि बनारस की गंदगी और अस्वास्थ्यकर आबादी की संकीर्णता जमाने से चली आ रही है तो भी उसकी गलियों मे पैदल घूमने वाले के चित्त को खीचने वाले भांति भांति के अनेक दृश्य नजर आते हैं।

शाम का समय था। सूर्य की किरणो से बचने के लिए मेरे साथी ने एक खुली चपटी छतरी ले ली। उनकी दुबली देह तथा धीमी चाल के कारण हम जल्दी नही चल सके। जल्द ही

नदी के तीर पर पहुँच जाने की इच्छा से मैंने एक समीपतर मार्ग का आश्रय लिया।

हम ठठेरी बाजार मे चल रहे थे। दाढ़ीवाले दस्तकारो के हथौड़ो की आवाज़ो से आकाश गुंजायमान था। उनका तैयार किया हुआ पीतल का माल सूर्य की धूप मे जगमगा रहा था। यहाँ भी अनगिन्ती पीतल की छोटी छोटी प्रतिमाये—हिन्दुओ के देवताओ के सकार प्रतिनिधि—दिखाई पड़ रही थी।

एक बूढ़ा बगल की गली मे सड़क के किनारे छाया मे हाथ जोड़े बैठा था। उसने मेरी ओर सतृष्ण करुणा भरी आँखो से ताक कर, निडर हो, भीख माँगी।

हम विश्वेश्वरगंज मे से होकर चलने लगे। छोटे छोटे तख़्तो पर नाज के सुनहले ढेर लगे हुए थे। दूकानदार या तो पलथी मारे या पुट्ठो के बल एड़ी ज़मीन पर टेके बैठे थे। वे राह पर चलने वाली हमारी अजीब जोड़ी पर एक क्षण भर दृष्टि डालते और फिर बड़ी शांति से ग्राहको की बाट जोहते।

गलियों से कई प्रकार की बू निकलती थी। जैसे जैसे हम नदी के पास पहुँचने लगे भिखमंगो की भीड़ बहुत अधिक होने लगी। मालूम होने लगा कि वह मानो इन गरीबो का अड्डा ही था। धूल भरी सड़को पर अपने को घसीटते, दुबले पतले भिखमंगे दिखाई दिये। उनमे से एक ने मेरे निकट आकर मेरी ओर कुछ मतलबी दृष्टि दौड़ायी। उसके चेहरे से अकथनीय शोक टपका पड़ता था। उसको देख कर मेरा मन बड़ा बेचैन हो गया।

और थोड़ी दूर आगे चलने पर एक क्षीणकाय वृद्धा स्त्री पर गिरते गिरते मै बच गया। उसके शरीर मे पंजर के सिवा और क्या बाकी रह गया था। उसका चमड़ा हड्डियो से लग कर चिपक

सा गया था और शिथिलता के कारण लटक रहा था। उसकी पसलियाँ निकल आयी थीं। उसने भी आँख भर मेरी आँखों की ओर देखा। उन आँखों में किसी प्रकार की निंदनीय छाया नहीं थी। अपनी बदनसीबी को मूक बेबसी के साथ स्वीकार करने का निर्बल शून्य भाव उन आँखों से झलक रहा था। मैंने जेब से थैली निकाली। उस बूढ़ी के बदन में बिजली दौड़ी। उसे मानो फिर से होश हो चला। उसने अपना निर्बल हाथ आगे बढ़ाया और मेरे पैसे ले लिये। मैंने अपनी खुशनसीबी को बधाई दी जिसने मुझे खाने पीने, पहनने ओढ़ने को काफी सामग्री दी और विपत्ति के दिनों में अपने शरीर की रक्षा के लिए अच्छा आवास और अन्यान्य वाँछनीय चीजें दे दीं। उन गरीब अभागों की आँखें मुझे मेरा जुर्म साफ ही दिखा रही थीं। जब कि इन गरीबों को खाने पीने भर को भी मुअस्सर नहीं, जब कि इन बेचारों को तन ढांकने के लिए गुदड़ियों के सिवा कुछ भी नहीं रहता, मानवता के किस हक से मैं इतने धन का मजा लूट रहा हूँ। यदि नियति के किसी विपरिवर्तन के कारण मैं ही उनमें से एक हो गया, तब ? ओफ ! क्या होगा ? इस भयानक विचार ने कुछ देर तक मुझे मायूस बना दिया लेकिन थोडी देर में उस हालत की वीभत्सता ने ही उस विचार को अव्यक्त शून्य में धर दबाया।

इस भाग्य के फेर का क्या अर्थ है जो जन्म से ही किसी को मुँहताज बनाकर छोड़ता है और किसी को नदी तीर के विशाल कक्षों में सुख की गोद में पलने का शुभ अवकाश प्रदान करता है। जीवन एक अँधेरी पहेली है जिसका सुलझाना मेरी शक्ति के परे की बात है।

गंगा जी के तीर पहुँचते ही ज्योतिषी ने कहा—"यहीं बैठ जावें।"

हम छाँह में बैठ गये। नीचे बहने वाली मरकत सलिला भागीरथी, उससे लग कर सोहने वाली विशाल सोपन-पंक्ति, आसमान को चूमने वाली आलीशान मकानों की छतें, उभड़ने वाले चौतरे और छज्जे हमारी आँखों के सामने क्या ही सुंदर लगते थे। आने जाने वाले यात्रियों के छोटे छोटे झुंड यत्रतत्र दिखाई देते थे।

स्वच्छ आकाश में करीब तीन सौ फुट तक अपना उन्नत मस्तक ठाट के साथ ऊँचा किये दो लम्बी मीनारें हमारी आँखों को अपनी ओर खींच लेती थीं। हिन्दुओं के अत्यंत पवित्र नगर वाराणसी में काल के चक्कर के साथ मुसलमानों का जो पदार्पण हुआ उसकी ये मीनारें कठोर गवाही देती हैं। ये मीनारें औरंगजेब की मसजिद की हैं।

लेकिन ज्योतिषी ने भिखमंगों की दीनता पर मुझे मायूस होते देख कर अपना पीला चेहरा मेरी ओर फेरकर कहा—"हिंदुस्तान बहुत ही गरीब देश है। उसके निवासी एकदम अकर्मण्यता के पंक में फँस गये हैं। अंग्रेज़ी जाति में कुछ खास विशेषतायें हैं। मेरा विश्वास है कि हमारी भलाई के लिए ही भगवान ने उन्हें भेजने की कृपा की है। उनके आगमन के पहले जीवन बड़ा ही कठिन था। छोटी सी बात में भी न्याय और कानून प्रायः ताक पर रक्खे जाते थे। मेरी कामना यह है कि अंग्रेज भारत न छोड़ें। हमें उनकी मदद की बड़ी आवश्यकता है। पर एक बात है। वह मदद मित्रता के नाते मिले, तलवार के बल के नाते नहीं। जो हो, दोनों देशों के भाग्य देवता अपने को चरितार्थ किये विना नहीं मानेंगे।"

"आपका कर्मवाद फिर अपना सिर उठा रहा है!"

उन्होंने मेरे कथन की ओर कुछ भी ध्यान नही दिया। कुछ देर बाद पूछा :

"ईश्वर के संकल्प से ये दोनों देश कैसे बच सकते है? रात के पीछे दिन, और दिन के पीछे रात, यह चक्कर कभी न रुकने वाला है। यही बात राष्ट्रो के इतिहास पर एकदम लागू होती है। संसार भर मे बड़े बड़े हेरफेरों की छाया फैली है। हिंदुस्तान अलसभाव और अकर्मण्यता का शिकार बन गया है; लेकिन उसमे एक क्रान्ति होने वाली है। वह इतना बदल जायगा कि उसके दिल मे कर्मण्यता के प्रभात की सूचना देने वाली आशा और महत्त्वाकांक्षा की ऊषा देवी ललितभाव से नाच उठेगी। योरप प्रत्यक्ष कामकाज के झमेलो से धधका जा रहा है। पर उसके जड़वाद, अनात्मवाद का नामोनिशान ही मिट जायगा। वह एक बार उन्नत आदर्शों की ओर अपनी दृष्टि फेरेगा। वह आंतरिक तत्त्वो की, निगूढ आत्मा के रहस्यो की खोज करने लगेगा। अमेरिका की भी यही हालत होगी।"

चुपचाप सुन रहा था और वे उसी बहाव में बोलते गये :

"हमारे देश की दार्शनिक तथा आध्यात्मिक विचार-धाराए समुद्र की लहरें बन कर पश्चिम को प्लावित कर बैठेगी। अनेक विद्वानो ने भारत की प्राचीन हस्तलिखित पोथियो तथा धर्मग्रंथो का पश्चिमी भाषाओ मे अनुवाद किया है। लेकिन अब भी देशो की विजन प्रान्तो मे और नेपाल, तिब्बत आदि सुदूर प्रान्तो के गुफाओ के ग्रंथ-भांडारो मे कितने ही अमूल्य ग्रंथराज छिपे पड़े है। काल चक्र के फेर के साथ वे भी दुनिया की रोशनी देख ही लेगे। वह शुभ घड़ी अब निकट ही है जब कि भारत के प्राचीन दर्शन तथा आंतरिक ज्ञान, पश्चिम के लौकिक विज्ञान के साथ समझौता कर लेगे और उनसे मिल

जायेंगे। इस सदी की आवश्यकताओं को देखकर प्राचीन काल के रहस्यवादियों को चाहिये कि वे अपना जौहर प्रकट रूप से खिला दें। मुझे इस बात की खुशी है कि ऐसा होने की शुभ सूचनायें अभी से दिखाई दे रही हैं।"

मैं गंगा जी के हरित सलिल की ओर हेरने लगा। नदी का बहाव इतना प्रशांत था मानो वह बहती ही न थी। सूर्य के उज्ज्वल प्रकाश में उस नदी की सतह जगमगा रही थी।

सुधी बाबू मुझसे फिर बोले :

"हर एक जाति की नियति भी मानव की नियति के समान ही जरूर अपने को चरितार्थ कर लेगी। ईश्वर सर्वशक्तिमान है। मानव और राष्ट्र अपने सुकृत और दुष्कृत के सु और कु परिणामों से कभी नहीं बच सकते। किंतु उन सारी विपत्तियों से उनकी रक्षा की जा सकती है और हो सकता है कि किसी न किसी मात्रा में बड़ी भारी मुसीबतें टल भी जाँय।"

"यह रक्षा क्यों कर हो सकती है?"

"प्रार्थना से, ईश्वर के सन्मुख बालक सा हृदय लेकर जाने से, मुँह में ही राम को न रखकर, हृदय से राम को सुमिरने से, खासकर हर एक काम के प्रारंभ में ईश्वर को दिल से प्रार्थना करने से। सुख के दिनों में उन सुखों को ईश्वर प्रदत्त जानकर भोगो और दुख में उन विपत्तियों को अपनी आंतरिक बीमारी को दूर करने के लिए, अपनी आत्मा को चंगा करने के लिए ईश्वर की दी हुई औषधि समझ लो। ईश्वर से भयभीत न होना चाहिए क्योंकि वे मूर्तिधारी कृपा हैं, परम कृपा का स्वरूप हैं।"

"आप ईश्वर को संसार से दूर नहीं समझते?"

"कभी नहीं। ईश्वर सर्वांतर्यामी शक्तिस्वरूप हैं। वे ही

विश्वात्मा भी हैं। यदि तुम किसी प्राकृतिक छवि को, किसी सुन्दर दृश्य को देखो, तो उसी की उपासना करो, पर इस भाव से कि वह अपनी सुन्दरता के लिए उपास्य नही है वरन् उस सुन्दरता का भी मूल कारण ईश्वर के कारण। वह इसीलिये सुन्दर है कि उसमें वही सत्य-शिव-सुन्दर मूर्ति छिपी रहती है। सचराचर संसार मे उसी दिव्य मूर्ति की आभा देखने लगो। बाह्य रूप-रग से कभी इतने मोहित न हो जाना जिससे कि भीतरी आत्मा को ही, जिसके कारण वाह्य आडंबर भी टिके हुए है, भूल जावे।"

"सुधी बाबू, आप कर्म सिद्धात, धर्म और ज्योतिप सभी को विचित्र प्रकार से मिला रहे है?"

उन्होने बड़ी गंभीरता से मुझे निहारा और बोल उठे :

"क्योंकर? ये सिद्धांत मेरे अपने नही है। वे अति प्राचीन काल से, गुरु-शिष्य परंपरा से आज तक चले आये है। नियति की दुर्निवार शक्ति, सिरजनहार की उपासना, ग्रहो की स्थितियो का प्रभाव, ये सारी बातें उन अति प्राचीन काल के आर्यो से छिपा नही थी। जैसा तुम पश्चिमी मानते हो वे वैसे जगली लोग नही थे। मैने भविष्यवाणी कर ही दी है। इस सदी के पूरे होने के पहले ही पश्चिम के मनपट पर यह सत्य सिद्धांत अंकित हो ही जायगा और वह भी इस विस्मृत तत्त्व को और एक बार पहचान लेगा कि मानव के जीवन पर असर डालने वाली ये शक्तियाँ कितनी सच्ची और कितनी प्रबल है।"

"लेकिन पश्चिम की जो यह सहज धारणा है कि मानव का मन और संकल्प एकदम स्वतत्र है, कि मानव अपने आपको बना और विगाड़ भी सकता है, उसे छोड़ना बड़ा ही दुष्कर होगा।"

"जो कुछ 'होता' है सब उन्हीं की इच्छा से। जो बुद्धि, जो संकल्प तुम्हे स्वतंत्र और स्वाधीन प्रतीत होता है वह भी वास्तव

में ईश्वर के सकल्प से ही काम करता है । पुराने सुकृत और दुष्कृतिया का सु वा कु फल लेकर ईश्वर मानव के पास आता है । उनके सकल्प के सामने सर झुकाने में श्रेय ही श्रेय है । यदि कोई ईश्वर से प्रार्थना करे और ईश्वर के ऊपर अपना सब कुछ भार डाल दे तो फिर कैसी भी मुसीबत क्यो न आवे वह साधक को नही बिचला सकती । भय के सामने वह कदापि नही कॉपेगा । ''

"कम से कम अब तक जिन मुँहताजो से हमारी भेट हुई है उनके लिए हम यह आशा रक्खे कि आपकी बाते सही निकलेगी ?"

तुरन्त उन्होने जवाब दिया :

" इस के सिवा और मै कौन सा जवाब दूँ । तुम यदि प्रत्यग्दृष्टि का अभ्यास करके अपने ही अंतर्वीक्षण मे लीन हो जाओगे, आत्मा की अतरतम तह तक पहुँचने की चेष्टा करोगे, मेरे बताये हुए 'ब्रह्मचिता' के मार्ग का अनुसरण करोगे तो ये समस्याये अपने आप ही सुलझ जायंगी ।"

मुझे विदित हो गया कि वे अब अपनी तर्क शक्ति की हद तक पहुँच गये है और मुझे अब अपनी राह आप ही खोजनी होगी ।

मेरे कोट की एक जेब मे एक तार था जो कि मुझे शीघ्र ही बनारस छोडने की ताकीद सी कर रहा था । दूसरे जेब मे एक जेबी केमरा था । मैने सुधी बाबू से उनकी फोटो उतारने की अनुमति की प्रार्थना की । विनय के साथ उन्होने इनकार किया ।

मैने फिर ज़ोर लगाया ।

उन्होने दृढ़ता से कहा--"इसकी कौन सी जरूरत है । मेरे मैले कुचैले कपड़े और बदसूरत चेहरा । "

"कृपा करके मेरी बात रखिये। दूर देश में जब मै रहूँगा तब आपकी फोटो देखकर आपका स्मरण जाग उठेगा।"

नम्रता की मूर्ति बनकर उन्हाने बताया—"सबसे उत्तम स्मृति चिह्न पवित्र विचार और स्वार्थ रहित कार्य है।"

उनके उज्र की मैने खातिर की और केमरा जेब में रख लिया।

अन्त को जब लौटने के लिए उठे मै उनके पीछे हो लिया। पास ही एक व्यक्ति सूर्य के तीक्ष्ण ताप से बचकर बाँस के एक बड़े गोल छाते के नीचे बैठा दिखाई दिया। उसके चेहरे से उसके अविचल ध्यान का पता चलता था। उसके वस्त्रो के गेरुएपन से उसके आश्रम का पता सहज ही लग जाता था।

और कुछ दूर चलने पर रास्ता रोके एक सांड़ लेटा था। वह शायद उनमे से एक था जो बहुत ही पवित्र समझे जाते है।

कुछ दूर चलने पर मैने एक गाडी बुलाई और सुधी बाबू से विदा ले ली।

× × ×

बाद को कुछ दिन तक मै सफर ही करता रहा। दौरे पर जाने वाले अफसरो तथा अन्य बटोहियो के वास्ते जो सरकारी डाक बंगले है उनमे मैने कई राते काटी।

उनमे एक ऐसा डाक बंगला मिला जिसमे सामान्य आराम की भी सामग्री न थी। बहुत अधिक चीटो ने अपना अड्डा जमा लिया था। दो घटे तक उनसे युद्ध छेड़कर हार गया और निश्चय किया कि बिस्तर छोड़कर सारी रात यो ही कुर्सी पर बैठे बैठे काटूँगा।

समय बड़ो कठिनाई से धीरे धीरे बीतता जाता था। मेरा मन

इधर उधर की बातो को छोड़कर बनारस के उस ज्योतिषी के कर्म सिद्धांत—नियतिवाद आदि का मनन करने लगा। साथ ही सड़को पर अपने भूखे क्षीणकायो को घसीटते हुए जाने वाले दीन दुःखी भिखमंगो की भी मुझे याद आयी। जीवन के हाथो वे लोग एकदम तंग आ गये थे। न तो वे जीने ही पाते थे न मरने ही। जैसे कि उन्हे अपनी गरीबी स्वीकार है उसी प्रकार उन्ही की बगल मे से धनी मारवाड़ी अपने ऐश आराम के सुन्दर वाहनो पर सवार होकर जावे तो भी उन्हे किसी प्रकार से अखरता नही है। ईश्वर की इच्छा के सामने वे चूं तक नही करते। सब कुछ ईश्वर का दिया मानकर वे तृप्त हो जाते हैं। कितने ही हिंदुस्तानी लोगो मे कुछ ऐसी एक नशीली नियतिवाद की बात समा गई है कि इस देश मे, जहाँ सूर्य बहुत ही प्रचंडता के साथ चमक उठता है, कोड़ी भी अपने भाग्य से तृप्त ही मालूम पड़ते है।

'स्वतंत्र संकल्प' 'स्वाधीन मन' आदि के होने मे विश्वास रखने वाले पश्चिमी का, इस सर्वशक्तिमय नियतिवाद के कायल प्राच्य वासियो से दलीले करना और युक्ति भिड़ाना कितना फजूल होगा अब मुझ पर प्रकट होने लगा था। पूरबी जनता के लिए इस पहेली का एक यह भी पक्ष है कि उन्हे इस विषय मे कोई समस्या ही नजर नही आती। उनके दिलो पर नियति की सार्वभौम सत्ता है।

आत्म-विश्वास पर निर्भर रहने वाला कौन पश्चिम का निवासी इस विचित्र सिद्धात का कायल हो सकता है कि हम बेचारे नियति के खेदे हुए टट्टू है, हम नियति के हाथ के कठपुतले हैं अथवा किसी अव्यक्त शक्ति की मूक आज्ञा के चलाये हुए हम इधर से उधर नाचते रहते है? चकित जगत के सामने

बड़ी दिलेरी के साथ आल्प्स पर्वत पंक्ति को अपनी सेना के साथ लाँघ जाने में नेपोलियन ने जो बहुत ही महत्वपूर्ण बात कही थी वही आज मुझे याद आयी—'असंभव ? मेरे कोश मे ऐसा कोई शब्द नही है।' लेकिन मैने उनके सारे जीवन की सारी बातों का बारबार अध्ययन किया है। हेलीना के टापू पर अपने पूर्व कार्यों की समीक्षा करते हुए उस महान बुद्धिशाली ने जिन चन्द बातों को लिखा था सो मेरे स्मृति पट पर चमक जाती हैं :

'मै हमेशा नियतिवाद का कायल था। विधि का बदा, एकदम बदा ही . . मेरे सितारे मंद पड़ गये, मेरे हाथो से बागडोर फिसलते दिखाई दी, तब भी मेरा कोई वश नही था।"

इस प्रकार परस्पर व्याघाती आश्चर्यजनक वचन कहने से कभी यह समस्या हल हो सकती है ? मुझे विश्वास ही नही होता है कि किसी ने भी इसे अब तक सुलझाया हो। हो सकता है कि जब से मानव के मस्तिष्क ने काम करना शुरू किया तभी से उत्तर ध्रुव से लेकर दक्षिण ध्रुव तक के लोगों ने इस प्राचीन पहेली के बुझाने की कोशिश की हो। तनिक सी बात पर पक्का विश्वास बना लेने वालों ने इस समस्या को अपने ही अनुसार हल किया है। दार्शनिक इस प्रश्न के पक्ष और विपक्ष के मीन मेख गिनते रहते है पर अभी अपनी समीक्षाओं का नतीजा निस्संकोच प्रकट करने में हिचकिचाते हैं।

ज्योतिषी ने मेरी जन्मपत्री का सारा हाल ठीक ठीक बता कर मेरे मन मे बड़ा आश्चर्य पैदा किया था। वह मुझे अच्छी तरह याद है। कभी कभी एकान्त घड़ियो में मैने उस भविष्यवाणी के बारे मे सोचा है, यहाँ तक कि मुझे ही शंका होने लगी कि क्या प्राच्यो की नियतिवाद की कुछ सनक मुझ पर भी तो

सवार नही हो गयी। जब मुझे याद आता है कि इस साधारण निराडंबर ज्योतिषी ने किस प्रकार मेरे भूत जीवन का पूरा ब्यौरा ही बताया, किस प्रकार वे धुंधली पड़ने वाली भूत जीवन की घटनाओ को फिर से जागृत करके वर्तमान मे ले आये, तो मेरा दिल ललायित हो उठता है कि मै स्वतंत्र बुद्धि और नियतिवाद की प्रचीन समस्या पर एक खासा पोथा रचने की सामग्री इकट्ठा क्यो न करूँ। किन्तु मुझे अच्छी तरह मालूम था कि नियतिवाद को लेकर एक ग्रन्थ रचना कोरी कलम घिसने के अतिरिक्त और कुछ नही है क्योकि शायद जिस अंधकूप से इस समस्या को सुलझाने के लिए मै निकलूं, हो सकता है कि खोजखाज करके फिर से उसी मे आकर फँस जाऊँ। क्योकि ऐसे किसी विषय मे ज्योतिष के प्रश्न उठाने होगे और सारा काम मेरी शक्ति के बाहर होगा। लेकिन आजकल के यंत्रयुग की कुछ ऐसी बढ़ी-चढ़ी महिमा दीखती है कि वह दिन अब दूर नही है जब आदमी दूरवर्ती ग्रहो आदि का सफर करे। तब इस बात का पता चलाना सहज होगा कि उन ज्योतिर्मय ग्रहो का वास्तव मे हमारे जीवन पर कहाँ तक असर पड़ता है। इस बीच मे सुधी बाबू की चेतावनी को कि अभी जो ज्योतिष मानव समाज मे अवतरित हुआ है वह अधूरा है तथा यह शास्त्र भी भ्रम-प्रमाद के परे नही है, याद रख कर कोई भी दो-चार ज्योतिषियो की शक्ति परखना चाहे तो परख सकता है।

तब भी यह सोचने की बात है कि यदि हम मान भी ले कि किसी अनूठे ढंग से, आयनस्टीन के चौथे डाइमेशन वाले सिद्धान्त से ही सही, अब भी भविष्य मौजूद है, तो हमारी आँखो की ओट मे जो भावी घटनाये है उनके रहस्यो का उन्मीलन करना कहाँ तक उचित होगा ?

इस प्रश्न के उठते ही मेरा मनन एकदम रुक जाता है और निद्रा मुझे अपनी गोद में उठा लेती है।

कुछ दिन बाद जब मै बनारस से कई सौ मील की दूरी पर था, मुझे इस भयानक घटना की खबर मिली कि बनारस मे ज़ोरों के साथ दंगे का दौरदौरा है। यह हिंदू-मुसलमानो के झगड़े की दुःखद कहानी है जो प्रायः किसी तुच्छ बात से शुरू हो जाती है और खूंख्वार गुंडे और बदमाश इससे नाजायज फायदा उठा कर झूठी धार्मिकता का दम भरते हुए लूटमार और नोच खसोट का बाजार गरम रखते है।

कई दिन तक शहर मे आंतक और उपद्रव का भीषण तांडव होता रहा। दिन प्रतिदिन सिर फुटौवल, दारुण हिंसा और विवेक-शून्य हत्याओ की शोच भरी कहानी कानो में पड़ती रही। सुधी बाबू के कुशल समाचार की मुझ को रट सी लग गई, पर करता क्या ? उनकी खबर का किसी प्रकार मिलना असंभव ही था। गलियो मे निकलते डाकियों की हिम्मत हार जाती थी और फलतः कोई भी खानगी तार या पत्र किसी को पहुँचने की कोई सूरत नही दीखती थी।

लाचार होकर मुझे बनारस की गुंडेशाही की मिट्टी पलीद होने तक इंतजार करना पड़ा। तब कही, सब से पहले तारों मे जो उस बेचारे शहर मे भेजे जा सके, मेरा भी एक था। लौटती डाक से ज्योतिषी जी का एक पत्र आया जिसमे धन्यवाद के अतिरिक्त उन्होने अपनी इस कुशल को सर्वशक्तिमान् की कृपा बताया। चिट्ठी की पीठ पर ब्रह्मचिता के योग की साधना के लिए दस नये नियम लिखे हुए थे।

१३

दयाल बाग

उत्तर भारत मे चारो ओर उतावले होकर फिरते हुए मैंने दो मार्गों का आश्रय लिया। दोनो ने मुझे एक छोटी परन्तु निराली बस्ती पर पहुँचा दिया। लोग उसे बहुत कम जानते है। वह एक काव्यमय नाम 'दयाल बाग' कह कर पुकारी जाती है।

पहले मार्ग का प्रारम्भ लखनऊ मे हुआ। वहाँ रहते समय मेरे अहोभाग्य से एक अच्छे रहनुमा, वेदांती, एक खास दोस्त के रूप मे प्राप्त हुए। सुन्दर लाल निगम और मै, दोनो शहर मे चक्कर काटते और घूमते टहलते तथा दार्शनिक विषयो पर बहस करते थे। उनकी उम्र २०-२१ से अधिक न होगी किंतु अपने अन्य भारतीय बन्धुओ के समान वह जवानी के परदे मे एक अनुभवी, सधे हुए वृद्ध मस्तिष्क वाले है।

हम दोनो पुराने नवाबो के महलो को देखते फिरते थे और उन कब्रो की स्तब्ध शांति मे लेटे हुए बादशाहो की असिट भाग्यरेखा का अनुमान करके ध्यान मे मशगूल रहते। नये सिरे से मुझे उस उज्ज्वल हिंदू-ईरानी शिलपकला से मुहब्बत सी पैदा हो जाती जो अपनी टेढ़ी-मेढ़ी शोभामय रेखाओ और कोमल तथा सुन्दर चित्रो से अपने विधाताओ की परिमार्जित कलाभि-रुचि को मूक आवाज़ से गा रही थी। लखनऊ की शोभा को बढ़ाने वाले इन राजसी ठाट वाले प्रमोद काननो के तरुओ की शीतल छाया मे मेरे जो प्रमोदमय उज्ज्वल दिन बीते, क्या वे कभी मेरे स्मृतिपट से दूर हो सकते है ?

जहाँ एक समय अवध के पुराने नवाबो की दिलफरेब प्रेयसियाँ अपने गोरे बदन की नज़ाकत और खूबसूरती की भड़क संगमरमर के छज्जो और सुनहले गुसलखानो मे फैलाती हुई अकड़ कर चलती थी, उन रंग-बिरंगे भव्य भवनो के हर कोने का हम दर्शन करते। अब ये महल उस नवाबी अदा, उन शोख बुतो से एकदम खाली है और उन पुराने विलासो के ये केवल कीर्तिस्तम्भ रह गये है।

कई बार अनजाने मैंने अपने को एक सुन्दर मस्जिद मे पाया जो कि अजीब नाम वाले 'मंकी ब्रिज' (बंदर का पुल) के पास खड़ी है। उस मसजिद का बाहरी भाग एकदम सफेद है और धूप मे परियो के महल सी चमकती है। उसकी सुन्दर मीनारे उज्ज्वल आकाश की ओर अनवरत प्रार्थना मे उठी सी प्रतीत होती है। झाँक कर देखा तो भीतर एक झुंड सिजदा करके नमाज़ पढ़ रहा था। उस दृश्य की शोभा उन रंगदार जानमाज़ो की भड़कीली चमक से और भी निखर उठती थी। पैग़म्बर साहब के इन पैरोकारो के ईमान पर कोई उंगली भी नहीं उठा सकता क्योंकि उनका मज़हब उनके लिए एक जीती जागती शक्ति मालूम होती है। इन सारे पर्यटनो मे मेरे साथी के कुछ गुणो का कुछ असर मेरे ऊपर भी पड़ गया। उनकी निपुण बाते, उनकी असाधारण बुद्धि कुशलता, सांसारिक विषयो के बारे मे उनका उदासीन व्यवहार, सभी योग के अभ्यासी की मार्मिकता और गंभीरता के साथ सुन्दर रूप से मिले-जुले थे। मेरे निजी विश्वासो तथा भावो को टटोल कर जान लेने की कोशिश मे—जिसका कि मुझे अच्छी तरह पता चला—कई बार मुझसे तर्कोपतर्क और संभाषण करने के बाद उन्होने अपने को राधास्वामी सम्प्रदाय का बता दिया।

× × ×

मुझे दयाल बाग ले चलने वाली प्रेरणा उसी संप्रदाय के एक और अनुयायी, मल्लिक, से प्राप्त हुई थी। एक दूसरे ही समय, कुछ दूसरी ही परिस्थिति मे उनका मेरा परिचय हुआ। जहाँ तक भारतीयो को ले, वे सुंदर और सुगठित वलिष्ठ शरीर वाले है। सदियो तक उनके पूर्वपुरुष जंगली सीमा प्रान्तो के लोगो के पड़ोसी थे, जो हमेशा ही अपने पड़ोसियो की जायदादो पर दांत लगाये रहते है। पर चतुर ब्रिटिश सरकार ने उन लोगो को नौकरी आदि देकर शांत बनाया है।

इन खौफनाक कबीलो मे कुछ तो शांतिदायी और उपयोगी कामकाज मे, जैसे सड़के बनाना, पुल बाँधना, किले, बारको आदि की रचना, आदि मे लग गये है। ऐसी ही एक टुकड़ी का मल्लिक मुआइना कर रहे थे। ये सरहदी लोग अपने साथ बंदूक रखते है, आवश्यकता से प्रेरित हो कर उतना नही जितना कि पुरानी आदत के अनुसार। वे इस उत्तर-पश्चिम भारत की सीमा पर बराबर नई सड़के बनाने या सिपाहियो की रक्षा के वास्ते किले कोट आदि खड़े करने मे लगे थे।

मल्लिक बड़े मेहनती और अपने काम मे खूब सिद्धहस्त थे। वे डेरा इस्माइल खाँ मे तैनात थे। उनके चरित्र मे पक्की आत्म-निर्भरता और गंभीर विचारो का सुंदर मेल हो गया था। उनके सभी गुणो की सुदर समता से मेरा मन रीझ उठा था।

जैसे योगाभ्यासियो का आचार है, मल्लिक ने भी अपने को शुरू शुरू मे मुझ से बहुत ही खिचा हुआ रक्खा। लेकिन अंत मे मेरे प्रश्नो तथा पूछ-ताँछ के सामने वे सुलभ हो गये और यह बात उन्होने मान ली कि उनके एक गुरू थे जिनको कभी कभी फुरसत मिलने पर देखने के लिए वे जाया करते थे। उनके गुरू राधास्वामी संप्रदाय के आचार्य श्री साहब जी महाराज थे। उनसे

मैंने दुबारा सुना कि उनके मालिक ने योग मार्ग को पाश्चात्य मार्गों तथा भावो के अनुसार निर्मित दैनिक जीवन के साथ मिला देने की अद्भुत कल्पना का आविष्कार किया है।

× × ×

अन्त को इन दोनो मित्रो, निगम और मल्लिक, के प्रयत्न सफल हुए। राधास्वामी संप्रदाय का प्रधान राज पाट दयाल बाग के अनभिषिक्त सार्वभौम श्री साहब जी महाराज का मै मेहमान होने वाला था।

आगरे से दयाल बाग ले जाने वाली सड़क मैने मोटर पर पार की।

दयाल बाग—दयालु परम पिता का बाग। अपनी सर्व-प्रथम धारणा के आधार पर मै कह सकता हूँ कि इस छोटे उपनिवेश की नीव डालने वाले साहब जी महाराज इसके सुंदर नाम को सार्थक करने की प्राणपण से चेष्टा कर रहे हैं।

मुझे एक पक्का मकान दिखाया गया जो महाराज की खानगी बैठक थी। उसके पास जो आराम घर था वह यूरोपियनो की रुचि के अनुसार सजाया गया था। सुखद आरामकुर्सी से लेकर सुन्दर रंग से रंगी हुई दीवारो और सामग्री के प्रबंध की रुचिपूर्ण कलात्मिकता तथा सादगी से मै निहाल हुआ।

यहाँ तो पश्चिमी सभ्यता का दौरदौरा था। मैंने योगियो को, सादे साधारण बंगलों, पहाड़ी गुफाओ तथा नदी तीर पर धुंधली कुटियो में देखा था। पर कहीं भी और कभी किसी योगी को नई रोशनी से घिरा हुआ देखने की मुझे तनिक भी उम्मीद नहीं थी। इस अपूर्व विरादरी के वे अगुआ कैसे होंगे, यह सोचते हुए मुझे चकित होना पड़ा।

बहुत देर तक मेरी यह शंका नही रही क्योंकि धीरे धीरे दरवाजा खुला और साहब जी महाराज भीतर पधारे। वे मॅझोले कद के थे और उनके सिर पर एक वेदाग सफेद साफा था। उनका रूप-रंग परिमार्जित था और यदि उनके बदन का रंग कुछ और साफ होता तो उनके अमरीकन होने का भ्रम पैदा हो सकता था। उनकी आँखो पर बड़ी ऐनक लगी हुई थी। उनके ओठो पर मूँछे सोह रही थी। वे चुस्त कपड़े पहने थे और उनके कोट पर कई बटन लगे हुए थे। उनकी आकृति सादी और विनयपूर्ण दिखाई दी। उन्होने राज पुरुष की सी गंभीरता से मेरी आवभगत की।

जब हम दोनो का प्रथम परिचय समाप्त हुआ और वे अपनी कुर्सी पर बैठ गये तो मैने उनकी कलापूर्ण रुचि की तारीफ करने का साहस किया।

उत्तर मे वे बोलने लगे तो शुभ्र कांति वाली दंत-पंक्ति चमक उठी। बोले

"ईश्वर केवल प्रेममय ही नही है, वह रूपवान भी है। जैसे जैसे मानव अपनी आत्मा को उन्मीलित करने लगेगा वैसे वैसे उसको सुंदरता की अधिकाधिक अभिव्यक्ति करनी होगी। केवल अपनी आत्मा मे ही नही, अपने पासपड़ोस और चारो ओर के वायुमंडल मे उसे अपनी सुंदरता का परिचय देना होगा।"

उनकी अंग्रेजी परिमार्जित और सुसंस्कृत थी। उनके स्वर मे एक प्रकार के आत्म-विश्वास की गूँज सुनाई पड़ रही थी।

थोड़ी देर तक मौन रह कर वे फिर बोले :

"लेकिन एक और सुंदरता, एक और सजावट है जो कमरे की दीवारो तथा चारो ओर की सामग्री मे समायी है। वह अदृश्य है। तब भी वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। क्या आप जानते हैं

श्री दादूजी महाराज

आध्यात्मिक सिद्धि अवश्य पा सकता है और सासारिक काम काज को छोड़े बिना ही वह योग के अभ्यास से चरम उन्नति को प्राप्त हो सकता है।"

"यदि आप ऐसा करने मे कामयाब होवे तो दुनिया भारतीय ज्ञान के बारे मे अब से अधिक श्रद्धा और दिलचस्पी दिखायेगी।"

दृढ़ विश्वास के साथ महाराज का उत्तर मिला :

"अवश्य ही हमे सफलता हाथ लगेगी। मै आपको एक कहानी सुनाऊँ। जब मै पहले पहल यहाँ आया और इस उपनिवेश की नीव डालने लगा तब मेरी यही इच्छा थी कि चारो ओर वृक्षो के झुरमुटों की घनी छाया फैल जावे। यहाँ के लोगों ने मुझे बताया कि जमीन अनुपजाऊ है, क्योंकि वह रेतीली है। जमुना जी निकट ही थीं। एक समय नदी की धारा यहीं बहती थी। हम लोगों मे इन बातो की सच्चाई परखने वाला कोई निपुण व्यक्ति नही था। अतः बराबर हमे प्रयोग तथा असफलताओं से अनुभव के जरिये जानना पड़ा कि इस अनुपजाऊ भूमि मे क्या फूल फल सकता है। पहले वर्ष जितने वृक्ष बोये और रोपे गये—वे एक हजार के करीब थे—सभी सूख गये। जैसे तैसे एक वृक्ष पनपने लगा। हमने उसको ध्यान से देखा और अपने प्रयत्नो को जारी रक्खा। अब कुल नौ हजार वृक्ष सुखपूर्वक अपनी शीतल छाया इस उपनिवेश पर बिखेर रहे है। मै यह सब इसीलिये कहता हूँ कि यह हमारी प्रवृत्ति का रुख बतलाने वाली एक मिसाल है। इसी से आप जान सकते है कि हम समस्याओं का किस दृष्टि से सामना कर रहे है। हमे यहाँ अनुर्वर भूमि मिली। वह इतनी खराब थी कि कोई खरीदने वाला नही मिलता था। देखिये वह आज कैसी हरीभरी हो खिलखिला रही है।"

"तो आपका विचार है कि आगरे के निकट एक आदर्श गाँव रचें।"

वे हँस पड़े।

मैने गाँव देखने की चाह प्रकट की।

"बेशक, इसका प्रबंध तुरन्त ही करूँगा। पहले दयाल बाग देख लेना, फिर उसके क्यो और कैसे के बारे में हम बाते करेंगे। आप एक बार इस उपनिवेश को अपने काम मे लगा देख ले तो मेरे भावो को अच्छी तरह समझ सकेंगे।"

उन्होंने एक घंटी बजायी। उसके कुछ मिनट बाद मैने अपने को अच्छे कारखानों के बीच से, पक्की परन्तु अधूरी सड़को पर चलते इस उपनिवेश का निरीक्षण करते हुए पाया। मुझे कैप्टेन शर्मा, जो पहले इंडियन आर्मी मेडिकल सर्विस के मेम्बर थे और अब जो अपनी सारी शक्तियाँ अपने गुरू के यत्नो को सफल बनाने में लगा रहे थे, रास्ता दिखाने लगे। सरसरी निगाह से देखने पर भी शर्मा जी के चरित्र से मुझे एक ऐसे सज्जन का दर्शन हुआ जिनमे सच्ची आध्यात्मिक लगन के साथ साथ पश्चिमी सभ्यता का सुंदर मेल हो रहा था।

दयाल बाग के सिंहद्वार पर ले चलने वाली सड़क की बहुत ही निराली शोभा है। सड़को के दोनो बाजू पेड़ अपनी घनी छाया फैला रहे थे। बीच मे एक फुलवाड़ी थी। मुझसे कहा गया कि वे पुष्प वाटिकायें रेगिस्तान पर उनकी विजय के निदर्शन हैं।

साहब जी महाराज ने सन् १९१५ मे इस उपनिवेश की नींव डालते समय जिस शहतूत के वृक्ष को रोपा था वह अब भी वहाँ खड़े होकर उनकी कलात्मिकता का खूब ही परिचय दे रहा है।

इस उपनिवेश के औद्योगिक विभाग की मुख्य विशेपता

आध्यात्मिक सिद्धि अवश्व पा सकता है और सासारिक काम काज को छोड़े बिना ही वह योग के अभ्यास से चरम उन्नति को प्राप्त हो सकता है।"

"यदि आप ऐसा करने मे कामयाब होवे तो दुनिया भारतीय ज्ञान के वारे मे अब से अधिक श्रद्धा और दिलचस्पी दिखायेगी।"

दृढ़ विश्वास के साथ महाराज का उत्तर मिला :

"अवश्य ही हमे सफलता हाथ लगेगी। मै आपको एक कहानी सुनाऊँ। जब मै पहले पहल यहाँ आया और इस उपनिवेश की नीव डालने लगा तब मेरी यही इच्छा थी कि चारो ओर वृक्षो के झुरमुटो की घनी छाया फैल जावे। यहाँ के लोगों ने मुझे वताया कि जमीन अनुपजाऊ है, क्योंकि वह रेतीली है। जमुना जी निकट ही थीं। एक समय नदी की धारा यही वहती थी। हम लोगो मे इन बातो की सच्चाई परखने वाला कोई निपुण व्यक्ति नही था। अतः बराबर हमे प्रयोग तथा असफलताओ से अनुभव के जरिये जानना पड़ा कि इस अनुपजाऊ भूमि मे क्या फूल फल सकता है। पहले वर्ष जितने वृक्ष बोये और रोपे गये—वे एक हज़ार के करीव थे—सभी सूख गये। जैसे तैसे एक वृक्ष पनपने लगा। हमने उसको ध्यान से देखा और अपने प्रयत्नो को जारी रक्खा। अब कुल नौ हज़ार वृक्ष सुखपूर्वक अपनी शीतल छाया इस उपनिवेश पर विखेर रहे है। मै यह सब इसीलिये कहता हूँ कि यह हमारी प्रवृत्ति का रुख वतलाने वाली एक मिसाल है। इसी से आप जान सकते है कि हम समस्याओ का किस दृष्टि से सामना कर रहे है। हमे यहाँ अनुर्वर भूमि मिली। वह इतनी खराब थी कि कोई खरीदने वाला नही मिलता था। देखिये वह आज कैसी हरीभरी हो खिलखिला रही है!"

"तो आपका विचार है कि आगरे के निकट एक आदर्श गाँव रचें।"

वे हँस पड़े।

मैंने गाँव देखने की चाह प्रकट की।

"बेशक, इसका प्रबंध तुरन्त ही करूँगा। पहले दयाल बाग देख लेना, फिर उसके क्यों और कैसे के बारे में हम बातें करेंगे। आप एक बार इस उपनिवेश को अपने काम में लगा देख लें तो मेरे भावों को अच्छी तरह समझ सकेंगे।"

उन्होंने एक घंटी बजायी। उसके कुछ मिनट बाद मैंने अपने को अच्छे कारखानों के बीच से, पक्की परन्तु अधूरी सड़कों पर चलते इस उपनिवेश का निरीक्षण करते हुए पाया! मुझे कैप्टेन शर्मा, जो पहले इंडियन आर्मी मेडिकल सर्विस के मेम्बर थे और अब जो अपनी सारी शक्तियाँ अपने गुरू के यत्नों को सफल बनाने में लगा रहे थे, रास्ता दिखाने लगे। सरसरी निगाह से देखने पर भी शर्मा जी के चरित्र में मुझे एक ऐसे सज्जन का दर्शन हुआ जिनमें सच्ची आध्यात्मिक लगन के साथ साथ पश्चिमी सभ्यता का सुंदर मेल हो रहा था।

दयाल बाग के सिंहद्वार पर ले चलने वाली सड़क की बहुत ही निराली शोभा है। सड़कों के दोनों बाजू पेड़ अपनी घनी छाया फैला रहे थे। बीच में एक फुलवाड़ी थी। मुझसे कहा गया कि वे पुष्प वाटिकायें रेगिस्तान पर उनकी विजय के निदर्शन हैं।

साहब जी महाराज ने सन् १९१५ में इस उपनिवेश की नींव डालते समय जिस शहतूत के वृक्ष को रोपा था वह अब भी वहाँ खड़े होकर उनकी कलात्मिकता का खूब ही परिचय दे रहा है।

इस उपनिवेश के औद्योगिक विभाग की मुख्य विशेषता

कारखानो का वह समूह है। जिसका नाम 'माडल इंडस्ट्रीज' (आदर्श उद्योग शाला) रक्खा गया है। उसके आयोजन में काफी बुद्धि-कुशलता का परिचय मिलता है। ये कारखाने सब के सब साफ सुथरे और विशाल है।

सब से पहले मैंने जूते के कारखाने मे प्रवेश किया। कल पुर्जे खूब ही चल रहे थे। धूम धूसरित कारीगर उस तुमुल नाद के बीच मे बड़ी सफाई के साथ काम कर रहे थे। कारखाने के मैनेजर ने मुझ को बताया कि योरप में उसने यह कला सीखी थी जहाँ पर चमड़े का माल बनाने के वैज्ञानिक तरीको को सीखने के लिए वह गया हुआ था।

जूते, थैलियाँ, बेल्ट आदि सभी किस्म का माल इन यंत्रो से दनादन तैयार हो रहा था। यंत्रो को चलाने वाले पहले नौसिखिये थे, पर मैनेजर ने उनको अच्छी शिक्षा दे कर सिद्धहस्त बना दिया था।

साधन, महीन चीज़ों को तौलने के सूक्ष्म तराज़ू आदि तैयार किये जाते हैं और वे इतने नाजुक बनाये जाते है कि युक्त प्रांतीय सरकार ने उनकी बड़ी भारी प्रशंसा की है।

और भी अनेक विभाग दयाल बाग में है जहाँ बिजली के पंखे, ग्रामोफोन, छुरियाँ, चाकू आदि चीजे बनती है। वहाँ के एक कारीगर ने ग्रामोफोन का एक खास प्रकार का ध्वनि-यंत्र ईजाद किया है। भविष्य मे उसी प्रकार के यंत्र तैयार किये जाने वाले है।

मुझे यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि यहाँ फाऊन्टेन पेन बनाने का एक कारखाना है जो अपने ढंग का भारत मे सर्वप्रथम है। लगातार कई वर्षों के प्रयोग और खोज के बाद बिकने लायक पहली कलम तैय्यार हो पायी है। एक कठिनाई जिसे उन प्रारंभिक खोज करने वाले वैज्ञानिक भाइयो ने महसूस की थी वह यह थी कि सोने की निब की नोक पर 'इरिडियम' बिंदु कैसे रख दिया जाय। उनको उम्मीद है कि निकट भविष्य मे इसका भी मर्म मालूम हो जायगा। किंतु अभी कलमों की नोकें इस काम के लिए एक योरोपियन कारखाने मे भेज दी जाती है।

दयाल बाग मे एक अच्छा छापाखाना है। उसी से उपनिवेश की छपाई का सारा काम लिया जाता है। उपनिवेश के खानगी कारोबार की छपाई का काम तथा दयाल बाग की साहित्यिक आवश्यकताये भी इस छापेखाने से पूरी की जाती है। उसकी हिंदी, उर्दू तथा अंग्रेजी छपाई के कुछ नमूने मैंने देखे। यहाँ 'प्रेम प्रचारक' नाम का एक साप्ताहिक पत्र भी छप कर प्रकाशित किया जाता है और देश के कोने कोने मे रहने वाले राधास्वामियो को भेजा जाता है।

हर एक भवन मे कारीगर न केवल अपने आय मे

बिलोने के लिए भी विलायत से एक बिजली से चलाये जाने वाला यंत्र मंगा लिया गया है। इस विभाग को इतने सुंदर और सुचारु रूप से चलाने का सारा श्रेय साहब जी महाराज के एक पुत्र को है। इस जोशीले और मेहनती नौजवान ने मुझसे कहा कि उसने इंग्लैंड, हालैंड, डेन्मार्क, और अमरीका की खास दुग्धशालाओं का दर्शन करके इस जमाने के दुग्ध-विज्ञान के उत्तमोत्तम प्रयोग और यंत्र आदि की पूरी जानकारी हासिल कर ली है।

शुरू शुरू में उपनिवेश के खेतों तथा लोगों के लिए पानी का इन्तजाम करना बड़ा ही टेढ़ा काम सिद्ध हुआ। खेती के लिए एक नाला खोदा गया और 'वाटर वर्क्स' भी कायम किया गया है। लेकिन धीरे धीरे पानी की मांग अधिक होती गयी और साहब जी महाराज ने सरकारी इंजीनीयरों से सहायता ली और एक बोरिंग कुआ अच्छी तरह से खोदा गया है।

उपनिवेश का अपना एक अलग बैंक है। बैंक भवन बड़ा मजबूत है। उसमें लोहे के सीखचे लगी खिड़कियाँ हैं। उन पर 'राधा स्वामी जेनरल एण्ड इन्श्योरेन्स बैंक लिमिटेड' लिखा हुआ है। बैंक की अधिकारित पूँजी बीस लाख रुपये की है। यह बैंक खानगी लेनदेन ही नहीं किया करता बल्कि शहर के लेनदेन में भी काफी भाग लेता है।

दयाल बाग के बीच में राधास्वामी विद्यालय भवन है। उसका वहाँ बनाया जाना बहुत ही सोहता है, क्योंकि वही उपनिवेश के सारे मकानों से उत्तम है। उसके सामने पुष्पवाटिकायें बहुत ही सुंदर लगती हैं।

इस हाई स्कूल में कई सौ विद्यार्थी अध्ययन करते हैं। अध्यापन कार्य एक प्रिंसिपल, ३२ योग्य अध्यापकों की सहायता से

बिल्डिंग विभाग की निगरानी में हैं। यही विभाग घर के नक्शे खींचता है और मकान बनवाता है। हर एक गली के मकानों के शिल्प में एक सुंदर समता दिखायी देती है और उन मकानों की श्रेणियों को देखने पर यही प्रतीत होता कि इस शिल्प विभाग का सुंदरता तथा शिल्प समता की ओर बड़ा ध्यान रक्खा जाता है। वहाँ भद्दे मकानो के बनने की गुंजाइश ही नहीं है, क्योंकि बिल्डिंग विभाग के नकशों में से ही चुन कर मकान बनवाना पड़ता है। चार ढंग के मकानो के नकशे तैयार मिलते हैं। उनके बनने की लागत आदि सब का पूरा पूरा व्यौरा मिलता है। मकान बनाने वालों को असली लागत के अलावा थोड़ा अधिक देना पड़ता है। कीमत मे किसी भी हालत में कमी बेशी नहीं होती।

उपनिवेश की ओर से एक सुंदर अस्पताल और एक प्रसूति भवन चलाये जाते है। दयाल बाग की प्रधान विशेषता वहां की आदर्श स्वयपोपकता और स्वयं परिपूर्णता है। अतः जब मैंने जाना कि हाथ उठा कर सलाम करने वाला पुलिसमैन भी राधा-स्वामी संप्रदाय का सदस्य है तो मेरे आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा। तो भी उसकी उपस्थिति ने मेरे मन मे एक बेसुरी तान छेड़ दी, क्योंकि मुझे जान पड़ा कि दयाल बाग नीति और धर्म का ऐसा स्थान होना चाहिये जहां जुल्म का एकदम अभाव ही हो। मुझे पीछे मालूम हुआ कि वे बाहर से आने वाले बदमाशो से दयाल बाग की रक्षा करने के लिए है।

× × ×

जब साहब जी महाराज ने मुझसे भेट करने का समय दिया मैंने उनकी स्तुत्य सफलता की खुले दिल से तारीफ की और कहा कि पतनोन्मुख भारत के इस कोने मे इस प्रगतिशील सभ्य उप-

वर्ष हो गये, पर सब से अधिक उन्नति पिछले बीस वर्षों में की गई है। आप को स्मरण रखना चाहिये कि यह उन्नति भी किसी आम प्रचार के बिना ही हुई है, क्योंकि हमारा समाज एक प्रकार से अर्ध-गुप्त संस्था है। यदि प्रचार को हम महत्त्व देकर जनता के सामने अपने सिद्धांतो के साथ आ जाते तो हमारे अनुयायियों की तादाद अब की अपेक्षा दसगुनी अधिक होती। अब तक सारे भारत मे हमारे संप्रदाय के लोग फैल गये है, परन्तु वे सभी दयाल बाग को अपना सदर मुकाम मानते है और जब फुरसत मिलती है यहाँ पर आ जाते है। वे छोटी छोटी मंडलियों में अपने को संगठित कर लेते है। वे हर रविवार को ठीक उसी समय मिलते है जब हम यहाँ खास बैठक रचते हैं।"

साहब जी महाराज अपना चश्मा साफ करने के लिए कुछ रुक कर फिर बोले :

"जरा सोचिये तो सही। जब हम लोग इस उपनिवेश की नींव डालने लगे तो हमारे पास इस काम के लिए भेंट किये हुए पाँच हज़ार रुपये थे। हमने जो पहली जमीन खरीदी वह केवल ४ एकड़ थी। अब दयाल बाग की हज़ारों एकड़ की जमीन है। क्या इससे स्पष्ट नहीं है कि हमारी सचमुच ही उन्नति हो रही है ?"

"आप इसको कितना बड़ा बनाना चाहते हैं ?"

"मेरी इच्छा है कि दस-बारह हजार लोगों को यहाँ बसाऊँ और उसके बाद रुक जाऊँ। बारह हज़ार की ठीक ठीक बसाई बस्ती काफी बड़ी होगी; मै यूरोप के बड़े बड़े शहरो का अनुकरण नही करना चाहता। उनमे भीड़ बेहद अधिक होती है और उसके कारण कई दुर्गुण फैलने लगते है। मै लोगो के खुली जगह और खुली हवा मे रहने और काम करने के लिए एक

कर रहे है जब कि उन्हें और स्थानो मे इससे निश्चय ही अधिक वेतन मिलेगा। मेरा तात्पर्य उन सज्जनो से है जो शिक्षित और पढ़े हुए है, न कि उन अशिक्षित श्रमिको से जो निस्सन्देह बड़ी खुशी के साथ अपनी ही इच्छा से ऐसा कर रहे है। यह सूत्र यहा पर बड़ी सफलता के साथ इसीलिए चल रहा है कि हम सभी का एक आध्यात्मिक ध्येय है। वही हमारी अन्य सभी चेष्टाओं को प्रेरित करता रहता है। कुछ लोग, जो काफी धनी है, कुछ तो दयाल बाग मे काम कर रहे है। इससे आप को पता चलेगा कि यहाँ के लोग कैसे उत्तम आदर्श से प्रेरित होकर काम कर रहे है। लेकिन मेरा विश्वास है कि जब दयाल बाग की उन्नति पूर्ण होगी इस प्रकार के अवैतनिक काम लेने की जरूरत नही पड़ेगी। जो हो, शीघ्रातिशीघ्र आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करने की इच्छा से ही ये सभी लोग यहाँ पर इकट्ठे हुए है, क्योंकि यही हमारे समाज का प्रधान ध्येय है। यदि आप ही यहाँ आ कर इस समाज में शामिल हो जॉय तब, यद्यपि आप हजार रुपये माहवार पाने की योग्यता रखते हो आप को उसका तीसरा अंश ही दिया जायेगा क्योंकि उतना अधिक वेतन देने के लिए यहाँ पर्याप्त धन नही है। तब फिर आप एक मकान बनवा सकते है, शादी करके बच्चे पैदा कर सकते है। लेकिन इस बीच मे यदि आपका मन केवल भौतिक विषय वासनाओ की ओर ही रहा और आध्यात्मिक आदर्श को, जिसकी प्राप्ति के लिए ही आप पहले इन लोगो मे शामिल हुए है, आपने छोड़ दिया तो आप उस हद तक असफलता पावेगे। जितने भौतिक दुनियावी काम काजों को आप देख रहे है उन सब के होते हुए भी हमारा वह प्रधान उद्देश्य, जिसकी प्राप्ति के लिये इस उपनिवेश की स्थापना हुई है, किसी भी हालत मे लुप्त नही होने पाता।"

सकता है। अभी कुछ दिन हुए हमने एक तजवीज़ सोची और उसे यहाँ पर काम मे ला रहे हैं। उससे हमारा यही तात्पर्य है कि बहुत जल्द इस उपनिवेश की हम वृद्धि कर ले। इस मंसूबे मे मेरे बताये हुए कई महत्त्वपूर्ण आर्थिक और सामाजिक सिद्धान्तों का समावेश है। हमारे यहाँ एक पैतृक-सम्पत्ति निधि कायम की गई है। जो एक हजार से कुछ ऊपर दे सकते थे उनसे प्रार्थना की गई कि वे इस निधि मे धन जमा करें। हमारी प्रबंधक समिति की ओर से उन लोगों को हर साल पाँच प्रति सैकड़ा से जो कम न हो ऐसी एक रकम दी जाती है। हिस्सेदार की मौत के बाद यह सालाना हिस्सा उसके बताये हुए वारिस को दिया जाता है। इस दूसरे आदमी को भी अपने वारिस को नामजद करने का हक है। पर तीसरी पीढ़ी के वारिस की मौत के बाद कुछ भी रकम नहीं दी जायेगी। यदि पहले हिस्सेदार को अपने जीवन काल मे किसी कठिन समस्या का सामना करना पड़े या किसी मुसीबत का कौर बनना पड़े तो उसकी जमा की हुई सारी की सारी पूँजी या उसका एक अंश उसको दिया जा सकता है। यों धीरे धीरे हमारे कोशगृह मे लाखों रुपये वसूल होने की संभावना है और तब भी हमारे सदस्यों को किसी प्रकार की विशेष तंगी महसूस नहीं करनी पड़ती। जो कुछ पूँजी वे लगावे उस पर एक नियत वार्षिक रकम उनको अवश्य ही मिल जाती है।"

"क्या मै मान लूँ कि आप पूँजीवाद के दोषों और साम्यवाद की कल्पित हवाई उड़ान के बीच एक मध्यम मार्ग ईजाद करने की चेष्टा कर रहे हैं? जो हो, मुझे उम्मीद है कि आप की

---

* [illegible] रोप के अर्थशास्त्री भी कुछ इसी तरह के, [illegible] के [illegible] रिजनानो के प्रतिपादित एक सिद्धान्त मे एक ज़माने मे [illegible] हैं।

सारी खासियत को अख्तियार कर ले। तभी भविष्य में कुछ आशा रक्खी जा सकती है। मेरे देश भाइयों को अमेरिका और जापान से सबक सीखना चाहिये। आधुनिक सभ्यता के कल कारखानों के मुकाबिले में हाथ की कताई और बुनाई कभी नहीं टिक सकती।"

साहब जी महाराज के शब्दों में एक भूरे हिन्दू के तन में होशियार अमेरिकन के दिमाग को मैंने काम करते पाया। उनका दिमाग, उनकी बुद्धि की तीक्ष्णता और सूक्ष्मता, उनके कारो-बार के लिये उपयोगी चालाक बुद्धि तीव्र और आश्चर्यजनक थी। उनके लोक ज्ञान, समता और कारणों को सोचने की स्थिरता, जो इस देश में विरले ही पायी जाती है, सभी ने मेरी तार्किक बुद्धि को हर लिया। उनके चरित्र का यह अनिर्वचनीय सा जँचने वाला अनेकपन मुझे विस्मित करने लगा। एक रहस्य पूर्ण योग मार्ग के अवलंबन करने वाले, एक लाख से कुछ अधिक ही लोगों के दिल के सार्वभौम, दयाल बाग में सर्वत्र मेरी दृष्टि को हर लेने वाले, अनेक प्रकार के भौतिक कारोबारों के विधाता और निर्माता, साहब जी महाराज मेरी दृष्टि में एक अद्वितीय पुरुष हैं. उनको देख कर मैं दंग रह जाता हूँ। सारे भारत में, सारे संसार भर में उनका सानी मिलने का मुझे विश्वास नहीं होता।

फिर से उनका कंठस्वर मेरे कानों में गूंजने लगा

"आपने दयाल बाग में हमारे जीवन के केवल दो ही पहलू देखे हैं। आपको और एक पहलू देखना है। मानव की उन्नति तीन प्रकार की होती है—आध्यात्मिक, आधिभौतिक, और आधि-दैविक। इस कारण हमने भी आधिभौतिक ढंग से कल कारखानों, खेती-बारी आदि को कायम किया है, मानसिक उन्नति के लिए

ज़मीन भी खाली न थी। सभी की दृष्टि साहब जी महाराज पर लगी थी। अदब के कारण सभी चुप्पी साधे हुए थे।

मै चबूतरे के पास गया और वहाँ एक तंग जगह से किसी तरह अपना आसन जमा लिया। शीघ्र ही दालान के पिछले भाग मे दो सज्जन उठ खड़े हुए और धीरे धीरे गंभीर आवाज़ में वे कुछ मंत्र गाने लगे। गीतो की भाषा हिंदी थी और वे कानो को बहुत ही प्यारे मालूम हो रहे थे। यो कोई पन्द्रह मिनट बीते। उन निराले पावन शब्दो ने धीरे धीरे थमते थमते सब की मनोवृत्तियों को प्रशांत बना दिया। फिर वे न मालूम कब हवा की हिलकोरियो मे लहरते लहरते विलीन हो गये।

मैंने चारों ओर निगाह दौड़ायी। उस विशाल शामियाने मे सब कोई शांत, अविचल और ध्यान मे डूबे बैठे हुए थे। वेदी पर सोहने वाली उस साधारण वेष धारी, नम्रता की मूक मूर्ति की ओर मै ताकने लगा। उनका मुख सदा की अपेक्षा अधिक गंभीर हो गया था, उनका वह फुर्तीलापन मानो गायब सा था। प्रतीत होता था कि उनका मन किसी गहरे ध्यान मे मग्न सा हो गया है। मुझे आश्चर्य होने लगा कि उस सफेद साफे के तले क्या विचार लहर मारते होगे? उनके कंधो पर कितनी भारी जिम्मे-दारी थी, क्योकि ये सारे लोग उनको अपना बेड़ा पार लगाने वाला खेवनहार समझे हुए थे।

यह अद्भुत सन्नाटा और आध घंटे तक छाया रहा। कोई हिलता डुलता न था। क्या इन सभी मननशील पूर्व के निवासियों ने मुझ शक्की पश्चिमी की आँखो की ओट किसी अपूर्व जगत मे अपनी अंतर्मुख दृष्टियो को लीन कर दिया है? कौन कह सकता है कि बात क्या थी? लेकिन यह सब सारे दयाल बाग

ही शीघ्र बता देते हैं। उनके सारे स्वभाव मे एक असाधारण रूप से बड़ी सफलता के साथ अटल आत्म-विश्वास और अत्यंत नम्रता का सुन्दर समावेश हो गया है। बातचीत मे वे बड़े ही निपुण दीखते है और वे इतने सरस और तत्पर है कि उनकी बातो मे उनके वे गुण फूट फूट कर प्रकट होते है।

शाम को फिर एक सामुहिक बैठक हुई। दयाल बाग के हर विभाग का काम अब खतम हुआ था और विशाल शामियाने मे फिर एक बड़ा जमघट लगा। साहब जी महाराज फिर अपनी कुर्सी पर आसीन हुए। मैने देखा कि उनके अनुयायियो का एक ताँता उनके निकट बड़े आदर के साथ पहुँचकर दयाल बाग की प्रबंध समिति की निधि की रक्षा तथा वृद्धि के लिए भेट चढ़ाने लगा। कमेटी के दो सदस्य इन सारी नजरो को इकट्ठा करते तथा वहीं से चढ़ाते जाते थे।

बाद को जो खास बात हुई वह गुरु महाराज का व्याख्यान था। उनकी सुघड़ हिंदी को बड़े चाव और लगन के साथ हजारों चेले मगन होकर सुनने लगे थे। महाराज अच्छे वक्ता है। वे जो कुछ बोलते थे वह दिल से बोलते थे और वह भी सारगर्भित वचनों से और बड़े ही सुन्दर रूप से। वे बोलते समय इतने आवेग और आवेश से भरकर व्याख्यान देते थे कि सुनने वालो के दिल पर प्रकट ही जादू फिर जाती थी।

× × ×

हर दिन यही कार्यक्रम जारी रहता था। शाम की बैठक करीब दो घंटे तक होती। साहब जी महाराज की मानसिक शक्ति इसी से प्रकट हो जायेगी कि वे अपने स्वाभाविक उत्साह के साथ. बिना किसी प्रकार की तकलीफ के ही सारा कार्यक्रम चलाते थे। कोई पहले से नहीं जानता है कि शाम की बैठक मे

बिजली के समान बहुत ही शीघ्र साहब जी महाराज बोले उठे—"सद्गुरु की खोज में जो भी समय लगाया जाय वह व्यर्थ कभी नहीं होगा। विश्वासी होने से पहले मैं भी आप सरीखा अविश्वासी और शक्की था। उस समय मेरे आध्यात्मिक मार्ग को रोशन करने वाले सद्गुरु को खोजने की इच्छा मेरे दिल में बलवती हो उठी। मैं भरी जवानी में था और निरुद्देश्य ही सत्य को ढूँढ़ निकालने की धुन मेरे सिर पर सवार था। मैं पेड़ों से, आसमान से, यहाँ तक कि घास-फूस से भी पूछा करता था कि सचमुच सत्य की सत्ता है कि नहीं? ज्ञान ज्योति के लिए तरसते हुए सिर झुका कर बच्चे के समान मैं कितने बार रो पड़ा था। मेरा दिल धीरे धीरे गल कर आँसुओं के रूप में निकला करता था। अन्त में मुझ से सहा न गया। मैंने एक दिन ठान लिया कि जब तक दैवी शक्ति मुझ को योग्य समझ कर मेरे दिल को जरा सा रोशन न करे तब तक, चाहे मर भी जाऊँ, न खाऊँगा न पीऊँगा। मैं कोई काम भी नहीं कर सकता था। दूसरे दिन रात को मैंने एक स्वप्न देखा। मैंने देखा कि एक महात्मा मेरे यहाँ पधारे हैं। उन्होंने बताया 'मैं ही तेरा गुरुदेव हूँ।' मैंने उनका पता पूछा तो उन्होंने कहा 'इलाहाबाद। मेरा पूरा पता तुमको फिर मालूम हो जायगा।' दूसरे दिन मैंने अपने एक इलाहाबाद के मित्र से सपने की सारी बात कह दी। वे फिर कुछ फोटो लेकर मेरे पास आये। बोले 'इनमें तुम्हारे सपने के गुरु कौन हैं? कुछ पहचान सकते हो?' मैंने झट पहचान लिया। मेरे मित्र ने कहा कि उस फोटो के महाशय एक रहस्य संप्रदाय के गुरु हैं। मैंने शीघ्र ही उनका परिचय प्राप्त कर लिया और कुछ ही दिनों में उनका चेला बन गया।"

"बहुत ही रोचक है!"

पूर्वक प्रतिदिन इन अभ्यासों का पालन करना कही मुख्य है। खेद है कि मै ध्यान के उन प्रकारो का व्यौरा आपको नही बता सकता क्योंकि वे उन्ही को बताये जाते है जो उनको पोशीदा रख कर स्वीकार करने की कसम खा लें और साथ ही वे इस संप्रदाय मे शामिल होने के इच्छुक हो। लेकिन मै एक बात आपको बता सकता हूँ। उन सारे अभ्यासों का मूल ध्वनि या नाद योग, यानी भीतरी शब्द, अनहद नाद, को सुनने का अभ्यास है।"

"मै जो किताबें पढ़ रहा हूँ उनमे लिखा हुआ है कि सृष्टि ही शब्द शक्ति से हुई है।"

"भौतिक दृष्टि से आपने ठीक ही समझ लिया है। लेकिन ऐसा कहना बेहतर है कि सृष्टि करते हुए परमात्मा की सबसे पहली क्रिया ही शब्द या नाद है। विश्व कुछ अंधे नियमो का परिणाम नही है। हमारे संप्रदाय के लोग इस दिव्य नाद को जानते है और वे उसकी अक्षर रूप में प्रतिलिपि ले सकते है। हमारा विश्वास है कि ध्वनियों पर उनके उत्पत्ति स्थान का और उत्पन्न करने वाली शक्ति का प्रभाव अंकित रहता है। अतः जब हमारा कोई सदस्य इस दिव्य नाद को भीतर ही भीतर बड़े ध्यान से, मन, काया और संकल्प का संयम करके, सुनने लगता है तब उस दिव्य नाद के गॅजते गूँजते वह इस भौतिक जगत के परे, परा सत्ता के परमानंद और परम ज्ञान के आलोक से मंडित हो जाता है।"

"क्या ऐसा भ्रम पैदा होना संभव नही है कि अपनी धमनियो मे बहने वाली लहू की धारा के प्रसरण की ध्वनि को ही साधक दिव्य नाद समझ बैठे? और कौन सी ध्वनियाँ भीतर सुनायी पड़ेगी?"

"हमारा तात्पर्य किसी भौतिक शब्द से नही है। हम जो कहते है वह एक आध्यात्मिक नाद है। भौतिक जगत मे जो शब्द ध्वनि

"मुझे कुछ भी नहीं सूझता कि इसके वारे मे मै क्या कहूँ।"

"क्यो दिक्कत किस वात की है ? आप अवश्य ही स्वीकार करेगे कि नाद का एक रूप—संगीत, आदमी को आनंद विभोर बना सकता है। तब सोच कर देखिये कि दैवी आभ्यन्तरिक संगीत से कितना अधिक आनंद हो सकता है ?"

"मान लिया; पर इस आभ्यन्तर संगीत के अस्तित्व मे कोई प्रमाण पेश करें तब न।"

"आपको इस वात की सच्चाई मै कितनी ही दलीलों से समझा सकता हूँ पर मुझे तो यह प्रतीत हो रहा है कि आप इससे कुछ और अधिक की ताक लगाये हुए है। प्राकृतिक और भौतिक जगत से परे जो वातें है उनको केवल सूखे तर्क से मैं कैसे प्रमाणित कर सकता हूँ। बिलकुल स्वभाविक ही है कि साधारण मानव अतीत की किसी सत्ता का ज्ञान न रक्खे। यदि आप इन वातो का प्रत्यक्ष प्रमाण चाहते है तो आपको यही उत्तम होगा कि कुछ योग के अभ्यासो का अवलंवन करें। मै आपको यकीन दिला सकता हूँ कि मानव शरीर हम जैसा मान वैठे हैं उसकी अपेक्षा कहीं उत्तम वातें कर दिखाने की ताकत रखता है। हमारे मस्तिष्क के केन्द्रों के अंतरतम भाग और सूक्ष्म लोकों की सत्ता में सबंध है। नियत शिक्षण से इन केन्द्रो की शक्ति उद्‌वुद्ध की जा सकती है। यहाँ तक कि एक दिन हमें सूक्ष्म लोको का पता लग जायेगा। इन सब केन्द्रो मे जो सब से अधिक प्रधान है उसके उद्‌वुद्ध हो जाने पर अनुत्तम दिव्य चैतन्य की अनुभूति होने लगेगी।"

"क्या आपका मतलब शरीर रचना शास्त्रियों के बताये हुए मस्तिष्क के केन्द्रो से है ?"

प्राप्ति के पहले सारी शारीरिक वेदनाओं को शांत कर लेना होगा। नहीं तो वाह्य जगत की वेदनाओं से हम अपने को नहीं बचा सकेंगे। अतः हमारे योग का सार यही है कि साधक पूरा पूरा ध्यान साध ले ताकि ध्यान की धारा अंतर्मुख बन जावे और बाह्य वातावरण का तब तक ख्याल ही न रहे जब तक कि एक गहरी धारणा की दशा प्राप्त न हो जाय।"

मैं इन विचित्र, सूक्ष्म और गंभीर बातों को समझने की चेष्टा करते हुए चारों ओर ताकने लगा। तब तक हमारे पास एक खासी भीड़ इकट्ठी हो गई थी और लगन से हमारी बातें सुन रही थी। उनके गुरू महाराज की बातों के तले उनका जो प्रशांत आत्मविश्वास मुझे झलकता दिखाई देता था वह मानों मेरे मन को खींचने लगा, पर.. ..।

"तो आप का कहना यही है कि इन बातों की सच्चाई को परखने का एकमात्र साधन नाद योग का अभ्यास करना है। पर आप उसे प्रकट नहीं करते, उसे पोशीदा रखते है।"

"जो कोई हमारे संप्रदाय मे शामिल होने की चाह प्रकट करे, यदि वह स्वीकार किया गया, तो उसे हमारे योग अभ्यासों का तरीका मौखिक रूप से बता दिया जायेगा।"

"पहले से आप मुझे उस योग का कुछ स्थूल अनुभव नही करा सकते जिससे आपकी बातें प्रमाणित हो जॉय ? आप जो कहते है यदि बिल्कुल ही ठीक हो तो निस्संदेह मेरा दिल उसका विश्वास करना चाहता है।"

"नही। आप को पहले हममे शामिल होना पड़ेगा।"

"अफसोस है। मेरा मन कुछ इस प्रकार से गढ़ा हुआ है कि प्रमाणित होने से पहले ही किसी भी बात का विश्वास न करे।"

दो मिनट तक हम दोनों चुप थे। फिर वे बोले:

"हमारी सामुहिक बैठको मे बैठने वाले आप ही सब से पहले गोरे व्यक्ति है। हॉ अब और भी अवश्य आवेगे। आपने जो हमारे आदर्शो को सहानुभूति के साथ समझने की चेष्टा की इसके लिए हम आप के बड़े एहसानमंद है। आप हमारे संप्रदाय में शामिल क्यो नही होते?"

"क्योकि मुझे अपने ऊपर विश्वास नही है। मैं खूब जानता हूँ कि जिसका तुम विश्वास करना चाहते हो उसको शीघ्र ही और सहज ही विश्वास करने की खतरनाक संभावना है।"

वह घुटने जोड़ कर उन पर ठुड्डी टेक कर बैठ गया।

"जो हो, हमारे गुरुदेव के साथ आपका जो यह साहचर्य और संगति हुई वह आप को अवश्य ही भारी लाभ पहुँचावेगी। मैं इस पर जोर नहीं देता कि आप हमारे संप्रदाय में अवश्य ही मिल जावें। हम लोग अपने झुंड को बढ़ाने की चेष्टा नही करते। हमारे सदस्यों को संप्रदाय के सिद्धान्तो के प्रचार करने का कोई अधिकार नहीं दिया जाता।"

"तुम्हे इस संप्रदाय का पता कैसे चला?"

"बहुत ही सहज रीति से। मेरे पिता जी वर्षो से इसके सदस्य रहे हैं। वे दयाल बाग मे नही रहते। बीच बीच में यहॉ आकर दर्शन कर लेते है। वे मुझे कई बार यहॉ साथ लाये लेकिन कभी भी उन्होंने मुझे इसमें शामिल होने के लिए नही उकसाया था। दो वर्ष पूर्व मेरे मन में संसार के बारे में कई विचार पैदा हुए। मैने कई मित्रों से उन प्रश्नो के बारे में पूछा कि उनके क्या विचार थे। मैने अपने पिता जी से भी प्रश्न किया। उनका उत्तर सुन कर मै राधास्वामी संप्रदाय की ओर

लेकिन भारतवर्ष भर मे मैने राधास्वामियों का सा निराला तथा चकित करनेवाला संप्रदाय नहीं देखा है। वह अपने ढंग का अकेला है। इस मिथ्या सा भासने वाला, संसार भर मे अत्यंत प्राचीन योग शास्त्र का, बीसवीं सदी की गति प्रधान यंत्रमय कल्लोलपूर्ण सभ्यता के साथ मेल कर डालने की प्रतिज्ञा साहब जी महाराज के सिवा और किस के लिये संभव थी ?

क्या मुमकिन है कि दयाल बाग आज जितनी उपेक्षित दशा में है, एक दिन भारत के इतिहास में उतना ही या उससे कहीं अधिक महत्त्व धारण कर ले ? यदि आज भारत एक ऐसी पहेली बन गया है जो किसी के बुझाने से नहीं बूझती, तो इसका क्या प्रमाण है कि भविष्य भी इसका उत्तर नहीं ही दे सकेगा ।

साहब जी महाराज ने गाँधी जी के पुरानेपन की बातो की हँसी उड़ायी थी और उसी की गूँज अब भी गाँधी जी के सदर मुकाम, अहमदाबाद मे सुनी जा सकती है। वहाँ घरेलू धन्धों के वैभव गीत गाने वाले साबरमती के उस छोटे आश्रम की सफेद कुटियाओं को तिरस्कार और घृणा की दृष्टि से देखने वाले ५०-६० कारखानों को कोई भी आसानी से गिन सकता है।

पश्चिमी सभ्यता की तेज़ धारा के वहाव मे देश की जीवन यात्रा की पुरानी परिपाटियाँ वह गई है। सब से पहले भारतवर्ष मे पग धरने वाले गोरे यूरोपियन न केवल माल की गाँठो को ही साथ लाये बल्कि पश्चिमी विचारो को भी। वास्कोडेगामा ने अपने सहयात्रियों के साथ जिस दिन कालीकट मे पैर रक्खा उसी दिन से पाश्चात्य सभ्यता का यहाँ पर फैलना शुरु हो गया था। भारतवर्ष की औद्योगिक क्रांति एक संकोच के साथ, एक ढिलाई के साथ शुरु हो गई, पर अन्त में किसी भाँति हो चल तो

लेकर उनमें आध्यात्मिकता का विमल स्रोत, प्रचार और उपदेश से नहीं वरन् अपने आध्यात्मिक प्रेरणा से युक्त कार्य कलापों से, ज्ञान से पूर्ण कर्म योग से, बहा देना चाहिये। दैनिक जीवन को स्वर्ग की सीढ़ी बनाना पड़ेगा। दुनिया से एकदम दूर विरक्ति में बिताये जाने वाला योग, जीवन की दुनिया दूसरी ही मान बैठना, धोखे की टट्टी और मिथ्या गर्व से भरी हुई बात है।

यदि योग इने गिने व्यक्तियो की ही संपत्ति रहे तो इस ज़माने के लोगो को उसकी कुछ भी उपयोगिता नही रहेगी और फलतः शीघ्र ही म्रियमाण योग विज्ञान बिलकुल ही लुप्त हो जावेगा। यदि वह कुछ क्षीणकाय तपस्वियों के ही विनोद की सामग्री रहे तो हम कलम घिसने वाले, हल जोतने वाले, कारखानो के धुएँ और आग मे कोयला बनने वाले, स्टाक बाज़ार के तुमुल कोलाहल मे भाग लेने वाले, हम साधारण लोगों को उससे कोई निस्बत नही है। हम अपनी दृष्टि उससे फेर ही लेंगे। और नतीजा इसका यह होगा कि भारतवर्ष भी इस ज़माने के पश्चिम के जीवन, सभ्यता तथा संस्कृति का केवल एक निर्जीव, उपजीवी, मानस पुत्र हो बन जायेगा।

साहब जी महाराज ने इस दुर्निवार घटना चक्र की गति पहचान ली है और बड़ी दिलेरी के साथ प्राचीन योग के अनमोल रत्न को इस तत्त्वशून्य खोखली सभ्यता के उपयोग के लिए सुरक्षित करने की अद्भुत चेष्टा की है। इस महान आत्मा का, उसके महिमामय दिव्य प्रयत्न का प्रभाव भारतवर्ष पर अवश्य ही पड़ेगा। उन्होंने जान लिया है कि उनकी प्रिय मातृभूमि आलस्य का बड़े लम्बे जमाने तक शिकार रह चुकी है। उन्होने खूब ही पहचाना है कि व्यापार, कला कौशल तथा वैज्ञानिक खेती के कारण नवीन जीवन और नव उत्साह से स्पंदमान पश्चिम क्यो आमोद

लेकर उनमें आध्यात्मिकता का विमल स्रोत, प्रचार और उपदेश से नहीं वरन् अपने आध्यात्मिक प्रेरणा से युक्त कार्य कलापों से, ज्ञान से पूर्ण कर्म योग से, बहा देना चाहिये। दैनिक जीवन को स्वर्ग की सीढ़ी बनाना पड़ेगा। दुनिया से एकदम दूर विरक्ति में बिताये जाने वाला योग, जीवन की दुनिया दूसरी ही मान बैठना, धोखे की टट्टी और मिथ्या गर्व से भरी हुई बात है।

यदि योग इने गिने व्यक्तियो की ही संपत्ति रहे तो इस ज़माने के लोगो को उसकी कुछ भी उपयोगिता नही रहेगी और फलतः शीघ्र ही म्रियमाण योग विज्ञान बिलकुल ही लुप्त हो जावेगा। यदि वह कुछ क्षीणकाय तपस्वियों के ही विनोद की सामग्री रहे तो हम कलम घिसने वाले, हल जोतने वाले, कारखानो के धुएँ और आग मे कोयला बनने वाले, स्टाक बाज़ार के तुमुल कोलाहल मे भाग लेने वाले, हम साधारण लोगों को उससे कोई निस्बत नही है। हम अपनी दृष्टि उससे फेर ही लेंगे। और नतीजा इसका यह होगा कि भारतवर्ष भी इस ज़माने के पश्चिम के जीवन, सभ्यता तथा संस्कृति का केवल एक निर्जीव, उपजीवी, मानस पुत्र हो बन जायेगा।

साहब जी महाराज ने इस दुर्निवार घटना चक्र की गति पहचान ली है और बड़ी दिलेरी के साथ प्राचीन योग के अनमोल रत्न को इस तत्त्वशून्य खोखली सभ्यता के उपयोग के लिए सुरक्षित करने की अद्भुत चेष्टा की है। इस महान आत्मा का, उसके महिमामय दिव्य प्रयत्न का प्रभाव भारतवर्ष पर अवश्य ही पड़ेगा। उन्होंने जान लिया है कि उनकी प्रिय मातृभूमि आलस्य का बड़े लम्बे जमाने तक शिकार रह चुकी है। उन्होने खूब ही पहचाना है कि व्यापार, कला कौशल तथा वैज्ञानिक खेती के कारण नवीन जीवन और नव उत्साह से स्पंदमान पश्चिम क्यो आमोद

लेकर उनमें आध्यात्मिकता का विमल स्रोत, प्रचार और उपदेश से नहीं वरन् अपने आध्यात्मिक प्रेरणा से युक्त कार्य कलापो से, ज्ञान से पूर्ण कर्म योग से, वहा देना चाहिये। दैनिक जीवन को स्वर्ग की सीढ़ी बनाना पड़ेगा। दुनिया से एकदम दूर विरक्ति में विताये जाने वाला योग, जीवन की दुनिया दूसरी ही मान वैठना, धोखे की टट्टी और मिथ्या गर्व से भरी हुई वात है।

यदि योग इने गिने व्यक्तियो की ही संपत्ति रहे तो इस ज़माने के लोगो को उसकी कुछ भी उपयोगिता नही रहेगी और फलतः शीघ्र ही म्रियमाण योग विज्ञान विलकुल ही लुप्त हो जावेगा। यदि वह कुछ क्षीणकाय तपस्वियों के ही विनोद की सामग्री रहे तो हम कलम घिसने वाले, हल जोतने वाले, कारखानो के धुएँ और आग मे कोयला वनने वाले, स्टाक वाज़ार के तुमुल कोलाहल में भाग लेने वाले, हम साधारण लोगों को उससे कोई निस्वत नही है। हम अपनी दृष्टि उससे फेर ही लेंगे। और नतीजा इसका यह होगा कि भारतवर्ष भी इस ज़माने के पश्चिम के जीवन, सभ्यता तथा संस्कृति का केवल एक निर्जीव, उपजीवी, मानस पुत्र हो वन जायेगा।

साहव जी महाराज ने इस दुर्निवार घटना चक्र की गति पहचान ली है और वड़ी दिलेरी के साथ प्राचीन योग के अनमोल रत्न को इस तत्त्वशून्य खोखली सभ्यता के उपयोग के लिए सुरक्षित करने की अद्भुत चेष्टा की है। इस महान आत्मा का, उसके महिमामय दिव्य प्रयत्न का प्रभाव भारतवर्ष पर अवश्य ही पड़ेगा। उन्होने जान लिया है कि उनकी प्रिय मातृभूमि आलस्य का वड़े लम्बे ज़माने तक शिकार रह चुकी है। उन्होने खूव ही पहचाना है कि व्यापार, कला कौशल तथा वैज्ञानिक खेती के कारण नवीन जीवन और नव उत्साह से स्पंदमान पश्चिम क्यो आमोद

पड़ी। यूरोप मे बौद्धिक जीवन का पुर्नजन्म हुआ और व
सुधार फैल चला। फिर औद्योगिक क्रांति का दौर-दौरा
था। यूरोप इन सबो को पार करके आज एक नई २ेर्न
सना जा रहा है। भारतवर्ष के मार्ग मे अब ये सभी
खड़ी हो गई हैं। क्या वह अंध विश्वास के साथ
मूँद कर यूरोप का अनुकरण करेगा या अपना मार्ग आप ही
लेगा ? यह वेशक भारत के लिए अधिक हितकर होगा।
साहब जी महाराज के दिमाग की उपज, दयाल बाग, इस बा
भारतवर्ष की दृष्टि को खींच न लेगा ?

यदि मेरे मन मे कोई निश्चय था तो यह कि भवि-
भारतवर्ष अनसुनी और अनसोची घटनाओ तथा आंदोलनो
फॅस जायगा। हजारो वर्ष की पुरानी सभ्यता, पुराने कठोर ध
नियमो मे फॅसे हुए संप्रदाय तथा परिपाटियाँ दो-तीन ही पी
मे गुम हो जायेगी। यह सब एक करामात से कम न होगा;
इसके होने मे रत्ती भर भी शका नहीं है।

साहब जी महाराज ने स्पष्ट ही सारी परिस्थिति को
कर लिया है। वे खूब समझते है कि हम एक नये ज़माने
रहने लगे है, हर जगह दकियानूसी विचार मिट्टी मे
जा रहे है। क्या एशियाई जीवन की शिथिलता और पश्चिमी
प्रधान दुनिया दोनो अनमिल और विरुद्ध बाते है ? और यदि
काल मे रही भी हो तो क्या सदा के लिए ऐसी ही रहेगी ? स
जी महाराज का उत्तर है 'नहीं'। योगी दुनियावी भेष धारण
न करे ? इसी कारण साहब जी महाराज कहते है कि योगी
अवश्य ही अपनी विरक्ति को छोड़ कर आम जनता मे, जहाँ
पुर्जो की धूम है, मिलना जुलना पड़ेगा। उनकी राय मे ऐसा
आ पहुँचा है जब योगियो को कारखानो, विद्यालयो आदि मे भ

लेकर उनमें आध्यात्मिकता का विमल स्रोत, प्रचार और उपदेश से नही वरन् अपने आध्यात्मिक प्रेरणा से युक्त कार्य कलापों से, ज्ञान से पूर्ण कर्म योग से, बहा देना चाहिये। दैनिक जीवन को स्वर्ग की सीढ़ी बनाना पड़ेगा। दुनिया से एकदम दूर विरक्ति में विताये जाने वाला योग, जीवन की दुनिया दूसरी ही मान बैठना, धोखे को टट्टी और मिथ्या गर्व से भरी हुई बात है।

यदि योग इने गिने व्यक्तियो की ही संपत्ति रहे तो इस ज़माने के लोगों को उसकी कुछ भी उपयोगिता नही रहेगी और फलतः शीघ्र ही म्रियमाण योग विज्ञान बिलकुल ही लुप्त हो जावेगा। यदि वह कुछ क्षीणकाय तपस्वियों के ही विनोद की सामग्री रहे तो हम कलम घिसने वाले, हल जोतने वाले, कार-खानो के धुएँ और आग मे कोयला बनने वाले, स्टाक बाज़ार के तुमुल कोलाहल मे भाग लेने वाले, हम साधारण लोगों को उससे कोई निस्बत नही है। हम अपनी दृष्टि उससे फेर ही लेंगे। और नतीजा इसका यह होगा कि भारतवर्ष भी इस ज़माने के पश्चिम के जीवन, सभ्यता तथा संस्कृति का केवल एक निर्जीव, उपजीवी, मानस पुत्र हो बन जायेगा।

साहब जी महाराज ने इस दुर्निवार घटना चक्र की गति पह-चान ली है और बड़ी दिलेरी के साथ प्राचीन योग के अनमोल रत्न को इस तत्त्वशून्य खोखली सभ्यता के उपयोग के लिए सुर-क्षित करने की अद्भुत चेष्टा की है। इस महान आत्मा का, उसके महिमामय दिव्य प्रयत्न का प्रभाव भारतवर्ष पर अवश्य ही पड़ेगा। उन्होंने जान लिया है कि उनकी प्रिय मातृभूमि आलस्य का बड़े लम्बे ज़माने तक शिकार रह चुकी है। उन्होंने खूब ही पह-चाना है कि व्यापार, कला कौशल तथा वैज्ञानिक खेती के कारण नवीन जीवन और नव उत्साह से स्पंदमान पश्चिम क्यों आमोद

प्रमोद मे भूल रहा है। उन्होने यह भी देखा है कि प्राचीन मुनियो से हमें जो कुछ प्राप्त हुआ है उसमे योग-विज्ञान सा रत्न नही है। जो इने गिने योगी उस विज्ञान मे पारदर्शी है कही एकान्त स्थानो मे उसे उज्जीवत रखते हैं, वे भी शीघ्र क्षीण हो रहे है और उनके मरने पर उनके साथ योग विज्ञान परम रहस्य भी सदा के लिए नष्ट हो जायँगे। इसलिये शीतल समाधि की आनंदानुभूति की ऊँचाई से हम मर्त्यों के मे, गति प्रधान बीसवी सदी के कल्लोलमय आन्दोलनो के क्षेत्र उतर आने की कृपा की है और वे इन दोनो परस्पर विरुद्ध वाले क्षेत्रों का सुंदर समावेश करने की अथक चेष्टा कर रहे है

क्या उनकी यह चेष्टा अत्यंत काल्पनिक नही है? उसका कोई सुपरिणाम होने की संभावना है? क्यो नही, यह प्रयत्न वास्तव मे बहुत ही स्तुत्य है। हमे याद रखना कि हम एक ऐसे जमाने मे रहते है जब रसूल के कब्र पर का चिराग़ चमक रहा है, जब रेगिस्तान के जहाज़ ऊँट के को ऐशो-आराम से युक्त मोटरें सुदूर मोरोक्को में छीन रही ऐसी दशा मे हिंदुस्तान की क्या स्थिति होगी? एकदम संस्कृति तथा सभ्यता की टक्कर खाकर भारत अपनी सदियो घोर निद्रा से चौक पड़ा है। झख मार कर इस विशाल देश अपनी भारी पलको को खोले ही रहना पड़ेगा। अंग्रेजो ने रेगिस्तानो को उर्वर ही नही बनाया, सिर्फ नाले खोद और बाँध कर बड़ी बड़ी नदियो की बाढ़ ही नही रोकी, खेती की ही नही की, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त मे दुर्भेद्य किलाओ श्रेणियाँ बाँध कर देश की शांति की रक्षा ही नही की, केवल बौद्धिक विद्रोह ही पैदा नही किया; उन्होने इनसे कहीं उपकार किये है।

धूम्र धूसर उत्तर और सुदूर पश्चिम से गोरे यहाँ आये। किस्मत उन पर मुस्कराने लगी। नाम मात्र के प्रयत्नों से यह भारी देश उनके अधीन हो गया। क्यों? शायद दुनिया प्राच्य प्रज्ञान और पश्चिमी विज्ञान को मिला कर एक ऐसी नई सभ्यता को जन्म देगी जो प्राचीनता को लज्जित करे, नवीनता को घृणित ठहरावे और भविष्य को चकित कर दे।

मेरे ध्यान की धारा समाप्त हो गई। मैंने अपना सिर उठाया और अपने साथी से एक प्रश्न पूछा। मैं समझ गया, वह मेरी बात नहीं सुनता था। नदी तल के ऊपर जो संध्या की आखिरी लाली की झलक दीखती थी उसे वह ताकता रहा। गोधूलि की वेला थी। सूर्य मंडल का महान चक्र आसमान से बहुत ही शीघ्र गायब हो रहा था। उस समय का सन्नाटा, उसका मै क्या कह कर वर्णन करूँ। उस की बड़ी अनोखी आभा थी। सारी प्रकृति उस मनोहर दृश्य की मधुरिमा मे तल्लीन थी। कुछ काल तक सभी स्थावर जंगम अपने आपको मानो खो बैठे थे। मेरे हृदय का प्याला अकथनीय शांति से लबालब भरा हुआ था। और एक बार मैने अपने साथी की ओर नशीली दृष्टि डाली। उसकी मूर्ति कुहरे के लबादे मे शीघ्र ही ढॅकती जा रही थी।

उस निश्चल शांति में और थोड़ी देर तक हम बैठे रहे। अचानक एक आग का गोला अंधकार के अतल तल में गिर पड़ा। रात की श्यामल यवनिका खिच गयी। आँखो के सामने शून्य शांति ही शांति थी।

मेरा साथी उठा और चुपचाप वृक्षो की छाया में से मुझे साथ लेकर दयाल बाग की ओर चला। हजारो ज्योति बिंदु चंदोवे में जगमगा रहे थे और हमारी सैर समाप्त हो गई।

× × ×

प्रमोद में भूल रहा है। उन्होंने यह भी देखा है कि प्राचीन ऋषि मुनियों से हमें जो कुछ प्राप्त हुआ है उसमें योग-विज्ञान सा दूसरा रत्न नहीं है। जो इने गिने योगी उस विज्ञान में पारदर्शी हैं और कहीं एकान्त स्थानों में उसे उज्जीवत रखते हैं, वे भी शीघ्र ही क्षीण हो रहे हैं और उनके मरने पर उनके साथ योग विज्ञान के परम रहस्य भी सदा के लिए नष्ट हो जायेंगे। इसलिये उन्होंने शीतल समाधि की आनंदानुभूति की ऊँचाई से हम मर्त्यों के बीच में, गति प्रधान बीसवीं सदी के कल्लोलमय आन्दोलनों के क्षेत्र में उतर आने की कृपा की है और वे इन दोनों परस्पर विरुद्ध जँचने वाले क्षेत्रों का सुंदर समावेश करने की अथक चेष्टा कर रहे हैं।

क्या उनकी यह चेष्टा अत्यंत काल्पनिक नहीं है? क्या उसका कोई सुपरिणाम होने की संभावना है? क्यों नहीं, उनका यह प्रयत्न वास्तव में बहुत ही स्तुत्य है। हमें याद रखना चाहिये कि हम एक ऐसे जमाने में रहते हैं जब रसूल के कब्र पर बिजली का चिराग़ चमक रहा है, जब रेगिस्तान के जहाज़ ऊँट के स्थान को ऐशो-आराम से युक्त मोटरें सुदूर मोरोको में छीन रही हैं। ऐसी दशा में हिंदुस्तान की क्या स्थिति होगी? एकदम विपरीत संस्कृति तथा सभ्यता की टक्कर खाकर भारत अपनी सदियों की घोर निद्रा से चौंक पड़ा है। झख मार कर इस विशाल देश को अपनी भारी पलकों को खोले ही रहना पड़ेगा। अंग्रेज़ों ने केवल रेगिस्तानों को उर्वर ही नहीं बनाया, सिर्फ नाले खोद और पुल बाँध कर बड़ी बड़ी नदियों की बाढ़ ही नहीं रोकी, खेती की मदद ही नहीं की, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त में दुर्भेद्य किलाओं की श्रेणियाँ बाँध कर देश की शांति की रक्षा ही नहीं की, केवल एक बौद्धिक विद्रोह ही पैदा नहीं किया; उन्होंने इनसे कहीं अधिक उपकार किये हैं।

धूम्र धूसर उत्तर और सुदूर पश्चिम से गोरे यहाँ आये। किस्मत उन पर मुस्कराने लगी। नाम मात्र के प्रयत्नों से यह भारी देश उनके अधीन हो गया। क्यों? शायद दुनिया प्राच्य प्रज्ञान और पश्चिमी विज्ञान को मिला कर एक ऐसी नई सभ्यता को जन्म देगी जो प्राचीनता को लज्जित करे, नवीनता को घृणित ठहरावे और भविष्य को चकित कर दे।

मेरे ध्यान की धारा समाप्त हो गई। मैंने अपना सिर उठाया और अपने साथी से एक प्रश्न पूछा। मैं समझ गया, वह मेरी बात नहीं सुनता था। नदी तल के ऊपर जो संध्या की आखिरी लाली की झलक दीखती थी उसे वह ताकता रहा। गोधूलि की वेला थी। सूर्य मंडल का महान चक्र आसमान से बहुत ही शीघ्र गायब हो रहा था। उस समय का सन्नाटा, उसका मैं क्या कह कर वर्णन करूँ। उस की बड़ी अनोखी आभा थी। सारी प्रकृति उस मनोहर दृश्य की मधुरिमा मे तल्लीन थी। कुछ काल तक सभी स्थावर जंगम अपने आपको मानो खो बैठे थे। मेरे हृदय का प्याला अकथनीय शांति से लबालब भरा हुआ था। और एक बार मैंने अपने साथी को ओर नशीली दृष्टि डाली। उसकी मूर्ति कुहरे के लबादे में शीघ्र ही ढकती जा रही थी।

उस निश्चल शांति में और थोड़ी देर तक हम बैठे रहे। अचानक एक आग का गोला अंधकार के अतल तल मे गिर पड़ा। रात की श्यामल यवनिका खिच गयी। आँखों के सामने शून्य शांति ही शांति थी।

मेरा साथी उठा और चुपचाप वृक्षों की छाया में से मुझे साथ लेकर दयाल बाग की ओर चला। हजारों ज्योति बिंदु चंदोवे में जगमगा रहे थे और हमारी सैर समाप्त हो गई।

× × ×

साहब जी महाराज ने निश्चय किया कि कुछ दिन तक दयाल बाग छोड़ कर आराम करने के लिए मध्य प्रान्त के किसी स्थान पर चले जाँय। मैंने समझ लिया कि यह घटना हमारी विदाई की सूचक है। मैंने भी सफर का कार्यक्रम निश्चित कर लिया और सोचा कि उसी ओर मै भी पयान करूँ। तिमरनी तक तो हमारा साथ रहेगा। वहाँ साहब जी से विदा लूँगा।

आधी रात बीतने पर हम सब आगरा स्टेशन पर पहुँच गये। कोई २० चेले अपने गुरू के साथ चले थे; अतः हमारा झुंड लोगो की दृष्टि से नहीं बच सका। किसी ने एक कुर्सी का प्रबन्ध कर दिया और साहब जी महाराज अपने प्रिय शिष्यो के बीच मे प्लैटफार्म पर आसीन हो गये। मै प्लैटफार्म पर मंद आलोक में टहलने लगा।

दिन को मैंने अपने दयाल बाग के अनुभवो पर मनन किया था। यह याद आते ही मुझे बड़ा खेद पहुँचा कि कोई उल्लेख योग्य आंतरिक अनुभूति मुझे प्राप्त नही हुई। आत्मा को उन्नत बनाने वाला कोई जीवन रहस्य मुझ पर प्रकट नही हुआ। मुझे उम्मीद थी कि दिल के अंधेरे को दूर करने वाली योगानुभूति की झलक कौंध उठेगी, चेतना की ज्योति का विस्फुरण होगा ताकि मै उसी राह का अनुकरण कर, योग मार्ग पर ज्ञान के कारण, न कि विश्वास के कारण, आरूढ़ हो सकूँ। पर हाय, उस दैवी कृपा के योग्य शायद मै न था। कौन कह सकता है कि मेरी आशा दुराशा थी ?

बीच बीच मे मै उस आसीन मूर्ति की ओर ताकता रहा। उनके अनुभाव मे कोई अजीब आकर्षण शक्ति है। वे मेरे दिल को बरबस खींच रहे थे। उनमें अमेरिकनो की फुर्ती और वास्तविकता, अंग्रेजो की आचरण की सूक्ष्मता और हिंदुस्तानियो की

श्रद्धा तथा मननशीलता, इन सभी का अद्भुत संयोग हो गया था। आजकल की दुनिया में उनके समान किसी दूसरे को पाना दुर्लभ है। एक लाख नरनारियों ने अपनी अंतरात्माओं को उनके चरणों पर भेंट चढ़ायी है; तो भी राधास्वामियों के यह सम्राट नम्रता और विनय की मूर्ति बने सामने विराजते थे।

आखिरकार गाड़ी प्लैटफार्म पर आ रुकी। साहब जी महाराज अपने खास रिजर्व डिब्बे में सवार हो गये। बाकी हम सबों ने दूसरे डिब्बों में जगह कर ली। मैं कुछ घंटों तक तान कर सो गया और फिर सवेरे जागने तक और किसी बात का मुझे होश न था। मेरा गला सूख गया था।

जहाँ जहाँ गाड़ी रुकती थी वहाँ स्थानीय या आसपास के साहब जी महाराज के चेले स्टेशन पर आकर उनके डिब्बे के पास खड़े होते और अपने सद्गुरु महाराज का दर्शन लेते। पहले ही उन लोगों को साहब जी महाराज के सफर की सूचना दी गयी थी। भारतीयों का विश्वास है कि सद्गुरु की संगति, कितनी भी क्षणिक क्यों न हो, बहुत महत्त्व रखती है और उससे आध्यात्मिक तथा दुनियाबी दोनों बातों में काफी लाभ पहुँचता है।

मैंने साहब जी महाराज से अनुमति माँगी कि वे अपने डिब्बे में मेरी इस अपूर्व यात्रा के आखिरी तीन घंटे बिताने दें। अनुमति माँगते ही मिल गयी। हम दोनों के बीच में संसार के संबंध की कई बातें होने लगी। पश्चिम के राष्ट्रों के बारे में, हिंदुस्तान के भविष्य के विषय में, उन्हीं के संप्रदाय के भविष्य के बारे में बातचीत हुई। अन्त को उन्होंने मुझ से अपने मीठे शब्दों में साफ साफ कह दिया :

" आप विश्वास मानें, मैं भारत को अपनी मातृभूमि नहीं

मानता । हम तो संसार के है । मै सभी को अपना भाई समझता हूँ।"

उनकी उस चकित करने वाली साफगोई पर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। जब कभी वे बाते करते हैं इसी रीति से बोला करते है। वे असली बात पर शीघ्र आ जाते है। उनके हर एक वाक्य का एक खास उद्देश रहता है। उनको अपनी राय पर पूरा और अटल विश्वास है।

उनसे बात करने मे, उनके मन के विचारो पर मनन करने मे बहुत ही आनन्द मालूम होता है। सदा ही वे किसी नई बात को कह डालते है, किसी नवीन दृष्टि-कोण से बात करने लगते हैं।

गाड़ी का रुख अब ऐसा था कि खिड़की मे से तेज़ धूप सीधे मेरी आँखों पर पड़ने लगी। इस गरमी से किसी का भी मांस भुन सकता था। निठुर सूर्य की किरणे मन को थकित कर देती थीं। मैंने खिड़की का परदा खीच दिया और बिजली का पंखा चला दिया। उससे मेरी तबियत कुछ स्वस्थ हुई। साहब जी महाराज ने मेरी दिक्कत देख ली और अपनी थैली से नारंगियां निकाली।

उन्होने नारंगियो को मेज़ पर रक्खा और बोले :

"कुछ तो लीजिये। यह आप के गले को ठंडक पहुँचावेगी।"

चाकू से धीरे धीरे छिलका निकालते हुए, मनन करने के ढंग से वे बोले :

"किसी को गुरू चुनने मे आप जो इतने सावधान है सो बिलकुल ठीक है। गुरू को निश्चित कर लेने के पूर्व शकीपन बड़ा ही उपकारी होता है। पर एक बार निश्चय कर ले फिर उन पर संपूर्ण विश्वास रखना होगा। सद्‌गुरु को पाने तक आप चैन न लीजिये। गुरू की बड़ी भारी आवश्यकता होती है।"

कुछ देर बाद किसी के पुकारने की आवाज कानों मे पड़ी—'तिमरनी' !

साहब जी महाराज चलने के लिए खड़े हुए। उनके चेलों के आने से पहले मुझ में कोई शक्ति जाग पड़ी। उसने मेरे संकोची स्वभाव को, मेरे पश्चिमी घमंड को दूर कर दिया, मेरी अधार्मिक प्रवृत्ति को कुचलते हुए वह मेरे होठों से फूट पड़ी :

"महात्मा, मुझे आशीर्वाद दीजिये।"

साहब जी महाराज मुस्कराते हुए मेरी ओर घूमे, अपनी ऐनक मे से एक कृपा भरी चितवन मेरे ऊपर दौड़ायी, और मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए प्रेम से बोले :

"मेरा आशीर्वाद ! वह तो पहले से ही है।"

मैं अपने डिब्बे में आकर बैठ गया। गाड़ी छूटी और बड़ी तेज़ी के साथ दौड़ने लगी। दोनो ओर भूरे खेत झलकते और जल्दी गायब होते जाते थे। चौपायों के झुंड अलस भाव से विरल झाड़ियों में घास-फूस चर रहे थे। किन्तु इन सारे दृश्यों का ठीक ठीक चित्र मेरी आँखो पर नही पड़ता था। मेरा मन कही और था। उस पर पूरे तौर पर एक महात्मा का चित्र, जिनके प्रति मेरा बड़ा भारी आदर और प्रेम है, अंकित था। वे महात्मा एक साथ दैवी प्रेरणा से प्रेरित दिव्य स्वप्न देखने वाले हैं, प्रशांत मन वाले योगिवर है, दुनियावी काम काज मे सिद्ध-हस्त हैं, सभ्य हैं, भद्र पुरुष है !

१४

मेहरबाबा का आश्रम

यद्यपि आगरे से नासिक तक का बड़ा ही लम्बा सफर है, मैं उसका संक्षेप में बयान करूँगा ताकि निश्चित स्थान पर मेरे भ्रमण के वृत्तान्त की इतिश्री हो जाय।

कालचक्र के दुर्निवार चक्कर के साथ मैंने सारे भारत का भ्रमण किया। पारसियों के महात्मा, मेहरबाबा का, जो कि अपने को इस जमाने का धर्म प्रवर्तक बताते हैं, मुझे और एक बार दर्शन करना था।

तो भी मुझे इसमें कोई विशेष दिलचस्पी मालूम नहीं होती थी। मेरे मन में शंका और संदेह ने मजबूती से अड्डा जमा लिया था। भीतर ही भीतर एक दृढ़ धारणा समा गई थी कि उनके साथ मैं जो समय बिताऊँगा वह व्यर्थ ही होगा। मेहरबाबा आदमी तो अच्छे हैं और ऋषियों का सा जीवन बिताते हैं, तो भी अपने बड़प्पन का मिथ्याभिमान उनके अंदर घोर रूप से समा गया है। यों ही उनकी करामातों की जाँच करने का मैंने कष्ट उठाया था। एक करामात 'एपेंडिसाइटिस' के एक रोगी को अच्छा करने की थी। पीछे जाकर मुझे मालूम हुआ कि मेहरबाबा के प्रति उस रोगी की अपार श्रद्धा और विश्वास था और इसी विश्वास ने उसे एकदम चंगा बना दिया था। और भी तहकीकात करने पर रोगी की देखभाल करने वाले डाक्टर से मालूम हुआ कि वास्तव में उसे वह बीमारी नहीं वरन् सख्त बद-

हज़मी थी। और एक भक्त की बात है। रोगी बूढ़ा था। उसके सम्बन्ध में कहा गया था कि एक ही रात में मेहरबाबा की कृपा से उसकी अनेक व्याधियाँ दूर हो गईं। पूछताँछ से मालूम हुआ कि उसकी कलाई सूज गई थी। इसके अतिरिक्त उसे कोई दूसरी शिकायत ही न थी। थोड़े में यों कहिये कि मेहरबाबा के शिष्यों ने अपने गुरू की करामातों का बहुत ही बढ़ा चढ़ा कर बयान किया था, और इस मुल्क में जहाँ कि सच्ची घटनाओं की अपेक्षा गप्प ही अधिक प्रचलित हो जाती है उनका ऐसा करना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

इस पारसी धर्म प्रवर्तक ने मेरे सामने एक बार कुछ अनूठी अनुभूतियों के विषय में असाधारण प्रतिज्ञायें की थीं। मुझे तो इस बात का तिल भर भी विश्वास नहीं था कि वे अपनी बातें पूरी कर सकते हैं। तो भी उनके पास एक महीना बिताने का मैंने वादा किया था और उसका पालन करना मेरा कर्तव्य था। अतः अपनी इच्छा और विवेक के एकदम विरुद्ध होते हुए भी मैंने नासिक की गाड़ी पकड़ी, ताकि मेहरबाबा को कभी भी यह कहने का मौका न मिले कि मैंने उन्हें उनकी विभूतियों को सिद्ध कर दिखाने का मौका ही नहीं दिया।

× × ×

मेहर का सदर मुकाम शहर से दूर, एकदम एक किनारे पर नये ढंग पर बनवाया गया है। वहां पर कोई ४० या ५० शिष्य सिरहटा ही भटका करते हैं।

मिलते ही मेहर ने मुझ से प्रश्न किया—"आप सोच क्या रहे हैं?"

मैं सफर से थक गया था। मेरी फीकी और दुबली रूपरेखा

देख कर, गहरी समाधि से होने वाली विवर्णता का, उन्हे शायद भ्रम हो गया। जो हो, मैने तुरन्त जवाव दे दिया :

"मैने हिंदुस्तान मे १०-११ धर्म प्रवर्तकों का दर्शन किया है, उन्ही के वारे मे सोच रहा हूँ।"

मुझे जान पड़ा कि मेहरवावा को इस कथन पर कोई आश्चर्य नहीं हुआ। लिखने वाले तख्ते पर अपनी उँगलियाँ धीरे से फेरते हुए उन्होने मुझे जताया :

"हाँ, उनमे से किसी किसी के वारे मे मैने भी सुना है।"

मैने उनसे सरलता के साथ प्रश्न किया :

"इस वात को आप कैसे समझा सकते है ?"

यद्यपि उनके ललाट पर सिकुड़न पड़ गई थी पर उनके चेहरे पर मंद मुसकान खिल उठी, मानो वे अपने वड़प्पन को प्रकट कर रहे हो। उन्होने कहा :

"यदि वे सव ईमानदार हो तो मेरा कहना यही है कि वे भ्रान्त होगे। यदि वे वेईमान हों तो दूसरो को ठग रहे है। कुछ ऐसे भी महात्मा है जो योग मार्ग मे अच्छी उन्नति कर लेते है और वाद को अपने आध्यात्मिक वड़प्पन के घमंड मे चूर हो जाते है। ऐसी वुरी हालत, खास कर उन लोगो के जीवन मे पाई जाती है जिसका कोई सच्चा और योग्य गुरू न हो। आध्यात्मिक साधना के रहस्य मार्ग में एक ऐसी विषम भूमि का सामना करना पड़ता है जिसका तय करना वड़ा ही दुस्तर है। अपनी साधना की तत्परता के कारण यदि इस भूमि पर पहुँच भी जाय तव भी साधक को प्रायः यह भ्रम हो जाता है कि वह अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच गया है। फिर थोड़े ही समय वाद वह अपने आप को पैगम्वर मानने लगता है।"

"आप की वात विलकुल ठीक और सही है, किंतु दिक्कत तो यह है कि जो जो अपने को प्रवक्ता मानते है वे सभी यही वात कहते है। हर एक अपने ही को पूर्ण और पहुँचा हुआ समझता है। हर एक अपने प्रतिद्वंदी को कुछ न्यून दर्जे का मानता है।"

"इसकी कोई चिन्ता नही है। नही जानते हुए भी ये सव मेरे ही काम मे हाथ वॅटा रहे है। मै जानता हूँ कि मै कौन हूँ। जव ऐन मौका आ जायगा, जव अपना संदेश सुनाने का समय आ पहुँचेगा, दुनिया जानेगी कि मै कौन हूँ।"

ऐसी सूरत में तर्क करना व्यर्थ था। अतः मैने चुप्पी साध ली। मेहरवावा ने शेखचिल्लियो की सी वाते की और मुझे जाने की इजाज़त दे दी। सदर मुकाम से कोई दो फर्लांग की दूरी पर मै एक वंगले मे रहने लगा। मैने निश्चय कर लिया कि कठोरता के साथ अपने भावों को ताक पर रख कर होने वाली घटनाओं की निष्पक्ष समीक्षा और विचार करूंगा, मेहर के प्रति अपने मन मे किसी पूर्वनिर्धारित भावना को जगह नही दूंगा, उनसे कुछ जान लेने की आशा से प्रतीक्षा भी करूंगा, और अपने अंतरंग को जर्जर करने वाले संशयो को कावू में लाकर अपने मन को उथल पुथल नही होने दूंगा।

दिन प्रति दिन मै उनके चेलों से अधिक मिल-जुल कर रहने लगा और उनकी रहन सहन, उनके मानसिक दृष्टिकोण आदि का पता लगाने लगा। मेहर से उनका जो अध्यात्मिक संवंध था उसका भी इतिहास कुछ कुछ जान लेने की मैने कोशिश की। प्रति दिन मेहरवावा मेरे लिए अपना कुछ समय देते थे। हम कई विषयों की चर्चा करते थे। वे मेरे कई प्रश्नो के उत्तर देते थे। किन्तु भूल कर भी अहमदनगर में जो अनूठी प्रतिज्ञायें उन्होने मेरे सामने की थीं उनकी चर्चा तक नही उठाते थे। मै भी

इस बात की उन्हे याद नही दिलाना चाहता था। अतः वह मामला स्थगित ही रह गया। अखबारनवीस होने के कारण मुझमें उत्सुकता को तृप्त करने की जो सहज प्रवृत्ति और सच्ची तथा सही बातों की जानकारी प्राप्त करने का अदम्य उत्साह था उसके कारण मेरे मन मे जो यह बात समा गयी थी कि मेरी यह यात्रा व्यर्थ होगी, उसको या तो दृढ़ कर लेने या एकदम दूर भगाने के वास्ते मै मेहरबाबा और उनके शिष्यो पर हमेशा ही प्रश्नो की झड़ी सी लगा देता था। इस सब का यही नतीजा निकला कि उनके गुप्त रोज़ानामचे देखने का मुझे सौभाग्य मिला। कई वर्षों के ये रोज़नामचे उनकी आज्ञा से तय्यार किये गये है। इनमे प्रवक्ता और उनके शिष्यो के जीवन की मुख्य मुख्य घटनाओं का, उनके हर एक महत्वपूर्ण उपदेश, संदेश या ज़बानी भविष्यवाणी आदि का ब्यौरेवार बयान था। इसकी हस्त लिखित प्रति करीब दो हज़ार पन्ने की थी और वह भी बहुत छोटे हरफो में सटा कर लिखी गयी थी। रोज़नामचो की रचना प्रायः अंग्रेजी में हुई थी।

यह बात साफ थी कि रोज़नामचे अंधविश्वास के साथ लिखे गये थे, किन्तु उनसे मेहर का चरित्र और उनकी विभूति आदि का ठीक ठीक पता चलाने मे मुझे बड़ी मदद मिली। वे इतनी श्रद्धा और ईमानदारी के साथ लिखे गये थे कि जो बातें दूसरो को तुच्छ और नाचीज़ जॅचे वे भी दर्ज की गयी थी। इनसे मेरा काम खूब चला। मेहर का मानसिक चित्र खीचने मे ये बाते बड़ी मददगार सिद्ध हुईं। ये उनकी मानसिक दशांतरो की परिचायक थी और मेहर का मन किस ओर झुक रहा था साफ बता देती थी। रोजनामचे ऐसे दो नौजवानो के जिम्मे थे जो अपने संकुचित दायरे के बाहर के जीवन का नाममात्र अनुभव रखते

थे। लेकिन अपने गुरू पर उनका इतना पूर्ण और सरल विश्वास था कि उन्होंने उन बातों को भी उनमें स्थान दिया है जो वास्तव में गुरू महाशय के लिए किसी प्रकार प्रशंसनीय नहीं कही जा सकती थीं। क्योंकर उन्होंने यह बात लिख रक्खी है कि मेहर ने मथुरा के सफ़र के समय रेलगाड़ी में अपने एक बड़े आंतरिक चेले को इतने ज़ोर से तमाचा लगा दिया कि उस बेचारे को डाक्टर की शरण लेनी पड़ी? दिव्य प्रेम का संदेश पहुँचाने का दावा करने वाले अपने गुरू के इस झूठे बहाने को क्योंकर उन्होंने लिपिबद्ध कर रक्खा कि जब कभी नबी अपने भक्तों के प्रति बनावटी क्रोध करते हैं तो उसका यही तात्पर्य समझना होगा कि भक्त के विपाक दशा को पहुँचे हुए पाप कर्म शीघ्र ही विनष्ट होने वाले हैं? उन्होंने इस परिहासनीय घटना का उल्लेख क्यों किया कि एक बार उनके किसी शिष्य के आरंगाँव के पास 'गुम' हो जाने पर मेहर ने उनका पता लगाने के लिए कुछ लोगों को भेजा और वे अन्वेषक कई घंटे बीतने पर उस शिष्य का पता लगाये बिना ही लौट आये जिसकी खोज में वे निकल पड़े थे? अन्त को वह शिष्य स्वयं ही मेहर के यहाँ हाजिर हुआ और पूछने पर मालूम हुआ कि 'इनसोमनिया' रोग के कारण कई रात उसे नींद नहीं आई थी। एक दिन मेहर के आवास के निकट के एक उजड़े मकान में अचानक उसे गहरी नींद लग गई। जो अपने को देवतुल्य बताते हैं और सारी मानव जाति के भविष्य का ज्ञान रखने का दम भरते हैं वे ही पैगम्बर इस बात को नहीं जान सके कि उनका शिष्य बगल ही के खेत में था।

पहले जो शंकायें मेरे मन में दबी पड़ी थीं उन्हें इन घटनाओं से काफ़ी ख़ुराक़ मिल गई। मुझे अच्छी तरह ज्ञान हो गया कि

मेहर भी भ्रम, प्रमाद और आलस्य के आधीन हैं और उनकी भावनायें क्षण प्रति क्षण बदलती रहती है। वे इतने घमंडी है कि अपने मूर्ख शिष्यो से पूरी गुलामी उगाहते है। उन रोजनामचो के पन्ने उलटने से मुझ पर यह बात साफ ही प्रकट हो गयी, कि इस प्रवक्ता की पेशगोई की सच्चाई की दुनिया ने बहुत कम समीक्षा की है। पहले पहल जब हम अहमदनगर मे मिले उन्होने यह भविष्य-वाणी की थी कि एक भीषण महायुद्ध होने वाला है। उन्होने बड़ी सावधानी से मुझ पर यह प्रकट करने की भरसक कोशिश की थी कि वे ठीक ठीक यह भी कह सकते थे कि वह समर कब होगा। तो भी लाख प्रयत्न करने पर भी उन्होने वह तारीख छिपा रक्खी। अब मुझे इन रोज़नामचो से मालूम हुआ कि मेहर ने अपने आंतरिक चेलो के सामने भी यह भविष्यवाणी एक बार नही, कई बार की थी। हर एक बार उन्हे इस खतरनाक घटना की तारीख़ बदलनी पड़ती थी क्योकि हर एक तारीख के निकट आने पर भी युद्ध की कोई सूचना तक नज़र नहीं आती थी। एक बार जब पूर्व मे परिस्थिति बहुत नाजुक होती दिखाई दी उन्होंने बताया कि युद्ध पूर्व मे होगा। दूसरी बार यूरोप की परिस्थिति कुछ नाजुक हो चली तो उनकी भविष्यवाणी ने पश्चिम को होने वाले युद्ध का क्षेत्र बताया। इस प्रकार कई बार इस खतरनाक घटना के घटने की तारीख और जगह के विषय मे भी इनकी भविष्यवाणी खूब ही बदलती रही।

इन बातो का पता चलने पर मुझे साफ ही भास गया कि क्यो मेहर ने अहमदनगर मे मुझ से कोई निश्चित तारीख बताने मे हीला हवाला किया था। मैने उनके बुद्धिमान चेलों से कभी न फलने वाली इन भविष्यवाणियो के बारे मे प्रश्न किया तो उन्होंने स्पष्ट ही मान लिया कि उनके गुरू की बहुसंख्यक भविष्य-

वाणियां पूरी नहीं होती हैं। अन्त को सरल स्वभाव से मेहर बोल उठे—"मुझे इसी के बारे में संदेह है कि यह युद्ध कभी साधारण युद्ध के रूप में होगा या नही। मेरा अनुमान है कि यह एक आर्थिक संग्रास होगा।"

यद्यपि मैंने इन आश्चर्यजनक रोजनामचों के आखिरी पन्ने को मुस्कराते हुए उलट दिया तो भी मेरी दृढ़ धारणा है कि इनमे मुझे कई उदात्त, मर्मस्पर्शी, भव्य विचार दिखाई पड़े। मुझे इस बात का विश्वास भी हो गया कि मेहरबाबा में सचमुच कोई धार्मिक तत्परता और आध्यात्मिक प्रतिभा काम कर रही है। उन्हे जो कुछ कामयाबी हासिल होगी वह इसी की वजह से होगी। किन्तु इन रोजनामचो मे कही पर लिपिबद्ध उन्ही की कही हुई यह बात मुझे कभी नही भूलती है कि 'आध्यात्मिकता, शील आदि के उपदेश देने की सामर्थ्य से किसी की महानुभावता, साधुता या विवेक साबित नही होता।'

× × ×

मैंने वहाँ जो कुछ समय बिताया उसके बारे मे विवेक के साथ चुप्पी साध लेना ही बेहतर है। यदि सचमुच ही मै एक मानव जाति को उबारने वाले, पाप विमोचक धर्म प्रवर्तक के साथ रहा भी, मुझे इनके महान् भाग्य की परिचायक कोई बात दिखाई नही दी। इसकी वजह शायद यही हो सकती है कि पौराणिक गप्पों की अपेक्षा, स्थूल और प्रत्यक्ष घटनाओ से मेरी अधिक अभिरुचि है। मैं उस नबी की बाल्य चेष्टाओं की कहानी, उनकी असफल भविष्यवाणियों की खबर, उनके शिष्यो के अपने गुरू को अनुचित आज्ञाओ के अंधविश्वास के साथ पालन करने की बात, उन शिष्यों की कठिनाइयो को और भी जटिल बनाने

वाली मेहर की सलाहो के व्यौरे आदि का वयान करके आपको नही उवाऊँगा।

संभव है यह मेरी ही कल्पना हो, किन्तु जैसे जैसे वहाँ का मेरा जीवन समाप्त होता जाता था मुझे साफ भासने लगा था कि मेहरवावा मुझसे वच कर रहना पसंद करते है। यदि कभी मैने उन्हे देख भी पाया, वे वहुत ही व्यग्र दिखाई पड़ते और चन्द मिनट के अन्दर वहाँ से चले जाते। प्रति दिन मेरी दशा वहुत ही असंतोपजनक दिखाई देने लगी और संभव है कि मेहर भी मेरी असुविधाजनक परिस्थिति से भली भांति परिचित हो।

उन्होने मेरे सामने अनेक आश्चर्यजनक अनुभूतियो की वात कही थी। यद्यपि उनके सफल होने मे मुझे वड़ा भारी संदेह था तो भी मै उनकी प्रतीक्षा करने लगा। मेरी आशंकाये आखिरकार पूरी हुई। किसी के जीवन मे कोई आसाधारण वात होती दिखाई नही दी। मैने मेहर से इस वावत मे वेदर्दी से सवाल करना नहीं चाहा क्योंकि मुझे अच्छी तरह मालूम हो गया था कि मेरा वह प्रयत्न एकदम व्यर्थ होगा।

लेकिन महीना वीतते ही मैने अपने सफर की वात छेड़ी और मेहर वावा से शिकायत की कि उनकी वाते क्यो नही पूरी होती। उन्होने यही जवाव दिया कि ये आश्चर्यजनक घटनाये दो महीने वाद होने वाली है और आगे जाकर उन्होने इस वात का जिक्र करना भी छोड़ दिया। मुझे भान होने लगा कि वे अंदर ही अंदर अपनी कमजोरी महसूस कर रहे है और मेरे सामने वे वेचैन भी हो जाते है। शायद यह सव मेरा भ्रम ही था। जो हो, मेरी आँखो को यद्यपि ये वाते दिखाई नही दी, मुझे इन वातो का किसी प्रकार से अनुभव सा होने लगा। तव भी मैने उनसे दलील करने की कोशिश नही की क्योकि किसी तरह वच कर चलने वाले इस

आच्य धर्म प्रवर्तक के साथ अपनी बुद्धि भिड़ा देना मुझे एक असम और व्यर्थ युद्ध छेड़ देना ही प्रतीत हुआ।

बिदा होने के समय भी, जब कि मैंने मेहर बाबा से हमेशा के लिए नम्रता पूर्वक अपने दिल से रुखसत लेनी चाही, उन्होंने अपने झूठे बड़प्पन की बात करना छोड़ नहीं दिया वरन कहने लगे—"मैं निस्सदेह जगत्‌गुरु हूँ। मुझसे सच्ची राह जान लेने के लिए लाखो आदमी तड़प रहे हैं।" ज़ोर देकर उन्होंने यह भी कहा—"जब हम एक दिन पश्चिम में जाकर अपना संदेश वहाँ पहुँचाने लगेंगे तब तुम्हें हम बुलवा लेंगे और तुमको हमारे साथ सफर करना होगा।"*

मैंने इस आदमी को बातों का धनी समझने की कोशिश की और मेरी इस मूर्खता का यही नतीजा निकला! जो आध्यात्मिक आनंद की झूठी आशा दिखा कर, उसके वदले दूसरो के चित्त को उबा कर व्याकुलता का अड्डा बना देते हैं बलिहारी है ऐसे छद्मवेषी दैवी गुरुओ की!

× × ×

क्या मेहर बाबा के इस अनोखे और विचित्र बर्ताव का कोई विश्वसनीय समाधान प्राप्त हो सकता है? ऊपरी बातों से ही यदि उनका मूल्य आँका जाय तो वे सहज ही पाजी और छलिया साबित होंगे। कुछ लोगों ने भी इस प्रकार की राय प्रकट की है किन्तु उनमें कोई भी मेहर के जीवन की कई घटनाओ को ठीक ठीक समझाने की चेष्टा नहीं करते। अतः उनकी राय केवल अन्यायपूर्ण है। मुझे तो बंबई के बूढ़े जज

* मेहर बाबा पश्चिम अवश्य गये किन्तु मेरे बारे मे उन्होंने जो भविष्यवाणी की वह एकदम गलत निकली।

खंदलावाले की राय अधिक मान्य प्रतीत हुई। वे मेहरबाबा को उनके लड़कपन से जानते थे। उन्होंने कहा है कि यह पारसी प्रवर्तक भ्रान्त होने पर भी वास्तव मे ईमानदार है। यह समाधान अपने ढंग से तो संतोषजनक है पर इससे मुझे पूरी तृप्ति नहीं मिली। मेहरबाबा के जीवन को विवेचना करने से मेरे मन की बात प्रकट हो जायगी। मैने पहले ही कह दिया है कि पहले पहल जब उनसे अहमदनगर मे मेरी भेट हुई थी उसी समय मै उनकी सौम्यता और प्रशांत स्वभाव से प्रभावित हुआ था। लेकिन नासिक के मेरे अनुभवो ने मुझ पर यह बात प्रकट कर दी कि उनकी उस शांत प्रकृति का कारण उनके चरित्र की कमजोरी है और उनकी सौम्यता उनकी शारीरिक दुर्बलता का फल मात्र है।

मुझे पता चला कि मेहर सचमुच हर बात मे डावॉडोल रहते है और अन्य लोग तथा घटनाएं उन पर बहुत ही जल्दी असर डालती है। उनकी नोकदार छोटी ठुड्डी ही इस बात का प्रबल प्रमाण है। इसके अलावा यह प्रायः देखा जाता है कि जिनका कोई ठीक समाधान बताया नही जा सकता ऐसे आक-स्मिक भावावेगो के वे शिकार रहते है। स्पष्ट ही वे बड़े भावुक व्यक्ति है। वे दिखलावे और नुमायशी बातो मे बालको जैसी दिलचस्पी रखते है। उन्हे देखने पर यह प्रतीत होगा कि उनकी जिंदगी उनके लिए नही है वरन दूसरे लोगो की वाहवाही के लिए है। यद्यपि उनका यह दावा है कि संसार के रंगमच पर जीवन नाटक के गंभीर पात्र बनने के लिए ही उनका जन्म हुआ है, उनके अभिनय मे यदि किसी को हास्य रस का स्वाद मिले तो इसके लिए वे ही एकमात्र दोषी नहीं ठहराये जा सकते। मेरा विश्वास है कि मेहरबाबा के चरित्र मे वह बूढ़ी मुसलमान फकीरिन, हजरत बाबा जान, ने सच ही एक तूफान सा

मचा दिया जिसके कारण मेहरबाबा अपनी मानसिक समता इस हद तक खो बैठे कि उनकी अजीब हालत को न तो वे स्वयं समझ सकते है, न उनके अनुयायी ही। योगिन से जहाँ तक मेरा परिचय है उससे मै दृढ़ता पूर्वक कह सकता हूँ कि उनमे वह अनूठी ताकत है जो कट्टर से कट्टर हेतुवादी के छक्के छुड़ा सकती है। मेरी समझ मे यह बात आती ही नहीं है कि हज़रत बाबा जान ने मेहरबाबा के जीवन मे क्योंकर एकदम दखल दिया और उनको पदच्युत करके ऐसे मार्ग पर आरूढ़ करा दिया जिसका नतीजा क्या होगा—केवल परिहास ही या सचमुच ही महत्वपूर्ण—यह अभी देखने की बात है। किंतु मुझे विश्वास ही नहीं होता कि वह उनके जीवन पर इतना असर डाल सकती थी कि उनके पैरो के तले की मिट्टी को ही खिसका दें। उस योगिन ने जो उनका बोसा लिया था उसका अपने तई कोई खास महत्व नहीं है, किंतु एक दूसरे ही ढंग से वह अवश्य महत्व रखता है। उस योगिन के आध्यात्मिक प्रणिधान का वह एक प्रतीक मात्र है। उस चुम्बन के कारण मेहरबाबा के दिमाग की हालत ही विचित्र प्रकार से बदल गयी। उनके जीवन पर उसका बड़ा ही असर पड़ा। उन्होंने मुझसे एक बार इस घटना के बारे मे कहा था कि 'मेरे मन को बड़ा भारी धक्का लगा और कुछ देर तक उस में बड़े जोरों के साथ स्पंद होते रहे।' यह साफ है कि इस अनुभूति के लिए वह बिलकुल ही तय्यार नहीं थे। जिसको हम योग दीक्षा कहते है उसको प्राप्त करने के लिए एक प्रकार की योग्यता की आवश्यकता है जिसको पाने की आवश्यक शिक्षा और विनय से मेहरबाबा एकदम वंचित थे। उनके एक शिष्य अब्दुल्ला ने कहा—"मै बाबा के छुटपन मे उनका मित्र रहा। उन दिनों धर्म या दर्शन के प्रति मेहर की कोई दिलचस्पी ही नहीं थी।

उन्हे खेलकूद और मजाक मसखरी मे अधिक मजा मिलता था। मदरसे मे वादविवाद आदि मे वे चाव से भाग लेते थे। एकबारगी उनके जीवन मे एक परिवर्तन हुआ। उनका रुख आध्यात्मिक विषयो की ओर फिरा। तब हमारे तअज्जुब की कोई सीमा नही रही।"

मेरा यकीन है कि इस आकस्मिक अनुभूति के कारण नौजवान मेहर अपनी मानसिक शांति खो बैठे। उनके पैर जमीन पर टिकते न थे। इसी से प्रकट होता है कि वे मूर्खवत् व्यवहार करने लगे। उनके सब व्यवहार एक जड़ यंत्रवत् होने लगे। किन्तु अब भी साफ साफ समझ मे नही आता कि उनका मन अब तक दुरुस्त हुआ है कि नही। मुझे विश्वास नही होता कि उनका स्वभाव साधारण मानवो का है। किसी किसी को किसी बूटी का अधिक मात्रा मे सेवन करने पर रही सही मानसिक स्थिरता भी भूल जाती है। उसी भांति धर्म के आवेग की अधिक मात्रा से भी, योगिक समाधि या आध्यात्मिक आनंद की बहुलता से भी कोई कोई अपनी मानसिक स्थिरता खो बैठते है। गरज यह है कि मेहरबाबा उस उदात्त अनुभूति के नशे से अभी पूरी तौर से छूटे नही है और अब भी उस बाल्य काल के दिनो मे उनके मानसिक जीवन को जो आघात पहुँचा था उसके फलो से मुक्त नही हो पाये है। अब भी उस मानसिक विषमता का लोप नही हुआ है। कभी कभी मेहरबाबा के बर्ताव मे जो असाधारणता दिखाई पड़ती है उसका कोई दूसरा समाधान दिया नही जा सकता।

एक ओर उनमे आध्यात्मिक विभूति से भूषित महात्माओ के सारे गुण दीखते है, उनमे योगी का प्रेम, सौम्यता, धार्मिक अभिनिवेश और प्रेरणा आदि मौजूद है। दूसरी ओर उनमे

मानसिक बीमारी के कुछ चिह्न दिखाई देते हैं। अपने बारे में हर बात को वे बढ़ा चढ़ा कर बताते हैं। जिन्हे अचानक क्षणिक आनंदानुभूति भी प्राप्त हुई हो उन धर्म प्राण लोगों मे भी यही बात पायी जाती है। उनके दिल में जब यह विश्वास बैठ जाता है कि उनके जीवन में कोई एक महत्वपूर्ण बात घटो है तो आध्यात्मिक महत्ता के अनुचित दावे करने मे फिर देरी ही क्या लगती है। ऐसे व्यक्ति नये संप्रदाय और विचित्र सभा समाजो के जन्म-दाता बन जाते है और अपने को उनके अगुआ मान बैठते है। ऐसो मे कभी कभी कोई कोई साहसी आखिर को अपने ही को भगवान का अवतार मानने लगता है और बताने लगता है कि मै ही सारी मानव जाति का कल्याण साधने वाला हूँ।

मैंने हिन्दुस्तान मे ऐसे कई व्यक्तियों को देखा है जो योग समाधि से प्राप्त होने वाली अखंड अनुत्तम अनुभूति के भागी बनना चाहते है किन्तु उस अनुभूति को प्राप्त कराने वाली योग साधना और विनय आदि के पचड़े में पड़ना नही चाहते। अतः वे अफीम, भाँग आदि का अभ्यास करने लगते है और तुरीय दशा की अनुभूति सी एक विचित्र दशा का अनुभव कर लेते है। मैने इन अफीमखोरो के बर्ताव को गौर से देखा है और उन सबो में मुझे एक समानता दिखाई दी। वे सब के सब, अपने जीवन की कैसी भी छोटी बात क्यो न हो, उसे बहुत ही बढ़ा चढ़ा कर कहते है, सत्य कहने का दृढ़ विश्वास रखते हुए सुफेद झूठ बताने से भी बाज़ नही आते। अतएव उनको पेरोनिया की बीमारी हो जाती है जिसके आवेश में व्यक्ति अपने ही बड़प्पन की इतनी लम्बी चौड़ी हॉकने लगता है कि आखिर को अपने ही बारे मे अपने आपको भारी भ्रम मे डाल लेता है। ऐसा अफीम-खोर यदि किसी औरत को लापरवाही से अपनी ओर ताकता

पावे तुरन्त उस औरत के विषय मे अपने मन मे एक कल्पित प्रेम गाथा ही रच डालता है। अपने ही वड़प्पन का वह हवाई महल खड़ा कर देता है और एकदम एक नई कल्पित दुनिया मे रहने लगता है। वह अपनी अजीव विभूतियो के वारे मे इतने उन्मत्त प्रलाप करने लगता है कि देखने वालो को शक होने लगता है कि हो न हो यह पागल तो नही हुआ है। वह जो कुछ करता है सोच विचार कर नही करता, किन्तु अकथनीय आकस्मिक प्रेरणाओ के आवेश मे आकर।

इस प्रकार के वेचारे अफीमखोरो के जीवन मे जो मानसिक अस्थिरता आदि पाया जाती है वे मेहरवावा के जीवन मे भी दिखाई देती है। तिस पर भी मेहर वावा मे एक विशेषता यह है कि वे उन शरावखोरो की सी नीचता के गहरे खड्ड मे गिर नही सकते क्योकि उनकी असाधारण प्रकृति का कारण जड़ी वूटियाॅ नही है किन्तु एक गरिमामय, प्रसादमय आध्यात्मिक अनुभूति है। प्रसिद्ध दार्शनिक नित्शे के शव्दो मे 'वे मानवीय है, हर वात मे एकदम मानवीय है'।

वे अपना मौन व्रत कव छोड़ने वाले है इस वारे मे वात का वतंगड़ ही मच गया है। मुझे तो इसी मे संदेह है कि वे कभी मौन छोड़ने की हिम्मत भी कर सकते है कि नही। पर यह वताने मे विशेष विवेक की कोई अवश्यकता नही जॅचती कि यदि कभी मुॅह खोल कर वे संसार को अपना संदेश सुना भी दे तो उनका वह संदेश व्यर्थ जायगा और सुन कर भी कोई उसे अमल मे लाने का कष्ट भी नही उठावेगा। वातो से कही करामाते हुआ करती है? उनकी धृष्ट भविष्यवाणियाॅ शायद ही कभी पूरी होगी। जो असली वात है वह यही है कि इस पैगम्वर का चरित्र वड़ा ही अप्रामाणिक निकला। वे वात के धनी नही है, उनकी पेशगोइयाँ

सफल नही होतीं, उनकी बड़ी ही अभिमानी और चंचल प्रकृति है। दूसरों को उत्तम संदेश सुनाने का वे जो दम भरते है उसका लवलेश भी उनके जीवन मे क्रियान्वित नहीं हुआ। ऐसों के संदेश को विरला ही कोई कान देकर सुने तो सुने।

तव उनके श्रद्धालु भक्त जनो की क्या बात है? क्या काल ही धीरे धीरे उन्हे अपने शिकंजे मे खींच कर उनकी आँखो की पट्टी खोल देगा? ऐसा होना तो असंभव जान पड़ता है। मेहरबाबा की कहानी भारतीय अंधविश्वास का एक ज्वलन्त उदाहरण है। भारतीय चरित्र की इस भारी कमी की प्रवलता उनके चरित्र से जानी जा सकती है। अशिक्षित और अति-धार्मिक जनता का रहना, भारत की अवनति का एक मुख्य कारण है। भारतवासी भावावेग और तर्कबुद्धि, ज्ञान और इच्छा, इतिहास और पुराण, घटना और कल्पना के भेद के ज्ञान पर निर्भर रहने वाले वैज्ञानिक विचार से एकदम वंचित है। भारत में उत्साही अनुयायियो के दल, चाहे वे सच्चे जिज्ञासुओं के हों या मूर्ख अनुभव रहित व्यक्तियो के, इकट्ठा करना बहुत ही सरल है। ऐसे भी वहुतेरे देखने में आते है जो पहुँचे हुए महात्माओं की संगति मे रह कर अपने भाग्य का निपटारा कर लेना चाहते हैं।

मेहरबाबा के जीवन मे कदम कदम पर बड़ी भारी भूलें हुई हैं लेकिन उनका व्यौरा बताने का न तो मुझे अवकाश ही है न इच्छा ही। उनकी सी भूलें मैंने भी की हैं। किंतु हम दोनों मे अंतर यही है कि जव कि वे ईश्वर प्रेरित धर्म प्रवर्तक होने का दावा करते है मुझे अच्छी तरह मालूम है कि मै एक साधारण मनुष्य मात्र हूँ और भ्रम और प्रमाद का वशवर्ती हूँ। मुझे इस बात से अचरज होता है कि उनके शिष्य यह स्वीकार कभी नहीं करते कि उनके गुरुदेव से भी भूले हो सकती है।

सरल स्वभाव से उनके अनुयायी मान लेते है कि उनके हर वचन और हर कार्य मे कोई न कोई अनूठा रहस्यमय गूढ़र्थ तथा दैवी ध्येय छिपा रहता है। वे उनकी वातो का अन्ध अनुकरण करके ही तुष्ट हो जाते है। उनको ऐसा करना भी पड़ता है क्योकि उन्हे ऐसी वातो का विश्वास करना पड़ता है जिन्हे मानव की तर्क वुद्धि कदापि स्वीकार नही कर सकती। उनके साथ के मेरे परिचय ने मेरे अंदर के उस रूखेपन को, जिसकी मैने अपने जीवन के अधिक भाग से उपासना की है, और मेरे दिल मे निरूढ़ पूरे शक्कीपन को, जिसके व्यापक प्रभाव मे भारत के भ्रमण की प्रेरणा करने वाली भावना छिप गयी थी, और भी गहरा और मजवूत वना दिया। पूर्व भर मे एक महान् घटना के घटित होने की सूचनाये वारंवार दिखाई दे रही है जिसकी वरावरी सैकड़ो वरस की तवारीख मे भी नही मिलती। हिंदुस्तानियो के भूरे वदनो पर, तिव्वत के हृष्ट पुष्ट निवासियो मे, वादाम सी ऑख वाले चीनियो मे और लम्वी भूरी दाढ़ी वाले अफ्रीका निवासियों मे एक उज्ज्वल भविष्य की आशा और दृढ़ विश्वास अपने गर्वीले माथे को ऊँचा कर रहे है। निर्मल वुद्धि वाले श्रद्धालु प्राच्यो की कल्पना मे ऐन मौका आ पहुँचा है और आजकल का अशांतिमय जमाना ही उसके निकट भविष्य मे पूरा होने की स्थूल और प्रत्यक्ष सूचना है।

ऐसी सूरत मे मेहरवावा ने अपने आकस्मिक मानसिक परिवर्तन को देख कर अपने को नियति का भेजा हुआ पैगम्वर मान भी लिया तो इससे वढ़ कर स्वाभाविक और क्या हो सकता है? इससे अधिक स्वाभाविक और क्या हो सकता है कि मेहरवावा यह ख्याली पुलाव उड़ावे कि एक दिन चकित जगत के सामने अपने दृढ़ विश्वास का, अपनी मानी हुई दिली वात

का एलान कर दें। उनके चेलों के अपने नबी के अवतार होने की बात को फैलाने की चेष्टा करने से बढ़ कर और कौन सी बात सहज होगी। तब भी लाचार होकर हमें उनके नाटकीय आचरणों और नुमाइशी प्रवृत्तियों के विरुद्ध आवाज़ उठानी पड़ती है। किसी नामी धर्म गुरु ने इनके समान रुख को कभी नही अपनाया है। यह असंभव है कि कोई प्रसिद्ध धर्माचार्य सदियों की आध्यात्मिक आचार और विनय की लीक को लाँघ जावे। मेरे मन में इस संदेह ने जड़ पकड़ ली है कि इस नुमाइश पसंद महात्मा के जीवन मे आगे जाकर न जाने कौन कौन से गुल खिलेंगे। पर दुनिया के विनोदार्थ, समय बली ही इस लेखक की अपेक्षा अधिक सफलता के साथ उनके वहमों की तसवीर खींच देगा।

इस दीर्घ सोच विचार के समाप्त होते होते मुझ पर यह बात प्रकट हो गयी कि निस्संदेह मेहरबाबा की कोमल उंगलियों से अनेक उदात्त और गंभीर विचार निकले हैं। लेकिन जब वे धार्मिक प्रेरणाओं के कांतिमय जगत से विवश होकर अवश्य ही च्युत होंगे और इतने नीचे उतरेंगे कि अपने निजी बड़प्पन और भोग भाग्य की बात छोड़ें, फिर उनसे किसी प्रकार की आशा रखना व्यर्थ होगा क्योंकि ऐसी सूरत मे यह भी संभव होगा कि मानव जाति के भावी * भाग्य विधाता होने का दम भरने वाला दावा ही उनको पदच्युत करने वाला साबित हो जाय।

---

* मेहरबाबा ने अभी हाल में यूरोप की यात्रा की है और वहाँ उनके अनुयायियों का एक पश्चिमी सम्प्रदाय ही खड़ा हो गया है। वे अब भी अनूठी बातों की पेशगोई करते है और बताते हैं कि उनकी मौन दीक्षा के समाप्त होते होते वे घटित होंगी। उन्हों ने कई बार इंगलैंड का सफ़र

किया है। स्पेन, फ्रांस और टर्की मे उनके कुछ शिष्य है। उन्होंने दो वार पश्चिम की यात्रा की है। कुछ शिष्य शिष्याओ के साथ, वडे ठाट से उन्होने समूचे अमेरिका का भ्रमण किया है। हालीवुड मे उनकी वडे धूमधडाके की अगवानी हुई थी। मेरी पिकफर्ड ने उनके आदरार्थ एक अच्छी दावत की आयोजना की थी। तल्लुता वॅकहेड ने उनकी वातो मे वडी दिलचस्पी दिखाई और हालीवुड के सब से बड़े होटल मे हजारो प्रमुख व्यक्ति उनके दरवार मे पधारे थे। पश्चिम मे उनका सदर मुकाम कायम करने के लिए काफी जमीन खरीद ली गई है। मेहरवावा तो वडे ही जोश मे देश विदेश मे भ्रमण कर रहे है किन्तु कहीं भी उनकी वह मौन दीक्षा अभी नही टूटी है। अन्त को कुछ ही दिन हुए उनके वारे मे एक अपवाद भी फैल गया है।

१५

एक विचित्र समागम

भारत का आराम के साथ, अनिश्चित भाव से मैंने दुबारा भ्रमण किया। धूल भरी रेलगाड़ियो, उचित आसन आदि से शून्य छकड़ो पर सफर करते करते मै तंग आ गया था। अन्त मे मैने एक हिन्दू के साथ तय करके एक मज़बूत मोटर किराये पर ले ली। मेरा हिन्दू साथी ही मेरा नौकर था और मोटर चलाने का काम भी वही करता था।

मोटर पर सैकड़ों मील का फासला हमने तय किया और अनेक भांति के दृश्य परिवर्तनो का हमने मजा लूटा। जब किसी जंगल में से हो कर गुजरना पड़ता और समय पर कोई गॉव देखने मे नही आता तो जंगल मे ही हम ठहर जाते। सारी रात मेरा वह साथी एक बड़ी आग सुलगा देता, पेड़ो की टहनियो आदि से ज्वाला को खूब ही धधका देता। वह मुझे विश्वास दिलाता कि इस प्रज्वलित अग्नि से डर कर बनैले जानवर पास भी नही फटकते। चीते जंगल मे कसरत से भ्रमण करते रहते है किन्तु छोटी अग्निशिखा भी उनके छक्के छुड़ा देती है और वे पास आने का नाम तक नही लेते। सियारो की बात ही और है। पहाड़ो के निकट हमारे बहुत ही समीप उनकी 'हुँआ हुँआ' की आवाज़ प्रायः सुनाई पड़ती। दिन को कभी कभी अपने पहाड़ी घोसलो से नील गगन की ओर उड़ती हुई बड़ी बड़ी चीले हमें दिखाई देतीं।

एक दिन शाम को धूल से भरी एक देहाती सड़क पर अपनी मोटर को हम मुश्किल से चला रहे थे कि हमे सड़क के किनारे दो अजीव व्यक्ति वैठे नजर आये। उनमे एक अधेड़ उम्र के साधू थे। वह जमीन पर अपने पुट्ठो के वल चलते थे और झाड़ियों के पत्तो की विरल छाया मे वैठे अपनी नाक की ओर ध्यान पूर्वक देख रहे थे। दूसरा नौजवान था। शायद वह उस साधू का चेला ही था। उनकी वगल मे हमारी मोटर जाने लगी तो साधू अधखुली दृष्टि से, हाथ जोड़े ध्यान मे लीन थे। हमारे गुजरते समय वह कुछ भी नही विचले और घास पर ज्यों के त्यो उचित भाव से वैठे रहे। उन्होने हमारी ओर ताका तक नही था। किंतु उनका जवान चेला हमारी मोटर की ओर स्थिर दृष्टि से भर आँख ताकने लगा। उस साधू के चेहरे पर कुछ विशेपता नजर आयी तो उससे आकृष्ट हो कर मैने थोड़ी ही दूर पर अपनी मोटर रोक दी। उनके वारे मे कुछ पूछताँछ करने के लिए मेरा हिन्दू साथी पीछे लौटा। वह कुछ हिचकते हुए साधू के निकट गया। किसी प्रकार चेले के साथ उसकी वड़ी लम्बी वातचीत होने लगी।

लौट कर मेरे साथी ने बताया कि वे दोनो गुरूशिष्य है, साधू का नाम चंडीदास है। चेले के कहने के अनुसार वे अद्भुत विभूतियो की खान है। गुरू-शिष्य दोनो पैदल ही गाँवो मे भ्रमण करते है। करीव दो वर्ष पूर्व अपना जन्म स्थान वंगाल छोड़ने के वाद वे कभी पैदल और कभी रेलगाड़ी से वहुत दूर तक घूम चुके है।

मैने उनसे प्रार्थया की कि वे मेरी मोटर पर सवार हो जावे। वूढ़े साधू ने दिव्य कृपा के साथ और युवक ने प्रकट कृतज्ञता के साथ मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इस ढंग से कोई आध

घंटे बाद मोटर से हम लोग पड़ोस के एक गॉव पर पहुॅच गये और वहीं रात बिताने का हमने इरादा किया। गाँव के निकट पहुॅ-चते समय दुबली गायों को चराने वाले एक बालक को छोड़ और कोई भी हमे दिखाई नही पड़ा। सूर्य ढलने ही वाला था कि हम देहात के कुॅए पर पहुॅच गये और उसके शंकास्पद रंगदार पानी से प्यास बुझा कर हरे भरे हो गये। उस गाँव मे एक ही गली थी। उसके दोनो ओर अपने पुआल के भद्दे छप्पर और छोटी मटमैली दीवारे लिये कोई ४०-५० झोपड़ियाॅ खड़ी थी। मकानों का मटमैला रंग ढंग देख कर मै कुछ निरुत्साह सा हो गया। कुछ देहाती अपनी मढ़ियो के सामने छॉह मे बैठे थे। एक भूरे रंग वाली गरीब औरत कुँए के पास आयी, हमारी ओर घूम कर देखा और अपनी पीतल की गगरी जल से भर कर उसने घर की राह ली।

मेरे हिंदू साथी ने चाय के सारे समान जुटा दिये और गॉव के मुखिया के घर की खोज मे चल पड़ा। योगी और उनका चेला वही राह की धूल मे बैठ गये। योगी अंग्रेजी जानते न थे किंतु मुझे मोटर पर ही मालूम हो गया था कि उनका चेला थोड़ी सी अंग्रेजी समझ सकता था। लेकिन उसकी जानकारी इतनी कम थी कि दूसरो के साथ वह कठिनता से अंग्रेजी मे बातें कर सकता था। बातचीत करने की कुछ कोशिश करने पर मुझे यही उचित जान पड़ा कि जब तक मेरा हिंदू दुभाषी न आवे तब तक चुप रहूॅ। तब शाम को सब के आ जाने पर मैंने उस योगी से कुछ बातें कर लेने का इरादा किया।

इसी बीच मे हमारे चारों ओर मर्द, औरतो और बच्चों का एक छोटा झुंड इकट्ठा हो गया। रेल पथ से दूर इन प्रान्तो मे विरले ही किसी गोरे को लोग देख पाते है। कई बार बड़ी दिल-

चस्पी के साथ मैने ऐसे लोगों से बाते की है। उन बातो मे और कुछ नही तो कम से कम जीवन के बारे मे उन निरीह भोलेभाले देहातियो के दृष्टिकोण का पता लग जाता है। बच्चे शुरू शुरू मे मुझ से शरमाते थे किन्तु कुछ पैसे उनमे मैने बॉट दिये तो सारी झिझक छोड़ कर वे मेरे साथ हिलने मिलने लगते थे। मेरी अलार्म घड़ी देख वे निष्कपट आश्चर्य मे डूब जाते और घंटी को बजते सुन वे इतने आश्चर्य मे आ जाते कि किसी को विश्वास ही नही होगा।

कोई स्त्री योगी के निकट पहुँची और खुली गली मे उनके सामने साष्टांग दंडवत् की और उनके चरणो की धूल सिर ऑखो पर धारण कर ली। मेरा हिंदू नौकर गॉव के मुखिया के साथ लौट आया और खबर दी कि चाय तय्यार हो गयी है। वह कालेज का ग्रेजुएट था लेकिन दुभाषी, खानसामा और ड्राइवर के काम से वह खुश था। मुझे मालूम हुआ कि मेरी पश्चिमी अनुभूति को वह तह लेना चाहता था और हमेशा वह इसी आशा मे दिन बिताता था कि एक न एक दिन मै उसको यूरोप की सैर कराऊँगा। मैने उसको अपना साथी मान लिया और तेज़ बुद्धि तथा सच्चरित्र रखने वालो की जैसी कद्र करनी चाहिये उससे वैसा ही सलूक करता था।

इसी बीच मे योगी तथा उनके चेले से प्रार्थना करके कोई उन दोनो को अपनी झोपड़ी पर भिक्षा ग्रहण करने के लिए ले चला। सचमुच अपने शहरी भाइयो की अपेक्षा देहाती अधिक दया भाव रखते है।

हम गॉव के मुखिया के घर की ओर चले तो दूरवर्ती पहाड़ी चोटियो के पीछे पश्चिम दिशा मे लाली छा गयी और नारंगी रंग के सूर्य ने अपने धुँधले जीवन का अंत सा कर लिया। हम

एक बढ़िया कुटी पर पहुँचे और भीतर प्रवेश करते ही मैंने मुखिया को धन्यवाद दिया। वे सिर्फ यही कह कर चुप हो गये कि हम लोगो का वहाँ पहुँचना उनके लिए सौभाग्य की बात थी।

चाय के बाद थोड़ी देर तक हमने आराम किया। बाहर खेतों पर प्रदोष की शीघ्र ही गायब होने वाली छाया फैलने लगी। चौपाये खेतो को छोड़ घर की राह लेने लगे। उनको चलाने वाले ग्वालो की आवाजे अधिक निकट आती जाती थी। मेरा नौकर योगी के दर्शन करने के लिए गया और मेरी मुलाकात का रास्ता तैयार कर दिया। वह मुझे एक साधारण कुटी के दरवाज़े पर ले गया।

प्रवेश करते ही मैंने एक नीचे छप्पर वाले चौरस कमरे के मिट्टी के फर्श पर पैर रखा। वहाँ का सामान नही के बराबर था। उस कमरे मे एक ओर एक ऊजड़ चूल्हा था जिसके चारो ओर मिट्टी के भाँड़े रक्खे हुए थे। कपड़े लत्ते लटकाने के लिए बाँस का एक टुकड़ा दीवार मे ठोक दिया गया था। एक कोने मे पीतल का एक जल कलश सोह रहा था। वहाँ के असभ्य दीपक की धीमी रोशनी मे सारी जगह सूनी सी दीख पड़ती थी। बेचारे इन गरीब किसानों के उपभोग के लिए ये ही सामग्री थी जिसमे आनंद पैदा करने की झलक भी दीख नही पड़ती थी।

योगी के चेले ने अपनी टूटी फूटी अंग्रेज़ी मे मेरी अभ्यर्थना की। उनके गुरुदेव दिखाई नही पड़े। वे इस समय किसी बीमार स्त्री को अपना आशीर्वाद देने गये थे। मै वहीं बैठ कर उनकी इन्तज़ारी करने लगा।

अन्त मे बाहर की गली में किसी के आने की आहट मिली और एक लम्बी मूर्ति कुटिया के आंगन मे दिखाई दी। थोड़ी देर मे बड़ी गंभीरता के साथ वह मूर्ति भीतर पधारी। मुझे देख कर

उन्होने कुछ सिर हिलाया और अस्पष्ट ही कुछ शब्द बोले। मेरे साथी ने मेरे कानो मे उसका अनुवाद कह सुनाया—"नमस्कार साहब, भगवान आप की रक्षा करें।"

मैने उनके बैठने के लिए अपनी रुई की रजाई बिछा दी लेकिन उन्होंने उसे स्वीकार नही किया और जमीन पर ही पालथी मार कर बैठ गये। हम एक दूसरे के मुखातिब थे। अत. अच्छी तरह उनको देख लेने का मुझे सौभाग्य मिला। उनकी भद्दी दाढ़ी देख कर अनुमान होता था कि वे ५० से अधिक उम्र के होंगे, तो भी उनकी उम्र उतनी अधिक नहीं थी। शायद वह ५० के करीब थी। उनके उलझे बालो की लटें उनकी गरदन पर बिखरी पड़ी थी, उनका मुँह गंभीरता की मुद्रा बना हुआ था और भूल कर भी उस पर हंसी की रेखा दीख नही पड़ी। किंतु प्रथम दर्शन के समय जिस बात का मुझ पर सब से अधिक असर पड़ा वही उनकी कज्जल सी काली आँखो की अनूठी चमक, उनकी दिव्य ज्योति मेरे मन पर नये रूप से असर डालने लगी। मुझे मालूम था कि वैसे दिव्य नेत्रो की आभा कितने ही दिनो तक मेरे मन मंदिर को अंकित करती रहेगी।

उन्होने धीरे से प्रश्न किया—"आप ने बड़ा लम्बा सफर किया है?"

मैने हामी भर ली।

वे अचानक प्रश्न कर बैठे—"मास्टर महाशय के बारे में आप की क्या राय है?"

मै चकित हो उठा। उन्हे यह बात क्यो कर मालूम हो गयी कि मैने उनकी जन्म भूमि बंगाल की यात्रा की और कलकत्ते मे मास्टर महाशय का दर्शन किया है? अचरज मे डूब कर उनकी

ओर थोड़ी देर तक मैं ताकता ही रहा। तब उनके प्रश्न का स्मरण करके उत्तर में कह दिया—" उन्होंने मेरे हृदय को हर लिया; लेकिन आप क्यों कर ये बातें पूछ रहे है ? "

उन्होंने मेरे प्रश्न को टाल दिया। थोड़ी देर तक खामोशी छायी रही जिससे मै बड़ा ही व्याकुल हो गया। इस आशय से कि कहीं बातचीत का तार न टूटे मैंने कहा—" मेरी हार्दिक इच्छा है कि अब की बार जब मै कलकत्ता जाऊँ, उनके फिर से दर्शन कर लूँ। क्या वे आप को जानते है ? उनसेमै आपका नमस्कार कह दूँ ? "

योगी ने अपना सिर दृढ़ता पूर्वक हिला दिया और कहा :

" नहीं, तुम फिर कभी उनका दर्शन नहीं कर पाओगे। अभी अभी यमदेव उनके प्राणों का हरण किया चाहते है। "

फिर कुछ देर तक खामोशी छायी रही। मैंने बताया :

" योगियो के जीवन तथा विचारों को जान लेने की मेरी बड़ी उत्कंठा है। आप कृपया मुझे बता दीजिये कि आप योगी कैसे बने और आप को कौन सा ज्ञान प्राप्त हुआ ? "

मालूम पड़ा कि चंडोदास बातचीत का ताँता तोड़ना चहते थे। उन्होने कहा—" भूत केवल भस्म की एक ढेरी है। मुझसे आप कदापि यह आशा न रक्खें कि मै उस भस्म की ढेरी छान कर मृत अनुभूतियों का बयान कर दूँ। मै न तो भूत मे रहता हूँ न भावी में ही। भानव को अंतरतम आत्मा की गंभीरता मे वे अनुभूतियाँ कुछ भी मूल्य नही रखती, वे छाया मात्र हैं। मैंने यही ज्ञान प्राप्त किया है। "

उनकी बातें मुझे व्याकुल करती थीं। उनका रूखा धर्माचार्यों का सा रुख मेरे धीरज को छुड़ाये देता था।

मै बोल उठा—"किन्तु हम तो समय के पेच मे फॅसे हुए है। अत. हमे चाहिये कि उन अनुभूतियो की कुछ तो खबर जान ले।"

उन्होने प्रश्न किया—"काल, क्या ऐसी कोई चीज सचमुच ही रहती है?"

मुझे शका होने लगी कि हमारी बातचीत अधिक काल्पनिक होती जा रही है। इनके चेले, इनकी जिन विभूतियो का ज़िक्र करते है क्या वास्तव मे यह योगी उन विभूतियो से भूषित है?

मै बोला—"यदि काल नाम से कोई चीज ही नही है तो हमे भूत और भावी दोनो का एक ही समय ज्ञान होना चाहिये। लेकिन अनुभव मे कोई ऐसी बात तो होती नही दिखाई देती, वरन् ठीक इसके विपरीत ही घटित होते नज़र आता है।"

"हॉ, आप का कहना है कि आप के अनुभवो की, दुनिया के अनुभव की, वही गवाही है।"

"सचमुच आपकी यह तो मंशा नहीं है कि आप का इस बात का अनुभव एकदम न्यारा हो है?"

"तुम्हारे कहने मे बहुत कुछ सत्य है।"

"मैं मान लूॅ कि भावी आप के दृष्टिगोचर है?"

चंडीदास ने कहा—"मैं तो शाश्वत, नित्य सत्ता में रहता हूॅ। कभी भी मैने यह जानने की कोशिश नही की कि आगे चल कर मेरे ऊपर क्या बीतने वाला है?"

"लेकिन दूसरो के लिए तो भावी का पता लगा सकते है?"

"हॉ, यदि चाहूॅ तो।"

मैने इरादा कर लिया कि सारी बाते साफ साफ जान लॅ।

"तो आप किसी के जीवन में आगे होने वाली घटनायें बता सकते है ?"

"कुछ अंशों मे । आदमियों के जीवन का इतना सीधा सादा मार्ग नही होता जिसमें सभी बातों का हर पहलू साफ साफ नियत किया गया हो ।"

"तो, आपको जहाँ तक पता चले बताइये तो सही कि मेरे ऊपर भविष्य में क्या गुजरने वाला है ?"

"इन बातो को तुम क्योंकर जानना चाहते हो ?"

मै गहरे संकोच मे पड़ गया ।

वे गंभीर होकर रुखाई के साथ कहते गये—"भगवान ने भावी पर परदा डाल कर उचित ही किया है ।"

मै अजीब फेर मे पड़ गया कि क्या कहूँ । अचानक दिल मे एक प्रेरणा उठी । बोला :

"गंभीर प्रश्न मेरे मन को सदा व्याकुल करते रहते है । उनको किसी हद तक हल कर लेने की आशा से मै आप के देश का पाहुना बना । हो सकता है कि आप जो मुझे बता सकते है उसी से मेरे लिये कोई खास मार्ग सूझ पड़े ; अथवा उससे मुझे यही मालूम हो जाय कि मेरी खोज निष्फल तो नहीं है ।"

योगी अपनी चमकने वाली काली आँखों से मेरी ओर ताकने लगे । उस समय की खामोशी मे उनकी गंभीर उदात्तता मेरे मन पर और भी अंकित हो गई ।

वे पालथी मारे हुए इतने गहरे और किसी आचार्य के समान विद्वत्तापूर्ण मालूम पड़ते थे मानों उस दूरवर्ती जंगली गाँव की गरीव सर्दी मे वे अपने चारो ओर की परिस्थितियों से कहीं परे होकर भासने लगे हो ।

पहली ही बार एक छिपकली दीवार के ऊपरी भाग से मेरी ओर ताकते हुए दिखाई दी। उसकी दोनों आँखे मेरे ऊपर लगी हुई थी। उसका चौड़ा बेढंगा मुँह इतना हास्यप्रद था कि मानो वह मुझे देख कर बुरी तरह दांत निकाल रही थी।

आखिर को चंडीदास की आवाज सुनाई देने लगी :

"मै विद्वत्ता के चौधियाने वाले उज्ज्वल हीरो से भूषित नही हूँ। किंतु तुम मेरी बात कान देकर सुनो तो मेरा कहना यह है कि तुम्हारी खोज व्यर्थ नही जायगी। तुमने जहाँ से भारत का भ्रमण शुरू किया था उसी जगह चले जाओ। अमावास से पहले ही तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।"

"क्या आपकी सलाह है कि मै बम्बई चला जाऊँ ?"

"तुम्हारा अनुमान ठीक है।"

मै चकरा गया। उस दोग़ले अर्ध-पश्चिमी शहर मे मेरे लिए क्या धरा होगा ?

"लेकिन मेरी खोज मे मदद पहुँचाने वाली कोई भी बात मुझे वहाँ नज़र नहीं आयी।"

चंडीदास ने मेरी ओर एक ठंडी निगाह दौड़ाई :

"वही तुम्हारा मार्ग है। जितनी जल्दी जा सको उतनी जल्दी उसी मार्ग का अनुसरण करो। व्यर्थ ही समय को बरबाद मत करो। कल ही बम्बई के लिए रवाना हो जाओ।"

"क्या आप की यही आखिरी बात है ?"

"और भी है, किन्तु मैने उसका पता चलाने का कष्ट नही उठाया है।"

उन्होने फिर से मौन धारण कर लिया। उनकी आँखो की स्तब्ध, निराली भावशून्यता थी। थोड़ी देर बाद वे बोले :

"तुम भारत छोड़ कर जल्द ही पश्चिम लौट जाओगे। हमारा देश छोड़ते ही तुम्हारा शरीर सख्त बीमार पड़ जायगा। तुम्हारी आत्मा जर्जर शरीर से छूटने के लिए तलफ उठेगी पर उसके मुक्त होने का अभी समय नही आया है। तब नियति के गुप्त कार्य प्रकट में आ जायंगे क्योंकि नियति से प्रेरित होकर तुम फिर भारत का दर्शन करोगे। यो हमारी भूमि का तुम तीन बार दर्शन कर लोगे। अब भी एक ऋषि तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। और चूँकि तुम उनके साथ पुराने बंधनों से बँधे हुए हो तुम उनके लिए फिर इस देश मे आ जाओगे।"*

उनकी आवाज़ थम गई। उनकी पलकों पर से एक अस्फुट कँपकँपी गुज़र गयी। पीछे मेरी ओर ताक कर उन्होंने कहा :

"तुमने सुन लिया? इससे अधिक और कुछ नहीं कहना है।"

बाद को हमारी आपस की बातचीत अमुख्य और अव्यवस्थित रही। अपने बारे में और किसी प्रकार का जिक्र करने से चंडीदास ने साफ ही इनकार कर दिया। अतः मै इस अचम्भे में पड़ गया कि उनकी निराली बातों का मर्म को क्योंकर ग्रहण करूँ। तो भी मुझे भासता था कि उन बातों के पीछे और भी अधिक रहस्य छिपा पड़ा है।

उनके चेले के साथ मेरी जो थोड़े समय की बातचीत जारी रही उसी के सिलसिले मे एक दिलचस्प बात छिड़ गई। चेले ने मुझसे बड़ी गंभीरता से प्रश्न किया—"इंगलैंड के योगियों में आप को ऐसी बात दिखाई नहीं देती?"

---

* इस पेशगोई का पूर्वार्ध सच निकला।

मैने अपनी हँसी रोक कर कहा—"उस देश मे योगी नही है।"

और बाकी लोग शाम भर चुप्पी साध कर हमारी बाते सुनते रहे। लेकिन जब योगी ने सूचित किया कि बातचीत समाप्त हो गयी कुटिया के मालिक (शायद वे भी एक किसान थे) ने हमारे निकट आकर प्रार्थना की कि हम भी उनके गरीबखाने पर आतिथ्य स्वीकार करे। मैने उनको बता दिया कि हम लोग मोटर मे कुछ भोजन की सामग्री ले आये है और हम मुखिया के घर पर रसोई तय्यार कर लेगे क्योकि रात भर ठहरने के लिए मुखिया ने अपने घर मे हमे जगह देने की बात कही है। पर वह किसान अतिथि सत्कार करने के इस महान् अवसर से वंचित नही होना चाहता था। मैने उससे कहा कि दिन को हमारा कुछ अधिक भोजन हुआ था, अतः हमारे लिये वह कष्ट न उठावे। तब भी वह अपनी ही बात पर डटा रहा तो उसको निराश न करने के लिए हम राज़ी हो गये।

उसने मेरे सामने चिउड़े की एक तश्तरी रखते हुए कहा—"मेरे घर पर अतिथि आ जाय और मै उन्हे रूखी सूखी भी न खिलाऊँ तो मेरे मुँह मे कालिख लग जाय।"

उस कुटिया की दीवार मे एक सुराख था। उसी से खिड़की का काम चल जाता था। मैने उसमे से झाँख कर देखा। चंद्रमा की किरण अपने मन्द आलोक को उस खिड़की के छेद मे से भीतर फैला रही थी। मै इन गरीब भोले भाले निरक्षर किसानों मे प्रायः दिखाई पड़ने वाली दया, दाक्षिण्य और उत्तम चरित्र के बारे मे सोचते सोचते मुग्ध हो रहा था। शहरी लोगो मे जो चरित्रहीनता प्राय. नजर आती है उसकी कमी को कालेज की पढ़ाई या कारोबार की चतुरता क्या दूर कर सकेगी?

मैंने चंडीदास और उनके चेले से बिदा ली तो किसान छप्पर से डोरी के बल लटकने वाली एक कम क़ीमती लालटेन हाथ मे लेकर सड़क तक हमें मार्ग दिखाने आया। मैंने उसे प्रेम से और आगे बढ़ने से रोक दिया तो वह मुझे प्रणाम करके मुस्कराते हुए फाटक ही पर खड़ा हो गया। अपने नौकर के पीछे पीछे मैं चलने लगा। दोनो बीच बीच में टार्च डालते हुए रात को आराम करने के वास्ते मुखिया के घर की ओर बढ़े। मुझे नींद किसी प्रकार नही लगती थी क्योंकि बाहर दूर पर सियारों की जुगुप्साजनक "हुँआँ, हुँआँ" और कुत्तों के भूँकने की गमगीन आवाजो का तुमुल नाद मच रहा था और भीतर मेरे दिल मे बंगाल के इस विचित्र योगी के बारे मे ज़ोरों के साथ अनेक विचार लहर मार रहे थे।

× × ×

यद्यपि मैंने चंडीदास की सलाह का हूबहू अनुसरण नहीं किया तो भी मैं अपनी मोटर का रुख बदल कर बंबई की ओर चलाने लगा। जैसे तैसे बंबई पहुँच भी गया। शहर मे जाकर किसी होटल मे रहने का ठीक ठीक प्रबंध भी कर न पाया था कि बीमारी का मैं शिकार बन गया।

चारो ओर दीवारें घेरे खड़ी थी। मेरा मन क्लांत था और बदन थका माँदा। मेरे जीवन में पहले पहल निराशा मुझे घर दबाने लगी। मुझे मालूम होने लगा कि मै हिंदुस्तान से तंग आ गया हूं। प्रायः बड़ी ही विकट और अननुकूल परिस्थितियों मे मैंने इस मुलक में हज़ारों मील का सफ़र किया था। जिस भारत की खोज में मै निकला था यूरोपियनो को आबादी में उसकी झलक तक मिलने की कोई उम्मीद नही थी। वहाँ का रंग ढंग ही कुछ और है। जुआ, नाच, खेल कूद, ताश, दावतें, शराब, सोडा आदि का वहाँ दौरदौरा है। जब जंगल पड़ता था हिंदू लोगों की आबादी के बीच मे टिकने पर अपनी खोज में काफी मदद मिलने

की आशा दिखाई देती थी। लेकिन इससे मेरा तबियत के सुधरने मे काफी अड़चन पड़ जाती थी। उत्तर भारत के जिलो मे, जंगली गॉवो मे अननुकूल भोजन करते, मलिन जल पीते, अव्यवस्थित जीवन विताते, झुलसाने वाले इस देश मे रतजगा करते, सफर करने मे मुझे काफी जोखिमे उठानी पड़ी थीं। अब मेरी देह केवल पीड़ा और यत्रणा की शय्या पर पड़ा हुआ थकित बोझ मात्र बन गई थी।

मुझे अचरज हो रहा था कि कितने दिनो तक मैं यो ही बीमारी की आँख बचा कर चल फिर सकूँगा। मेरे भारत के सारे भ्रमण मे मेरे पीछे पड़ कर निर्दयता के साथ मुझे तग करने वाले 'नींद न आने' के भूत को भाड देने मे महीनो से मैं असफल होता आया था। भिन्न भिन्न तथा विचित्र प्रकार के लोगो के बीच मे सावधानी के साथ चलने की आवश्यकता की वजह से मेरी नसो की बड़ी बुरी हालत हो गयी थी। हिदुस्तान के गुप्त और रहस्य-मय जीवन विताने वाली अपरिचित मंडलियो के मर्म का पता लगाते, अपनी भीतरी मानसिक समता को खोये बिना, एक साथ ही समालोचक की दृष्टि तथा तत्त्व को स्वीकार करने की बुद्धि, दोनो को बनाये रखने की जरूरत के कारण मेरे दिमाग मे एक दारुण खैचातानी पैदा हो गई थी। अपनी अभिमान पूर्ण कल्पनाओ को ही दैवी ज्ञान समझने वाले भ्रान्त विमूढ़ो तथा सच्चे योगियो मे, करामातो के पीछे रही सही बुद्धि को भी ताक पर रखने वाले ओछी तबियत के लोगो और सच्ची आध्यात्मिकता मे पगे धार्मिक योगियो मे, टोना-टोटका करने वाले नामधारी महात्माओ तथा योग के पीछे पागल सच्चे जिज्ञासुओ मे, मुझे अपनी जीवन नैया की राह ढूँढ़ निकालने की शिक्षा ग्रहण करनी थी। एक ही खोज के पीछे अपने जीवन के कई अमूल्य वर्ष

निछावर करने को मै बिलकुल ही तय्यार नहीं था। मुझे तो अपनी फुरसत के चन्द महीनों को जाँच पड़ताल से खचाखच भर कर पूरे पूरे ध्यान से तत्त्व को जान लेना था।

यदि एक ओर मेरी शारीरिक और मानसिक दशा बहुत ही नाजुक हो गई थी तो दूसरी ओर मेरी आध्यात्मिक उन्नति की स्थिति कुछ कुछ सुधर चली थी। तो भी असफलता का ख्याल करते ही मेरा दिल बैठ गया। उज्ज्वल चरित्र और विलक्षण ससिद्धि वाले पुरुषवरों से और अजीब बाते कर दिखाने वाले महात्माओ से मेरी भेट अवश्य हुई थी, पर मेरे दिल ही दिल से अभी यह निश्चयात्मक ध्वनि गूँज नहीं उठी थी, यह दृढ़ धारणा बैठ नहीं गई थी कि जिस अतीत आध्यात्मिक गुरू की तुम खोज मे हो, जो गुरुवर तुम्हारी तर्क बुद्धि को तृप्त कर सकेगे, जिनके श्रीचरणो मे तुम अपने आप को सर्वात्मना समर्पण कर सकते हो वह परम पुरुष, वह परम गुरु मुझे मिल गये है। उत्साही चेलो ने व्यर्थ ही मुझे अपने अपने गुरुओ की छत्रछाया मे अपने गुरू के संप्रदाय में शामिल कर लने की भरसक कोशिश की थी। लेकिन मैने पहचान लिया था कि जिस प्रकार युवक लोग सर्व प्रथम जवानी के जाश को ही पराकाष्ठा के प्रेम का पैमाना मान लेते है उसी प्रकार ये भोले भाले चेले अपनी सर्व प्रथम आध्यात्मिक अनुभूतियो से इतने चकित हो गये थे कि उससे भी परे रहने वाली किसी अनुभूति की खोज का नाम तक नहीं लेते थे। अलावा इसके, दूसरो के सिद्धांतो की केवल एक धरोहर रखने वाला बनने की मेरी इच्छा ही नहीं थी। जिस बात की मैं तलाश मे था वह एक जीती जागती अपरोक्ष अनुभूति थी। वह एक ऐसा आध्यात्मिक आलोक था जो सर्वात्मना मेरा अपना हो, जिसमे परायेपन की कोई पुट भी न हो।

लेकिन आखिर मै कौन था ? अपने जीवन की सारी लालसाओ को तिलांजलि दे कर सुदूर पूर्वी खंडो को छानने वाला, गरीब, दायित्वहीन एक लेखक मात्र था। तब ऐसी अनुभूति प्राप्त करने की आशा भी रखने का मुझे कौन सा अधिकार था ? अतः मेरे दिल पर निरुत्साह का भारी परदा पड़ ही गया।

जब मेरी तबियत कुछ दुरुस्त हो गयी और मै पैर घसीटते इधर उधर चल फिर सका तो मै होटल मे मेज़ के सामने अपने एक पड़ोसी फौजी कप्तान के साथ बैठ गया। उसने अपनी मरीज़ बीवी, उसके आहिस्ते आहिस्ते चगी हो जाने, अपनी छुट्टी के सारे प्रबंधो को रद्द कर डालने आदि की लम्बी राम कहानी का पोथा ही खोल दिया। इससे मेरी बेचैनी और अस्वस्थता को और भी ठेस पहुँची। जब हम दोनो मेज़ से उठे और बरामदे मे आ गये उसने एक लम्बा चुरट मुँह मे दबा लिया और धीरे धीरे बोलने लगा—"कोई खेल, दिल बहलाव, क्यो ?"

थोड़े ही मे मैने स्वीकार कर लिया—"हाँ, क्यो नही ?"

आध घटे के बाद हम दोनो हार्नबी रोड पर एक तेज़ मोटर पर सवार थे। हम किसी जहाज़ी कम्पनी के ऊँचे, विशाल भवन के सामने ठहर गये।

इस बात की पूरी जानकारी के साथ कि मौजूदा हालत मे अचानक हिंदुस्तान को छोड़ देने मे ही संभवतः मेरा खैर है मैने अपना टिकट कटा लिया।

बंबई की बेढंगी झोपड़ियो, धूल भरी दूकानो, सुशोभित महलो और सजे सजाये दफ़्तरो से मेरा जी उकता गया था। उनसे मुँह मोड़ कर मै अपने होटल के कमरे मे लौट चला ताकि अपने दुखद विचारो की परम्परा को जारी रक्खूँ।

ज्यो त्यो करके शाम हो गई। खानसामे ने सुस्वादु तरकारी

की एक रकाबी मेज पर सजा दी, पर भोजन से मेरी अरुचि सी हो गई थी। मैने दो प्याले बरफ पड़ा शरबत पी लिया और फिर मोटर पर सवार हो शहर में घूमने लगा। मोटर से उतर कर एक गली में धीरे धीरे टहल रहा था कि मुझे एक बड़ा ही उज्ज्वल सिनेमा थियेटर जो भारत के लिए पश्चिम का एक वर प्रदान है, मिला। उसके दीपोज्ज्वल फाटक पर थोड़ी देर ठहर कर मै उसके भड़कीले रंगदार इश्तहारो को गौर से देखने लगा।

मुझे चलचित्र देखने की पहले से ही लत सी थी। आज तो थियेटर मुझे अमृतपान कर लेने का न्योता सा दे रहा था। संसार भर मे किसी भी शहर मे क्यो न हो, यदि किसी सिनेमा मे एक-दो रुपये के पैसे लुटाने से मुलायम रोवॉदार कपड़े से ढकी गद्दी मिल जाय तो मुझे यकीन नही कि मै कभी भी अपने को लाचार और एकदम अकेला समझूँगा।

गद्दी पर बैठे थियेटर मे मैने देखा कि अमेरिका के जीवन के कुछ इधर उधर के पहलू चलचित्रो के रूप मे सफेद परदे पर पड़ रहे है। एक मूर्ख वरनी और विश्वासघाती पति दोनो शानदार महलो के सुंदर कमरों मे चलते फिरते नजर आते है। गौर से चलचित्र देखने की मैने बड़ी कोशिश की लेकिन न जाने क्यों मेरा जी और भी ऊकता रहा था। ताज्जुब की बात थी कि सिनेमा देखने की मेरी पुरानी लत एकबारगी कैसे छूट गयी। मानवीय भावनाओ के तुमुल संघर्ष की कहानियॉ और विषाद तथा मोद भरी घटनायें समवेदना पैदा करके मुझे दुखी या सुखी बनने की, रुलाने और हॅसाने की सारी शक्ति एकदम गवॉ बैठी थीं।

खेल आधा भी समाप्त नही हुआ था कि चलचित्र धुँधला पड़ते हुए संपूर्ण शून्यता मे विलीन होते हुए मुझे प्रतीत होने

लगा। मेरा ध्यान एकाग्र हो गया और मेरा मन फिर से मेरी विचित्र खोज के बारे मे सोच विचार करने लग गया। अचानक मुझे भान होने लगा कि मै एक ऐसा यात्री हूँ जिसका कोई खुदा न हो, ऐसा घुमक्कड़ जो एक शहर से दूसरे शहर और एक गॉव से दूसरे गॉव उस जगह की खोज मे भटकता रहे जहॉ अपने मन को चैन दे और कही भी आश्रय न पावे। अपने देश और समय के लोगो की अपेक्षा जिस महापुरुष ने और भी गहरे तक पैठ कर खोज की हो, उस अतीत महात्मा की विदेशी रूपरेखा देखने की लालसा से मैने कितनो के चेहरे गौर से नही ताके? इस आशा मे कि कही उस दिव्य नेत्र-युग्म को जो मेरे शक्की हृदय को तोष देने वाली रहस्य भरी वाणी गुंजा दे, देख पाऊँ अन्य देश के लोगो के काले चमकीले नेत्रो की ओर कितनी उत्सुकता से मैने ताका न था?

इस प्रकार सोचते सोचते मेरे दिमाग मे कुछ विचित्र ऐचा-खैची पैदा हो गई और भान होने लगा कि चारो ओर प्रवल वैद्युतिक स्पद प्रसारित हो रहे है। मुझे मालूम हुआ कि मुझ मे कोई गभीर शक्तिशाली मानसिक परिवर्तन हो रहा है। अचानक एक मानसिक वाणी मेरे ध्यान की परिधि मे बुलन्द हो उठी और मुझे मजबूर करने लगी कि मै उसके इन तिरस्कारी वचनो को स्तब्ध भाव से सुनूँ—'जीवन भी क्या है? पालने से लेकर चिता तक की मानव जीवन की सारी घटनाओ और उपाख्यानो को एक एक करके दरसाने वाला सिनेमा है। अतीत के दृश्य कहॉ गये? तुम उन्हे फिर भी पा सकते हो? शाश्वत और नित्य वस्तुसत्ता को पहचानने की सारी कोशिश छोड़ कर, साधारण व्यावहारिक सत्य से भी गये गुजरे छलनात्मक चलचित्रो मे अपनी वास्तविक खोज भूल कर व्यर्थ ही अपने समय को बरबाद

करने आये हो ? सिवाय एक पूरी काल्पनिक कथा के यह खेल है ही क्या ? महा विभ्रम के अंतर्गत एक क्षुद्र विभ्रम मात्र है ।'

इसके बाद मानव प्रेम और विषाद के इस फिल्म में मेरी रही सही अभिरुचि भी गायब हो गयी। अब भी गद्दी पर बैठे रहना एक स्वांग नहीं तो क्या था ? चुपचाप मैं उठ खड़ा हुआ और थियेटर के बाहर चला आया।

मैं धीमी चाल से निरुद्देश हो शहर की गलियों मे भटकने लगा। ऊपर आसमान से चंद्रमा की विमल चाँदनी, जो इन पूर्वी देशों मे मानव जीवन के बहुत ही निकट मालूम होती है, छिटक रही थी। गली के मोड़ पर किसी भिखमगे की करुणा जनक आवाज़, जो पहले मेरी समझ मे नही आयी, सुनाई पड़ी। उसकी ओर आँख उठा कर ताका तो डर और जुगुप्सा के मारे मेरे पैर पीछे हट गये, क्योंकि वह एक खौफनाक बीमारी का शिकार था। उस बीमारी ने उसको एकदम बदशकल बना दिया था। उसके चेहरे का चमड़ा जहाँ तहाँ हड्डी से चिपक कर बड़ा ही भयानक मालूम होता था। लेकिन थोड़ी ही देर बाद इस कुत्सित घृणा के स्थान पर जीवन की मार खाये हुए इस भिखमंगे के प्रति एक अजीब करुणा ने मेरे दिल में जगह कर ली।

मैं समुद्र तट की ओर चलते चलते बाकवे विहार स्थल पर पहुँच गया। मैंने वहाँ एक ऐसी एकान्त जगह अपने लिए खोज ली जहाँ पर वहाँ हर रात इकट्ठे होने वाले भिन्न भिन्न जाति के लोगों से किसी प्रकार की बाधा न पहुँचे। नगर के ऊपर तने हुए तारागणों के सुंदर चंदोवे की ओर निहारते हुए मुझे अच्छी तरह प्रतीत हो गया कि मेरे जीवन मे एक बड़ी ही नाजुक हालत, जिसकी मुझे तनिक भी आशा नहीं थी, आ पहुँची है।

× × ×

कुछ ही दिनो मे मेरा जहाज यूरोप की ओर कूच करके अरब समुद्र के जल पर तैरने वाला था। एक बार जहाज पर सवार हुआ तो मेरा इरादा था कि आध्यात्मिकता से बिदाई ले लूँ और पूर्वी खोज को अतल जल मे फेक दूँ। मै और कभी भूल कर भी काल्पनिक और अवास्तविक आध्यात्मिक गुरुओ के अन्वेषण की बलिवेदी पर अपने सर्वस्व को, अपने समय, बुद्धि, शक्ति, धन आदि को निछावर नही करूँगा।

किन्तु मेरी आत्मवाणी, जिससे निस्तार पाना दुर्घट सा था, मुझे फिर से तंग करने लगी। मुझे धिक्कारते हुए वह बोल उठी— 'मूर्ख कही का! बरसो की जिज्ञासा, खोज तथा आशा का अन्त मे यही थोथा नतीजा निकलना था? साधारण जनता के समान तुम भी उसी साधारण जीवन के पुराने ढर्रे पर पैर घसीटते चलोगे! और वह भी किस लिए? जो कुछ सीख चुके उसको मिट्टी से मिलाने, अपनी उत्तम भावनाओ को अहंकार और विषय लालसाओ मे डुबा देने के लिए? किन्तु सावधान! जीवन का तुम्हारा नौसिखियापन गजब के उस्तादो के निकट गुजरा है, निरंतर विचार और विमर्श ने अस्तित्व के ऊपर पड़ी हुई झिल्ली को खोल कर सच्चाई का नंगा चित्र तुम्हारे सामने खड़ा कर दिया है, सदा के उद्योग ने तुम्हारी आत्मा को विविक्त सेवी बना दिया है। क्या सोचते हो कि ऐसे ही अपने भाग्य की बेड़ियो से बच सकते हो? कभी नही! उसने तुम्हारे पाँवो को अलख जंजीरो से जकड़ दिया है।'

मेरा मन डॉवाडोल था। आसमान मे तारे झुंड के झुंड चमक रहे थे। उनके आलोक को देखते हुए मैं कभी कुछ सोचता था और कभी कुछ। इस निठुर आत्मवाणी के हाथो मैने अपनी पराजय स्वीकार कर के बच जाने की चेष्टा की।

वाणी ने जवाब दिया—'क्या यही तुम्हारी दृढ़ धारणा है कि हिंदुस्तान में तुम्हारा गुरू बनने के योग्य किसी महात्मा से तुम्हारी भेंट नहीं हुई है ?'

मेरे मन पट पर अनेक मुख मंडलों के चित्र खिच गये। तीव्र बुद्धि वाले हिंदुस्तानी, धीर प्रशांत द्राविड़, भावुक बंगवासी, दृढ़ और मौन पश्चिमी, सभी के मुख मंडल कोई मैत्री भरे, कोई मूर्ख, कोई होशियार और चालाक, कोई भयानक, कोई कुत्सित, कोई गंभीर, अनेक प्रकार के चेहरे मेरे मनोनेत्र के आगे फिर गये।

उन उज्ज्वल मुखाकृतियो मे से, एक की निराली मुखश्री एक अपूर्व विलक्षणता लिये बारंबार मेरे सामने दिखाई देने लगी और वह मुख मडल अपने प्रसन्न शांत नेत्रों से मेरे मुख की ओर ताक रहा था। वह दक्षिण के अरुणाचल गिरिवर पर बसने वाले श्री महर्षि की मूर्तिवत् प्रशांत और उद्वेग रहित चितवन थी। वे मुझ को कभी नही भूले। वास्तव मे महर्षि के बारे मे कुछ कोमल विचार बारंबार मेरे मन मंदिर में उठते अवश्य थे लेकिन मेरे अनुभवो का आकस्मिक स्वभाव, असंख्य मानवों के जल्द बदलने वाले चेहरे, निरंतर परिवर्तन शील घटनाओ के चल दृश्य, मेरी खोज मे सामने आने वाले आकस्मिक परिवर्तन इन सभी ने मिल कर महर्षि के साथ के मेरे थोड़े दिन के परिचय की स्मृति पर एक परदा सा डाल दिया था।

तो भी अब मुझे भासने लगा कि वे मेरे जीवन की अँधेरी रात मे उस तारे के समान जगमगा उठे थे जो आसमान की अँधेरी शून्यता मे अपनी अकेली ज्योति एक बार चमका कर फिर से गायब हो जाता है। मेरी आत्मा के प्रश्न के उत्तर मे मुझे स्वीकार करना ही पड़ा कि अब तक चाहे पश्चिम चाहे

पूर्व हो कहीं भी महर्षि का सानी मुझे देखने मे नही मिला है। लेकिन वे तो इतने दूर, यूरोपियन मानसिक प्रवृत्ति के इतने परे, मुझे चेला बनाने या न बनाने की ओर इतने उदासीन, इतने लापरवाह रहे थे।

अब मूक आत्मवाणी ने अपनी सारी शक्ति से मुझे धर पकड़ा—'तुमने कैसे निश्चय कर लिया कि वे उदासीन रहे? तुम वहाँ ठहरे हो कितने दिन। चन्द रोज के तो तुम मेहमान ही रहे।'

मैने स्वीकार किया—'हाँ, लेकिन मुझे तो अपनी निश्चित कार्य प्रणाली पूरी करनी थी। ऐसी सूरत मे, बतलाओ मै और क्या कर सकता था?'

'लेकिन तुम अब एक बात कर कर सकते हो। उनके ही पास लौट जाओ।'

'अपने तईं मै उनके यहाँ कैसे जाऊँ?'

'इस खोज मे सफलता ही सब से प्रधान है। तुम्हारी इच्छा या अनिच्छा से कोई मतलब नही है। महर्षि के पास चले जाओ।'

'वे तो भारत के उस सिरे पर है और मै हूं बहुत ही बीमार, फिर भ्रमण करने की मुझ मे ताकत ही कहाँ है?'

'इसका क्या अर्थ? यदि तुम सच ही गुरुदेव को पाना चाहते हो तो तुम्हे कैसी भी कठिनाई का सामना करने मे किसी प्रकार की आपत्ति नही उठानी चाहिये।'

'लेकिन मुझे इसी मे शक है कि मुझे अब किसी गुरू की आवश्यकता है या नही। मै इस कदर थक गया हूँ कि किसी बात की कामना ही नही रही। मैने जहाज का टिकट भी कटाया

है और तीन दिन में घर की ओर मुझे रवाना हो जाना चाहिये। अब कार्यक्रम मे हेरफेर करने का वक्त ही कहाँ है ?'

मेरी आत्म वाणी मानों मेरी हँसी उड़ा रही थी :

'वक्त ही कहाँ है ? क्या खूब ! तुम्हारे उचित और अनुचित के ज्ञान को हो क्या गया है ? अभी अभी तुमने कहा है कि मेरी राय मे महर्षि ही सब से अधिक प्रभावशाली है। फिर तुम्हीं उनको ठीक ठीक जाने विना ही उनसे दूर भागते हो ? लौट जाओ, उनके पास।'

मै एकदम हठी और जिद्दी वन गया। मेरी बुद्धि तो कह रही थी—'हाँ, लौट जाओ' पर मेरा दिल बुद्धि की एक नहीं सुनता था।

फिर एक वार वाणी ने झिड़क कर कहा—'अपना कार्यक्रम वदल लो। तुमको महर्षि के निकट जाना ही पड़ेगा।'

तव मेरे अंतरतम अंतस्तल से कोई अजीव प्रेरणा उमड़ उठी और उस अकथनीय आत्मवाणी की मूक आज्ञा को तुरन्त ही शिरोधार्य करने के लिए मुझे मजबूर करने लगी। उसने मेरे ऊपर पूरा पूरा कब्जा ही जमा लिया था। मेरे तर्क के सारे एतराजो को उसने इतना मिट्टी पलीद कर दिया कि मै उसके हाथो का एक कठपुतला सा वन गया। महर्षि की शरण मे जाने को अचानक ही आज्ञा देने वाली इस प्रेरणा के आवेग की तेजी मे मै उन ऋषिवर के नेत्र स्पष्ट रूप से मुझे पास बुलाते दिखाई दिये।

मैंने अपनी आत्मवाणी से और तर्क करना छोड़ दिया, क्योंकि मुझे मालूम था कि मैं अब उसके सामने एकदम लाचार हूं। मैंने ठान लिया कि तुरन्त महर्षि के पास चला जाऊँगा और

यदि वे मुझे स्वीकार करेंगे तो उनका शिष्य बन जाऊँगा। उस उज्ज्वल तारे से मैं अपनी जीवन नैया बाँध लूँगा।

पासा पड़ ही गया। कोई शक्ति मेरे ऊपर विजय पा रही थी, लेकिन मुझे पता नहीं था यह कौन सी थी?

मैं होटल पहुँचा। माथे का पसीना पोंछा और चाय का एक प्याला पी गया। पीते समय मुझे भासता था मानो मेरा दूसरा ही जन्म हुआ है। मुझे साफ़ मालूम हो रहा था कि अब मेरे सिर पर से लाचारी और शंका का सारा बोझ टला जा रहा है।

दूसरे दिन सवेरे मैं कलेवा करने बैठा तो मालूम हुआ कि बंबई पहुँचने के बाद पहले पहल मैं मुस्करा रहा था। मेरी कुर्सी के पीछे उज्ज्वल सफेद कुरता, सुनहला कमरबंद और सफेद पायजामा पहने एक लम्बी दाढ़ी वाला सिख नौकर हाथ बाँध कर खड़ा हुआ था। मुझे मुस्कराते देख कर वह भी मुस्कराने लगा। बोला—"साहब, आप की एक चिट्ठी है।"

मैंने लिफाफे पर नजर डाली। दो बार वह मेरी खोज में जुदा जुदा पते पर चला गया था और मेरे पीछे पीछे कई जगह हो आया था। बैठते हुए मैंने उसे खोल कर देखा तो क्या था?

मेरे आनंद और आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं था। वह अरुणाचल की तलहटी के आश्रम में लिखा गया था। लेखक एक समय बड़ा ही प्रमुख नेता था और मद्रास व्यवस्थापिका सभा का सदस्य रहा था। अपने किसी आत्मीय के सिधार जाने पर संसार के प्रति उसे विराग पैदा हो गया और वह महर्षि का शिष्य बन गया। यह सज्जन जब तब महर्षि के दर्शनों को आते रहते हैं। मेरी उनसे मुलाकात हुई थी और हम दोनों के बीच में एक प्रकार की चिट्ठी पत्री भी चलती थी।

उस चिट्ठी में मेरे हौसले बढ़ाने वाली कई बातें थीं। उसमें यह सूचना भी थी कि चाहूँ तो महर्षि आश्रम का फिर से दर्शन कर सकता हूँ। बाकी सब बातों को फीका बनाने वाली एक बात उस चिट्ठी के पढ़ने के बाद मेरे मन पर खूब ही अंकित हो गयी। 'तुम्हारा अहोभाग्य है कि सच्चे गुरु का दर्शन हुआ।'

महर्षि के पास लौटने के मेरे नये संकल्प का यह शुभ शकुन था। कलेवा करने के बाद मैं जहाजी दफ़्तर पर गया और अपने सफर के रुक जाने की खबर दे दी।

शीघ्र ही मैं बंबई से विदा हुआ और अपने नये कार्यक्रम को क्रियान्वित करने का बीड़ा उठाया। रेलगाड़ी पर सवार होकर सुदूर दक्षिण प्रान्त की ओर तेजी से मैं चला जा रहा था। सैकड़ों मील तक ऊँची समतल भूमि मेरी आँखों के सामने तेज़ी से गुज़रती जाती थी। कहीं कहीं बाँस के जंगल अपने पत्रमय मस्तकों को उठाये दृश्य की उबाने वाली एकरूपता में अन्तर डाल रहे थे। मैं इस विरल वृक्ष वाली चौरस भूमि से जितनी जल्द पार होना चाहता था, रेलगाड़ी उतनी जल्दी मुझे ले नहीं जा सकती थी। रेलगाड़ी झूमते झामते झटकों के साथ दौड़ी जा रही थी कि मुझे अनुभव होने लगा कि मैं बड़े वेग के साथ एक महत्वपूर्ण घटना की ओर, आत्म विज्ञान के उज्ज्वल सुप्रभात की शुभ घड़ी की ओर, दौड़ा जा रहा हूँ। मुझे प्रतीत होने लगा कि मैं हवा के घोड़े पर सवार होकर उस महान् ऋषिवर के दिव्य दर्शन करने जा रहा हूँ जिसकी बराबरी दुनियाँ भर में मुझे मिली नहीं थी। रेल के डिब्बे की खिड़कियों के परदों में से झाँक कर जब मैं अपनी नजर दौड़ाने लगा मेरे भीतर ही भीतर एक ऋषि प्रवर, आध्यात्म विद्या में पारदर्शी एक पुरुषोत्तम के दर्शन करने को

मेरी प्रसुप्त कामनाये एक वार फिर आशासय कल्लोल के साथ जाग पड़ी थी ।

दूसरे दिन तक हमने कोई १००० मील का फासला तय किया और प्रशांत दक्षिण के नजारे ऑख के सामने से गुजरने लगे। कहीं लाल लाल टीले उस दृश्य के बीचो बीच अपना उन्नत मस्तक ऊँचा किये हुए बहुत ही सुन्दर मालूम होते थे । मुझे एक अजीब प्रकार का आनंद प्राप्त हो रहा था । गरम देशो के पीछे छूटने पर मद्रास शहर की नमी मिली । यह मुझे बहुत ही अच्छी लगी क्योकि इसका यह मतलब था कि मेरा सफर अब शीघ्र ही समाप्त होने वाला है ।

मद्रास शहर मे मद्रास साउथ मरहटा कंपनी का रेल पथ समाप्त हो जाता है । अतः मुझे गाड़ी बदल कर साउथ इण्डियन रेलवे की गाड़ी पकड़नी थी । इसलिये मुझे मद्रास की कम भीड़ वाली सड़को से होकर गुजरना पड़ा । गाड़ी छूटने मे अभी काफी देर थी । मैने कुछ आवश्यक चीजे खरीद ली और दक्षिण के जगद्गुरु श्री शकराचार्य जी से मेरा परिचय कराने वाले एक भारतीय कवि महाशय से मिल कर शीघ्र ही एक छोटी गुफ़्गू मे लग गया ।

उन्होने वड़े आदर के साथ मेरी अभ्यर्थना की और जब मैने उनसे कहा कि मै महर्षि के दर्शनो के लिए निकल पड़ा हूँ तो उन्होने कहा—"कोई आश्चर्य नही । इसकी तो मुझे पहले से ही खबर थी ।"

मै चकित हुआ और उनसे प्रश्न किया—"यह आप क्या कहते है ?"

वे मुस्कराये :

"दोस्त, तुम्हे स्मरण होगा कि श्री जगद्गुरु जी चेंगलपट में हम दोनो से क्यो कर विदा हुए थे। तुमने नही देखा था कि हमारे चलने से पहले उन्होने मेरे कान में कुछ कह दिया था ?"

"हाँ, आपके कहने पर मुझे भी याद आयी।"

कवि महाशय के परिमार्जित पतले चेहरे पर अब भी वही मुस्कान थिरक रही थी। बोले :

"जगद्गुरु ने मुझसे यही कहा था कि 'तुम्हारा मित्र सारे भारत का भ्रमण करेगा। वह अनेक योगियो का दर्शन करेगा और अनेक उपदेशको की बातें सुनेगा। लेकिन अंत मे उसे महर्षि के पास लौटना ही होगा। उसके लिए महर्षि ही योग्य और सच्चे गुरू है।"

निवासस्थान पर लौट आते ही कवि महाशय की ये बाते मेरे मन पर खूब ही अंकित हो गयीं। इनसे श्री शंकराचार्य की भविष्य जानने की विभूति के पक्के सबूत मिल गये। इसके-अतिरिक्त, ये बाते सुन कर मेरा यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया कि मै जिस मार्ग का पथिक हो रहा हूँ वह एकदम ठीक और सही है।

मेरे भाग्य के सितारे ही जाने कि मेरे भाल पट्ट पर विधाता ने कैसा आश्चर्यजनक भ्रमण लिख रक्खा है !

१६

विपिनाश्रम

हर एक व्यक्ति के जीवन मे कुछ ऐसी अविस्मरणीय घटनाएँ हुआ करती है जो सोने के अक्षरो मे लिखे जाने योग्य होती है। महर्षि के दर्शन के लिए दालान मे प्रवेश करना मेरे लिए एक ऐसी ही बात थी।

सदा के समान वे अपने उच्च आसन के बीच मे एक सुंदर बाघम्बर पर विराजमान थे। उनके समीप ही एक छोटी मेज पर ऊदबत्तियाँ धीरे धीरे जल रही थी और उनकी भीनी महक से सारा स्थान सुरभित हो रहा था। आज महर्षि समाधि मे लीन न होकर हम मानवो की पहुँच के एकदम बाहर नही थे। आज वे आँखे खोले दुनिया को अवलोक रहे थे। मैने उन्हे प्रमाण किया तो उन्होने मेरी अभ्यर्थना स्वीकार करते हुए मेरी ओर ताका और मेरी अगवानी मे उनके मुँह पर मंद मुसकान खिल उठी।

अपने गुरुदेव से हट कर कुछ दूर पर बड़े आदर के साथ कुछ शिष्य बैठे थे। कोई पखा खीच रहा था जिससे चारो ओर हवा की कोमल लहरियाँ फैल रही थी।

मै अच्छी तरह से जानता था कि उनके शिष्य होने की अभिलाषा से मै वहाँ गया था। अतः जब तक महर्षि का निर्णय न सुनूँ तब तक मेरे हृदय को शांति कैसे मिल सकती थी। मुझे इस बात की बड़ी भारी उम्मीद थी कि वे मुझ पर अवश्य दया करेगे, क्योकि जिस प्रेरणा के कारण, बंबई छोड़ कर मैने

अरुणाचल की राह ली थी वह साधारण अथवा संसारी नहीं थी। वह किसी दैवी अनुशासन के रूप में उठी थी। उसके सामने मुझे सर झुकाना ही पड़ा था। संक्षेप मे मैंने अपनी राम कहानी उन्हे सुना दी और साफ साफ उन पर अपनी मनोकामना प्रकट कर दी।

वे मुस्कराते ही रहे। उनके मुँह से कोई उत्तर नही निकला। मैंने कुछ जोर देकर अपना प्रश्न दुहरा दिया। कुछ देर तक खामोशी छायी रही। तब कहीं श्री महर्षि ने स्वयं, बिना किसी दुभाषिए की मदद के, अंग्रेजी में निम्न आशय प्रकट किया :

"गुरू और शिष्य का क्या अर्थ है ? इस प्रकार के सारे भेद शिष्य के दृष्टिकोण से उत्पन्न होते है। सदात्मा का जो वेत्ता है उसकी दृष्टि में न कोई गुरू है और न शिष्य ही। वह सब मे समान दृष्टि रखता है।"

शुरू में ही मुझे इस प्रकार का मुँहतोड़ जवाब मिल गया। मैंने और कई प्रकार से अपनी प्रार्थना उन्हे जताई लेकिन वे कुछ भी नही पसीजे। अंत मे उन्होंने यह कहा—"तुम्हारे गुरू तुम्हारे पास ही है। उनको कहाँ खोजते फिरते हो ? तुम्हारी आत्मा में ही तुम्हारे गुरू आसीन हैं। वे अपने शरीर को जिस दृष्टि से देखते है तुम भी उनके शरीर को उसी प्रकार का समझो। शरीर उनकी सदात्मा नही है।"

मेरे कानो मे यह अच्छी तरह गूँजने लगा कि महर्षि मेरे प्रश्न का सीधा उत्तर नही देंगे। अतः मुझे उनके उत्तर का पता किसी दूसरे ढंग से चलाना होगा। वह ढँग भी, जैसा महर्षि की बातो से व्यक्त होता था, निश्चय ही सूक्ष्म और अस्पष्ट है। अतः उस विषय का ज़िक्र मैंने उस समय छोड़ दिया और मेरी इस यात्रा के सांसारिक पहलुओ पर बाते होने लगीं।

वहीं कुछ दिन तक ठहरने के प्रवन्ध मे शाम वीत गई।

× × ×

उसके बाद के कुछ सप्ताह एक अनूठे, अनभ्यस्त जीवन के अनुकूल वना लेने मे गुजरे। दिन भर महर्पि की सन्निधि मे वीतता था। उनके ज्ञान के विखरे हुए, संवंध रहित विचार रत्नो का धीरे धीरे संग्रह करने लगा। मेरे प्रश्नो के उत्तर मे कुछ अस्पष्ट सूचनाये भी मिलती गईं। रात का समय किसी प्रकार से कटता न था। मेरी वह कुटिया जल्दी मे किसी प्रकार खड़ी की गयी थी। ज़मीन कड़ी थी। दरी विछा कर, उस पर अपने थके वदन को किसी प्रकार आराम पहुँचाना पड़ता था। वह रात का समय मेरे लिए निद्रारहित यातना से कम न था।

मेरी साधारण कुटी आश्रम से कोई ३०० फुट की दूरी पर थी। उसकी दीवारे मिट्टी की थी जिन पर हलका पलस्तर लगाया गया था। बरसात से बचने के लिए खपरे का छप्पर छवाया गया था। झोपड़ी के चारो ओर झाड़ी स्वच्छंदता से उगी हुई थी। वह एक प्रकार से पश्चिम के जंगल का एक छोर कहा जा सकता था। वह दूर तक फैला हुआ, ऊबड़-खाबड़ दृश्य प्रकृत्रि की अकृत्रिम वंजर शोभा दरसा रहा था। चारो ओर नागफनी का वाड़ा अनियत रूप से घिरा हुआ था। उसके पीछे कुछ दूर पर जंगली झाड़ी उगी थी। जहाँ तहाँ वृक्षो की पंक्ति दिखाई देती थी। उत्तर की ओर गगनचुम्वी पर्वतश्रेणी गंभीर और अचल भाव से खड़ी हुई थी। दक्षिण की ओर एक स्फटिक जल वाली पुष्करिणी थी जिसके किनारो पर वृक्षो के झुरमुट थे। उन पर भूरे रंग के बंदर झुंड के झुंड निवास करते थे।

हर एक रोज़ एक वधे हुए ढंग से वीतता था। तड़के उठ कर मैं उस जगल मे उपा देवी का प्यारा पट परिवर्तन देख

करता था। पौफट की ललाई धीरे धीरे सुनहली बनती जाती थी। भोर होते ही ठंडे जल में मै गोता लगाता और जल्दी उस पोखरे के एक पार से दूसरे पार तक हाथ पैर पटकते हुए खूब तैरा करता था। तैरने में मै बहुत हलचल मचाता था ताकि इधर उधर के साँप आदि डर कर दूर हो जायं। तब कपड़े पहन कर चाय के दो तीन प्याले बड़े चाव से पी जाता था।

मेरे यहाँ एक खानसामा रहा करता था। उसका नाम राजू था। राजू कहता—'साहब, चाय पानी तैयार है।' वह अंग्रेज़ी बिलकुल नहीं जानता था, लेकिन मेरे साथ रह कर धीरे धीरे थोड़ी अंग्रेज़ी उसने सीख ली। वह बहुत ही अच्छा नौकर था क्योंकि बड़े हौसले के साथ वह मुझ अंग्रेज़ को रुचने वाली चीज़ो की खोज मे सारा शहर छान डालता, या महर्षि के दालान के बाहर ध्यान के समय इधर उधर टहलते हुए मेरी इंतजारी करता। किंतु खानसामे का काम वह बहुत कम जानता था क्योंकि उसको गोरों के स्वाद का पता नही था। वह उसे बड़ा विचित्र मालूम होता था। कुछ तकलीफ उठा कर रसोई का बहुत कुछ काम मैंने अपने जिम्मे ले लिया। साथ ही एक वक्त ही भोजन करके रसोई तैयार करने के श्रम से कुछ छुटकारा पाता था। दिन भर मे तीन बार चाय पीता था। उसी पर मेरी सारी शक्ति का दारमदार था। राजू धूप में खड़े होकर बड़े ताज्जुब के साथ चाय का मेरा यह चस्का देखा करता था। सूर्य की धूप मे उसका शरीर आबनूस के समान चमका करता था क्योकि वह कृष्ण वर्ण द्रविड़ों के खानदान का था।

कलेवा करके धीमी चाल से टहलते हुए मैं आश्रम पहुँच जाता था। आश्रम के बाग में गुलाब की भीनी महक मेरा स्वागत करती थी। आश्रम मे नारियल के पेड़ लगाये गये थे। वे गगन-

चुम्बी वृत्तराज चारो ओर अपनी शीतल छाया फैलाते थे। उनकी टहनियाँ चारो ओर झुकती दिखाई देती थी और ऊपर नारियलो के गुच्छे आँखो को बहुत ही सुहावने लगते थे। धूप चढ़ने के पहले ही आश्रम के बाग मे टहलते हुए रंग बिरंगे फूलो की सुगंधि का मजा लूटना मुझे बहुत ही सुहाता था।

तब मै दालान मे प्रवेश करता और महर्षि को प्रणाम करके पालथी मार कर फर्श पर बैठ जाता। कुछ समय तक लिखते या पढ़ते, किसी अन्य सज्जन के साथ बातचीत करते या किसी समस्या के हल करने के लिए महर्षि से प्रार्थना करते या ध्यान मे डूबते वह समय बीत जाता। लेकिन चाहे जो भी काम करता रहूँ मै यह कभी नही भूलता था कि चारो ओर एक रहस्यमय प्रभाव फैला है, एक कृपापूर्ण प्रभा मेरे मन मे पैठती है। महर्षि की सन्निधि मे बैठने से ही मुझे एक प्रकार की अकथनीय आनंद-मय, प्रशांतिमय अनुभूति का स्वाद मिलता था। गौर से परिशी-लन करते करते और बार बार प्रत्यवेत्तण का आश्रय लेते लेते मै इस निश्चय पर पहुँच गया कि जब जब हम दोनो की मुलाकात होती है तब तब एक सपूर्ण विश्वास मेरे दिल मे स्थान कर लेता है और कुछ आंतरंगिक परिवर्तन हुआ करता है। यह परिवर्तन बहुत ही सूक्ष्म था, किंतु मेरे इस अनुभव मे कोई भूल नही हुई है।

ग्यारह बजे मै दुपहर का भोजन करने के लिए अपनी झोपड़ी पर लौट आता और कुछ देर सुस्ता कर फिर आश्रम जाया करता। बीच बीच मे अपने इस कार्यक्रम मे कुछ परि-वर्तन भी कर देता और उस छोटे शहर और महान् मदिर का और भी ध्यान पूर्वक दर्शन और परिशीलन करने जाया करता।

कभी कभी महर्षि नाश्ता करके मेरे गरीबखाने पर पधारने

की कृपा करते। इससे लाभ उठा कर मैं प्रश्नों की एक झड़ी लगा देता था। वे भी अपने स्वाभाविक संक्षिप्त वचनविन्यास से सूत्र-प्राय उत्तर दे देते। किंतु जब मै किसी नवीन समस्या के बारे मे प्रश्न कर बैठता था तो वे कुछ भी उत्तर नही देते थे। वे क्षितिज व्यापी पहाड़ी जंगलों की ओर ताकते, निश्चल हो खड़े हो जाते। इस प्रकार कई मिनट बीत जाते। तब भी वे टकटकी लगाये ही रहते। समीप रहते हुए भी वे दूरवर्ती भासित होते। वे किसी अलक्ष्य आधिदैविक सत्ता को प्रत्यक्ष करते रहते है या किसी आंतरंगिक प्रत्यवेक्षण में विलीन होते हैं सो तो मेरी समझ के बाहर की बात है। पहले मुझे शंका होने लगती थी कि हो न हो उन्होने मेरी बात न सुनी हो। किंतु उसके दूसरे क्षण से जो गभीर मौनावस्था प्रारम्भ होती, उसको भंग करने की न तो मुझे ताकत थो, न इच्छा ही। मेरी तर्क बुद्धि पर गजब ढाने वाली एक महान् शक्ति का वेग मुझे डराने लगता और अन्त को मुझे अपने वेग में मग्न कर लेता।

मेरे हृदय कुहर मे अपने आप यह सच्चा ज्ञान भास उठता कि मेरे सारे प्रश्न एक अनन्त लीला के दॉव पेंच है, ऐसे विचारों की लीला के जिसका कोई अन्त नहीं। ऐसा जान पड़ता कि मेरे भीतर ही भीतर किसी प्रच्छन्न कोने मे मेरे दिल को सत्य सलिल से प्लावित करने की सामर्थ्य रखने वाली एक निश्चयात्मक वापी है और प्रश्न पूछने के बदले मौन धारण कर अपनी प्रसुप्त आध्यात्मिक शक्तियो का साक्षात्कार करना ही बेहतर है। अतः मैं चुप्पी साध कर रह जाता।

करीब आध घंटे तक महर्षि अचल स्थिर दृष्टि से सामने के अनंत शून्य की ओर ताकते रहे। मेरी उपस्थिति का उन्हें शायद ही कोई चेत हो। किन्तु मुझे स्पष्ट ही इस बात का भान हुआ कि

मुझे अचानक जो संसिद्धि की एक झलक दिखाई दी वह इस रहस्यपूर्ण अविचल दिव्य पुरुष से अनवरत प्रस्फुरित होने वाली आध्यात्मिक शक्त्युद्रेक की एक छोटी सी लहर ही है। और एक वार जब वे मेरी कुटिया पर पधारे मै निराशा मे डूबा हुआ था। उन्होने मुझे बता दिया कि उनके उपदेश पर चलने वाले कैसे उज्ज्वल आदर्श को प्राप्त कर सकते हैं।

"किंतु आप का बतलाया मार्ग कठिनाइयों से भरा पड़ा है और मै बिलकुल कमज़ोर हूँ।"

"ऐसा समझना सरासर भूल है। इसके कारण तुम अपने आप को धोखे मे डालते हो। अपने असफल होने की चिंता से, सदा अपनी कमजोरी के विचार के भार से अपने दिल को दुखी करना बड़ी भारी भूल है।"

"तब भी यदि यही सच हो कि—?"

"नही, वह सच नही है। आदमी की सबसे भारी भूल यही है कि वह सोचता है कि कुदरतन वह कमज़ोर और पापी है। किंतु सत्य यह है कि प्रकृति से मानव दिव्य है। जो पापी और बलहीन होती है वह उसकी आदते है, उसकी इच्छाये और विचार है। वह स्वयं पापी और बलहीन कभी नही हो सकता।"

उनकी बाते मुझ मे नयी जान फूँक देती। मैं अनुभव करने लगता कि मेरा कायाकल्प ही हो रहा है। यही बाते किसी दूसरे व्यक्ति के मुँह से उतनी प्रामाणिक और विश्वसनीय कभी नहीं जॅचती और मै उनका शायद ही विश्वास करता। किंतु मेरे भीतर से यह आवाज उठ रही थी कि यह महात्मा जो कुछ कहते है अपनी गंभीर आत्मानुभूति के बूते पर कहते है। ये अन्य वेदान्तियो की तरह किताबी बाते करने वाले, अटकल पच्चू उड़ाने वाले नही है।

एक बार फिर पश्चिम के बारे में हम बातचीत कर रहे थे। किसी प्रश्न के उत्तर में मैंने कहा—"इस विपिनाश्रम में अपना आध्यात्मिकता को बनाये रखना और संसिद्धि को प्राप्त होना मुश्किल नही है, क्योंकि यहाँ ध्यान मे खलल पहुँचाने वाली कोई बात नहीं है।"

"जब साधक गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाते हैं, जब 'विज्ञाता' के वह ज्ञाता बन जाते हैं, तब फिर लंदन के आलीशान मकानो में रहे या जंगल की तनहाई मे दोनों उनके लिए एक से हैं।"

एक बार मैंने हिंदुस्तानियों की सांसारिक विषयो के प्रति घोर उदासीनता की कड़ी समालोचना की। ताज्जुब की बात है कि महर्षि ने मेरी बात एकदम मान ली। कहा :

"यह बात बिलकुल सच है। हमारी जाति पिछड़ी हुई है। किन्तु हमारी जरूरतें बहुत ही कम होती है। हमारे समाज का सुधार करने की बड़ी जरूरत है। आप लोगों की अपेक्षा हमारे अभाव तथा आवश्यकतायें बहुत कम होती हैं। अतः किसी जाति के पिछड़े रहने का यह मतलब नही लगाया जा सकता कि वह सुखी नही है।"

× × ×

महर्षि ने यह अद्भुत शक्ति और विशाल दृष्टिकोण किस प्रकार से हासिल किये। बड़ी उदासीनता के साथ उन्होने अपने जीवन का कुछ अंश बता दिया। उनके शिष्यों से भी कुछ बातों का पता चला। इन सब से मुझे महर्षि का जीवन चरित्र एक प्रकार से मालूम हो गया।

मदुरा दक्षिण भारत का एक मशहूर शहर है। उससे क़रीब ३० मील के फासिले पर एक छोटा सा गाँव है। इसी गाँव मे

श्री रमण महर्षि का जन्म हुआ था। उनके पिता वकालत का पेशा करते थे। वे जाति के ब्राह्मण थे। कहते है कि वे बड़े उदार थे और गरीब लोगो को खुले दिल से सहायता पहुँचाया करते थे। उन्हे खाने को देते और पहनने के कपड़े बँटवाते। बालक रमण पढ़ने के लिए मदुरा गये। यही अमेरिकन पादरियो के मदरसे मे अंग्रेजी की प्रारम्भिक शिक्षा उन्होने पाई।

शुरू मे बालक रमण खेल कूद में लगे रहते थे। वे कुश्ती लड़ते और भयानक बाढ़ के समय भी बड़ी बड़ो नदियों को तैर कर पार कर जाते थे। धार्मिक या दार्शनिक विषयो मे उस समय उनको कोई दिलचस्पी नही थी। उन दिनो मे उनके जीवन मे यदि कोई असाधारण बात थी तो वह उनकी गहरी नीद थी, जो इतनी गहरी होती थी कि उन्हे जगाने के बड़े बड़े प्रयत्न भी निष्फल हुआ करते थे। इस बात का उनके दोस्तो को पता चला। उससे उन बालको ने खेल तमाशे का मजा लूटा। दिन के वक्त वे उनके बल और धृष्टता से डरते थे किंतु रात के समय वे उनके शयनागार मे आते और सोते हुए वेकट रमण को उठा कर खेल कूद के मैदान पर ले जाते, जी अघाते तक मार पीट कर घर पर उन्हे नीद की दशा मे ही छोड़ जाते। रमण को इन बातो का कुछ भी ज्ञान नही रहता था और जागने पर इस बात की छाया तक उनके मन मे नहीं रहती थी। गाढ़ सुषुप्ति के तत्व को ठीक ठीक जानने वाले मनोवैज्ञानिक को बालक रमण की इस सुषुप्ति के तले उनकी भावी आध्यात्मिकता का पता जरूर लग जायगा।

एक दिन उनके कोई रिश्तेदार मदुरा आये और रमण के किसी प्रश्न के जवाब मे उन्होने यह बताया कि वे अरुणाचलेश के मंदिर की यात्रा से लौटे है। बस फिर क्या था। अरुणाचलेश के नाम ने उस बालक के मन के तहखाने मे प्रसुप्त कुछ
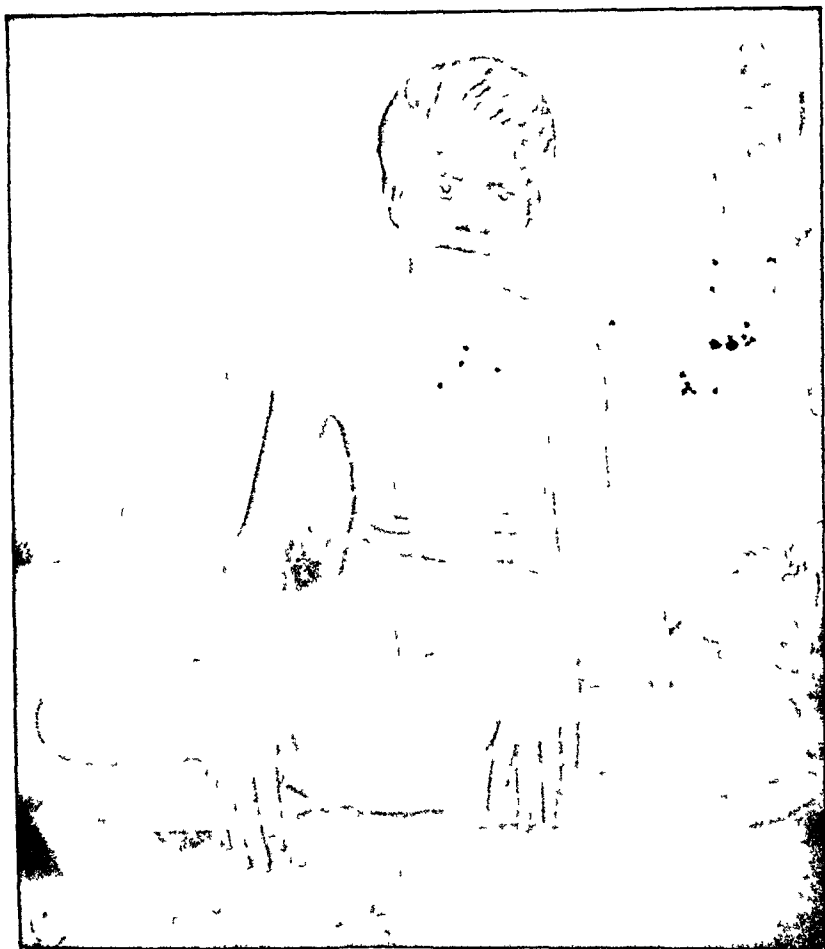
बालक रमण

स्मृति चिह्नों को, कुछ अनभिव्यक्त लालसाओं को जगा दिया। उनके सारे बदन मे एक सनसनी फैल गयी। वे हैरान थे कि इस सब परिवर्तन की, इन अजीब लालसाओ का क्या अर्थ हो सकता है? उन्होने उस मंदिर के पते आदि के बारे में दर्याफ़ किया और उस दिन से उनका मन अरुणाचल के ध्यान का लीलाक्षेत्र बन गया। उनको प्रतीत होने लगा कि अरुणाचल एक महत्व की चीज़ है, किन्तु उन्हे यह नहीं मालूम पड़ता था कि जब हिंदुस्तान भर में लाखों बड़े मंदिर बिखरे पड़े है अरुणाचल में क्या विशेषता थी कि उसी की उन्हें रट लग गई।

मिशन स्कूल की पढ़ाई जारी रही। तो भी उसमें उनका दिल नही लगा। तब भी क्लास में वे किसी तरह औरों से पिछड़े नहीं रहते थे। किंतु जब वे १७ वर्ष के हुए नियति ने सहसा उनके चरित्र को इस प्रकार झकझोर दिया कि उनकी जीवन यात्रा में एक क़िस्म का रद्दोबदल सा हो गया!

उन्होने एकबारगी मदरसा छोड़ दिया। उन्होंने अपने अध्यापकों को व अपने भाई बन्धुओं को इस बात की सूचना तक नहीं दी। भविष्य की सारी सांसारिक उन्नति तथा आशाओं पर पानी फेर देने वाले इस अचानक परिवर्तन का क्या कारण था?

इसका कारण उनको मालूम था। उससे उन्हे समाधान भी मिला। लेकिन वह ऐसी कोई वजह नही थी जिसे सुन कर लोग चकरा न जावें।

इस आश्चर्यजनक अनुभूति के साथ रमण ने एक नवीन जन्म धारण कर लिया। वे एकदम दूसरे ही आदमी बन गये। पढ़ाई, खेलकूद, मित्रो आदि में रही सही दिलचस्पी भी छूट गई। अब उनका सारा ध्यान उसी अत्युत्तम सदात्मा के चैतन्य के आलोक से मंडित था जो कि अचानक उन्हे दिखाई पड़ा था।

मृत्यु का भय जिस अज्ञेय रूप से आया था उसी अज्ञेय रूप से गायव भी हो चला। दिल मे एक नई प्रशान्ति विराजने लगी, एक आत्मबल प्राप्त हो गया जो कि अब तक उनके हृदय मे निगूढ़ था। पहले यदि कभी लड़को ने उनकी हंसी उड़ाई तो वे उसे सहते नहीं थे, वहुत ही जल्दी उनकी करतूतो का मज़ा चखा देते थे। किन्तु अव वे वड़ी नम्रता के साथ सव कुछ सहने लगे। अन्यायपूर्ण करतूतो के प्रति उदासीनता दिखाने लगे। दूसरो के सामने वड़ी नम्रता का बर्ताव करने लगे। पुरानी आदते छोड़ दी और जहाँ तक वन पड़ा एकान्त में रहने की कोशिश करते थे, क्योंकि एकान्त मिलने पर वे ध्यान मे डूव सकते थे और उस प्रवाह के सामने जो कि उनके ध्यान को सदा अतंर्मुख वनाता था, संपूर्ण स्वात्मार्पण कर सकते थे।

उनके जीवन मे जो गंभीर परिवर्तन हो गया था वह दूसरो से छिपा रहा। एक दिन उनके वड़े भाई उनके कमरे मे आये। वह वेंकट रमण के पढ़ने का समय था किन्तु उन्होंने यह देखा कि रमण आँखे बंद कर ध्यान मे लीन हो गया है। पोथी पत्रे सारे कमरे मे अस्तव्यस्त विखरे हुए थे। पढ़ाई के प्रति छोटे भाई की यह घोर लापरवाही देख कर वड़े भाई ने ताना मारते हुए चुभती वातें सुनाईं:

"तुम्हारे जैसे का यहाँ क्या काम? योगी वनने की चाह हो तो पढ़ाई की फजूल झंझट ही क्यो?"

वड़े भाई की वाते काम कर गयी। वे रमण के कोमल हृदय मे गड़ गयी। उन वातो का सच्चा अर्थ उन के मन पर प्रकट हो गया। अव उन्होंने उन वातो को चुपचाप क्रियान्वित करने का निश्चय कर लिया। उनके पिता स्वर्ग सिधार चुके थे; माँ की रक्षा उनके अन्य भाई तथा मामा ज़रूर करेगे। अतः इस ओर से

वेंकट रमण एकदम निश्चिंत हो गये। घर पर उनका कोई काम न था। झट उनके स्मृति पट पर वह नाम 'अरुणाचल', जो उनके मन मन्दिर में एक साल तक विहार करता रहा था, जिसका ध्यान ही उन्हे आनन्द विभोर बनाता था, भास उठा। उन्होंने अरुणाचल जाने का निश्चय कर लिया।

उनके अंतरंग में एक प्रबल अदम्य उत्साह काम कर रहा था और वही उनको राह दिखाने लगा। क्या करना था, कहां जाना था, रमण कुछ भी नहीं जानते थे। उनके आवेग ने ही सारे काम संभाल दिये।

महर्षि ने एक बार मुझसे कहा था—"वस्तुतः यहां आने मे मेरा कोई वश नही था। जिस मोहिनी शक्ति ने तुम्हे बम्बई से यहां पहुंचा दिया वही मुझे मदुरा से यहां तक खीच ले आयी।"

इस प्रकार श्री रमण ने इस अंतरंग की प्रेरणा के वश होकर भाई-बन्धु, पोथी-पत्रा आदि को छोड़ दिया और अरुणाचल की राह ली, जहां उन्हे निगूढ़ आध्यात्मिक संसिद्धि प्राप्त हो गयी। बिदा होते समय वे एक छोटा पत्र लिख कर घर पर छोड़ चले। यह पत्र अब भी आश्रम मे देखा जा सकता है। उसमें तामिल भाषा मे यों लिखा हुआ है:

'मै अपने पिता की खोज में, उन्हीं की आज्ञानुसार यहां से बिदा हुआ। यह अच्छे काम पर चल रहा है। अतः कोई इस मामले में शोक न करे। इसको खोज निकालने के लिए कुछ भी पैसे खर्च न किये जायँ।'

जेब में तीन ही रुपये थे। दुनिया की हवा तब तक उन्हे नहीं लगी थी। ऐसी दशा मे रमण दक्षिण देश मे सफर करने लगे। उस सफर मे ऐसी अनेक अजीब घटनायें घटी जिनसे यह साफ

जाहिर होता है कि कोई अजीब शक्ति उनको बड़ी सावधानी के साथ आगे लिये जा रही थी। आखिर जब वे गन्तव्य स्थान पर पहुचे, अपरिचितो के वीच मे वे एकदम असहाय और आश्रय-रहित थे।

लेकिन उनके मन मे सर्व-संग-परित्याग और सन्यास के भाव जागरूक हो गये थे। उनमे उस वक्त दुनियाबी माया ममता के प्रति इतनी घोर घृणा हो गई थी कि उन्होने अपने कपड़े लत्ते फेक दिये। नंगे धड़गे मन्दिर मे ध्यान मे निमग्न हो बैठ गये। एक पुजारी ने इनका यह भेस देख कर आपत्ति उठाई, किंतु यह किसी काम की नही हुई। इतने मे और भी पुजारी वहां इकट्ठे हो गये और सभी ने घोर विरोध किया तो रमण कोपीन भर पहनने को राजी हो गये। आज भी उनका यही पहनावा है।

वे मन्दिर मे छः महीने तक जगह बदल बदल कर निवास करते रहे। एक पुजारी, जो एक बार उनके चाल चलन के निरालेपन पर मुग्ध हुआ था, दिन मे एक बार उनको भात खिला देता था। सारे दिन रमण समाधि और ध्यान मे इतना अधिक विलीन रहते थे कि उन्हे सारी दुनिया भूल जाती थी। एक बार कुछ मुसलमान लड़को ने उन पर मिट्टी के ढेले फेके और भाग खड़े हुए। किंतु कुछ घण्टे बाद महर्षि को इस बात की सुध ही नही रही। बाद मे भी उन बालको पर उन्हे किसी प्रकार का गुस्सा नही आया।

मन्दिर मे दर्शन के लिए प्राय लोगो का बड़ा जमघट लगा रहता था जिसके कारण रमण को काफी तनहाई प्राप्त नही हुई। अत. उन्होने मन्दिर छोड़ दिया और गांव से कुछ दूर पर स्थित एक छोटे मंदिर मे रहने लगे। वहां लोगो की उतनी भीड़ नहीं रहती थी। रमण वहां करीब डेढ़ साल तक रहे। मन्दिर मे दर्शन

के लिए जो थोड़े लोग आया करते थे वे रमण को कुछ न कुछ खिलाया करते थे। उसी से वे प्रसन्न रहते थे। उन दिनो वे मौनी थे। उस जिले में पहुंचने के तीन साल तक वे किसी से एक शब्द तक नही बोले। इसका कारण यह नहीं था कि उन्होने किसी मौनव्रत की दीक्षा ली हो। उनकी अंतरात्मा उन्हे उकसा रही थी कि वे अपना सारा ध्यान, अपनी सारी शक्ति, आध्यात्मिक जीवन के साधने मे लगा दे। जब वे अपने ध्येय को प्राप्त हो गये, अंतरात्मा के इस निषेध की कोई जरूरत नहीं रही। तब वे फिर बोलने लगे। किंतु वे बहुत ही मितभाषी रहे।

कोई उनका पता नही जानता था किंतु घटनाचक्र के अनुसार उनकी माँ को उनके घर से निकलने के दो वर्ष बाद उनका पता लग गया। वे अपने बड़े पुत्र को साथ लेकर अरुणाचल पहुंच गईं और रो कर उन्हों ने रमण से घर लौटने की प्रार्थना की। किन्तु लड़का टस से मस न हुआ। आंसू व्यर्थ ही बहा कर वह उन्हे उनके उदासीन भाव के लिए कोसने लगी। अंत मे माँ के रोने विलपने के जवाब मे रमण ने एक छोटे पुरजे पर लिख दिया कि एक महान शक्ति मानव के कर्मों का नियमन करती है और जो कुछ उसकी करनी है वह किसी के मिटाये नही मिटेगी। उन्होने माँ को दिलासा देते हुए लिख कर बताया कि वे संभल जावे और रोने कलपने से बाज आवें। अतः रमण की जिद के सामने उस बेचारी को हार माननी पड़ी।

इस घटना के बाद कुछ दर्शनेच्छुक लोग इस हठी बालयोगी के एकांत मे दखल देने लगे। उन्होंने वह जगह छोड़ कर ज्योतिस्वरूप अरुणाद्रि को अपना आवास बना लिया। तब से वे वहीं रहते है। इस गिरिराज पर कुछ गुफाएं हैं। हर एक में कोई न कोई योगी महात्मा निवास करते हैं। किंतु जिसमे बालयोगी

रमण रहते थे उसकी एक विशेषता यह थी कि उसमे किसी प्राचीन योगिराज की समाधि थी।

प्राय: धार्मिक हिन्दू शवो का दाह संस्कार करते है। किंतु संसिद्धि को प्राप्त योगिवरो के शरीर के लिए दाह संस्कार मना है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि योगिवरो के शरीर मे कोई प्राणशक्ति या कोई अज्ञात जीवन प्रवाह का अस्तित्व होता है जिससे उनके शरीर हजारो वर्ष तक मिट्टी मे नही मिलते।

ऐसे समय योगियो के शरीर को स्नान कराते हैं और कई द्रव्यो से उसका अभिषेक करते है। उनके शरीर को वे इस प्रकार बांधते है मानो योगी पालथी मार कर ध्यानारूढ़ हो गये हो। तब उस शव को समाधि मे उतारते है। समाधि का ऊपरी भाग एक बड़े पत्थर से ढक दिया जाता है। बाद मे चूने और गारे से उसे बंद कर देते है। उसका नाम समाधि पड़ जाता है। वह बहुत पवित्र समझी जाती है। लोग उसकी पूजा-पुरस्कार करने मे अपना अहोभाग्य समझते है। योगिवरो को समाधिस्थ करने का और भी एक कारण है। यह विश्वास है कि योगियो के शरीर को अग्नि मे जला कर पवित्र करने की कोई आवश्यकता नही है क्योकि उनके जीवन काल मे उनकी साधना के प्रकारो से वह पवित्र किया हुआ रहता है।

यह सोचने की बात है कि योगी और महात्मा लोग पर्वत कंदराओ को ही अपने आवास के लिए पसन्द क्यो करते है। अगले जमानो के लोग कंदराओ को देवताओ के निवास के कारण पवित्रीकृत समझते थे। जरतुस्तू (पारसी धर्म के स्थापनाचार्य) ने गुफा ही मे ध्यान समाधि साधी थी। मोहम्मद को गुफा मे ही धार्मिक अनुभूतियाँ प्राप्त हुई। जब अनुकूल आवास प्राप्त नही होते, तब भारत के योगी लोग और स्थानों की

अपेक्षा गुफाओं को अधिक पसंद करते है, क्योंकि उन मे हवा के हेर फेर का कोई असर नहीं पड़ता है। वहां की रोशनी धुंधली रहती है और ध्यान में बाधा डालने वाली कोई आवाज़ या शोर गुल वहां बिलकुल ही नही रहता। गुफाओ के सीमांतरित वायु भक्षण से भूख भी बहुत हद तक मर जाती है जिस से योगियो को जीवन यात्रा के लिए बहुत कम चीजो की आवश्यकता रहती है।

रमण को इस गुफा ने आकृष्ट कर लिया। इसको एक वजह यह भी हो सकती है कि अरुणाचल पर इसी गुफा के सामने एक अद्भुत दृश्य फैला हुआ है। गुफा के एक ओर उभड़ी हुई एक चट्टान पर खड़े होने से दूर के मैदान में शहर और उसके बीच मे आसमान की ओर उभड़ने वाला मंदिर का कलश दिखाई देगा। इस से भी दूर पर एक पर्वत पंक्ति दूर तक फैली हुई है। वहां की प्रकृति की रमणीयता आखो को शीतल कर देती है।

जो हो, इसी धुंधली गुफा में रमण ने ध्यान और समाधि में कई साल बिताये। योगी शब्द के सांप्रदायिक अर्थ के अनुसार वे योगी न थे। उन्होने न किसी योगशास्त्र का अध्ययन किया है और न किसी योगिराज का शिष्य होकर योग का अभ्यास किया। उन्होने जो मार्ग अपने लिए चुन लिया वह आत्मज्ञान की ओर ले जाने वाला था। उनकी आंतरिक प्रेरणा ने ही उनके लिए वह मार्ग खोल दिया था।

सन् १९०५ में तिरुवण्णामल मे प्लेग जोरो से फैल गया। अरुणाचलेश के दर्शनेच्छुक किसी भक्त के कारण वह बीमारी शहर मे फैली। इसका इतना भयंकर प्रकोप था कि शहर के प्रत्येक व्यक्ति ने अपनी जान की रक्षा के लिए शहर छोड़ निरु-

पद्रव स्थानो का आश्रय लिया। सारा कस्वा उजाड़ हो गया। सब जगह इतनी सुनसानी छा गई कि बाघ, चीते आदि अपनी जंगली गुफाओ को छोड़ कर शहर की आम सड़को पर दिन को ही घूमने लगे। जहाँ महर्षि रहा करते थे वह गुफा उनके पहाड़ी वासस्थान और शहर के बीच मे थी। कई बार बनैले जानवर उनकी खोह के इर्दगिर्द घूमा करते थे। तो भी उन्होंने अपनी गुफा नही छोड़ी और सदा के जैसे शांत और अविचल बने रहे।

तब अनायास ही उन को एक अकेला चेला मिल गया। उनकी महर्षि पर ऐसी दृढ़ भक्ति थी कि वे हमेशा उन के साथ रहा करते थे और उनकी छोटी-मोटी जरूरतो की पूर्ति करते थे। वे अब नही रहे है किंतु दूसरे चेलो से उन्होंने बताया था कि हर रात एक बड़ा शेर गुफा पर आया करता था और महर्षि के हाथ चाटा करता था। रमण भी उसका प्यार किया करते थे और रात बीतने पर शेर जंगल मे चला जाता था। सारे हिन्दुस्तान के लोगो का यह पूरा विश्वास है कि जिन्होने सिद्धि प्राप्त कर ली हो ऐसे योगियो और फकीरो का घोर जंगलो मे, बड़े बड़े पहाड़ो पर, शेर, बाघ, सांप, आदि खौफनाक जानवरों के बीच मे रहने पर भी बाल भी बाँका नही होता। रमण के बारे मे यह भी एक कहानी प्रचलित है कि वे एक समय अपनी गुफा के दरवाज़े पर बैठे हुए थे। दोपहर का समय था। एक बड़ा भारी नागराज फुफकार मारते हुए पत्थरो के बीच मे से निकल आया और उन के सामने आकर खड़ा हो गया। वह अपना फन फैला कर आगे पीछे झूमने लगा किंतु महर्षि ने वहां से हिलने का नाम भी नही लिया। दोनो—मानव और जानवर—कुछ मिनट तक एक दूसरे की ओर टकटकी लगाए देखते रहे। उनकी आँखें मिल गईं थी। अंत को साँप धीरे धीरे खिसक गया।

और यद्यपि वह काफी नजदीक रहने के कारण उनको आहत कर सकता था वह चुपचाप चला गया।

इस अद्भुत बालक के अति पवित्र एकांतवास के प्रथम खंड के पूरे होने तक वह अपनी आत्मा की गूढ़तम गंभीरता मे स्थिर रूप से अवस्थित हो गया। अब एकांतवास की उतनी आवश्यकता नही थी। तो भी वे इसी गुफा में ही रहने लगे। एक दिन उनके दर्शन करने के लिए एक मशहूर पंडित, गणपति शास्त्री जी आये। उनके आगमन से रमण के बाह्य जीवन मे एक नया अध्याय शुरू हो गया। अब रमण लोगो से कुछ कुछ मिल जुल कर रहने लगे। पंडित गणपति शास्त्री जी मंदिर मे रह कर अध्ययन और ध्यान करने के लिए अरुणाचल आये थे। उनको मालूम हुआ कि गिरि पर एक बाल योगी तप कर रहे है। अपने दिल की उत्सुकता की पूर्ति करने के लिए गणपति जी रमण के दर्शन करने गये। जिस समय गणपति जी उनसे मिले रमण सूर्य की ओर स्थिर दृष्टि से देख रहे थे। चौंधियाने वाले सूर्य की प्रखर ज्योति की ओर घंटो स्थिर दृष्टि से ताकते रहना उस बाल योगी के लिए कोई असाधारण बात नही थी। इस का महत्त्व वे ही समझ सकते है जो हिन्दुस्तान की कड़ाके दार धूप मे गरमी के मारे झुलस कर तंग आ गये हो।

गणपति जी करीब बारह वर्ष तक हिन्दुओ के सारे धर्म शास्त्र अध्ययन करते रहे। कुछ निश्चित संसिद्धि प्राप्त करने के लिए उन्होने कठोर तपस्याये भी की थीं। किंतु इससे उनके संशय छिन्न नहीं हुए। उनका दिमाग बिना सुलझी पहेलियो का अड्डा बन गया था। उन्होंने रमण से एक प्रश्न किया और पन्द्रह मिनट के बाद जो उत्तर सुना तो वे बाल योगी की विज्ञान संपदा से दंग रह गये। गणपति जी ने फिर अपने संशयों के बारे मे कई

प्रश्न किये और बाल योगी की प्रखर बुद्धि के सामने वर्षो की शंकाओ को झटपट सुलझते देख उनके आश्चर्य की कोई सीमा नही रही। बाल योगी के प्रति उनके हृदय मे इतनी श्रद्धा पैदा हो गई कि शिष्य बन कर उनके चरणो मे दण्डवत की। वेल्लूर मे उनके शिष्यो का समुदाय था। गणपति शास्त्री ने घर लौटने पर उनको बता दिया कि एक महर्षि का उन्होने दर्शन किया है। बाल योगी रमण के उपदेश इतने मौलिक और आध्यात्मिकता मे पगे हुए मालूम पड़े कि पडित जी को उनकी सानी किसी भी ग्रंथ मे नही मिली। उस समय से पढ़े हुए लोग रमण को महर्षि कह कर पुकारने लगे। लेकिन आम लोगो ने उनके चरित्र को जान कर उन्हे एक दैवी पुरुष मान कर उनकी पूजा करनी चाही। महर्षि ने ऐसी पूजा आदि की सख्त मनाही कर दी। तब भी आपस मे उनके भक्त उन्हे भगवान कह कर पुकारते है। मेरे साथ बातचीत करते हुए कई लोगो ने उन्हे भगवान कह कर पुकारा है और ऐसे ही पुकारने पर जोर भी दिया है।

समय पाकर कुछ शिष्य महर्षि के पास इकट्ठे हो गये। उन्होंने पहाड़ की तलहटी पर महर्षि के लिए एक छोटा बंगला खड़ा कर दिया और किसी प्रकार महर्षि उसमे उनके साथ रहने के लिए राजी हो गये। कई बार उनकी माता जी उन्हे देखने के लिये आयी और अपने पुत्र के रंग ढंग से कुछ दिन बाद वे संतुष्ट हो गई। अपने ज्येष्ठ पुत्र और अन्य निकट बन्धुओ के स्वर्ग सिधार जाने के बाद वे महर्षि के पास चली आयी और साथ रहने की आज्ञा मॉगी। जब रमण ने हामी भर ली तो वे वही छः वर्ष तक रही। अन्त को वे अपने पुत्र की श्रद्धालु चेली बन गयी। बनाश्रम मे उनकी जो पहुनाई होती थी उसके बदले मे उन्होने रसोई तय्यार करने का काम अपने जिम्मे ले लिया।

जब वे इस दुनिया से कूच कर गयीं उनके शरीर के भौतिक चिह्न पहाड़ के तले भूमिस्थ कर दिये गये। महर्षि के भक्तों ने उस जगह पर एक छोटा सा मन्दिर खड़ा कर दिया। यहाँ उस माता की, जिसने मानव समाज को महर्षि जैसा सिद्ध प्रदान किया, यादगार मे रात दिन प्रदीप जलते रहते है। भीनी भीनी महक वाली चमेली और बेले उनकी पवित्र स्मृति मे उस समाधि पर चढ़ाये जाते है। क्रमशः महर्षि की ख्याति चारो ओर फैल गई और मन्दिर के दर्शन के लिए आने वाले यात्री घर लौटने से पहले उनका दर्शन अवश्य करने लगे। उनके लिए पहाड़ी की तलहटी में एक विशाल दालान खड़ा किया गया और बार बार प्रार्थना करने पर महर्षि ने उसमे रहना स्वीकार कर लिया।

महर्षि अन्न के अतिरिक्त और किसी भी चीज के लिए याचना नही करते। धन के स्पर्श से वे सदा बचे रहते हैं। आज उनके यहाँ जो कुछ संपत्ति नजर आती है वह उनकी याचना से प्राप्त नही हुई है। भक्तो ने अपने आप ही उन चीजो से आश्रम को भरापुरा कर दिया है। शुरू शुरू मे जब वे एकांत मे रहते थे और अपनी आध्यात्मिक शक्तियो को प्राप्त करने की साधना मे उन्होने अपने को अविचल मौन से ढाँक लिया था, भूख लगने पर हाथ मे भिक्षा पात्र लेकर भीख माँगने के लिए शहर मे जाते कुछ भी संकोच नही करते थे। उन दिनो किसी बूढ़ी ने उनको देख कर तरस खाया और वह उन्हे प्रति दिन खिलाने लगी। घर छोड़ते समय वे इस फेर मे नहीं पड़े कि खान पान कैसे मिले। ईश्वर पर उन्होने भरोसा किया और उनका यह विश्वास रीता नहीं गया। तब से कई चीजें उनकी भेंट मे चढ़ाई गईं किन्तु सदा वे उनसे विमुख ही रहे। एक बार बड़ी रात बीते कुछ डकैत चोरी करने के वास्ते दालान मे घुसे। माल-मता के लिए बहुत कुछ

खोज की किंतु भंडार के आदमी के पास से केवल बहुत कम रुपये हाथ लगे। इससे चोर बेहद चिढ़ गये और महर्षि पर लाठियों की बौछार करने लगे।

महर्षि ने सब कुछ बड़ी शांति और प्रसन्नता से सह लिया। उन्होने चोरो से कहा कि 'तुम लोगो को जरूर आतिथ्य ग्रहण कर आश्रम से विदा होनी चाहिये।' उनके हृदय मे चोरो के प्रति कुछ भी घृणा न थी। उनके मोह और अविवेक पर महर्षि के दिल मे केवल अनुकम्पा मात्र पैदा हुई। उन्होने चोरो को यो ही जाने दिया किन्तु एक साल के भीतर ही भीतर वे सब के सब एक दूसरी चोरी के मामले मे पकड़े गये और उन्हे कड़ी सजा भुगतनी पड़ी।

अधिकांश पाश्चात्यो की दृष्टि मे महर्षि का जीवन व्यर्थ जंचेगा। लेकिन शायद हमारे लिए यही बेहतर है कि कोई न कोई कभी न थमने वाले दुनियावी जंजाल और माया ममता से शून्य ऋषि प्रवर हमारे बदले मे हमारे लिए उदासीन दृष्टि से जीवन की परख करते रहे। ऐसे प्रेक्षक को हम से अधिक देखने का मौका मिलेगा। अतः हो सकता है कि उन्हे साम्यदृष्टि भी प्राप्त हो जाय। यह भी सच है कि दुनिया की हर हवा के साथ रंग बदलने वाले हम लोगो की अपेक्षा, जिसने आत्म विजय प्राप्त की हो वह वनवासी किसी प्रकार से कम नही है।

× × ×

प्रति दिन इस महात्मा के बड़प्पन की अधिक सूचनाएं मिलती जाती है। कई जातियों के, कई विचारो के लोग इस वनाश्रम के दर्शन करने आते है। उन मे एक दिन एक अछूत भी

आया था। वह किसी यंत्रणा के वेग मे चिल्ला रहा था। महर्षि ने कुछ भी नहीं कहा, क्योंकि उनका मौन धारण करना स्वाभाविक था। दिन में वे कितने शब्द बोलते हैं, कोई भी सहज ही गिन सकता है। वे उस पीड़ित व्यक्ति की ओर चुपचाप ताकते रहे। थोड़ी देर मे उसका चिल्लाना थम गया और दो ही घण्टे बाद वह प्रशांत मूर्ति धारण किये दालान से निकला।

मुझ पर दिन प्रति दिन यह प्रकट होने लगा है कि महर्षि इसी प्रकार दूसरो की मदद किया करते हैं। अज्ञेय, अस्पष्ट लहरियाँ उनसे ऊपर उठती है और पीड़ित व्यक्ति के व्यथित हृदय को प्लावित करके शांति पहुँचाती है। हमारे इन मूक दिमागी वेदना प्रतिवेदनाओं के आदान प्रदानों के रहस्य का उन्मीलन शायद वैज्ञानिकों की खोज ही से होगा।

एक दिन कालेज की शिक्षा पाये हुए एक ब्राह्मण कुछ शंकाओं का समाधान करने के लिए उनके यहाँ आये। यह कोई नहीं कह सकता कि महर्षि कब, किससे और क्या बोलेंगे। प्राय: बिना ओठ हिलाये ही वे अपने विचारो को साफ ही ज़ाहिर कर सकते हैं। लेकिन आज वे वार्त्तालाप करने के सुमुख थे। अत. उन्होंने स्वल्प किन्तु अर्थगर्भित बातों से उस आगंतुक के प्रश्नो के समा० धान बताये। आगन्तुक की शंकाएं छिन्नभिन्न हो गयीं और उन्हे उन बातों से सोच विचार करने का काफ़ी मसाला मिल गया। एक दिन दालान मे महर्षि के चेले कुछ अन्य सज्जनो के साथ एकत्रित थे। उस समय किसी ने यह खबर दी कि शहर का सब से मशहूर गुंडा संसार से उठ गया। तुरंत वहाँ के लोगो मे उसके बारे मे बातचीत होने लगी। मानव स्वभाव के अनुसार कुछ लोग उसके कुछ भयानक जुल्मो का जिक्र करने लगे। जब

लोगो का आवेश कुछ थम चला तो महर्षि मुंह खोल कर धीरे धीरे बोले :

"हॉ, जो तुम लोग कहते हो सो तो ठीक है, किंतु वह बहुत ही साफ रहा करता था। हर रोज दो-तीन बार नहाने की उसे आदत पड़ गयी थी।"

महर्षि के पॉव छू कर उनके दर्शन से पवित्र होने के लिए १०० मील का फासला तय करके एक किसान अपने कुटुंब के साथ आया था। वह निरा अपढ था। वह अपने धन्धे के काम, पैतृक आचार-विचार आदि से वाकिफ था। वह पुराने रस्म-रिवाजो और मूढ़ विश्वासो की लीक पर चलने वाला था। उसने किसी से सुना था कि अरुणागिरि पर कोई महात्मा, कोई दैवी पुरुप निवास कर रहे है। तीन बार महर्षि के सामने साष्टांग दण्डवत करके वह चुपचाप फर्श पर बैठ गया। उसका पूरा विश्वास था कि उनके दर्शन से किसी प्रकार का आशीर्वाद और सौभाग्य प्राप्त होगा। उसकी पत्नी धीरे धीरे चल कर पति की बगल मे फर्श पर बैठ गयी। वह लाल साड़ी पहने थी। उसके चिकने बाल सुवासित तेल से और भी चिकने मालूम हो रहे थे। उसके पीछे पीछे उसकी छोटी बिटिया भी चली। उसके चलते समय पॉवो की घुंघरू बज उठती थी। उसने अपने कान मे एक सुन्दर फूल खोसा था।

इस किसान का यह स्वल्प परिवार महर्षि के सामने यो ही भक्ति विभोर हो खड़ा रहा। उनके मुंह से एक भी शब्द नहीं निकला। यह स्पष्ट था कि महर्षि के दर्शन से उनको आध्यात्मिक खुराक मिलती थी। महर्षि समदर्शी है। उनकी दृष्टि मे सभी धर्म समान है। सभी एक ही सच्ची अखंड अनुभूति के व्यक्त चिह्न है, सच्चे प्रकाश है। महर्षि की दृष्टि मे कृष्ण और ईसा दोनो समान है।

एक ७५ बरस के बूढ़े व्यक्ति मेरी बायीं ओर बैठे थे। उनके मुँह में पान का बीड़ा था और हाथ में संस्कृत की एक पुस्तक थी। वे ध्यानपूर्वक अपनी मोटी पलकों वाली आंखें किताब की मोटी छपाई पर लगाये थे। वे जाति के ब्राह्मण थे। वे मद्रास के पास ही किसी स्टेशन पर कई साल तक स्टेशन मास्टर की पदवी पर रहे थे। रेलवे की नौकरी से साठ वर्ष की उम्र में उन्होंने छुट्टी ले ली। चन्द रोज बाद उनकी पत्नी की मृत्यु हुई। उनको अपनी चिर संचित अभिलाषाओं को पूरा कर लेने का अब मौका मिला। १५ वर्ष तक वे तीर्थ यात्रा करते रहे। कई साधु महात्माओं का दर्शन किया और इस खोज में थे कि व्यक्तित्व और उपदेशों के विचार से कौन उनका गुरू बन सकता है। तीन बार उन्होंने सारे भारत का भ्रमण किया किंतु कोई ऐसे गुरु उन्हें नहीं मिले जिनका आदर्श बहुत ही ऊंचा हो। जब हम दोनों ने आपस में अपनी अनुभूतियों की तुलना की तो उन्होंने अपनी असफलता पर आंसू बहाये। उनके चेहरे से ईमानदारी टपकती थी। ललाट पर झुर्रियां पड़ी हुई थीं और उनका मुँह मेरी दृष्टि को आकृष्ट कर रहा था। वे खूब पढ़े लिखे थे। उनकी बुद्धि भारी तेज थी। वे सीधे सादे थे और सहज प्रतिभा से सम्पन्न भी थे। मैं उनसे छोटा था। तो भी मैंने अपना यह फर्ज समझा कि इस बूढ़े को कुछ अच्छी सलाह दूं। उनकी बातों ने मुझे दिल से [illegible] लिया। उन्होंने मुझसे प्रार्थना की कि मैं उनका गुरु बनूं। मैंने उनसे कहा कि आपके गुरु निकट ही हैं। तो फिर मैं उन्हें महर्षि की सन्निधि में ले चला। मेरी बात को मानते उन्हें देर नहीं लगी। अतः वे महर्षि के एक श्रद्धालु भक्त बने।

[illegible] के और एक सज्जन बैठे थे। वे चश्मा लगाये हुए थे।

रेशमी कपड़ो और अपनी रहन सहन से धनी और सम्पन्न भी मालूम होते थे। वे एक जज थे। उन्हे छुट्टी मिली तो महर्षि के दर्शनो के लिए आये। वे एक कुशल शिष्य थे। महर्षि के प्रति उनकी गहरी श्रद्धा थी। साल मे कम से कम एक बार महर्षि के दर्शन करने से वे चूकते नही थे। वे वड़े सभ्य और अच्छे पढ़े लिखे थे। तो भी उस दालान मे उन गरीब तामिल लोगो मे, जिन्हे अपना तन ढंकने भर को कपड़ा भी मयस्सर नही था, वे विना किसी प्रकार के संकोच के वैठे थे। इन सब को इस प्रकार एक भाव के सूत्र मे वांधने वाली, उनके आपस की जति-पांति के झूठे घमण्ड की दुर्भेद्य दीवारो को ढहाने वाली, उनमे एकता का मधुर भाव पैदा करने वाली वात वही थी जिससे प्रेरित होकर पुराने जमाने मे राजे महाराजे बड़ी दूर से ऋषियो की सलाह लेने के लिए जाया करते थे। वात तो यही थी कि उन्हे यह विश्वास दृढ़ हो गया था कि सच्चे ज्ञान की वलिवेदी पर भेद-भावो को न्योछावर करना वहुत ही उचित है।

एक युवती ने दालान में प्रवेश किया। उसकी गोद मे एक उज्ज्वल शिशु था। उसने वड़ी श्रद्धा के साथ महर्षि को दंडवत की। उस समय जीवन के कुछ गंभीर पहलुओ पर विचार हो रहा था। अतः वह चुपचाप बैठ गयी। वास्तव मे उस वादविवाद मे वह क्या भाग ले सकती थी। हिन्दू औरतो के लिए विद्या एक भूषण नहीं समझा जाता। उन्हे घर के काम काज और रसोई वनाने को छोड़ कर और किसी भी वात की जानकारी नही रहती। तो भी उनको इस वात का अचूक ज्ञान हो जाता है कि वे कव महात्माओं की सन्निधि मे है और कब नही।

संध्याकालीन सूर्य की छाया चारो ओर फैलने लगी। गोधूलि का समय था। दालान मे सामान्यतः यही ध्यान का समय है।

प्रायः इस समय की सूचना महर्पि के चेहरे से ही मिल जाती है। बहुधा संध्या काल के होते होते किसी को पता तक नही चलता कि कब महर्पि समाधि में डूब जाते है और कब बाह्य जगत से अपनी सारी इन्द्रियो को खीच कर अंतर्मुख बना लेते हैं। महर्पि की सन्निधि मे एक अजीब शक्ति का प्रसार होता रहता है। उस शक्ति के प्रसार की परिधि में रह कर मै यह सीख गया कि ध्यान करते करते प्रति दिन अपने विचारो को कैसे और अधिक अंतर्मुख बनाया जाय। यह असंभव ही है कि उनसे संसर्ग रखने पर अंतरंग आलोक से भर न जाय; उनके आध्यात्मिक ज्योतिश्चक्र की एक कौधने वाली किरण से मानसिक जगत चमक न उठे। इस बात का मुझे बार बार अनुभव हो रहा था कि उन प्रशांत घड़ियो मे महर्षि अपनी ओर मेरे मन को खीचे लिये जा रहे है। ऐसे मौको पर ही यह साफ जाहिर हो जाता है कि क्योकर इन महात्मा का मौन इनकी उक्तियो से अधिक महत्त्व रखता है। उनके ऊपरी अनुद्विग्न शांति के आवरण के तले एक प्रबल और शक्तिमान संसिद्धि छिपी है। बिना किसी प्रकार के वचन या गोचर बाह्य क्रियाओं के माध्यम के ही वह शक्ति दूसरे आदमियो पर गहरा असर डाल सकती है। मेरे जीवन मे कभी कभी ऐसा भासित हुआ करता था कि इन महात्मा मे ऐसी प्रबल शक्ति है कि यदि वे कह दे तो कैसी भी आज्ञा क्यो न हो मै जरूर उसका पालन करूंगा ही। किंतु महर्पि अपने शिष्यो और अनुयायियो को गुलामी और अविचारित विधेयता की बेड़ियो मे नहीं जकड़ते है। इस बात मे वे भारत के अन्य योगियो मे कितनो ही से एकदम न्यारे है। मै अपनी पहली मुलाकात मे बताई हुई राह के अनुसार ध्यान करने लगा। उस समय महर्पि के सब उत्तर अस्पष्ट

और रहस्यमय मालूम पड़े थे। मै इस समय अपने अंतरंग की परीक्षा करने लगा था कि 'मै' कौन हूँ? क्या मै शरीर हूँ, मांस, रक्त और अस्थि का केवल एक पिंड हूँ? या 'मै' और व्यक्तियो से मुझे भिन्न और अलग करने वाले अपने मन, विचार और वेदनाओं का समूह हूँ। अब तक मै इन सबसे अपने को अभिन्न मानते आया था। किंतु महर्षि ने मुझे सचेत कर दिया कि मै इसे मानी हुई बात न समझूं किंतु इसकी भी जांच कर लूं। तो भी जांच करने का उन्होंने कोई व्यवस्थित तरीका नहीं बताया। उनके उपदेश का यही सार था :

मै कौन हूँ वाली जिज्ञासा को कभी मत छोड़ो। सदा उसे जारी रक्खो। अपने पूरे व्यक्तित्व का विश्लेषण कर लो। यत्न करके देख लो कि अहंता के इस बोध की उत्पत्ति कहां होती है। अपने ध्यान मे लगे रहो। अपनी दृष्टि को अंतरंग की ओर फेरने की कोशिश करो। एक न एक दिन विचार का चक्र धीरे धीरे फिरना छोड़ कर रुकने पर मजबूर होगा। तब तुम्हारे भीतर एक विचित्र प्रकार का स्फुरण पैदा होगा। उसी ज्ञान स्फूर्ति के पीछे चलो। अपने विचारो को रुकने दो। अंत को तुम अपने ध्येय पर पहुँच जाओगे।

मै प्रतिदिन अपने विचारो के साथ इस तुमुल युद्ध मे लगा रहता था। धीरे धीरे मुझे अपने अंतरंग के अंतरतम तल की पहचान होने लगी। महर्षि के प्रोत्साहन देने वाले नैकट्य मे ध्यान करना और आत्म जिज्ञासा को जारी रखना अत्यन्त सुलभ और फलदायक सिद्ध होता था। यह आशा और दृढ़ विश्वास कि महर्षि मेरे रहनुमा है अपनी खोज मे बार बार लग जाने की प्रेरणा देता था। महर्षि की अप्रत्यक्ष शक्ति मेरे मन के ऊपर गहरा असर करती थी। ऐसे मौको का मुझे स्पष्ट ही ज्ञान है।

फलतः अपने अंतरंग के निगूढ़ और रहस्यमय अंतरतम तल के अन्वेषण में मै और भी गहराई तक पहुँच सका।

शाम के बाद ध्यान समाप्त होने पर दालान खाली हो जाता है। सब लोग व्यालू के लिए बगल की भोजनशाला मे पहुंच जाते थे। मुझे उन लोगो के भोजन की कोई आवश्यकता नही थी और अपने लिए भोजन तय्यार करने का भार मै खुद नही उठाता था। अतः मै दालान में अकेले रह कर उन लोगों की इंतजारी मे रहता था। तो भी मुझे आश्रम के दही का चस्का लग गया था। मुझे वह बहुत ही पसन्द आता था। महर्षि को इस बात का पता था। अतः वे रसोइये से कहते कि हर रात को मेरे लिए दही पहुँचाया जाय।

उन लोगों के आने के आध घण्टे के बाद आश्रमवासी और अन्य आगंतुक दालान के फर्श पर बिछौने डाल कर आराम करने लगते। महर्षि अपनी चौकी पर लेट जाते थे। उनके सोने के पहले उनके परिचारक भक्त उनके पांवो पर तेल लगा कर खूब मालिश करते थे।

मै एक लालटेन लेकर अपनी कुटिया की ओर अकेले चल देता था। बाग के पेड़ों और फूल पत्तो के बीच मे असंख्य जुगुनुओं की चमक आँखो को प्यारी लगती थी। एक बार तीन घण्टे देर करके मै उस राह से जा रहा था। तब भी आधी रात के समय कीड़े जगह जगह चमक रहे थे। उस मार्ग से बिच्छुओं और सांपो के रहने की संभावना थी। अतः बच कर चलना पड़ता था। कभी कभी मेरे मन पर ध्यान का खूब कब्जा रहता था और मै उस के मार्ग को रोकना नहीं चाहता था। ऐसे समय उस तंग पगडंडी और लालटेन की धीमी रोशनी का मुझे कुछ भी ख्याल नहीं रहता था। मै इस ढंग से अपनी साधारण कुटी में

पहुँच जाता और दरवाजा मजबूती से बंद कर लेता। खिड़कियो पर परदे तान देता ताकि बनैले जानवर रात को मेरे आतिथ्य के लिए भूल कर भीतर न आवे। बिस्तर पर लेटे लेटे सामने के ताड़ के पेड़ो पर मेरी आँखें पड़ जाती थी जो झाड़ी के एक ओर खडे थे। चांदनी की रुपहली आभा की लहरे उन वृक्षो के पत्तो से होकर चारो ओर फैलने लगती थी और सारा दृश्य एक उज्ज्वल रजत प्रकाश मे विलीन हो जाता था।

योगी रामय्या

१७

कुछ संस्मरण

शाम का समय था। एक महाशय बड़े ठाट से दालान मे आते दिखाई दिये। वे महर्षि की चौकी के बहुत ही समीप आकर बैठ गये। उनका रंग एकदम काला था, तो भी उनका चेहरा बहुत ही तेजस्वी मालूम होता था। उन्होंने बोलने की कोई चेष्टा नही की पर महर्षि ने सुंदर मुसकान से उनकी तुरन्त अगवानी की।

उन आगन्तुक महाशय के चेहरे का मेरे ऊपर बड़ा ही असर पड़ा। वे मानों मूर्तिधारी बुद्धदेव थे। उनके मुखमंडल से शांति और प्रसन्नता की छवि छलकी पड़ती थी। जब हमारी निगाहे मिली वे मेरी ओर देर तक ताकते रहे, यहाँ तक कि मैंने अपनी दृष्टि विवश होकर उनसे फेर दी। शाम तक उनके मुँह से एक शब्द तक नही निकला।

दूसरे दिन बिना किसी प्रकार की आकांक्षा या आशा किये उनसे मेरी मुलाक़ात हुई। मेरा नौकर राजू कुछ समान लाने के लिए शहर गया था। मै भी दालान छोड़ कर चाय बनाने के लिए अपनी कुटिया पर पहुँच गया। कुटिया का दरवाज़ा खोल कर मै भीतर कदम रखने ही वाला था कि कोई जन्तु फर्श पर रेंगते हुए मेरे पॉवो से कुछ दूर पर ही रुकता हुआ दिखाई दिया। इसके रेंगने के ढंग और अव्यक्त फुफकार की आवाज़ ने मुझे होशियार कर दिया कि मेरे कमरे मे सॉप घुस गया है। मै उसकी ओर टकटकी लगा कर देख रहा था, पर मेरे अंदर घोर भय समा

गया। मेरी नसे एकदम तन गई। मेरे दिल मे जुगुप्सा ने घर कर लिया। मेरी नज़र उस ज़हरीले जन्तु के सुंदर फन पर गड़ी हुई थी। इस अचानक घटना से मै बिलकुल चकित सा हो गया। वह क्रूर सर्प अपना फन फैला कर खड़ा हो गया और मुझे अपनी कुत्सित दृष्टि से घूरने लगा।

जैसे तैसे होश मे आकर मै पीछे हट गया। डंडे से मै उसकी कमर तोड़ने ही वाला था कि कल के आगन्तुक महाशय कुटिया के वाहर की जगह मे चलते हुए दिखाई दिये। उनके गंभीर मुख, उनकी विचार और विमर्शमय प्रशांत दृष्टि की शीतल छाया मे मै कुछ शांत हो गया। वे मेरी कुटी पर पहुँचे। पल भर मे सारी वाते जान कर वे स्थिर भाव से कमरे मे प्रवेश करने लगे। ज़ोर से चिल्ला कर मैने उन्हे सचेत कर दिया किन्तु उन्होने इसकी कुछ भी परवाह नही की। यह दूसरा अवसर था जब कि उन्होने मुझे चकित कर दिया। वे निहत्थे थे और दोनो हाथ बढ़ाये सॉप की ओर चल रहे थे। कैसे अचरज की बात थी !

सॉप अपनी दोनो जीभे निकाल कर फुफकार मार रहा था, किंतु उन पर वह झपटना नही चाहता था। उसी समय मेरी पुकार सुन कर दो सज्जन तालाब की ओर से अपना नहाना छोड़ कर दौड़े आये। जब तक वे हमारे निकट पहुचे तब तक आगन्तुक महाशय सॉप के वहुत ही पास पहुँच गये थे। उनके सामने सॉप ने अपना सिर झुका लिया तो आगन्तुक महाशय धीरे धीरे उसकी पूँछ सुहलाने लगे।

उन दोनो के आते आते सांप ने अपना कुत्सित स्वभाव छोड़ दिया और उसका सुंदर परन्तु ज़हरीला शरीर वहुत ही शीघ्र टेढ़ी मेढ़ी चाल से मेरी कुटिया छोड़ जंगल की सुरक्षित झाड़ियो के तले छिप गया।
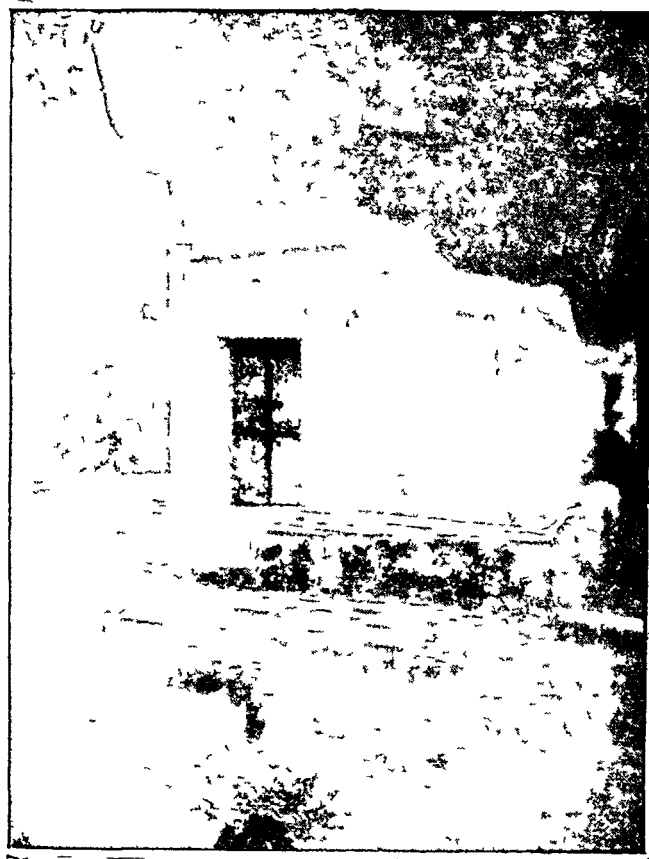
योगी रामय्या की एकान्त कुटी

पीछे आये हुए व्यक्तियों मे एक उसी शहर के एक प्रमुख व्यापारी थे। उन्होने कहा—"यह एक छोटी नागिन है।"

मैंने अचरज प्रकट किया कि क्योंकर पहले के आगन्तुक महोदय ने निर्भीकता से साँप की पूँछ सुहलायी थी। व्यापारी ने इसका मर्म समझाते हुए मुझे बताया—"ये योगी रामय्या हैं, महर्षि के प्रधानतम शिष्य। ये बहुत पहुँचे हुए है, इन योगी से कोई भी बातचीत नही कर सकता है क्योकि इन्होंने मौन व्रत धारण कर लिया है। ये तेलुगू (आँध्र) प्रान्त के है। अंग्रेज़ी ये बिलकुल नही समझते। ये प्रायः अपने को तनहा रखते है और आश्रम के और लोगों से नही मिलते। ये एक छोटी पथरीली कुटी में रहते हैं। यह कुटी पोखरे के एक किनारे बड़ी चट्टानो के तले खड़ी है। योगी रामय्या को महर्षि का शिष्य हुए दस साल हुए हैं।"

बहुत शीघ्र हम दोनो के बीच का भेद-भाव दूर हो गया। वे एक दिन पोखरे के पास पीतल का कमंडल ले पानी भरने आये। उनकी उस काली, रहस्य भरी किंतु प्रसन्न चितवन ने मेरे मन को बरबस खीच लिया। उस समय मेरी जेब में एक छोटा केमरा था। मैंने इशारा करके उन्हे जता दिया कि मैं उनका फोटो उतारना चाहता हूँ। उनकी ओर से कुछ भी उज्र नही था। फोटो उतारने के बाद वे मेरे साथ मेरी झोपड़ी तक चले भी। वहाँ हमें एक भूतपूर्व स्टेशन मास्टर मिले। वे मेरी ही कुटिया के बाहर मेरी इन्तज़ारी में आसन जमाये बैठे थे।

मुझे मालूम हुआ कि वे तेलुगू के समान अंग्रेज़ी के भी अच्छे ज्ञाता हैं। अतः योगी रामय्या और मेरे बीच में वे दुभाषिए का काम बखूबी कर सकते थे। रामय्या जी कुछ बोलते तो न थे किन्तु कागज़ पर लिख कर अपने विचार प्रकट

करने मे उन्हे कोई बाधा प्रतीत नहीं हुई। प्रायः योगी रामय्या न तो किसी से बात करते है न मिलना ही चाहते है, किंतु उनसे उनके बारे मे और कुछ बाते जान लेने में मुझे काफी कामयाबी हाथ लगी।

रामय्या जी अधेड़ उम्र के है। जिला नेल्लूर मे उनकी कुछ जमीदारी है। वाह्य रूप से उन्होने सन्यास ग्रहण नही किया है। अपने कुटुम्ब के लोगो पर जमीदारी की देख-भाल की सारी जिम्मेदारी उन्होने छोड़ दी है ताकि उन्हे योग साधन के लिए अधिक समय प्राप्त हो। नेल्लूर के इर्द गिर्द उनके कई चेले है, किंतु वे हर साल महर्षि का दर्शन कर लेते है और लगातार दो तीन महीने तक आश्रम ही मे रहते है।

बचपन से उन्होने सारे दक्षिण भारत का फेरा लगाया था और बड़ी धुन व लगन के साथ गुरू की खोज मे लग गये थे। अनेक आचार्यो की उन्होने चरण सेवा की है और कई प्रकार की विभूतियाँ प्राप्त कर ली है। प्राणायाम और ध्यान धारण तथा समाधि उनके लिए बाये हाथ का खेल है। जल्द ही इन बातो मे अपने गुरुओ से वे आगे बढ़ गये। उन्हे कुछ ऐसे अनुभव प्राप्त हुए जिनका मर्म उनके लिए दुरूह साबित हुआ। अतः अपनी शंकाओ के समाधान करने के लिए वे महर्षि के यहाँ आये और उनकी बातो से योगी रामय्या की सारी शंकाये दूर हो गयी। उन्हे अपने अनुभवो का सच्चा अर्थ मालूम हो गया और योग मार्ग मे महर्षि के वचनो से अधिक सहारा मिलने लगा।

योगी रामय्या ने मुझसे कहा कि दो महीने तक वहाँ ठहरने का उनका विचार था। अतएव वे अपने एक परिचारक को साथ लाये थे। उन्हे आनंद हुआ कि मै, पश्चिम का एक निवासी,

प्राच्य विज्ञान में अभिरुचि दिखा रहा था। मैंने उन्हें एक सचित्र अंग्रेजी पत्र दिखाया तो उन्होंने एक चित्र की अजीब समालोचना की।—"तुम लोग इंजनों के वेग को और बढ़ाने की सारी कोशिश छोड़ कर अपनी आत्मा की झाँकी लेने लगो तो तुम्हें सच्चा सुख मिलने की अधिक गुंजाइश होगी। क्या आप सोचते हैं कि प्रत्येक नई ईजाद के साथ आप लोगों को अधिक आनंद और तृप्ति प्राप्त होती है ?"

योगी रामय्या के चले जाने के पहले मैंने उनसे उस नागिन वाली घटना के बारे में प्रश्न किया। मुस्करा कर कागज़ पर उन्होंने लिख दिया :

"मुझे किसी चीज का क्या भय हो सकता है। सभी के प्रति गहरे प्रेम के साथ, बिना द्वेष रक्खे, मैं उस नागिन के पास पहुँचा।"

मैंने सोचा कि योगी के इस भावमय कथन के तले और अधिक तत्त्व छिपा हुआ है किंतु मैंने और कोई प्रश्न नही किया और रामय्या जी पोखरे के उस पार, अपनी एकान्त कुटी की ओर बढ़े।

इसके बाद कुछ सप्ताह के अंदर योगी जी के बारे में मुझे अधिक जानकारी प्राप्त हुई। मेरी झोपड़ी के बाहर खुली जगह में, या पोखरे के किनारे, अथवा उनके आवास के बाहर, कहीं न कही हम दोनों की भेंट प्रायः हो जाती। उनके दृष्टिकोण मे अपनी प्रवृत्ति के अनुकूल कुछ बातें मुझे दिखाई दीं। उनके बड़े, काले तथा प्रशांत नेत्रो मे कोई अनुपम मोहिनी शक्ति है। हम दोनो में एक विचित्र मूक मित्रता पैदा हो गई; यहाँ तक कि एक दिन उन्होंने मेरे मस्तक पर हाथ फेरते, मेरे दोनो हाथों को अपने हाथो में लेते हुए मुझे असीसा था। स्टेशन मास्टर

के दुभाषिये बनने के समय की थोड़ी बातचीत को छोड़ हम दोनो के बीच मे किसी प्रकार की बातचीत नही होती थी। तब भी हमारे आपस मे एक अटूट संबंध पैदा होते दिखाई दिया। कभी कभी मै उनके पीछे पीछे जंगल की सैर करने जाता। एक दो बार दोनो ने पहाड़ के बड़े बड़े टीलो पर चढ़ते हुए पहाड़ की पथरीली, खुरदुरी चोटी तक पहुँचने की कोशिश भी की थी। चाहे कही भी जॉय उनकी वह प्रशांत और गंभीर प्रकृति ज्यो की त्यो बनी रहती और मेरे मन को मोह लेती। इसके अनंतर बहुत दिन बीते नही होगे कि मुझे इन योगी की अद्भुत शक्ति का एक और अविस्मरणीय परिचय प्राप्त हुआ। मुझे एक पत्र मिला जिसमे भारी विषाद भरी एक बात का जिक्र था। उसका नतीजा यह होने वाला था कि मेरी आर्थिक दशा एकदम इतनी नाजुक और खराब हो जाती कि झख मार कर मुझे हिन्दुस्तान छोड़ना ही पड़ता। इसमे जरा भी शंका नही है कि मै आश्रम की मेहमानी का बहुत दिन तक निस्संकोच फायदा उठा सकता था, किंतु ऐसा करना मेरी प्रकृति के एकदम खिलाफ था। मुझे अपने कुछ वादे भी पूरे करने थे जिनके कारण मेरे लिए आश्रम मे टिकना गैर मुमकिन हो चला। पश्चिम मे जाकर अपने पुराने काम काज के ढर्रे पर चले बिना मै अपने वादो को पूरा नही कर सकता था। अतः सारी बाते यो ही तय हो गयी।

इस खबर से मुझे एक बहुत अच्छा मौका हाथ लगा कि मै अपनी आध्यात्मिक साधनाओ की सफलता को जॉच लूॅ, किंतु खेद के साथ कहना पड़ता है कि मुझे पर्याप्त कामयाबी प्राप्त नही हुई। अभी मै कच्चा ही था। मेरे दिल मे भारी उथल पुथल होने लगी। महर्षि की सन्निधि मे भी इस घटना के कारण मै उनके साथ सहज साधारण आतरिक संबंध कायम नही रख सका।

थोड़ी देर के बाद मैं दालान से अचानक बाहर निकला। एक ही चोट मे सारे पुरुषार्थ पर पानी फेरने वाली नियति की दुर्निवार प्रबल शक्ति के विकट थपेड़ो का लक्ष्य बन गया। उसके खिलाफ मूक बाग़ी बन कर यो ही बाकी सारा दिन राह की गर्द फाँकता रहा। दिल मे संतोष का नामोनिशान नहीं था।

अन्त में हताश होकर मैंने कुटी की राह ली और थके माँदे अपने व्यथित चित्त और बदन को आराम के लिए बिस्तर पर डाल दिया। मालूम होता है कि उस समय मैं किसी गहरे ध्यान में डूब गया था, क्योंकि किसी के दरवाजे पर धीरे धीरे थपकी देने से मैं चौंक पड़ा और आगन्तुक को भीतर आने का आदेश दिया। दरवाज़ा बहुत ही धीरे खुला और योगी रामय्या को भीतर प्रवेश करते देख कर मेरे अचरज का कोई ठिकाना न रहा।

तुरन्त मै बिस्तर पर से उठा। उन्होने आसन ग्रहण किया तो उन्हीं के मुखातिब होकर मै भी बैठ गया। गौर से वे मेरी ओर ताकने लगे। वे मानो अपनी चितवन से मुझसे कोई प्रश्न करते थे। परन्तु उनकी एक भी बात मै समझ नहीं सकता था। वे अंग्रेजी नही जानते थे। तो भी किसी विचित्र प्रेरणा के वेग मे मै अपनी मातृभाषा अंग्रेजी मे बोलने लगा। मुझे उम्मीद थी कि यद्यपि वे मेरे शब्दो को नही समझ सकते है तथापि मेरे दिल के विचारो को अवश्य जान लेंगे। अतः संक्षेप से अपनी कठिनाइयाँ उनके सामने मैंने पेश कर दीं और अपने अर्ध-प्रकट विचारो को अपनी असफलता और व्याकुलता की चेष्टाओं से प्रकट करने का प्रयत्न करने लगा।

योगी रामय्या ने ध्यान देकर सुना। मेरी राम कहानी खतम हुई। योगी जी ने अपनी सहानुभूति प्रकट करते हुए बड़ी

गंभीरता के साथ अपना सिर हिलाया। थोड़ी देर बाद वे उठ कर खड़े हो गये और इशारों से बताया कि मै उनके साथ बाहर चलूॅ। हमे एक शीतल जंगल मे से होकर गुज़रना था। कुछ दूर चलने पर एक विशाल खुला मैदान देखने मे आया। वहाॅ दुपहर के सूर्य की रश्मियाॅ हमे नहलाने लगी। आध घंटे तक मै उनके पीछे पीछे चला। थक कर मै अपने संतप्त शरीर को एक बरगद की सुखद छाया मे आराम देने लगा। थोड़ी देर सुस्ता कर और एक आध घंटा हम उन्हीं जंगली रास्तों को तय करने गये। तब कहीं हम एक बड़े पोखरे के तीर पर अचानक पहुॅच गये। मालूम पड़ता था कि रामय्या जी उस पोखरे से वाकिफ है। उसके तीर पर बहुत सुंदर बालू का मुलायम फर्श बिछा हुआ था। चलते समय हमारे पाॅव उस बालू मे धॅसे जा रहे थे। वहाॅ हमे एक सुंदर जलराशि मिली जिसके स्वच्छ जल की शोभा को कुंद और कमल के फूल अपनी निराली आभा से बढ़ा रहे थे।

योगी रामय्या एक छोटे वृत्त की छाया मे शीतल बालू पर पालथी मार कर बैठ गये। मै उन्हीं की बगल मे बैठा। हमारे सिर के ऊपर ताड़ के हरे पत्ते छाते का काम दे रहे थे। सचल जगत के इस एकांत कोने मे हम एकदम तनहा बैठे थे। जहाॅ तक नज़र दौड़ती थी एक निर्जन प्राकृतिक दृश्य पहाड़ी जङ्गलो की नीलिमा मे विलीन हो गया था।

योगी जी अपनी आदत के अनुसार ध्यानानुकूल आसन मार कर बैठे थे। अपनी अॅगुली से निर्देश करके मुझे उन्होने और भी निकट बुला लिया। तब अपने शान्त और गंभीर बदन को स्थिरता से सामने की जलराशि की ओर घुमा कर स्थिर दृष्टि से ताकने लगे और शीघ्र ही गहरी समाधि मे विलीन हो गये।

समय की गति बड़ी ही मंद थी। धीरे धीरे काल-चक्र फिरने

लगा, किन्तु रामय्या अचल थे, मूर्तिवत् स्थिर बन गये। उनका चेहरा समीपवर्ती निर्मल जलराशि की सतह के समान ही प्रसन्न और गंभीर हो गया। उनकी वह अचल मूर्ति मूक प्रकृति का मानो एक अंग सी बन गयी और हवा की मंद हिलकोरी से भी अपनी गंभीरता खोने वाले सघन कुंज के समान प्राकृतिक दृश्य में विलीन हो गयी। आधा घंटा बीत गया। योगी उसी ताड़ के तले, उन निराली अंतर्मुखी मूकता में शान्त बैठे थे। उनके चेहरे की वह शांति अब प्राकृतिक शांति से निराली हो गयी। उनकी स्थिर दृष्टि या तो शून्य में या दूर की उस पर्वत श्रेणी की निबिड़ता में, किसमें लगी थी, कुछ कहा नहीं जा सकता।

आभा की एक किरण योगी के मुख मंडल पर गिरी और उनका वह अचल शरीर तेजो मंडल से घिर कर पवित्र मूर्तिवत् भासने लग गया। मैंने उनके बारे मे विचार और वितर्क करना छोड़ दिया ताकि अपने ऊपर पड़ने वाली निरंतर वर्धमान शांति तरंगो का अनुभव कर लूॅ। जैसे जैसे मै अपनी आध्यात्मिक सत्ता के आलोक मे विचरने लगा, वैसे वैसे आधिभौतिक व्यक्तित्व के परिवर्तन और संभावनीय सत्ता के यथायोग्य दशांतरो को पहॅुच गया। आश्चर्यजनक स्पष्टता के साथ मेरे ऊपर यह बात प्रकट हो गई कि यदि जीव अपनी आध्यात्मिक सत्ता मे लीन हो जाय तो वह अनासक्त और गंभीर भाव से अपने ऊपर बीतने वाले सारे दारुण दुःखो को देख सकता है और विनश्वर सांसारिक वैषयिक कामनाओ के पीछे पड़े रहना सरासर मूर्खता का काम है जब कि संपूर्ण भाव से स्वीकार करने पर एक ध्रुव, अटल, शाश्वत, दैवी ज्योति मुझ पर अनुग्रह करने को तत्पर है। बुद्धिशाली ईसामसीह के 'कल की फ़िक्र मे न पड़ने' के उपदेश का उचित कारण यही था कि एक अधिक उत्तम शक्ति ने उनके शिष्यो की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया था। मुझे यह भी भासने लगा कि जब एक बार किसी आदमी को अपनी आत्मा की वाणी पर भरोसा रखने का न्योता मिलता है और वह उसे स्वीकार करता है तब निडर हो कर अपने पथ से हटे बिना दुनियाबी तकलीफो का वह सामना कर सकता है। मेरा विश्वास है कि ऐसा व्यक्ति एक अनुपम दशा के बहुत ही निकट पहॅुच जाता है जिसकी शीतल छाया मे किसी प्रकार के दुःख का टिके रहना असंभव हो जाता है। इस ढंग से आध्यात्मिकता की ज्योति से मेरे घिर जाते ही मेरे दिल से एक बहुत भारी बोझ टल सा गया।

इस सुंदर अनुभूति में मुझे समय का बीतना महसूस नहीं

हुआ। इस में मुझे बड़ा भारी शक है कि अंतर्निविष्ट दैवी ज्योति का मर्म तथा भौतिक जगत से उसका एकदम निरालापन और स्वतंत्रता, इन दोनों को कोई भी ठीक ठीक किस प्रकार समझा सकता है। धीरे धीरे गोधूलि का परदा पड़ने लगा। मेरे स्मृति पट के किसी धुँधले कोने से एक आवाज़ उठती सी मालूम हो रही थी कि इस देश में रात की जवनिका बहुत ही जल्द अचानक आ गिरती है। तो भी, मुझे इस बात की कुछ भी चिंता नहीं थी। मै इस बात से संतुष्ट था कि मेरे बगलगीर योगी रामय्या मेरे साथ रह कर, मेरे रहनुमा बन, मुझे अंतर्मुख मार्ग पर आरूढ़ बना कर सार्वभौम श्रेय, शांति की ओर ले चलने के लिये तैयार है।

कुछ देर बाद, उन्होंने मेरे हाथ छू कर उठने के लिए इशारा किया। रात उतर आयी। चारो ओर घोर अंधेरा छा गया। रात के नीले परदे से घिर कर हम दोनों उस निर्जन एकांत मरुभूमि मे भटकते हुए घर की ओर चलने लगे। न हाथ में कोई रोशनी थी, न राह का कुछ पता ही। योगी रामय्या की उस स्थान की विचित्र जानकारी ही राहदिखैया थी। दूसरा समय होता तो यह परिस्थिति मेरे दिल में खौफ पैदा कर देती, क्योंकि रात के समय जंगल मे रहने की विकट स्मृतियाँ मेरे मन पट पर अब भी अंकित थीं। उस समय मुझे मालूम पड़ता था कि निकट ही अज्ञात जन्तु समुदाय मेरे चारों ओर भटक रहा है। पल भर के लिए एक दुःखद घटना मेरे स्मृति पट पर कौंध गयी। 'जाकी,' जो हमेशा मेरे साथ पूँछ हिलाते टहलने के लिये चलता था, भोजन के समय मेरा साथी बन कर मेरे आनंद को बढ़ाता था, उस कुत्ते की गर्दन पर चीते के दांत लगने के दो दाग खूब ही याद आये। उसके गरीव भाई का भी, जो एक चीते

वन गया था, स्मरण आया। मैं डरने लगा कि हो न हो मुझे भी शिकार की खोज मे भटकने वाले किसी भूखे चीते की खूँख्वार आँखे दीख पड़े या अनजान ही अंधेरे मे जमीन पर वेष्टित होकर पड़े रहने वाले किसी नाग पर मै अपने पाँव डाल दूँ या किसी सफेद बिच्छू पर पैर रख दूँ। किंतु शीघ्र ही मुझे योगी रामय्या की भय रहित उपस्थिति मे इन तुच्छ विचारो के लिए शरमिंदा होना पड़ा। मुझे किसी प्रकार भास रहा था कि योगी का अभय तेजोचक्र मुझे आवृत कर रहा है और उसी की छत्रछाया मे मै अपने को सुरक्षित और स्वस्थ मानने लगा।

रात के कुछ बीतने पर, कुछ जानवरो के बोलने की अजीब आवाजे सुनाई पड़ी, जो प्रभात वेला की मधुर, विचित्र संगीत की सुरीली तान के साथ होड़ करती सी मालूम पड़ी। किसी सियार की हुआँ हुआँ की आवाज़ कही दूर पर बार बार सुनाई दे रही थी। कभी कभी किसी बनैलू जानवर की खौफनाक गुर्राने की गूँज कानो के परदे फाड़ रही थी। जब हम अपने आवासों के बीच मे रहने वाले पोखरे के पास पहुँचे तो हमे मेढ़को के टरटराने और चमगीदड़ो के बोलने, तथा झिल्लियो के जुगुप्साजनक रुदन की आवाजे सुनाई पड़ी। प्रभात हुआ तो भोर की पद्मिनी के साथ मेरे नेत्र कमल भी खुल गये और सामने सूर्य के आलोक से मंडित विश्व का दृश्य बिछा पड़ा था। मेरे दिल का कमल भी अपनी पंखुड़ियाँ खोल कर उस दृश्य की आभा से मंडित होने के लिए लालायित हो रहा था।

× × ×

बार बार मेरी लेखनी चारो ओर दिखाई देने वाले आश्रम जीवन का वर्णन करने और महर्षि के साथ मेरे अलापो का ब्योरा और अधिक लिखने के लिए बड़ी ही उमंग के साथ आगे बढ़ती

है। किंतु कहानी यहीं खतम करना मुझे उचित जँचता है। बड़ी लगन से मैं महर्षि के जीवन के हर पहलू को परख लेता हूँ। क्रमशः मुझ पर प्रकट हो जाता है कि यह उस प्राचीन युग की एक जीती जागती ज्योति है जब कि आध्यात्मिक तत्त्व का आविष्कार उतना ही मूल्यवान समझा जाता था जितना कि आज कल सोने की खानों का खोज निकालना। दिन दिन मेरे दिल में यह दृढ़ धारणा जड़ पकड़ने लगी कि दक्षिण भारत के इस प्रशांत और निर्जन कोने में भव्य भारत के आध्यात्मिक जीवन के जीते जागते उत्तमोत्तम कीर्ति स्तम्भ, इस पुरुषोत्तम का दर्शन करने का मेरा नसीब हुआ। इस जागृत ऋषिप्रवर की गंभीर तथा प्रशांत मूर्ति को देखते देखते मेरा भारत के अतीत पुराण पुरुषों और प्राचीन ऋषिवरों के साथ निकटतम संबंध पैदा होने लगा है। मुझे भान होता है कि अब भी इस महात्मा के विचित्रतम पहलू हमारे देखने मे नहीं आये हैं। उनकी आत्मा की गहराई, जो कि आम लोगों की सहज धारणा मे भी ज्ञान के अनूठे भंडार से भरी पड़ी है, अभी हमारे लिए एक निक्षिप्त खजाना ही है। उसका पता चलाने की कितनी भी कोशिश करो वह और भी दूर और अधिकाधिक गंभीर हो जाता है। कभी कभी वे एक अजीब मुद्रा धारण कर लेते हैं और एक अकथनीय निरालेपन में, एक विचित्र विशेषता मे प्रच्छन्न हो जाते हैं। कभी कभी उनकी अंदरूनी परम कृपा का आलोक मुझे स्थिर पाशों से उनके साथ संबद्ध करता है। उनके व्यक्तित्व की इस अनूठी पहेली के सामने सर झुकाने का मैं आदी हो जाता हूँ और उन्हें अपना पूज्यतम गुरुवर मानने लग जाता हूँ। किंतु हम साधारण मानवों के दृष्टिकोण मे वे वाह्य संस्पर्शों से एकदम पृथक हैं। जो कोई आवश्यक सूत्रात्मा को पहचान ले वह आध्यात्मिक

मार्ग पर आरूढ़ होकर महर्षि के साथ निकटतम रूप से आध्यात्मिक संबंध पा सकता है। जब कि वे निस्संदेह महत्ता और प्रामाणिकता और सर्वमान्यता के भव्य आलोक से भूषित है, वे इतने सीधे सादे और नम्र है कि देख कर मेरी श्रद्धा और भी गहरी हो जाती है। वे किसी गुप्त शक्ति या रहस्य ज्ञान का दम नही भरते। वे किसी प्रकार की विभूति दिखा कर अपने देश की विभूति मुग्ध जनता के चित्त को आकर्षित करने का दावा नही करते। वे हर प्रकार के छल प्रपंच के कट्टर विरोधी है। अतः कोई उन्हे धार्मिक प्रवक्ता बनाने का प्रयत्न करे तो वे शक्ति भर उसका विरोध करते है।

मेरा विश्वास है कि महर्षि के समान महात्माओ की उपस्थिति इस बात का भारी सबूत है कि पुराने जमाने से हमारे लिए अन्यथा अनुपलंभ दिव्य संदेशो के सुनाने वाले बराबर अवतरित होते आये है। मुझे यह भी भासने लगा है कि ऐसे महापुरुष हम लोगो से तर्क वितर्क करने के लिए नही वरन् हमे किसी दिव्य तत्त्व का संदेश देने के लिए ही अवतरित होते है। जो हो, उनके उपदेशो का मेरे ऊपर गहरा असर पड़ा क्योंकि उनकी हर एक बात, उनकी प्रवृत्ति और चरित का हर एक पहलू समझने पर वैज्ञानिक जॅचने लगा। उनके सिद्धांत मे किसी अप्राकृतिक शक्ति या किसी प्रकार के धार्मिक सिद्धांत को अंधविश्वास के साथ मान लेने की कोई आवश्यकता नही है। महर्षि के चारो ओर गंभीर आध्यात्मिकता का वातावरण फैला रहता है। उनके सिद्धांत की सफलता की कुंजी 'आत्मजिज्ञासा' तर्क की कसौटी पर कसने से बहुत ही खरी निकलती है। उसकी एक अस्पष्ट प्रतिध्वनि दूरवर्ती मन्दिर मे भी गूंजती रहती है। 'ईश्वर' शब्द विरले ही किसी ने उन के मॅह

से सुना होगा। वे विभूतियों के छलमय प्रपंच की नील अथाह गहराइयों से दूर रहते हैं जिन में असंख्य होनहार जीवन नौकाएं भँवर ग्रसित हुई हैं। वे सीधे सादे मार्ग का प्रतिपादन करते है। कहते हैं 'आत्मजिज्ञासा करो—प्रत्यवेक्षण करो'। उनके इस सिद्धांत को साधने में नये या पुराने किसी प्रकार के सिद्धांत या विश्वासों की अपेक्षा नहीं है। इस मार्ग पर आरूढ़ होने पर वास्तव में जिज्ञासु को आत्मज्ञान के प्राप्त होने में जरा भी शंका नहीं है।

मैंने इस अनात्म-पदार्थ-निराकरण के मार्ग का आश्रय लिया ताकि मैं अपने पूर्ण सत्ता का ज्ञान प्राप्त कर लूं। यद्यपि महर्षि और मेरे बीच मे कुछ भी बातचीत नहीं होती थी तो भी बार बार मुझे ज्ञात हो रहा था कि उनके मन से मेरा मन किसी प्रकार प्रबोधित हो रहा है।। निकट भविष्य मे मुझे वहाँ से रवाना होना था। इस की छाया।मेरी सारी कोशिशो पर पड़ गई। तो भी मैंने दृढता के साथ वहाँ न रहने का इरादा कर लिया। बीमारी के कारण सारे खेल मिट्टी मे मिला कर कूच करने के लिए मैं उतावला होने लगा। आश्रम मे आने के लिए मुझे जो भीतरी प्रेरणा मिली थी उस से मुझे इतना सकंल्प बल अवश्य प्राप्त हो गया था जिस से मैं अपने थके बदन की सारी शिकायतो की कुछ भी चिन्ता नही करता था। इस गरम देश की झुलसाने वाली आवहवा मे मैं अपने निश्चय को कायम रख सका। किन्तु सदा के लिए प्रकृति का निग्रह करना एक अनहोनी बात है। आखिर को मेरी तबियत बिलकुल खराब होने वाली थी। आध्यात्मिक दृष्टि से मेरा जीवन अनुभूति की पराकाष्ठा को पहुँचने वाला था, किंतु भौतिक दृष्टि से कभी भी मेरी तन्दुरुस्ती इतनी खराब नहीं हुई थी। महर्षि के साथ मेरे संसर्ग को

आखिरी अनुभूति के प्राप्त होने मे अभी कुछ घण्टे बाकी थे। अचानक मेरे शरीर मे जोरो के साथ कंपन हुआ और सारे बदन से पसीने की धाराये बहने लगी। सचमुच मुझे बुखार चढ़ने वाला था।

शहर के मंदिर मे कुछ गुप्त पवित्र स्थान थे। प्रायः वहां कोई भी जाने नही पाता। उनका परिशीलन करके मै जल्द ही आश्रम लौट आया और मैने दालान मे प्रवेश किया। सायंकाल की ध्यान की वेला आधी बीत चली थी। चुपचाप मै जमीन पर बैठ गया और मैने ध्यान का आसन जमाया। चन्द क्षणो मे मैने अपने को स्वस्थ बना लिया और अपने बिखरे हुए ख्यालो को मै एक जगह अच्छी तरह बटोर सका। आँखे मूंद लेते ही तीव्र वेग के साथ चेतना की धारा अंतर्मुख हो बहने लगी।

मेरे मनोनेत्र के सामने महर्पि की वह आसीन मूर्ति साफ ही झलकती थी। उनके निरंतर आदेशो के अनुसार मैने इस मानसिक परिधि को लांघ कर महर्षि की वास्तविक सत्ता, उनके स्वरूप का पता चलाने का प्रयत्न किया। ताज्जुब की बात है कि इस कोशिश मे मुझे आशातीत सफलता तुरंत प्राप्त हुई। उनका यह चित्र गायब हो चला। मुझे केवल उनकी उपस्थिति मे नैकट्य के सिवा और किसी बात का ख्याल तक नही था।

शुरू शुरू मे ध्यान के समय मेरे मन मे तर्क वितर्क उठा करते थे। अब वे नही के बराबर होने लगे थे। मैने अनेक बार भौतिक और मानसिक संवेदनाओ की परीक्षा करके आत्म-जिज्ञासा के मार्ग मे उनसे किसी प्रकार की सहायता न मिलने के कारण उन सब को परखना छोड़ दिया था। तब अपने चैतन्य को उसी केन्द्र पर, अर्थात् उसी की उत्पत्ति स्थान पर लगाया और यह जानने की कोशिश करने लगा कि चैतन्य की उत्पत्ति कहाँ से

होती है। अब एक महान अद्भुत समय आ गया था। उस सुनसान ध्यान की अवस्था में मन अपने में लीन हो गया था। दुनियाँ, जिससे कि हम परिचित है, गायब होते होते धुँधली अस्पष्टता में विलीन हो गई!

मेरे चारों ओर थोड़ी देर तक केवल शून्य ही शून्य घिरा हुआ था। एक प्रकार से मन की शून्य भित्ति हो गई थी। उस समय अपने ध्यान को एकत्रित बनाये रखने के लिए मुझे बहुत ही सचेत रहना पड़ा। लेकिन ऊपरी जीवन की सुस्त जगमगाहट को छोड़ कर अपने मन को ध्यान के निश्चित केन्द्र में लगाना क्या ही कठिन काम था!

प्राय: इस दशा के प्राप्त होने से पूर्व विचारों का एक तूफान उठता था। उसके साथ घमासान लड़ाई ठाननी पड़ती थी। किन्तु आज रात को कोई विशेष कठिनाई पेश नहीं आयी और बिना किसी प्रकार की तकलीफ के जल्दी ही मै एकाग्रता को प्राप्त हो गया। मेरे आभ्यंतर जीवन में एक नई बहुत ही ताकत-वाली शक्ति के सोते छूटे और वह अपने दुर्दम वेग के झोंके में मुझे अंतर्मुख की ओर बहा ले चली। पहली बड़ी लड़ाई में अनायास ही विजय प्राप्त हुई और उस युद्ध के सारे तुमुल संक्षोभ के गुज़रने पर एक सुखद आनंदमय शांति अंतरंग में विराजने लगी।

दूसरी भूमि पर पहुँचते ही मुझे प्रतीत होने लगा कि मैं बुद्धि से भिन्न हूँ। मुझे ज्ञात होने लगा कि बुद्धि सोच रही है, लेकिन मुझे किसी सहज स्फूर्ति से मालूम हो रहा था कि वह केवल एक साधन मात्र है। मैं एक अनूठे अनासक्त भाव से इन तर्क वितर्कों का साक्षी था। पहले बुद्धि शक्ति गर्व करने की एक बात प्रतीत होती थी, किंतु अब वह एक ऐसी चीज़ हो गई जिस

से वचे रहने मे ही श्रेय था। मुझे इस बात के भान होने पर चकित होना पड़ा कि अनजान ही मै बुद्धि के हाथो बिना मोल गुलाम बना हुआ था। अचानक हृदय मे यह चाह पैदा हुई कि बुद्धि से परे रह कर अपनी सत्ता ही मे निविष्ट रहूँ। विचार से भी परे किसी गहराई मे मैने गोते लगाने चाहे। अपनी सारी सावधानी को जागरूक और सचेत रख कर ही मै यह जानना चाहता था कि बुद्धि के अनवरत बंधन से छूटने का वह अनुभव कैसा होगा।

प्रेक्षकवत् उदासीन भाव से अलग रह कर परायी दृष्टि से इस बात को देखने की ताकत रखना ही बड़ा निराला है कि मेरी मानसिक क्रियाये किस प्रकार होती है, क्यो कर वे अभिव्यक्त और तिरोभूत होती हैं। किंतु इस बात को सहज स्फूर्ति से भांप लेना कि मै अपनी आत्मा के अंतरतम तत्वो को प्रच्छन्न रखने वाले रहस्यो की झाँकी लेने ही पर हूँ, कही अधिक निराला है। मै उस समय किसी अज्ञात भूमिखंड पर लंगर डालने वाले कोलंबस माझी के समान था। एक पूर्ण, संयमित और प्रशांत आशा की सनसनी मुझ से दौड़ने लगी। लेकिन इन वृत्तियो के अति पुराण आतंक और उपद्रवो से क्यो कर अपने को छुड़ा लूँ ? मुझे याद था कि वृत्तियो को जबर्दस्ती रोकने की कोशिश करने की महर्षि ने कभी सूचना तक नही दी थी। बारंबार उनका यही आदेश रहा—'विचार और विमर्श के मूल का पता चलाओ, सजग होकर इस बात की प्रतीक्षा करो कि आत्मा क्यो, किस प्रकार, अपने तत्त्व को खोल कर बता देती है। तव तुम्हारे सारे विचारो और वितर्कों की ज्वालायें अपने आप दूर होगी।'

मेरा विश्वास था कि विमर्श और विचार के मूल का मुझे पता लग गया। अतः अपने ध्यान को एकाग्र रखने के लिए जिस

प्रबल प्रयत्न को मैंने जारी रक्खा था उसे मैंने शिथिल होने दिया और अपने ग्रास की इंतजारी में रहने वाले साँप के समान सचेत और सजग रहते हुए मैंने पूर्ण निष्काम भाव की वेदी पर स्वात्मार्पण कर दिया। इस समाधि की दशा के आलोक मे मुझे महर्षि की भविष्यवाणी की सच्चाई का पता चला। सहज ही चित्त वृत्तियों की चंचलता विलय को प्राप्त होने लगी। वितर्क शक्ति की सारी सजधज मिट कर शून्यता में विलीन हो गई। उस समय जिस अनुपम, अत्यंत निराली अनुभूति का मैंने रसास्वादन किया वह आज भी भूली नहीं है। शारीरिक संस्पर्शों से मुझे किसी प्रकार की अनुभूति या जानकारी नहीं रही। मुझे वस्तुतः मालूम हो गया था कि किसी समय मैं विषयों से एकदम परे हो जाऊँगा, संसार के परम रहस्य की बाह्य सीमा की आखिरी लकीर को लाँघ जाऊँगा। ''अन्त को वह शुभ घड़ी आ ही गयी। फूँकी हुई दीप शिखा के समान विचार की ज्वाला निर्वापित हो गई। चित्त-वृत्ति अपने असली आधार में पहुँच गई, अर्थात् विचारों से अबाधित चिन्मय प्रकाश में परिणत हो गई। महर्षि बारंबार जिस सत्य के विषय का ध्रुव अटल विश्वास के साथ निर्देश करते रहे थे, जिनके होने का इधर कुछ समय से मुझे अनुमान भी होने लगा था उसको मुझे अपरोक्ष अनुभूति होने लगी कि मन का उदय एक ऐसी भूमि से होता है जो तुरीय है, जो देश काल आदि से अनवच्छिन्न है। मन एकदम अमनीभाव को प्राप्त हो गया। जैसे सुषुप्ति के समय अन्दरूनी हरकत भी रुक जाती है उसी प्रकार की अवस्था मुझे प्राप्त हो गयी थी। किन्तु प्रज्ञान का कुछ भी ह्रास नहीं हुआ था। मेरा अंतरंग एकदम शांत था। मुझे इस बात का पूरा ज्ञान था कि 'मैं कौन हूँ'। जो

कुछ बीतता था उसका मुझे पता चलता था। किन्तु मेरी इस चेतनता का बोध जो व्यक्तित्व की संकुचित परिधि से उत्पन्न हुआ था अब बहुत ही उदात्त और सर्वव्यापक हो गया। आत्मबोध तब भी बना रहा किंतु वह पुरानी आत्मा नही थी। वह नयी ज्योति से प्रपूर्ण थी। पहले वह जिस अहंपद-वाच्य क्षुद्र व्यक्तित्व का बोध था उससे कही उत्तम, कही गंभीर, कही अधिक दैवी सत्ता का बोध अब होने लगा। मेरा क्षुद्र अहम् अब इस उत्तम अहम् पद वाच्य पदार्थ में परिणत हो गया। उसी के साथ पूर्ण विमोक्ष का आश्चर्यजनक बोध होने लगा। चित्तवृत्ति जो इधर से उधर और उधर से इधर चलने वाली करघे की लकड़ी के समान है गति के चंगुल से छूट कर स्वच्छन्द हो रही थी।

मै जगत के बोध की परिधि के बाहर था। अब तक मुझे जो आश्रय देती रही थी वह भूमि गायब हो चली। मै एक प्रज्वलित ज्योति समुद्र के बीच मे भूला भूल रहा था। यों कहना बेहतर है कि मुझे सूझ पड़ा कि यह ज्वलित ज्योति ही वह आदिम पदार्थ है जिससे ब्रह्माण्ड निकाय परिणत हुए। वह ज्योति समुद्र अकथनीय अनंत आकाश में व्यापा था, वह इतना जीता जागता तत्त्व था जिसका वर्णन करने पर कभी किसी को विश्वास नही होगा।

अनंत आकाश के रंगमंच पर खेले जाने वाले इस रहस्यमय विश्वनाटक का अर्थ बिजली के समान मेरे मन पर कौंध गया और मै अपनी सत्ता के मूल पर आ पहुँचा। 'मै'—नवीन 'मै'—पवित्र आनन्द की गोदी मे सुस्ता रहा था। मै सूफियों के मयखाने मे प्याला ढाल ढाल कर मतवाला हो उठा था। अतीत की कड़वी स्मृतियाँ या अनागत की व्यग्रता भरी चिंताएं एकदम

वे ऐन मौके पर प्रतिज्ञा भग की ओर उसके ध्यान को आकर्षित करेगे ही।

मानव मे अमर जाति संबंधी जो जौहर है वह अपनी सद्-आत्मा की ओर एकदम लापरवाह रहता है, किंतु उसकी लापरवाही से उसके तत्त्व की दीप्यमान अव्यय महिमा किसी भी प्रकार प्रभावित नही होती। हो सकता है कि वह उसको एकदम भूल जाय और इंद्रियो के वश हो प्रसुप्त भी हो जाय, लेकिन जिस समय वह परतत्त्व अपने हाथ बढ़ा कर उसके हृदय को छू ले तब उसको अवश्य ही याद आ जायगी कि वह असलियत मे कौन है और फलतः उसको आत्मलाभ प्राप्त होगा।

चूंकि मानव को उस का दिव्य भाव भूला हुआ है, वह अपना सच्चा मूल्य आप ही नही जानता। अतएव अपनी सत्ता के सर्व-शक्तिमय आध्यात्मिक केद्र मे पूर्ण निश्चल शांति को प्राप्त होने पर भी वह दूसरो की सलाह की खोज मे निकल पड़ता है। [1]स्फिनिक्स किसी मर्त्य लोक की ओर ऑख तक नही उठाती। उसकी अचल दृष्टि हमेशा भीतर की ओर मुड़ी रहती है। उसकी अलक्ष्य मन्द मुसकान का मर्म आत्म-ज्ञान है। जो अपने अंतरंग की झॉकी लेकर, उसमे असंतोष, दुर्बलता, अंधकार और भीति को ही भरा पावे, उसे परिहास या शंका में मुह फुलाने की आवश्यकता नही है। अंतरंग की और भी गहराई मे वह गोता लगावे, गहराई तक पहुॅचते पहुॅचते क्रमशः उसे हृदय के शांत रहने पर नजर आने वाले अस्पष्ट इशारो और अस्फुट साॅस की सी सूचनाओ का पता चलेगा। वह उनकी अच्छी तरह परवाह करे। वे ही सजीव हो उन्नत भावनाओ मे परिणत होगी और उसके

---

[1]एक कल्पित जन्तु जिसका शरीर सिह का सा और मुॅह स्त्री का सा होता है।

मन मदिर मे देवताओं के समान विहार करेंगी। ये उन्नत विचार पीछे सुनाई देने वाली मानव के अंतरतम तह को प्रच्छन्न, निगूढ़ और रहस्यमय सत्ता की वाणी के पुरोगामी हरकारे ही हैं—उस सत्ता की वाणी के जो वस्तुतः उस के पुराण स्वरूप से अभिन्न है। हर एक मनुष्य के जीवन मे आत्मा के दिव्य भाव का उन्मीलन पुनः पुनः होता ही रहता है। किंतु यदि मानव उसके प्रति उदासीन हो जाय तो वह उन्मीलन पथरीले जमीन पर बोये बीज के समान फज़ूल होगा। इस दिव्य चैतन्य से कोई भी छूटा नहीं है। आदमी ही अपने को छूटा हुआ समझता है और छुड़ा लेता है। जब कि हरी हरी झाड़ियों पर बैठने वाली प्रत्येक चिड़िया और प्यारी माँ का हाथ पकड़ कर अड़बड़ा कर, गिरते उठते चलने वाले शिशुओं ने इस समस्या को हल कर लिया और अपने भोले भाले निर्मल बदनो पर उस पहेली के रहस्य को धारण किये हुए हैं तो लोग जीवन के अर्थ और मर्म की जिज्ञासा का एक स्वांग क्यो रचते है।

ऐ मर्त्य, जिस जीव ने तुझे जन्म दिया वह तुम्हारे गंभीरतम विचार से भी कहीं श्रेष्ठ और उत्तम है। उसकी कृपामय प्रणिधान का विश्वास रखो और अर्थ प्रस्फुटित प्रेरणाओ के आवेश मे अपने दिल के कानो को सुनाई पड़ने वाली उसकी सूक्ष्म आज्ञाओं का पालन करो।

जो यह समझता है कि मनुष्य अपने उन अविचारित वासनाओं के प्रबल आवेगों के अनुसार उच्छृंखल रह कर भी ऐसे आचरण के सहज परिणाम के भार से मुक्त रह सकता है, वह अपने जीवन को सपने के थोथे जाल मे फँसा लेता है। जो अपने समान प्राणियों के प्रति या अपने ही प्रति पापाचरण करता है उसी आचरण के कारण उसकी सज़ा आप ही मिल जाती

है। संभव है कि वह अपने पापो को दूसरों की नजर से ओझल रखे, किंतु सर्वान्तर्यामी ईश्वर के सहस्रो नेत्रो से उसको कदापि गुप्त नही रख सकता। यद्यपि न्याय की प्रभुता प्रायः अलक्ष्य है, यद्यपि उसका नामोनिशान बहुत करके संसार के पथरीले न्यायालयो मे नही मिलता, तब भी न्याय इस संसार मे ममता-हीन कठोरता से हुकूमत चला ही रहा है। संसार के दंड-विधान के पंजे से संभव है कोई बच भी जाय किंतु कोई भी दैवी न्याय दंड विधान से अपने को बचा नही सकता। ऐसे व्यक्ति के निर्मम और अति कठोर जीवन की हर एक घड़ी नियति के हाथो खतरो मे फॅस गयी है।

जीवन हमेशा ही मूक वाणी से सत्य का प्रतिपादन कर रहा है। उसको ग्रहण करने मे वे ही अधिक तत्पर और तैयार रहेंगे जिन्होंने विवाद के कड़वे फलो को चखा हो, जिन्होने अपने धुॅधले जीवन के लम्बे वर्षो को ऑसुओ के कुहरे मे विताया हो। यदि उन्हे और कुछ भी मालूम न होवे तो कोई हर्ज नही है। कम से कम उनके ऊपर यह तो रोशन हो जायगा कि भाग्य-लक्ष्मी की मुसकानो पर कैसा विषादमय नश्वरता का अवगुंठन पड़ा है। जो अपने जीवन को सुखमय अनुभूतियो के मोह माया मे अपने को भ्रान्त नही होने देते वे विषाद के समय भी उसके बोझ के तले दब और पिस नही जायंगे। सुख दुःख के ताने-बाने से जो न बुना हुआ हो ऐसा कोई भी जीवन नही है। अतः कोई व्यक्ति घमंड से चूर होकर जीवन बिता नही सकता। जो ऐसा करे उसकी जीवन नैया बड़े जोखिम मे फॅसी हुई है। ईश्वर अलक्ष्य है। वह चन्द मिनट मे जिन्दगी की कमाई को खाक मे मिला सकते है। अतः उनके रहते हुए भी नम्रता और विनय की मूर्ति बनना ही आदमी को सोहता है। सब पदार्थों के

भोग और भाग्य काल-चक्र के साथ फेरे लगाते हैं। इस बात को कोई मूर्ख ही पहचान नहीं सकता। विश्व में यह देखा जाता है कि हर एक आकर्षण के बाद एक विकर्षण, हर उत्थान के बाद एक पतन भी होता है। यही बात मानव के जीवन और भाग्य के बारे मे भी लागू होती है। संपन्नता के ज्वार के बाद अकाल और तंगी का भाटा आ सकता है। स्वास्थ्य एक चंचल मेहमान हो सकता है और प्रेम, सम्भव है कि फिर भटकने के लिए ही अंकुरित हुआ हो। किंतु दीर्घकालीन दुःख निशा के बीतने पर नूतनोपलब्ध ज्ञान की ज्योति चमक उठेगी। इन सब का अंतिम संदेश यही है कि जो नित्य सर्वशरण्य सत्ता, अनदेखे और अनन्वेषित होकर भी दिल में अवस्थित है, उसी सत्ता को फिर से उसके सच्चे स्थान पर बिठला देना चाहिये, अर्थात् उसी मे सब किसी को अपना सहारा प्राप्त करना चाहिये। वरना, निराशा और दुःख दारिद्र साजिश रच कर, मौके मौके पर मानव को उसी पर-सत्ता मे ही शरण लेने के लिये मजबूर करेंगे। किसी का भी भाग्य इतना नहीं चमका है कि दैव मनुष्य जाति के इन दोनों महान् शिक्षकों से उसे मुक्त होने दे।

जब आदमी को मालूम हो जाता है कि गरिमा और महत्व ने अपने डैनों से उसे ढक लिया है तभी वह अपने को सुरक्षित और अभय मान लेता है। जब तक वह ज्ञान के प्रकाश से जिद के साथ दूर रहने की चेष्टा करता रहता है तब तक उसके सबसे उत्तम ईजाद ही उसकी सबसे अटल बाधाओं का रूप धारण कर लेते हैं। आदमी को जो वैषयिक संपन्नता की ओर बढ़ाये ले चलता है वह एक ऐसी गाँठ सा बन जाता है जिसको कभी न कभी सुलझाने की आवश्यकता आ ही जाती है। मानव अपने पुराने अतीत के साथ अकाट्य संबंध से बँधा हुआ।

है, वह अपने दिल की दिव्य सत्ता की भव्य सन्निधि मे खड़ा हुआ है। उस सन्निधि से टल जाना उसके बूते से बाहर की बात है। इसलिये उसको चाहिये कि वह भूल कर भी इस बात से गाफिल न रहे, अपने 'उत्तम-स्व' अपने पुरुषोत्तम की कृपामय सुंदर वेदी पर अपने को और अपनी सांसारिक चिन्ताओ तथा प्रच्छन्न दु:खो की बलि चढ़ावे। यह स्वात्मार्पण कभी व्यर्थ नही हो सकता। यदि वह शांति का जीवन बिता कर, निर्भीक भाव से, अभिमान के साथ मृत्यु को गले लगाना चाहे तो वह इसी मार्ग पर दृढ़ता से आगे बढ़े।

जो एक बार अपनी सच्ची आत्मा का साक्षात्कार कर पाता है वह दूसरे के प्रति भूल कर भी द्वेष भाव नहीं रख सकता। द्वेष से बढ़ कर कोई गुनाह नही है। द्वेष के कारण जरूर ही खून की नदियां बहेगी। उनसे सींचे हुए साम्राज्यो की विरासत से बदतर कोई दु:ख नही है। द्वेष का यही अवश्यंभावी नतीजा है कि वह उलट कर उसी का सर्वनाश कर देता है जिसने उसके लिए अपने दिल में स्थान दिया हो। इससे ध्रुवतर कोई परिणाम नही है। ऐसी आशा रखना फिजूल है कि हम दैव के पंजे से छूट सकते है। गैबी तौर पर वे मानव के कुत्सित और भयानक कार्यों के मूक गवाह बने हुए है। चारो ओर दुनिया दु:ख के सागर मे डूबी हुई है; तो भी सब किसी को सहज ही परम शांति मिल सकती है। दु:ख मे पड़ी, शंकाग्रस्त, थकी मॉदी मनुष्य जाति पूर्ण अंधकार से भरी हुई जीवन की गलियो मे राह टटोलते जा रही है किंतु वह क्या जानती है कि उसी के सामने के पड़े हुए प्रस्तरो पर एक महान् ज्योति का मृदु आलोक बिखरा पड़ा है। जब मनुष्य अपने साथियो को केवल दिन की साधारण रोशनी मे ही न देखे बल्कि दैवी संभावनाओ की

काया पलट करने वाली रोशनी में देखना सीख ले, उसी समय संसार से द्वेष का नामोनिशान मिट जायगा। सब के दिल मे जिसको ईश्वर कहते हैं उससे मिलती जुलती कोई सत्ता अवश्य जागरूक है। इस दृष्टि से मनुष्य आदर और सत्कार के योग्य ठहरता है। जब वह अपने साथियो को इस आदर और सम्मान की उचित दृष्टि से देख सकेगा तभी संसार से द्वेष का नाम एक-दम उठ जायगा।

प्रकृति में जो सचमुच भव्य है, कलाओं में दूसरों में जान फूँकने वाली जो कुछ सुंदरता है, दोनो मानव को उसी शक्ति के गीत सुना रहे है। जहाँ धर्माचार्य अपने कार्य मे असफल हो जाते हैं वहाँ उनके बदले में विस्मृत संदेश को सुनाने का भार, सत्य के रसावेश में लीन कलावेत्ता अपने ऊपर ले लेता है और आत्म-ज्योति की कुछ सूचनायें छोड़ जाता है। यदि कोई इस शुभ घड़ी का स्मरण कर सके जब कि सौंदर्य पिपासा ने उसे शाश्वत लोको का निवासी बनाया है, तो उसको चाहिये कि वह अपनी स्मरण शक्ति को एड़ मार कर अपने भीतर रहने वाले दिव्यालय की खोज करे, इस विश्वास के साथ कि सदात्मा के पहचानते ही बल और सारे प्रयत्नों का पूरा मेहनताना मिल जायगा। थोड़ी सी शांति के लिए, थोड़ा सा बल पाने, या ज्ञान ज्योति की एक झांकी भर लेने के लिए, उसी पवित्रालय का उसे आश्रय लेना पड़ेगा। चाहें तो विद्वान दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने वाली ग्रंथ राशि और सरस्वती भवन की दीवारों की शोभा बढ़ाने वाली पुरानी पोथियों ने अपने को भुलाये रक्खें, पर वे कभी इससे बढ़ कर किसी दूसरे गंभीर और रहस्यमय तथा उदात्त सत्य को जान नहीं सकेंगे कि मानव की आत्मा वास्तव मे दिव्य है। समय की गति के साथ मनुष्य की सभी कामनाएँ विफल और विनष्ट हो

सकती है ; किन्तु अमर जीवन की ध्रुव आशा, परिपूर्ण प्रेम की आकांक्षा, अव्यय और निश्चित आनंद की लालसा एक न एक दिन निश्चय ही पूर्ण होगी, क्योंकि ये दुर्निवार नियति के भविष्य की सूचना देने वाली सहज शुभ वासनाये है। संसार अपने सबसे उत्तम विचारो के लिए प्राचीन प्रवक्ताओ का ऋणी है, और अपने सब से उत्तम नीतिशास्त्र के लिए धुँधले युगो के सामने कृतज्ञता के साथ नतजानु हो जाता है। लेकिन जब मनुष्य को उसके उज्वल स्वरूप का भव्य विज्ञान प्राप्त हो जाता है वह आनंद विभोर हो जाता है। ज्ञान और इच्छा के क्षेत्रो मे जो कुछ भव्य और प्रशंसनीय है वह अनायास ही उसके सामने हाथ जोड़े खड़ा हो जाता है। अपनी जातियो को उनके दिव्य स्वरूप की याद दिलाने वाले इब्रानी और अरबी महर्षियो के समान उनके भी आश्रम की सी प्रशांति से भरे हुए मन पट पर दिव्य और पवित्र हृदय खिच जाते है। इस दिव्य आभा मे ही बुद्धदेव ने निर्वाण का रहस्य जान कर लोगो को उसका उपदेश दिया था। इस बात के समझने पर ऐसा विश्वव्यापी प्रेम पैदा हो जाता है जिससे प्रेरित हो कर मेरी मेगलीन ने अपनी बरबादी के जीवन की सारी कालिमा ईसामसीह के श्री चरणो के पास रो रो कर धो डाली थी।

ये भव्य तथा गंभीर पुराण तत्त्व मनुष्य जाति के शैशव के दिनो मे काल की निविड़ तह मे प्रच्छन्न हो गये थे। तो भी ये सदा के लिए कभी भी धूल धूसर नही हो सकते। एक भी मानव समुदाय ऐसा नही है जिसको सुलभ परतत्त्व की सूचनाये न मिली हो। खुले दिल से इसको जो स्वीकार करना चाहे, उसको चाहिये कि वह इन तत्वो को केवल बौद्धिक रूप से ही नही बल्कि अपने हृदय की सारी भावनाओ की पूरी उमंग से गले

लगा ले। इससे प्रेरित होकर वह दिव्यकर्ता यह महाकर्ता बन जावेगा।

× × ×

एक अनिवार्य शक्ति से प्रेरित होकर मै इस भौतिक जगत में उतर आया। धीरे धीरे अत्वरित भाव से मुझे अपने पास पड़ोस का बोध हुआ। मैंने अपने को महर्षि के दालान मे तब भी बैठा हुआ पाया। दालान सूना था। आश्रम की घड़ी पर मेरी निगाह पड़ी। भास गया कि आश्रमवासी ब्यालू करते होंगे। तब मेरी बायीं ओर किसी के उपस्थित होने की आहट मिली। वे वही ७५ बरस के बूढ़े, भूतपूर्व स्टेशन मास्टर थे। वे मेरी बगल ही में फर्श पर बैठे करुणा भरी दृष्टि से मेरी ओर ताक रहे थे।

उन्होने मुझसे कहा—"आप करीब दो घंटे तक समाधि में लीन हो गये थे।" उनके चेहरे पर बुढ़ापे की झुर्रियाँ पड़ गयी थीं। उम्र भर की कठिनाइयो की छाप उस वृद्ध के शांत मुख मंडल पर दिखायी दे रही थी। उनके मुँह पर मुसकान की चांदनी छिटक गयी और मालूम पड़ता था कि वे मेरे आनंद में आप भी आनंद के भागी हो रहे है।

मैंने जवाब देने की चेष्टा तो की किन्तु मैं यह देख कर चकित हो गया कि बोलने की मेरी शक्ति ही नही रही। पन्द्रह मिनट तक वाक्‌शक्ति मेरे काबू में नहीं आयी। तब तक उस वृद्ध ने अपनी बातें पूरी कर दी। कहा—"अन्त तक महर्षि ने बड़े ग़ौर से तुम्हारे ऊपर अपनी दृष्टि गड़ायी थी। मेरा विश्वास है कि उनके विचारो ने तुम्हारी बड़ी मदद पहुँचायी है और तुम्हे सही राह पर चलाया है।"

लौट कर जब महर्षि ने दालान में अपना आसन ग्रहण किया उनके साथ जो आये थे वे भी थोड़ी देर तक रात को

आरंभ करने से पहले वहीं अपनी अपनी जगह बैठ गये। महर्षि ने चौकी पर अपने आसन को कुछ ऊँचा कर लिया और एक के ऊपर दूसरा पाँव डाल कर दाहिनी जाँघ पर अपनी कुहनी टेकी और अपनी हथेली पर चिबुक धरी। उनके गाल पर हाथ की दो उँगलियाँ लगी हुई थीं। हम दोनों की नज़रें मिलीं। वे लवलीन होकर मेरी ओर ताकते ही रहे।

सोने का समय निकट था। आदत के अनुसार परिचारक दालान के लैम्प बुताने लगा। तब महर्षि के प्रशांत नेत्रो को अनूठी ज्योति ने एक बार फिर मेरे मन को हर लिया। दालान की उस धुँधली रोशनी मे वे दो दिव्य ताराओं के समान चमक रहे थे। मुझे स्मरण होने लगता है कि भारत के ऋषिप्रवरों की संतति के इस अंतिम सितारे की आँखो की सी विलक्षणता और कही नही मिली। जहाँ तक मर्त्य नेत्रो में दिव्य शक्ति प्रतिबिंबित हो सकती है वहाँ तक सचमुच ही इस महात्मा की आँखो मे वह प्रतिबिंबित है।

धूप द्रव्यों की महक से भरा हुआ धुआँ चक्कर मारते चारों ओर फैल रहा था। मैंने उन अनिमिष, अचंचल नेत्रों की कांति की ओर टकटकी लगायी थी। इसी विचित्र दशा मे कोई ४० मिनट बीते होंगे। हम दोनो मौन साधे थे। बातचीत की कौन सी ज़रूरत ही थी जब मौन व्याख्या ही से वस्तुसत्ता का ज्ञान हो रहा था। शब्द विकार के बिना ही हम एक दूसरे को अच्छी तरह समझ रहे थे। इस गंभीर मौन दशा से हम दोनों के मन एक विचित्र पर अति सुंदर संगीत मे लीन हो गये। इस चाक्षुप मनोग्रहण में मुझे एक सुस्पष्ट अनुक्त संदेश मिल ही गया। जीवन के बारे मे महर्षि के दृष्टिकोण की एक संस्मरणीय

रहस्यभरी झाँकी मुझे मिल गयी। मेरा आभ्यन्तर जीवन उनकी जीवन ज्योति मे मिल कर घुलने लगा।

× × ×

बुखार चढ़ा ही चाहता था किन्तु मैंने उसकी एक न चलने दी और दो दिन तक उसे दूर भी रख सका।

शाम का समय था। बूढ़े स्टेशन मास्टर मेरी कुटिया पर पधारे। कुछ चिंतित हो कर उन्होंने कहा :

"भाई साहब अब हमारे बीच में आपका शुभ निवास समाप्त हुआ ही चाहता है। किन्तु किसी दिन आप जरूर यहाँ लौटेंगे ही।"

मेरे हृदय कुहर से उनकी बातों का उत्तर गूँज उठा— "निस्संदेह जरूर लौटूँगा ही।"

चलने लगा तो मैं चौखट पर खड़े हो कर उस पवित्र ज्योति-गिरि अरुणाचल को देखने लगा। वह मेरे सारे जीवन चित्र की रंजित भित्ति सा बन गया है। हमेशा, खाते पीते, चलते फिरते, सोचते विचारते, चाहे जो भी करता रहूँ, आँख उठाते ही मेरे सामने या खिड़कियों के सींखचों के बाहर खुली जगह में उस पर्वतराज के चपटे शिखर की निराली मूर्ति खड़ी रहती है। यहाँ इस पर्वतराज के गंभीर दर्शन से बचना असंभव है, बल्कि यों कहिये कि उसने मेरे ऊपर जो जादू फेरी है उससे बचना इससे भी अधिक ग़ैरमुमकिन है। मैं चकित हूँ कि क्या इस एकान्त पर्वत शिखर ने मुझे सम्मोहित तो नहीं किया है। लोगों में यह कथन प्रचलित है कि यह शिखर एकदम खोखला है, जिसमें मानवों के चर्म चक्षुओं के लिए अदृश्य सिद्ध पुरुष रहते हैं। लेकिन मेरे नजदीक यह बच्चों की दन्तकथा मालूम होती है । यद्यपि मैंने

इससे भी उत्तम पहाड़ी चोटियो की सुंदरता की वहार लूटी है तव भी इस एकान्त शिला ने मुझ पर गजब की जादू फेर दी है। यह अचल अरुणागिरि प्रकृति का एक खुरदुरा भूमिखंड है। इस पर वड़े वड़े लाल पत्थर यत्र-तत्र विखरे पड़े रहते है। धूप मे यह पर्वत एक मंद ज्वाला के समान चमकता रहता है। इस गिरिवर का एक महिमामय अनुभाव है जिसके कारण उसके चारो ओर गजव का प्रभाव स्पष्ट रूप से प्रसारित होता रहता है।

गोधूलि के समय तक महर्षि के अतिरिक्त वाकी सवो से मैने छुट्टी ले ली थी। मुझे इस वात की प्रसन्नता थी कि आध्यात्मिक आधार के पाने मे मै विजयी हुआ था। इस संग्राम मे जीत पाने के लिए अपनी प्रिय विचार शक्ति को ताक पर रख कर अंधविश्वास का मुझे आश्रय नही लेना पड़ा। लेकिन थोड़ी देर वाद मेरे साथ जव महर्षि आंगन मे चलने लगे तो मेरा सारा संतोष एकवारगी गायव हो गया। यह महात्मा किसी अजीब ढंग से मुझ पर ग़ालिव हो गये। इस कारण इनसे विदा होते मेरे दिल मे तूफान सा उठ रहा था। उन्होने मुझे लोहे की जंजीरो से दृढ़ परन्तु अदृश्य वंधनो द्वारा अपनी आत्मा से वॉध लिया। किन्तु वह भी एक भूले हुए मानव को सचाई का पता चला कर, स्वस्थिति मे कायम रखने के लिए ही था, उसे विमुक्त करने के लिए था, न कि वॉध कर रखने के लिए। वे मुझे मेरे अध्यात्म के कृपालोक मे ले चले। मुझ मंदवुद्धि पश्चिम की संतान को उन्होने अर्थ रहित शब्द मात्र के रहस्य का उन्मीलन करके उसको एक जीती जागती आनंदमय अनुभूति मे परिणत करने मे वड़ी सहायता पहुँचाई।

विदाई का समय निकट था। मेरा दिल आगा पीछा कर रहा था। मेरे हृदय मे लहर मारने वाले अथाह भाववेग के कारण

कुछ कहते नहीं बनता था। नील-गगन में हमारे मस्तकों पर अगणित तारागण बिखरे हुए थे। उदीयमान चंद्र के रजत मय प्रकाश की एक रेखा दूर दिखाई दे रही थी। वाम भाग में संध्या काल के जुगुनू हर कहीं झाड़ियों के बीच में टिम-टिमाते हुए चमक रहे थे। उनके बीच में से दीर्घकाय ताल वृक्ष अपने पत्रमय उन्नत मस्तकों को उठा कर नील आकाश से मूक संभाषण मे लवलीन हो रहे थे।

मेरे काया पलट की यह अद्भुत कहानी यहीं समाप्त होती है। किन्तु मेरा विश्वास था कि निरंतर भ्रमणशील काल चक्र के फेर में मै यहाँ फिर आऊँगा ही। मैने अपने हाथ उठा कर आचार के अनुसार प्रणाम किया और थोड़े शब्दों मे बिदायी की बात तुतला दी। महर्षि मुस्कराये और अचल दृष्टि से मेरी ओर ताकने लगे; किन्तु उनके मॅह से एक शब्द भी नही निकला।

आखिरी बार महर्षि की ओर एक दृष्टि, लैम्प की उस धुँधली कांति में खड़े होने वाले दिव्य नेत्र वाली तेजोमूर्ति की ओर एक आखिरी चितवन, और बिदा होने का मेरा एक इशारा, उत्तर में उनका दाहना हाथ उठा कर संकेत करना, फिर मेरा बिछुड़ना।

फाटक पर आकर मै एक बैलगाड़ी पर चढ़ा। गाड़ीवान ने उन बेचारे बैलों को कोड़ा लगाया। वे आश्रम की पवित्र भूमि से होकर शहर की सड़क पर आ गये और मल्लिका की भीनी महक से सुरभित भारत की उस उज्ज्वल रात मे अपने गन्तव्य स्थान की ओर दौड़ने लगे।